हिन्दी साहित्य में राधा

लेखक :

द्वारकाप्रसाद मीतल

एम० ए०, पी० एच० डी०

प्रकाशक :

जवाहर पुस्तकालय, मथुरा.

प्रकाशक :

कुंजबिहारीलाल पचौरी एम. कॉम
जवाहर पुस्तकालय
सदकुन्डा बाजार, मथुरा.

o

लेखक :

द्वारकाप्रसाद मीतल एम. ए., पी. एच. डी

o

प्रथम संस्करण १९७० ई०

o

मूल्य
पच्चीस-रुपया मात्र

●

मुद्रक :

ओमप्रकाश अग्रवाल
अजन्ता फाइन आर्ट प्रिन्टर्स,
हनुमान गली, मथुरा.

परिचय–

डा० द्वारका प्रसाद मीतल का जन्म सन् १९७८ ई. में अली जिले के ग्राम गोंमत में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा गोंमत व तहर खैर में हुई। हाईस्कूल से बी. ए तक एन. आर. ई. सी कालिज खु में शिक्षा प्राप्त की। अलीगढ़ विश्वविद्यालय से एम. ए. में द्वितं स्थान प्राप्त किया। 'भक्ति कालीन' कृष्ण काव्य में "राधा का स्वरू पर अलीगढ़ विश्वविद्यालय से पी-एच डी. की उपाधि मिली।

पाँच वर्ष हिन्दी प्राध्यापक के पद पर मुजफ्फरनगर जिले में का किया। तदुपरान्त ढाई वर्ष गृह मन्त्रालय में हिन्दी अध्यापक के पद प काय किया। गत आठ वर्षों से बुन्देलखण्ड कालिज झाँसी में हिन्द प्राध्यापक के पद पर कार्य कर रहे हैं। गत कई वर्षों से शोध निर्देशन का कार्य आगरा एव कानपुर के विश्वविद्यालयों में करते चले आ रहे हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ आपकी विद्वता का परिचायक है।

पूज्य पितामह स्वर्गीय
लाo चिम्मनलाल
के चरणों में समर्पित
जिनके औदार्य से ही
शिक्षा सुलभ हो सकी।

—द्वारकाप्रसाद मीतल

प्रस्तावना

'हिन्दी साहित्य में राधा', डा० द्वारकाप्रसाद मीतल द्वारा प्रस्तुत एतद्विषयक शोध प्रबन्ध का संशोधित रूप है। डा० मीतल ने बड़े अध्यवसाय और मनोयोग से संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य का अध्ययन और चिन्तन करने के पश्चात् राधा विषयक निष्कर्षों को प्रस्तुत किया है। हिन्दी साहित्य में राधा-विषयक प्रकीर्ण साहित्य का तो बाहुल्य है परन्तु सर्वाङ्गीण चिन्तन का अभाव सा ही है। डा० मीतल ने प्रस्तुत ग्रन्थ के माध्यम से इस अभाव की पूर्ति का सफल प्रयास किया है। राधा और कृष्ण शताब्दियों से भक्तों की भावना के विषय रहे हैं। इसलिए इन विषयों पर बौद्धिक-चिन्तन का बहुत कम अवकाश है। राधा-भाव अथवा कृष्ण-भाव संकल्पात्मक अथवा तर्क निष्ठ बुद्धि के विषय नहीं हैं—तद्भाव भावित हृदय से ही वे पकड़ में आ सकते हैं। हिन्दी के कृष्ण भक्ति साहित्य में राधा की आह्लादिनी शक्ति को विशेष अभिव्यजना प्राप्त हुई है जिसकी परमोच्च अवस्था अद्वैत की है अर्थात् 'राधा माधव, माधव राधा', की स्थिति भक्त का चरम साध्य है। इसीलिए अद्वैत परक भक्ति ग्रन्थ 'श्रीमद्भागवत' में परम भागवत महर्षि व्यास जी राधा का उल्लेख ही नहीं कर सके केवल इतना ही कहकर उन्होंने संतोष कर लिया—'अनयाराधितो नूनम्'। आचार्यों ने चिन्तकों के संतोष के लिए राधा की अनेक प्रतीकार्थों में व्याख्या की है परन्तु भक्त की दृष्टि में तो राधा-राधा ही है कोई प्रतीक नहीं है। कृष्ण-भक्तों ने अपने साहित्य में राधा को विशुद्ध राधा-भगवान कृष्ण की प्रेयसी के रूप में ही चित्रित किया है। उस रूप को समझने के लिए राधा-भाव आवश्यक है। इसीलिए भक्त-प्रवर सूरदास जी को राधा-भाव-भावित कहा जाता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में राधा-सम्बन्धी विभिन्न मान्यताओं और परम्पराओं का विवेचन करते हुए डा० मीतल ने हिन्दी साहित्य में चित्रित राधा के स्वरूप का उद्घाटन किया है। स्वभाव से भावुक और कर्म से बुद्धिजीवी होने के कारण डा० मीतल ने अपनी समीक्षा में हृदय और बुद्धि दोनों का ही समन्वय किया है।

मुझे आशा है कि डा० मीतल की कृति का हिन्दी जगत् में स्वागत होगा।

हरवंशलाल शर्मा
एम. ए., पी. एच. डी., डी. लिट.
अध्यक्ष-हिन्दी विभाग
और दक्षिण भारतीय भाषायें
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़.

आभार प्रकाशन

डा० हरवंशलाल शर्मा एम. ए, पी.एच. डी.,डी. लिट. अध्यक्ष हिन्दी विभाग अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ के निर्देशन में "भक्ति-कालीन कृष्ण काव्य में राधा का स्वरूप" विषय पर मैंने अलीगढ़ विश्वनिद्यायल से शोध कार्य किया और सन् १९५९ में विश्वविद्यालय ने डाक्टरेट की उपाधि प्रदान की। उसी के परिवर्द्धित एवं परिष्कृत स्वरूप के रूप में यह "हिन्दी साहित्य में राधा" ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है।

प्रस्तुत प्रबन्ध की रूप रेखा बन जाने के उपरान्त गोस्वामी ब्रजवासीलाल 'शशि' अधिकारी श्री राधावल्लभ सम्प्रदाय प्राचीन मन्दिर देवबन सहारनपुर से सर्व प्रथम सहायता मिली। लेखक को उन्होंने 'राधा' विशेषाँक देकर कृतार्थ किया। गोस्वामी रूपलालजी अधिकारी राधाबल्लभ जी का मन्दिर वृन्दावन से भी पत्र द्वारा उन्होंने परिचय कराया, जिन्होंने राधावल्लभ सम्प्रदाय सम्बन्धी कुछ मुद्रित पुस्तकें भेजकर मुझे कृतार्थ किया। वृन्दावन के हित-आश्रम में लेखक को बाबा बंशीदास जी के संग्रहालय में चतुर्भुजदास द्वारा रचित "द्वादश-यश" पुस्तक देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तथा प्रतिभाशाली एवं मेधावी बाबा हितदास के भी दर्शन हुए। लेखक बाबा बंशीदासजी की कृपा के लिये उनका हार्दिक ऋणी है।

श्री निकुञ्ज प्रताप बाजार वृन्दावन (मथुरा) के अधिकारी तथा "श्री सर्वेश्वर" के प्रधान सम्पादक आचार्य श्री ब्रजबल्लभ शरणजी वेदान्ताचार्य, पञ्चतीर्थ की विशेष सहायता लेखक को मिली है। लेखक उनके सद्व्यवहार, दयालुता और निष्पक्ष धार्मिक प्रवृत्ति से विशेष प्रभावित हुआ है। उन्होंने एक प्रकार से विषय का मनन और उससे प्रेम उत्पन्न होने की प्रेरणा ही नहीं दी अपितु अपने पास निम्बार्क सम्प्रदाय सम्बन्धी उपलब्ध सामग्री को भी स्वतन्त्रता पूर्वक अध्ययन करने की पूर्ण सुविधा लेखक को दी। उनके पास मुद्रित तथा हस्तलिखित ग्रन्थों का एक विशाल संग्रह है। लेखक को उन्होंने परशुराम सागर, लीलाविंशति आदि हस्तलिखित तथा अनेक मुद्रित ग्रन्थों को सहर्ष पठन पाठन हेतु दिया। उनकी 'निम्बार्क माधुरी' तो कई मास तक लेखक के पास रही। उनकी सहृदयता, एवं सहानुभूति का लेखक हृदय से आभारी है।

श्री ब्रजबल्लभ शरण जी के द्वारा ही लेखक का परिचय हरिदास-सम्प्रदाय के विरक्त श्री विशेश्वरशरणजी से श्रीनिकुञ्ज वृन्दावन में हुआ। उन्होंने स्वयं सम्पा-

दित 'सिद्धान्त-रत्नाकर' ग्रन्थ की एक प्रति लेखक को दी तथा हरिदास-सम्प्रदाय के गूढ़तम तत्वों को हृदयांगम कराया। उन्होंने लेखक को बताया कि सखी नाम का कोई सम्प्रदाय न होकर सखी भाव है। उनका मृदुल, निष्कपट अध्यवसायी एवं पत्र प्रकाशन में दत्तचित्त व्यक्तित्व लेखक को चिरस्मरणीय रहेगा। उन्होंने हरिदास-सम्प्रदाय की अनेक हस्तलिखित पोथियाँ लेखक को अध्ययन हेतु दीं जिनके लिये लेखक उनका विशेष आभारी है। इन पोथियों का विवरण इस ग्रन्थ में हरिदास-सम्प्रदाय के विवेचन के अन्तर्गत आया है।

लेखक बाबा कृष्णदास कुसुम सरोवर वाले वृन्दावन दरवाजा मथुरा का विशेष अनुगृहीत है जिन्होंने लेखक को चैतन्य सम्बन्धी अनेक पुस्तकों को देने और दिलाने की कृपा की। ऐसे महान् साहित्यकारों से अभी अनेक ग्रन्थ हिन्दी साहित्य जगत में प्रकाश में आने की आशा है। साधु प्रवृत्ति श्री अर्जुनदासजी शान्ति आश्रम वृन्दावन का भी लेखक कृतज्ञ है जिन्होंने एक अपरिचित व्यक्ति को 'लाड़-सागर' ग्रन्थ पढ़ने को दिया।

श्री कृष्णदत्त वाजपेयी अध्यक्ष पुरातत्व संग्रहालय मथुरा से लेखक को विशेष सहायता मिली। उन्होंने ब्रज-साहित्य-मंडल के पुस्तकालय के ग्रन्थों को देखने की विशेष सुविधा प्रदान की, जिसके लिए लेखक उनका आभारी है। पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी मथुरा के रजिस्टर से भी लेखक को ग्रन्थ सूची देखने में सहायता मिली है जिसके लिए लेखक उनका कृतज्ञ है।

डा० दीनदयालु गुप्त डी. लिट. ने सिनौप्सिस बनाने में जो परामर्श दिया उसके लिए लेखक उनका आभारी है। उनके शोध प्रबन्ध "अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय" से विभिन्न सम्प्रदायों के सिद्धान्तों और साधन पद्धतियों के सम्बन्ध में लेखक ने विशेष सहायता ली है इसके लिए लेखक उनका ऋणी है।

डा० विजयेन्द्र स्नातक के शोध प्रबन्ध "राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य" को ही लेखक ने राधावल्लभ-सम्प्रदाय के सम्बन्ध में प्रामाणिक माना है और उससे विशेष सहायता ली है। शोध प्रबन्ध लिखने के उपरान्त भी इसमें कुछ परिवर्तन करने के लिए उन्होंने लेखक को अमूल्य सुझाव दिए हैं, इस योगदान के लिए कि इस ग्रन्थ को यह रूप मिल सका लेखक उनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापन करना पुनीत कर्त्तव्य समझता है।

विद्या विभाग कांकरौली के प्रकाशित अनेक ग्रन्थों, डा० गोवर्द्धन नाथ शुक्ल के शोध प्रबन्ध "परमानन्द दास और उनका साहित्य", डा० हरवंशलाल शर्मा के [illegible] "[illegible] भागवत और सूरदास", श्री शशिभूषण दास के ग्रन्थ "राधा

का क्रम विकास,' पं० बलदेव उपाध्याय के ग्रन्थ "भागवत सम्प्रदाय" और "भारतीय वाङ्मय में राधा" तथा गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित "राधा-माधव-चिन्तन" आदि ग्रन्थों से लेखक को बहुत सहायता मिली है जिनके लिए लेखक ग्रन्थकारों का कृतज्ञ है।

अनेक साहित्यकारों और मर्मज्ञों के अध्ययन से मैंने लाभ उठाया है उन सभी विद्वानों के प्रति मैं अपना आभार प्रदर्शन करता हूँ।

आचार्य स्वामी श्रवणदेव तीर्थ अध्यात्म विद्यानिधि झाँसी ने अपना अमूल्य योगदान दिया है तथा सूर्य प्रकाश अग्रवाल ने भी सहायता दी है इसलिए मैं इन दोनों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ जिनके योगदान के बिना पुस्तक का प्रकाशन होना दुर्लभ था।

मैं अपने विद्वत पूज्य गुरुवर डा० हरवंशलाल शर्मा एम. ए. पी. एच. डी. डी. लिट. अध्यक्ष हिन्दी विभाग अलीगढ़ मुस्लिम विद्यालय अलीगढ़ के निर्देशन, परामर्श, एवं स्नेह के लिए किन शब्दों में और क्या लिखूँ इतना ही यथेष्ट है कि यह जैसा भी जो कुछ है उन्हीं की कृपा का फल है।

मैं संस्कृत का विशेष पंडित नहीं हूँ इस हेतु संस्कृत सम्बन्धी त्रुटियों के लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

श्री पचौरी जी, जवाहर पुस्तकालय असकुंडा बाजार मथुरा जिन्होंने इस ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए मुझे प्रेरणा दी है, जिनके योगदान से सन् १६५८ में "भक्ति कालीन कृष्ण काव्य में राधा का स्वरूप" अलीगढ़ मुस्लिम विश्व विद्यालय से स्वीकृत शोध प्रबन्ध आज पाठकों के समक्ष इस रूप में आ सका है विशेष धन्यवाद के पात्र हैं। साथ ही इस पुस्तक के प्रूफ आदि तथा इस प्रकार के प्रकाशन के लिए लेखक श्री गोपालशंकर जी नागर एवं श्री मूलशंकरजी नागर को धन्यवाद देना नहीं भूल सकता जिनके सहयोग से आज यह ग्रंथ इस रूप में प्रकाशित होकर आप सबके हाथों में है।

द्वारकाप्रसाद मीतल
एम. ए. पी. एच. डी.
गौमत जिला (अलीगढ़)
बुन्देल खण्ड कालिज, झांसी.

प्राक्कथन

भारतवर्ष के इतिहास में मध्ययुग के नाम से जो काल अभिहित किया गया है वह एक प्रकार से धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक विप्लव का काल कहा जा सकता है। गुप्तवंश के पतन के पश्चात् भारतवर्ष का राजनीतिक क्षितिज कुछ धूमिल सा हो गया था। ग्यारहवीं शताब्दी तक थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ वातावरण प्रायः अस्पष्ट ही रहा। मुसलमानों के आगमन के पश्चात् सांस्कृतिक द्वन्द्व का युग प्रारम्भ हुआ और शताब्दियों से ही चली आती हुई सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक परंपराओं का संघर्ष एक आन्दोलन के रूप में उठ खड़ा हुआ। भारत के दक्षिण में वातावरण उत्तर की अपेक्षा अधिक शान्त था इसलिए इस आन्दोलन का श्री गणेश दक्षिण से हुआ और धीरे-धीरे वह देशव्यापी हो गया। विशिष्ट परिस्थितियों के कारण धर्म के और संस्कृति के मानदण्ड बदले। शंकर का अद्वैतवाद निवृत्तिपरक होने के कारण सामाजिक प्राणी के लिये अनुपयोगी सा सिद्ध हो रहा था। श्री रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत पूर्ण रूप से मानव की शंकाओं का समाधान न कर सका। इसी प्रकार द्वैतवाद आदि और अनेक वादों की भी दशा थी। केवल दर्शनपरक वाद तड़फती हुई मानवता को तृप्त करने में असमर्थ थे। बौद्ध धर्म विकृति की चरमावस्था को पहुँच चुका था। नाथों ने उस विकृति में सुधार का प्रयास किया पर वह भी सामाजिकता के स्तर पर न पहुँच सका। रूढ़ परम्पराओं को लेकर चलने वाले अनेक पौराणिक पंथ अब निरर्थक हो चुके थे। निरीह और निराश्रित जनता को गुमराह करने के अतिरिक्त उनका और कोई उपयोग न रह गया था। मुसलमानों के साथ-साथ आने वाले सूफी सन्तों ने प्रेम को आधार बनाकर इस अव्यवस्था से लाभ उठाया। सारे देश में कुछ फक्कड़ और मस्तमौला संत उठ खड़े हुए और उन्होंने अपनी सधुक्खड़ी में डाट फटकार के साथ एक नतमार्ग निकालने का प्रयास किया, पर ये सन्त अधिक पढ़े लिखे नहीं थे और नहीं इनके मार्ग के पीछे कोई व्यवस्थित दर्शन था। केवल अनुभूति के बल पर ही वे चल रहे थे। सभी धर्मों और सम्प्रदायों की बुरी बातों की इन्होंने निन्दा की और धर्म के क्षेत्र में तथा समाज के क्षेत्र में एक क्रान्ति का बीजारोपण किया पर धार्मिक परम्पराओं और व्यवस्थित दर्शन के अभाव में इनके सिद्धान्त व्यापक न हो सके। भक्ति आन्दोलन को इनसे कुछ बल अवश्य मिला। वास्तव में भक्ति के ऐसे स्वरूप की आवश्यकता बनी रही जो मानवमात्र के लिए कल्याणकारी हो सकता था। उपासना की निर्गुण पद्धति में उस स्वरूप की सम्भावना नहीं हो सकती थी।

भगवान् के सगुण रूप को लेकर चलने वाले सम्प्रदायों में भी भगवान् के आदर्श रूप को ही महत्व मिलता रहा था, यद्यपि इन सम्प्रदायों में अवतारवाद पर विश्वास किया जाता था फिर भी मर्यादा की अपेक्षा प्रेम और कर्मफल की अपेक्षा कृपाफल ही पीड़ित और संतप्त जनता के लिए अधिक उपयोगी और आशाप्रद सिद्ध हो सकते थे। इसीलिये भगवान् के अवतार कृष्ण में इन दोनों भावों की अवतारणा आचार्यों ने की। आचार्य निम्बार्क ने कृष्ण भक्ति का उद्‌घोष उत्तर भारत में किया। कृष्ण को सच्चिदानन्द स्वरूप परम चैतन्य माना गया और राधिका को उनकी आह्लादिनी शक्ति। इस प्रकार राधा और कृष्ण की लीला केलि को भक्ति में स्थान मिला। ब्रह्म माया की उपासना कई रूपों में धार्मिक सम्प्रदायों में प्रचलित थी ही, बौद्ध धर्म में जो स्थान प्रज्ञा व उपाय का था अथवा शैव मत में जो शिव और शक्ति का था वही कृष्ण भक्ति शाखा में कृष्ण और राधा का हुआ। परम्परायें और प्रथायें कुछ परिवर्तन के साथ वे ही रहीं, केवल नाम परिवर्तन हो गया। आचार्यों ने राधा और कृष्ण की भक्ति को शास्त्रीय रूप देना प्रारम्भ किया और प्रस्थान त्रयी की व्याख्या अपने-अपने ढंग से करनी प्रारम्भ कर दी। श्रीमद्‌भागवत पुराण ने कल्प वृक्ष का कार्य किया जिससे भक्ति शाखा को बड़ा प्रोत्साहन मिला और वह अजर और अमर हो गई। शास्त्र और आचार दोनों ही पक्षों को लेकर कई सम्प्रदाय चले तब मूल में राधा और कृष्ण के तत्वों का विवेचन ही रहा। चौदहवीं शताब्दी से लेकर सत्रहवीं शताब्दी तक कृष्ण भक्ति का सारे भारत में बड़ा प्रचार हुआ और उसके माध्यम से भारतीय भाषाओं के साहित्यों की खूब अभिवृद्धि हुई। हिन्दी में भी बड़े प्राणवान और शक्तिशाली साहित्य की सर्जना हुई। राधा और कृष्ण के स्वरूप विवेचन और उपासना निरूपण में कुछ स्थानगत भेद भी रहे, परन्तु मूल रूप प्रायः एक सा ही रहा। मध्य युग का सारा साहित्य एक प्रकार से कृष्ण भक्ति साहित्य कहा जा सकता है। राम भक्ति साहित्य की मात्रा अपेक्षाकृत कम ही रही।

राधा और कृष्ण की ऐतिहासिकता को लेकर भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों द्वारा बहुत कुछ लिखा पढ़ा गया है पर भक्ति के क्षेत्र में उपास्य ऐहिक न होकर आध्यात्मिक हो जाते हैं। राधा और कृष्ण का उल्लेख भारतीय वाङ्मय में बड़ा पुराना है पर उनका जो रूप इस युग में स्वीकार किया गया सम्भवतः वह पहले किसी युग में नहीं था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि राधा और कृष्ण के मध्यकालीन स्वरूपों के पीछे शताब्दियों की परम्परायें निहित हैं। कृष्ण के स्वरूप विकास को लेकर हिन्दी में कुछ प्रयत्न हुए हैं पर राधा के स्वरूप विकास पर

अपेक्षाकृत कार्य कम है। राधा और कृष्ण दोनों ही के रूप विवेचन के दो पक्ष रहे हैं—शास्त्रीय पक्ष और आचरण पक्ष। भक्ति मार्गों में शास्त्रीय पक्ष की अपेक्षा आचरण पक्ष अधिक महत्व का होता है। शास्त्रीय पक्ष किसी वस्तु का दर्शन प्रस्तुत करता है जो कि बुद्धि जगत का अंग है। आचरण पक्ष व्यवहार को लेता है जो हृदय जगत की वस्तु है। सम्प्रदायों के आचार्यों ने शास्त्रीय पक्ष का ही विवेचन किया है परन्तु भक्तों और कवियों ने व्यवहार पक्ष को लिया है। राधा के स्वरूप विवेचन में शोध की दृष्टि से दोनों ही पक्षों का उद्‌घाटन आवश्यक है।

जहाँ तक शास्त्रीय पक्ष के विवेचन का सम्बन्ध है विभिन्न सम्प्रदायों में राधा के स्वरूप की मान्यताओं का दृष्टिकोण पृथक्-पृथक् ही रहा। साम्प्रदायिक आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में राधा का उल्लेख किया परन्तु उनमें साम्प्रदायिक भावों का सामञ्जस्य होने के कारण राधा का कोई विशुद्ध रूप हमारे सम्मुख नहीं आता। जो भी थोड़े बहुत साम्प्रदायिक ग्रन्थ इस सम्बन्ध में लिखे गये उनसे किसी प्रकार का असाम्प्रदायिक, निष्पक्ष एवं स्पष्ट 'राधा का स्वरूप' निर्धारण नहीं किया जा सकता। भगीरथ झा मैथिल ने अपने संस्कृत ग्रन्थ 'युग्म तत्व समीक्षा' में राधा के सम्बन्ध में आये हुए वैदिक, पौराणिक एवं तान्त्रिक ग्रन्थों के उद्धरणों का चयन किया है। जो कुछ भी थोड़ा बहुत राधा के स्वरूप के सम्बन्ध में कार्य हुआ वह संस्कृत में ही हुआ। हिन्दी में श्री शशिभूषणदास गुप्त ने 'राधा का क्रम विकास' ग्रन्थ में राधा का जो क्रमिक विकास दिखाया है वह एक प्रशंसनीय कार्य कहा जा सकता है। परन्तु उन्होंने इस ग्रन्थ में राधा के गौड़ीय मत सम्बन्धी दार्शनिक स्वरूप और शक्ति स्वरूप की विवेचना प्रचुर मात्रा में की है। चैतन्य सम्प्रदाय में राधा के स्वरूप का भी विशद विवेचन हुआ है। परन्तु जहाँ तक विभिन्न सम्प्रदायों के राधा के स्वरूप का सम्बन्ध है, उसका इस ग्रन्थ में विस्तृत विवेचन नहीं है। जहाँ तक हिन्दी कवियों के काव्य में राधा के स्वरूप का सम्बन्ध है उसका इसमें अभाव है। इस हेतु मैं कह सकता हूँ कि हिन्दी साहित्य जगत में विभिन्न दृष्टि-कोणों से निष्पक्ष एवं सर्वांगीण राधा के विस्तृत स्वरूप विवेचन सम्बन्धी ग्रन्थ का नितान्त अभाव था। अलीगढ़ विश्वविद्यालय के अंतर्गत लिखे गये शोध प्रबंध "भक्ति कालीन कृष्ण-काव्य में राधा का स्वरूप" में इस अभाव की पूर्ति करने का प्रयास किया गया है। इसमें मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ इसका निर्णय विज्ञजन ही कर सकेंगे। यही शोध प्रबंध "हिन्दी साहित्य में राधा" नाम से प्रकाशित हो रहा है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में श्रीमद्‌भागवद्‌गीता, श्रीमद्‌भागवत

पुराण, शांडिल्य भक्ति सूत्र, नारद भक्ति सूत्र तथा विभिन्न साम्प्रदायिक ग्रन्थों के आधार पर भक्ति की व्याख्या देते हुए उसके प्रकार बताये गये हैं। तदुपरान्त वैदिक युग से आज तक के भक्ति के विकास का सांगोपांग वर्णन किया गया है। वैदिक तथा धार्मिक ग्रन्थों में किस प्रकार कृष्ण का विकास हुआ है इसका विवेचन किया गया है। शिलालेखों, ताम्रपत्रों तथा विभिन्न घटनाओं से कृष्ण की प्राचीनता सिद्ध करते हुए कृष्ण के विकास का विस्तृत विवेचन है। राधा के तत्त्व किस प्रकार से वैदिक ग्रन्थों से लेकर, पुराणों, तंत्रों तथा संस्कृत के प्राचीनतम ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं बताते हुए, राधा का विस्तृत क्रमिक विकास दिखाया गया है।

द्वितीय अध्याय में राधा शब्द की व्युत्पत्ति बताते हुए राधा के आध्यात्मिक, दार्शनिक, ज्योतिष, धार्मिक, यौगिक तथा वैज्ञानिक स्वरूप का विवेचन हुआ है।

तृतीय अध्याय में बताया है कि राधा शब्द के बीज वैदिक साहित्य में मिलते हैं और अथर्ववेद में राधिकोपनिषद् की कल्पना की गई है। पुराणों तथा तंत्रों में आये हुए राधा के स्वरूप का विस्तृत विवेचन किया गया है। इसमें बताया है कि गोपनीय रूप से किस प्रकार श्रीमद्भागवत पुराण में भी राधा के तत्त्व अंतर्निहित हैं तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण में किस प्रकार से राधा का विशद एवं विस्तृत चित्रण हुआ है।

चतुर्थ अध्याय के प्रथम भाग में विषय के प्रतिपादन हेतु उसकी पृष्ठभूमि को बनाना नितांत आवश्यक समझ शंकराचार्य, निम्बार्काचार्य, वल्लभाचार्य, रामानुजाचार्य, चैतन्यमहाप्रभु, हरिदास, हितहरिवंश आदि द्वारा प्रवर्तित विभिन्न सम्प्रदायों के सिद्धांतों तथा साधना पद्धतियों का सूक्ष्म विवेचन एवं विश्लेषण किया गया है। इसी अध्याय के द्वितीय भाग में वल्लभ, निम्बार्क, चैतन्य, हरिदासी, राधावल्लभ और वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय के अंतर्गत राधा की उपासना, मान्यता तथा भक्ति-भावना पर प्रकाश डालते हुए राधा के स्वरूप का चित्रण है। इसमें बताया है कि वल्लभ सम्प्रदाय में कृष्ण महान्, निम्बार्क सम्प्रदाय में राधा महान् तथा राधा-वल्लभ सम्प्रदाय में कृष्ण राधा के अनुषंगी हैं।

पंचम अध्याय में जयदेव के गीतगोविन्द की राधा, चंडीदास की परकीया राधा, विद्यापति की शृङ्गारिक राधा का विशद विवेचन करते हुए अन्त में चंडीदास और विद्यापति की राधा का तुलनात्मक विवेचन किया गया है। इसमें बताया है कि लौकिक दृष्टि से तीनों में शृङ्गारिकता होते हुए भी उनके अंतस में किस प्रकार भक्ति का सामञ्जस्य है।

षष्ठ अध्याय में सम्प्रदायानुसार एव क्रमानुसार हिन्दी साहित्य के कुछ प्रमुख कवियों के राधा सम्वन्धी उद्धरणों का चयन एवं विचारधाराओं का विशद एवं विस्तृत विवेचन किया गया है। राधा सम्वन्धी उद्धरण मुद्रित तथा हस्तलिखित दोनों प्रकार के ग्रन्थों से ही दिये गये हैं।

सप्तम अध्याय में रीतिकालीन समस्त साहित्य कृष्ण एवं राधा परक होने के कारण तथा आधुनिक काल के कवियों के राधा सम्वन्धी विभिन्न दृष्टिकोण होने के कारण उनका विवेचन किया गया है। रीतिकालीन कवियों की प्रवृत्ति प्रायः एक समान होने के कारण उसके कुछ प्रमुख कवियों से ही उद्धरण किये गये हैं। आधुनिक काल के कवियों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, द्वारकाप्रसाद मिश्र तथा दाऊदयाल गुप्त की राधा के स्वरूप का आलोचनात्मक विवेचन है। यह अध्याय मूलशोध प्रवन्ध में परिशिष्ट के रूप में ही है।

द्वारिकाप्रसाद मीतल

विषय-अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

भक्ति और उसका विकास

भक्ति की व्याख्या

'भज्' सेवायाम् धातु में क्तिन् प्रत्यय लगाने से भक्ति शब्द बनता है जिसका सामान्य रूढ़ अर्थ भगवान का सेवा प्रकार है। परम वैराग्यशील बनकर इष्टदेव की उपासना में रत रहना ही सच्ची भक्ति है। वास्तविक भक्ति वैराग्य की नींव पर स्थित है। भक्ति से ईश्वर शीघ्र द्रवित होते हैं और भक्त को भी सुख मिलता है। भक्ति स्वयं साध्य एवं साधन रूप है। निष्कपट रूप से ईश्वरानुसंधान ही भक्ति योग है तथा प्रेम इसका आदि, मध्य और अवसान है।

श्रीमद्भगवत् गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है कि यदि कोई अतिशय-दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त हुआ मेरे को निरन्तर भजता है तो वह साधु ही मानने योग्य है क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहने वाली परम शान्ति को प्राप्त होता है। वह मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।[1] गीता के बारहवें अध्याय में भक्त के लक्षण बतलाते हुए वह स्थिति बताई है जब भक्त को परा भक्ति की प्राप्ति होती है। सच्चिदानन्द घन ब्रह्म में एकी भाव से स्थित हुआ प्रसन्न चित्त वाला पुरुष न तो किसी वस्तु के लिए शोक करता है और न किसी की आकांक्षा ही करता है एवं भूतों में समभाव हुआ मेरी पराभक्ति को प्राप्त होता है।[2]

श्रीमद्भागवत के अनुसार जिन मनुष्यों का चित्त भगवान में लग गया है ऐसे मनुष्यों की वेद विहित कर्मों में लगी हुई तथा विषयों का ज्ञान कराने वाली कर्मेन्द्रिय एवं ज्ञानेन्द्रिय दोनों प्रकार की प्रवृत्ति को भगवान् की अहेतुकी भक्ति कहा है।[3] श्रीमद्भागवत में भक्ति योग के लक्षण के सम्बन्ध में भगवान् का कथन है कि "जिस प्रकार गङ्गा का प्रवाह अखण्ड रूप से समुद्र की ओर बहता रहता है, उसी प्रकार मेरे गुणों के श्रवण मात्र से मन की गति का तैल-

---

१. श्रीमद्भगवत्गीता—गीता प्रेस गोरखपुर सं० २००६, ९-३०-३१

२. ,, ,, ,, सं० २००६, १८-५१-५५

३. देवानां गुणलिङ्गानानुश्रविककर्मणाम्।
सत्त्व एवैव्यमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या। श्रीमद्भागवत ३-२५-३२

धारावत् अविच्छिन्न रूप से मुझ सर्वान्तर्यामी के प्रति हो जाता तथा मुझ पुरुषोत्तम में निष्काम और अनन्य प्रेम होना—यह निर्गुण भक्तियोग का लक्षण कहा गया है।"[1] भक्ति का लक्षण श्रीमद्भागवत में इस प्रकार दिया गया है।

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति ॥ १–२–६ ॥

अर्थात् "मनुष्यों के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है, जिससे भगवान् श्रीकृष्ण में भक्ति हो—भक्ति भी ऐसी, जिसमें किसी प्रकार की कामना न हो और जो नित्य निरन्तर बनी रहे, ऐसी भक्ति से हृदय आनन्द स्वरूप परमात्मा की उपलब्धि करके कृतकृत्य हो जाता है।" भगवान की सेवा को छोड़कर ऐसे भक्त दिये जाने पर भी सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मोक्ष तक को नहीं लेते। श्रीमद्भागवत में भक्ति को मुक्ति से बढ़कर बताया है क्योंकि जिस प्रकार से जठरानल खाये हुए अन्न को पचाता है उसी प्रकार यह कर्म-संस्कारों के भण्डार रूप लिङ्ग शरीर को तत्काल भस्म कर देती है।[2] श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध के चौदहवें अध्याय में भक्ति को योग साधन, ज्ञान-विज्ञान, धर्मानुष्ठान, जप-पाठ और तप-त्याग से भी बढ़कर माना गया है। उनका कथन है कि "भक्ति जाति दोष से मुक्त करने वाली है। भक्ति योग के द्वारा आत्मा कर्म-वासनाओं से मुक्त होकर मुझको ही प्राप्त हो जाता है, क्योंकि मैं ही उनका वास्तविक स्वरूप हूँ।[3] नवम् स्कन्ध में भगवान् घोषणा करते हैं कि वह भक्ति के द्वारा ही जाने जाते, भक्तों के वश में होते और उन्हें आश्रय देते हैं।[4] ज्ञान और भक्ति का सामञ्जस्य भी भागवतकार ने स्थान-स्थान पर किया है।[5]

शांडिल्य भक्ति सूत्र में भक्ति की व्याख्या इस प्रकार की गई है, "सा परानुरक्तिरीश्वरे"[6] अर्थात् ईश्वर के प्रति सम्पूर्ण अनुराग का नाम भक्ति है। ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान विशेष का नाम भक्ति नहीं है, क्योंकि दोषी पुरुष को भी ज्ञान होता है परन्तु उसमें प्रीति नहीं होती।[7] द्वेष का प्रतिकूल और रस

१. श्रीमद्भागवत ३-२६-११, ३-२६-१२
२. श्रीमद्भागवत स्कन्ध ११, अध्याय १४, श्लोक २० से २५
३. श्रीमद्भागवत १-२-११
४. श्रीमद्भागवत ६-४-६३ से ६८
५. श्रीमद्भागवत १-२-११
६. शांडिल्य भक्ति-सूत्र २
७. शांडिल्य भक्ति-सूत्र ४

शब्द का प्रतिपादक होने के कारण भक्ति का नाम ही अनुराग है।[1] वह ज्ञान की भाँति अनुष्ठानकर्ता के आधीन नहीं है।[2] शांडिल्य भक्ति सूत्र में भक्ति शब्द गौणी भक्ति का प्रतिपादक है जो परा भक्ति की भीतिरूप है। भजन और सेवा ही गौणी भक्ति है।[3]

नारद भक्ति-सूत्र में विभिन्न आचार्यों की भक्ति सम्बन्धी व्याख्या का विवेचन हुआ है। उसमें लिखा है कि पराशर नन्दन श्री व्यासजी के मतानुसार भगवान् की पूजा आदि में अनुराग होना ही भक्ति है।[4] श्री गर्गाचार्य के मतानुसार भगवान् की कथा आदि में अनुराग होना ही भक्ति है।[5] देवर्षि नारद के मत से अपने सब कर्मों को भगवान् के अर्पण करना और भगवान् का थोड़ा-सा भी विस्मरण होने में परम व्याकुल होना ही भक्ति है।[6] नारद भक्ति सूत्र में भक्ति के लक्षण बताते हुए लिखा है कि वह भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेम रूपा है और अमृत स्वरूपा भी है।[7] उसको पाकर मनुष्य सिद्ध हो अमर व तृप्त हो जाता है।[8] उसके प्राप्त होने पर मनुष्य न किसी वस्तु की इच्छा करता है, न शोक करता है, न द्वेष करता है, न किसी वस्तु में आसक्त होता है और न उसे विषय भोगों की प्राप्ति में उत्साह रहता है।[9] उसे प्राप्त कर ही मनुष्य उन्मत्त हो जाता है, स्तब्ध हो जाता है और आत्माराम बन जाता है।[10] यह कामनायुक्त न होकर निरोध स्वरूपा है।[11] नारद भक्ति सूत्र में व्रज गोपियों की भक्ति का उदाहरण देते हुए बताया है कि भगवान् के प्रेम की व्याकुल अवस्था में भी माहात्म्य ज्ञान की विस्मृति नहीं होनी चाहिये, क्योंकि उसके बिना भक्ति लौकिक जार-प्रेम के समान होती है।[12] ब्रह्मकुमारों (सनत्कुमारादि और नारद) के मत से भक्ति स्वयं फल रूपा है।[13] वह भक्ति कार्य, ज्ञान और योग से भी श्रेष्ठ है क्योंकि वह फल रूपा है।[14] भक्ति शान्तिरूपा और परमानन्द रूपा है तथा तीनों सत्यों (कायिक, वाचिक और मानसिक) अथवा कालों में श्रेष्ठ है।[15]

१ शांडिल्य भक्ति-सूत्र ६
२. शांडिल्य भक्ति-सूत्र ७
३. शांडिल्य भक्ति-सूत्र ५६
४. नारद भक्ति-सूत्र १६
५. नारद भक्ति-सूत्र १७
६. नारद भक्ति-सूत्र १९
७. नारद भक्ति-सूत्र २,३
८. नारद भक्ति-सूत्र ४
९. नारद भक्ति-सूत्र ५
१०. नारद भक्ति-सूत्र ६
११. नारद भक्ति-सूत्र ७
१२. नारद भक्ति-सूत्र २३
१३. नारद भक्ति-सूत्र ३०
१४. नारद भक्ति-सूत्र २५,२६
१५. नारद भक्ति-सूत्र ८१

श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य ने तत्व-दीप निबन्ध में भक्ति की व्याख्या दी है। उनके अनुसार भगवान् में महात्म्य पूर्वक सुदृढ़ और सतत स्नेह ही भक्ति है। मुक्ति का इससे सरल उपाय नहीं है।[1]

भक्त शिरोमणि रूपगोस्वामी द्वारा प्रणीत भक्ति-रसामृत-सिन्धु के पूर्व विभाग की प्रथम लहरी में भक्ति के सामान्य रूप का, द्वितीय लहरी में साधना भक्ति का, तृतीय लहरी में भाव भक्ति का और चतुर्थ लहरी में प्रेम-भक्ति का विवेचन हुआ है। उन्होंने भक्ति का तात्विक लक्षण इस प्रकार दिया है, "भगवान् श्रीकृष्ण परम स्नेहास्पद हैं। अतः उनके अनुशीलन को भक्ति कहते हैं, जिसमें अन्य किसी पदार्थ की अभिलाषा न हो, ज्ञान (निर्गुण ब्रह्मानुसंधान, तथा धर्म स्मृति में प्रतिपादित नित्य नैमित्तिक आदि) का आवरण न हो, परन्तु कृष्ण के अनुकूल होने वाली प्रवृत्ति की सत्ता हो। इस भक्ति का उदय ज्ञान के अनन्तर ही होता है।"[2]

कृष्णदास कविराज ने चैतन्य चरितामृत में भक्ति को इष्टदेव और भक्त का सम्बन्ध बताया है। भक्त इसीलिए भगवान् से भक्ति का वरदान मांगता है क्योंकि उसके कारण ही भक्त का इष्टदेव से एक मात्र नाता जुड़ता है।[3] कृष्णदास कविराज के अनुसार कृष्ण प्राप्ति के तीन साधन हैं, एक भक्ति, दूसरा ज्ञान और तीसरा योग। इन साधनों से इष्टदेव तीन स्वरूपों में भासते हैं। भक्ति से स्वयं भगवान् की प्राप्ति होती है। अतएव भक्ति कृष्ण प्राप्ति का उपाय

---

१. माहात्म्यज्ञान पूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिकः।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया भक्तिर्नचान्यया॥
तत्वदीप निबन्ध, ज्ञान सागर, बम्बई, श्लोक ४६ पृ० १२७

२. अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्म्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥ १॥
श्री हरिभक्ति रसामृत सिन्धु, रूप गोस्वामी, पूर्व विभाग १ लहरी ११ पृ० ११-१२।

३. क—भगवान सम्बन्ध भक्ति अभिधेय हय।
प्रेम प्रयोजन वेद तिन वस्तु कय॥
चै. च. मध्यलीला, परि. ६, पृ० १३३

ख—कह रघुपति सुनु भामिनी बाता।
मानौं एक भगति कर नाता॥ रा. च. मा. अ. ३५, पृ. ३४५

ग—अपनी प्रभु भक्ति देहु, जासौं तुम नाता। सू. सा. १/१२३. पृ. ४१

अर्थात् साधन है। तुलसीदास का कथन है कि भक्ति से इष्टदेव राम शीघ्र द्रवित हो जाते हैं और भक्त पर कृपा करते हैं।[1] हरिभजन के बिना क्लेश दूर नहीं होते और भव-भय नष्ट नहीं होता। हरि की भक्ति के बिना सुख की उपलब्धि नहीं होती।[2]

भक्ति के प्रकार—

प्रेम सम्बन्ध के जितने रूप होते हैं वास्तव में उतने ही भक्ति के प्रकार भी हो सकते हैं। भक्ति के प्रकारों का आधार एक प्रकार से मनोवैज्ञानिक ही है। विभिन्न आचार्यों ने अनेक अनुभव और ज्ञान के आधार पर इन विभिन्न मनोवैज्ञानिक भूमियों का साक्षात्कार किया है। इन्हीं मनोवैज्ञानिक भूमियों के अनुरूप भक्ति के प्रकार गिनाये हैं। वस्तु स्थिति तो यह है कि भक्ति समग्र रूपा है। उसके प्रकार के क्रम सुविधा के अनुसार ही गिनाए जा सकते हैं। भक्ति के प्रकार भक्ति की साधन भूमियाँ हैं।

श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध में विवेचन हुआ है कि "साधकों के अनुसार भक्ति योग का अनेक प्रकार से प्रकाश होता है क्योंकि स्वभाव और गुणों के भेद से मनुष्यों के भाव में भी विभिन्नता आ जाती है।"[3] श्रीमद्भागवत में साधक के स्वभावानुसार भक्ति तामसी, राजसी, सात्त्विकी तथा निर्गुणा चार प्रकार की मानी हैं। प्रथम तीन प्रकार की गुणा भक्तियाँ काम्य और चौथी निर्गुणा भक्ति निष्काम है। उसमें आया है जो भेद दर्शी क्रोधी पुरुष हृदय में हिंसा, दम्भ अथवा मात्सर्य का भाव रखकर मुझसे प्रेम करता है, वह मेरा तामस भक्त है।[4] जो पुरुष विषय यश और ऐश्वर्य की कामना से प्रतिमादि में मेरा भेद भाव से पूजन करता है, वह राजस भक्त है।[5] जो व्यक्ति पापों का क्षय करने के लिये, परमात्मा को

---

१. जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई।
सो मम भगति भगत सुखदाई॥ रा. च. मा. अ. १६: पृ. ३३०

२. क–बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा। रा. च. मा. उ. ८९ पृ. ५३७
ख–सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु। रा. च. मा. उ. ८९ पृ. ५३७
ग–बिनु हरि भजन न भवभय नासा। रा. च. मा. उ. ९० पृ. ५३८

३. श्रीमद्भागवत ३-२९-७

४. श्रीमद्भागवत ३-२९-८

५. श्रीमद्भागवत ३-२९-९

अर्पण करने के लिये और पूजन करना कर्त्तव्य है इस बुद्धि से मेरा भेद भाव से पूजन करता है, वह सात्विक भक्त है।[1] जिस प्रकार गङ्गा का प्रवाह अखण्ड रूप से समुद्र की ओर बहता रहता है, उसी प्रकार मेरे गुणों के श्रवण मात्र से मन की गति का तैल धारावत् अविच्छिन्न रूप से मुझ सर्वान्तर्यामी के प्रति हो जाना तथा मुझ पुरुषोत्तम में निष्काम और अनन्य प्रेम होना—यह निर्गुण-भक्ति योग का लक्षण कहा गया है।[2]

श्रीमद्भागवत में विशुद्ध भक्ति का कई स्थानों पर विवेचन हुआ है। उसमें भक्ति के हमें तीन स्वरूप मिलते हैं। १—विशुद्ध भक्ति २—नवधाभक्ति ३—प्रेमा भक्ति। श्रीमद्भागवत के सप्तम स्कन्ध में प्रह्लाद ने भगवान् की भक्ति के नव भेद बताये हैं :—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥

अध्याय ५, श्लोक २३, २४

अर्थात् विष्णु भगवान् की भक्ति के नौ भेद हैं—भगवान् के गुण, लीला नाम आदि का श्रवण, उन्हीं का कीर्तन, उनके रूप-नाम आदि का स्मरण, उनके चरणों की सेवा, पूजा-अर्चना, वन्दन, दास्य और आत्म निवेदन। यदि भगवान् के प्रति समर्पण के भाव से यह नौ प्रकार की भक्ति की जाय तो मैं उसी को उत्तम अध्ययन समझता हूँ। इन नौ प्रकार की भक्ति के तीन भाग किये जा सकते हैं। श्रवण. कीर्तन और स्मरण क्रियायें भगवान् के नाम और लीला से सम्बन्ध रखती हैं। पाद सेवन, अर्चन और वन्दन का उनके स्वरूप से लगाव है। दास्य, सख्य और आत्म निवेदन का अर्पण भगवान् को होता है। इन सबमें आत्म-निवेदन का विशेष महत्व है, क्योंकि इसमें साधन और साध्य एक हो जाते हैं। वैधी भक्ति से रागात्मिका भक्ति श्रेष्ठ है और रागात्मिका भक्ति की पूर्णता आत्म समर्पण में है।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समय-समय पर इस आत्म निवेदन का ही उपदेश दिया है। गीता के नवें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि, "हे अर्जुन! तू जो कुछ कर्म करता है जो कुछ खाता है, जो कुछ हवन करता

१. श्रीमद्भागवत ३-२९-१०
२. श्रीमद्भागवत ३-२९-११,१२

है, जो कुछ दान देता है, जो कुछ स्वधर्माचरण रूप तप करता है वह सब मेरे अर्पण कर।"[1] इस आत्म निवेदन को कुछ आचार्यों ने शरणागति अथवा प्रपत्ति कहा है। पान्च-रात्र विष्वक्सेन संहिता में कहा गया है, "भगवत् रूप प्राप्य वस्तु की इच्छा करने वाले उपाय-हीन व्यक्ति की प्रार्थना में पर्यवसायिनी निश्चयात्मिका बुद्धि ही प्रपत्ति का स्वरूप है, तथा अनन्य साध्य भगवद्-प्राप्ति में महाविश्वास पूर्वक भगवान् को ही एक मात्र उपास्य समझ कर उपाय करते रहना ही प्रपत्ति है और इसी को शरणागति कहते हैं।"[2] भगवद् गीता में भक्त चार प्रकार के कहे गये हैं। श्रीकृष्ण भगवान् अर्जुन से कहते हैं:–

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

अध्याय ७ श्लोक १६.

अर्थात 'हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन! उत्तम कर्म वाले अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी अर्थात् निष्कामी ऐसे चार प्रकार के भक्तजन मेरे को भजते हैं।'

स्वतन्त्र भक्ति-मार्ग की वैधी, रागानुगा तथा परा-भक्ति का विवेचन 'शाडिल्य-भक्ति-सूत्र', नारद भक्ति-सूत्र, हरि-भक्ति-रसामृतसिन्धु आदि ग्रन्थों में हुआ है। नारद-भक्ति-सूत्र में प्रेमभक्ति का विशद विवेचन है। यह प्रेम-भक्ति ही परा भक्ति कहलाती है और इसे ही भूमानंद कहते हैं। इसमें भक्त अपने प्रियतम भगवान् के स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। इसे ही भागवत में अहैतुकी निर्गुण भक्ति और गीता में ज्ञानी की भक्ति कहा है। नारद-भक्ति सूत्र में प्रेम रूपा भक्ति के सम्बन्ध में ग्यारह आसक्तियों का उल्लेख हुआ है जिसके कारण यह एक होकर भी ग्यारह प्रकार की होती है। ये ग्यारह आसक्तियाँ इस प्रकार हैं:– १. गुणमाहात्म्यासक्ति, २. रूपासक्ति, ३. पूजासक्ति, ४. स्मरणासक्ति, ५. दास्यासक्ति, ६. सख्यासक्ति, ७. कान्तासक्ति, ८. वात्सल्यासक्ति, ९. आत्म निवेदनासक्ति, १०. तन्मयतासक्ति, ११, परम विरहासक्ति।[3] कृष्ण के प्रति गोपीभाव में समस्त आसक्तियाँ मिलती हैं, क्योंकि व्रजगोपियों ने पराभक्ति को प्राप्त कर लिया था।

डा. दीनदयालु गुप्त ने अपने ग्रन्थ 'अष्टछाप और वल्लभ' में भक्ति को मन्त्र योग का एक अङ्ग भी बताया है और मंत्र योगी के सोलह अङ्ग बताये हैं। मंत्र

---

१. गीता, ९-२७, १८-६५, १८-६६

२. पाञ्चरात्र विष्वक्सेन संहिता से 'कल्याण' के साधनाङ्क में उद्धृत पृ. ६०, अगस्त १९४०।

३. नारद-भक्ति-सूत्र ८२

योग में प्राचीन काल से पञ्च पूजा का विधान प्रचलित रहा है। ईश्वर के पाँच साकार रूप हैं–विष्णु, सूर्य, देवी, गणपति तथा शिव। यह पंच देवोपासना कहलाती है। मंत्रयोगी के सोलह अङ्ग हैं–भक्ति, शुद्धि, आसन, पञ्चाङ्ग, सेवन, आचार, धारणा, दिव्यदेश-सेवन, प्राण-क्रिया, मुद्रा, तर्पण, हवन, बलि, याग, तप, ध्यान और भाव समाधि।[1]

रूप गोस्वामी ने भक्ति का विवेचन 'हरि-भक्ति-रसामृत-सिन्धु' में किया है। 'भक्ति-रसामृत-सिंधु' के चार विभाग हैं पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण। पूर्व विभाग में चार लहरी हैं और इसमें भक्ति की व्याख्या की गई है। प्रथम लहरी में भक्ति के सामान्य रूप का, दूसरी लहरी में भक्ति का, तीसरी में भाव भक्ति का और चौथी में प्रेम-भक्ति का विवेचन हुआ है। उन्होंने भक्ति को दो प्रकार की माना है गौणी तथा परा। साधन दशा की भक्ति गौणी और सिद्ध दशा की परा कहलाती है। गौणी भक्ति के दो भेद हैं– १. वैधी और २. रागानुगा। जिस भक्ति का साधन शास्त्रोक्त विधि पूर्वक होता है और जिसके विविध अङ्गों का नियम पूर्वक साधन होता है।[2] जिस भाव से भगवान् के प्रेम में अपूर्व रस का अनुभव होता है और जिस प्रेम भाव की अनुभूति से भक्त के हृदय में परम शांति और आनन्द का उदय होता है उसे रागानुगा भक्ति कहते हैं।[3] वैधी भक्ति को कुछ लोग मर्यादा भी कहते हैं।[4] कृष्ण के प्रति राधा तथा अन्य गोपिकाओं का प्रेम रागानुगा भक्ति के अंतर्गत आता है। मन को एकाग्र कर भगवान् का नित्य निरंतर श्रवण कीर्तन और आराधन भक्ति का साधन पक्ष है और भगवान् में परानुभक्ति साध्य पक्ष। रूप गोस्वामी ने वैधी और रागानुगा दोनों ही भक्तियों को साधन भक्ति और पराभक्ति को साध्य भक्ति कहा है। उन्होंने रागानुगा भक्ति को दो प्रकार की माना है। काम रूपा और संबंध रूपा।[5] काम रूपा में इच्छा बनी रहती है और संबध रूपा में भक्त कृष्ण से संबंध स्थापित करता है। जब सब कामनाओं से रहित होकर भक्त की भगवान् में परानुरक्ति हो जाती है तब वह परा भक्ति कहलाती है। साधन रूपा भक्ति के पाँच अङ्ग माने हैं। १, उपासक २. उपास्य ३. पूजा द्रव्य ४. पूजा विधि और ५. मंत्र जप। तंत्र ग्रंथों में मंत्र जप को विशेष

१. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा. दीनदयालु गुप्त पृ.५३७-५३८।
२. भक्ति-रसामृत-सिन्धु पूर्व विभाग, लहरी २ श्लोक ४ रूप गोस्वामी।
३. भक्ति-रसामृत-सिन्धु पूर्व विभाग, लहरी २ श्लोक ६२ रूप गोस्वामी।
४. भक्ति-रसामृत-सिन्धु पूर्व विभाग, लहरी २ श्लोक ६० रूप गोस्वामी।
५. भक्ति-रसामृत-सिन्धु लहरी २, श्लोक ६८ रूप गोस्वामी।

महत्व दिया गया है और इसके पाँच तत्व माने गये हैं– १. गुरु तत्व २. मंत्र तत्व ३.मनस्तत्व ४. देवतत्व तथा ५. ध्यान तत्व। निर्वाण तंत्र और निर्वाण सार में इनका विशद विवेचन हुआ है। इन तंत्र ग्रंथों में भक्ति को मंत्र योग का एक अङ्ग माना है।

वल्लभाचार्यजी ने गृहस्थ के धर्मों को कृष्ण की इच्छा मान कर करने का आदेश देते समय कर्म और भक्ति का मेल कर दिया है।[1] उन्होंने ज्ञान को कहीं कहीं भक्ति के साथ मिला दिया है। वात्सल्यादि अन्य भाव भी भक्तों ने भगवान् के प्रति किये हैं। वल्लभाचार्यजी के मत में नवधा भक्ति भगवान् की अनन्य प्रेमावस्था का साधन है। प्रेम भक्ति का सर्वोच्च स्थान है। उन्होंने प्रेमलक्षणा भक्ति की तीन अवस्थायें मानी हैं–स्नेह, आसक्ति और व्यसन।[2] प्रभु में प्रीति होने से जगत के अन्य पदार्थों में उत्पन्न हुआ स्नेह नष्ट हो जाता है। आसक्ति होने से गृहादि पदार्थों में अरुचि हो जाती है, आसक्ति होते-होते जब व्यसन हो जाता है तब भक्त कृतार्थ और कृत-कृत्य हो जाता है।[3] प्रेम में भक्त भगवान् के मिलन का भावात्मक आनंद लेता है। उन्होंने भक्ति में मुख्य स्थान प्रेम को ही दिया है। वल्लभाचार्य ने ज्ञान के साधन रूप में भक्ति का प्रचार न करके साधन भक्ति और साध्य भक्ति दोनों प्रकार की भक्तियों को अंगीकार किया है। साधन भक्ति का लक्ष्य ज्ञान अथवा मोक्ष न होकर पूर्ण प्रेम अवस्था का प्राप्त करना है। वल्लभाचार्य तथा गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने पूजा, अर्चा, सेव्य-स्वरूप (मूर्ति) का ध्यान, नाम स्मरण आदि तथा आठ प्रहर की स्वरूप सेवा विधि को स्थान दिया है।

श्रीहरिरायजी ने भक्ति को दो प्रकार की माना है। १–पदाम्बुज और २–वदनाम्बुज[4]। प्रथम श्रवण सम्बंधिनी होने के कारण शांति प्रदायिनी है और यह नारदादि मुनियों को सुलभ हुई। दूसरी भक्ति मुखामृत के सेवन से सम्बंध रखने के कारण भावना प्रधान एवं विरह अनुभव गम्य है अतएव दुर्लभ है। यह भक्ति स्वयं कृष्ण भगवान् ने गोपियों को प्राप्त कराई।

कृष्णदास कविराज ने भक्ति के विभाजन कई प्रकार से किये हैं। एक विभाजन भक्त की विभिन्न भावनाओं के आधार पर है, दूसरा इष्ट के प्रति राग भेद से उद्‌भूत है, तीसरा भक्ति की साधना के अनुरूप है और चौथा कृष्ण के स्वरूप ज्ञान के कारण है।

१. भक्ति वर्द्धिनी, श्लोक ५।
२. भक्ति वर्द्धिनी षोडश ग्रन्थ श्लोक ३ भट्ट रमानाथ शर्मा।
३. भक्ति वर्द्धिनी षोडश ग्रन्थ श्लोक ४, ५ भट्ट रमानाथ शर्मा।
४. वाङ् मुक्तावली भाग १ श्लोक १, २, ३ श्री हरिराय, नडियाद-पृ. २२।

१. भक्त भेद से—भक्ति के चार भेद भक्त की विभिन्न भावनाओं के आधार पर बनाये हैं, ये हैं—दास्य, सख्य, वात्सल्य और शृङ्गार।

२. रति भेद से—इसके वात्सल्य, सख्य, मधुर, दास्य और शांत भेद है।

३. साधन भेद से—साधन भक्ति दो प्रकार की है, एक वैधी, दूसरी रागानुगा। वैधी भक्ति के ६४ अङ्ग हैं। रागानुगा भक्ति के अधिकारी सब हैं परंतु गोपी भाव की रागानुगा भक्ति सर्व श्रेष्ठ है। राधा का प्रेम साध्य शिरोमणि है।

४. कृष्ण के स्वरूप ज्ञान से—कृष्ण का एक ऐश्वर्यवान स्वरूप द्वारिका अथवा मथुरा का है और दूसरा ऐश्वर्यहीन स्वरूप ब्रज का। दोनों स्वरूपों से भक्ति उत्पन्न होती है। ऐश्वर्यवान स्वरूप जिस भक्ति को उत्पन्न करता है वह 'ऐश्वर्य ज्ञान-मिश्रा' कहलाती है और ऐश्वर्यहीन स्वरूप जिस भक्ति को उत्पन्न करती है वह 'केवलाभक्ति' कहलाती है। साधन भक्ति के द्वारा रति का उदय होता है। रति के गाढ़ होने पर वह प्रेम हो जाता है। प्रेम क्रम से स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महा भाव में विकसित हो जाता है। ये कृष्ण भक्ति के रस के स्थायी भाव हैं। भक्त के लिये शांत, दास्य, वात्सल्य और मधुर, ये पाँच रस प्रधान हैं।

तुलसीदास राम-शबरी मिलन में राम के द्वारा साधन भक्ति का उल्लेख कराते हैं। राम द्वारा कथित नवधा भक्ति इस प्रकार है—सन्तों की सेवा, मेरी कथा में रति, गुरु सेवा, इष्टदेव गुणगान, मन्त्र जाप, इष्टदेव में दृढ़ विश्वास, वेद वर्णित भजन, दमशील और बहुत से कर्मों में विरक्ति अथवा सद् धर्म में निरन्तर रति, जग को ईश्वरमय देखना और भगवान् से अधिक करके सन्त को मानना, यथा लाभ में सन्तोष और परदोष न देखना आदि नवाँ अङ्ग सबसे छलहीनता भगवान् में भरोसा तथा हर्ष और दीनता (दुःख) से उदासीनता है।[1] लक्ष्मण को

१. नवधा भगति कहौं तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं॥
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसङ्गा॥
गुरु पद पङ्कज सेवा। तीसरि भइति अमान॥
चौथी भगति मम गुन-गन। करइ कपट तजि गान॥
मन्त्र जाप मम दृढ़ विश्वासा। पंचम भजनु सो वेद प्रकासा॥
छठ दम सील विरति बहु कर्मा। निरत निरन्तर सज्जन धर्मा॥
सातव मम मोहिमय जग देखा। मोतें सन्त अधिक करि लेखा॥
आठव जथा लाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ पर दोषा॥
नवम् सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हिअं हरष न दीना॥
रा. च. मा ३. ३५-३६, पृ. ३४५-४६

भक्ति के बारे में बताते हुए प्रायः उन सब अङ्गों को राम दूसरे शब्दों में कहते हैं। उसमें विप्र के चरणों में प्रीति, निज-निज कर्मों और श्रुति की रीति में अनुरक्ति, भगवान् के गुणगान में शरीर में पुलक ये और अङ्ग कहे हैं। उनका कथन है कि विप्रों के चरणों की प्रीति के फलस्वरूप 'स्रवनादिक नव भगति' दृढ़ होती हैं।[1]

सूरदास दशधा भक्ति बताते हैं :—

श्रवण कीर्तन स्मरण पाद रत, अरचन बन्दन दास।
सख्य और निवेदन, प्रेम लक्षणा जास ॥[2]

परमानन्ददास भी दसधा भक्ति बतलाते हैं। उनके अनुसार श्रवण, कीर्तन, सुमरिन, पदसेवन, अर्चन, वन्दन, दासभाव, सखाभाव, आत्म निवेदन और प्रेम इसके भेद हैं।[3]

भक्ति का विकास:—

भक्ति के विकास को लेकर प्रायः आचार्यों ने अपने मतों का प्रतिपादन किया। भक्ति के विकास का सम्बन्ध समाज की विभिन्न स्थितियों से है। भक्ति का विकास प्रायः वैदिक युग से पौराणिक युग और मध्यकाल से आजतक अनेक रूपों में दृष्टिगोचर होता है। भक्ति एक सामान्य शब्द है और उसमें किसी अज्ञात सत्ता के प्रति मनुष्य का श्रद्धा भाव रहता है। इस श्रद्धा भाव के अनेक रूप हमें वैदिक और संस्कृत वाङ्मय में मिलते हैं। भक्ति के तत्व प्रायः सभी आस्तिक भावना से सम्बन्ध रखने वाले ग्रन्थों में मिलते हैं। मनुष्य जब से अपनी मानवी विवशता और प्राकृतिक व्यापारों की विशालता में किसी अलक्षित् शक्ति

---

१. रा. च. मा. अ. १६ पृ. ३३१
२. सूर सारावली सू. सा. वें. प्रे. पृ. ५९
३. तातें दसवा भक्ति भली।
जिन-जिन कीनी तिनके मनते नेकु न अनत चली।
श्रवण परीक्षत तरे राजरिषि कीर्तन करि शुकदेव।
सुमरिन करि प्रह्लाद निर्भय भयो कमला करी पद सेव।
प्रभु अरचन, सुफलक सुत बन्दन, दास भाव हनुमन्त।
सखा भाव अर्जुन बस कीने श्री हरि श्री भगवन्त।
बलि आत्म समर्पन करि हरि राखे अपने पास।
अविरल म भयो गोपिन को बलि परमानन्द दास॥ अष्ट. व. सं, पृ. ५४३.

के प्रभाव की कपलना करने लगा तभी से उसमें आस्तिक भाव और भक्ति का बीजारोपण होने लगा। जब वह यह समझने लगा कि उसकी परिमित शक्तियों और विश्व की अपरिमित प्रकृतिक शक्तियों का संचालक एक ही सर्व शक्तिमान है तब उसका आस्तिक भाव भली-भाँति पल्लवित हो गया तथा जब उसने उस सर्व शक्तिमान से डरने के बदले प्रेम करना प्रारम्भ कर दिया, उसी दिन से भक्ति का वास्तविक विकास प्रारम्भ होता है।

प्राचीन आर्य जाति ने प्रारम्भ में ही प्रकृति के विभिन्न तत्वों को देवरूप में ग्रहण किया। इन्द्र, वरुण, रुद्र, मरुत आदि देव सर्व शक्तिमान सृष्टि के आदि कारण समझे जाते थे। आगे चलकर सब देवताओं का समाहार 'ब्रह्मवाद (Monism) के रूप में हुआ और परब्रह्म परमात्म कि ही स्वरूप समझे जाने लगे :—

इन्द्रं मित्रम् वरुणमग्नि माहु, रथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा वहुधा वदन्तिर्याग्नि, अग्नि यमं मातरिश्वान म हुः ॥[१]

अर्थात् वह उपासनीय, भजनीय, वर्णीय प्रभु एक है पर विद्वान अनेक नामों से पुकारते हैं। अतः इन्द्र, यम, वरुण आदि अनेक देवताओं के नाम नहीं हैं, प्रत्युत एक ही ईश्वर के अनेक गुण और शक्तियों को प्रकट करने वाले अनेक नाम हैं।

ऋषि इसी ब्रह्म की उपासना प्रतीक देवों के रूप में करते थे। डा० वेणीप्रसाद का कथन है, "ऋग्वेद में मनुष्य और देवताओं का जैसा सम्बन्ध है वैसा आगे के हिन्दू साहित्य में नहीं है। यहाँ देवता मनुष्य जीवन से दूर नहीं हैं। आर्यों का विश्वास है कि देवता उनकी सहायता करते हैं, उनके शत्रुओं का नाश करते हैं। वे मनुष्यों से प्रेम करते हैं और प्रेम चाहते हैं। भारतीय भक्ति सम्प्रदाय का आदि स्रोत ऋग्वेद है। यहाँ कुछ मन्त्रों में आदमी और देवता के बीच में गाढ़े प्रेम और मित्रता की कल्पना की गई है।"[२] कुछ विद्वानों ने विष्णु को श्रेष्ठ और महत्वशाली माना है।

मनुष्य जाति में देव भावना के दो रूप थे। असभ्य दशा से निकली हुई जातियाँ देवताओं की वृत्ति अपनी वृत्ति से ऊँची न समझ यह मानती थीं कि वे पूजा से प्रसन्न हो भलाई करते हैं और पूजा न पाने पर अनिष्ट करते हैं। सभ्य

---

१. हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता —डा० वेणीप्रसाद, पृ. ४२
२. वैष्णविज्म शैविज्म —भण्डारकर, पृ. ४७

जातियाँ सूर्य, इन्द्र, वायु, पृथ्वी आदि प्राकृतिक शक्तियों की उपासना करती थीं, क्योंकि इनसे जगत में प्रकाश फैलता है, पृथ्वी शीतल और धन-धान्य पूर्ण होती है, शीत और पशुभय दूर होता है। अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि का कारण भी इन्हें ही समझा जाता था। पुरुष भगवान् का अवलम्बन ग्रहण करता था। ऋग्वेद के ८-४५-२० वें मन्त्र में लिखा है:—

आ त्वा रम्भं न जिव्रयो ररम्भा शवसस्पते।
उश्मसि त्वा साधस्य आ।

अर्थात् हे बलों के स्वामी, शक्ति के भण्डार, जैसे वृद्ध पुरुष डण्डे के सहारे चलता है, वैसे ही मैंने आपका अवलम्बन ग्रहण कर लिया है और मैं चाहता हूँ कि अब तुम सदैव मेरे सामने ही बने रहो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि, "प्राचीन देव पूजा में देवताओं के ये ही दो कार्य लक्षण कहे जा सकते हैं। १–देवता केवल पूजा पाने पर ही उपकार करते हैं, न पाने पर अनिष्ट करते हैं। २–देवता यों तो बराबर उपकार किया ही करते हैं पर पूजा पाने पर विशेष उपकार करते हैं। इस दशा में अत्यन्त प्राचीनकाल के मनुष्यों में देवताओं के प्रति तीन भाव हो सकते थे—भय, लोभ, और कृतज्ञता।"[१]

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में ईश्वर की भावना पुरुष के रूप में है। अवतार-वाद के विषय में स्पष्ट रूप से वेदों में कुछ भी उल्लेख नहीं है परन्तु उसका प्रारम्भिक रूप वैदिक ऋषियों को अवगत था।[२] रुद्र की महिमा ऋग्वेद के समय में खूब बढ़ चुकी थी और यजुर्वेद की रुद्राष्टाध्यायी तो आज तक शिव पूजा में व्यवहृत हो रही है। विष्णु को ऐच्छिक रूप धारण करने वाला बताया गया है। विष्णु ने तीन पग जगह मानव धर्म की रक्षा हेतु नापी। कुछ वैदिक ऋचाओं में विष्णु के प्रति लालसा की भावना है जो वैष्णव-भक्ति के बीज रूप में है। विष्णु वेदों के अनुसार रक्षक और हितकारी हैं। पीछे के वैदिक मन्त्रों में वाराह अवतार का भी आभास है। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वेदों में भक्ति की आरम्भिक रूप रेखा व भक्ति को मूल तत्व उपस्थित है यद्यपि

१. सूरदास —रामचन्द्र शुक्ल, पृ. ८१

2. It must be said that there is no clear reference to the Avtar theory as such in the Vedas but the germs of some of the featueres of that Conception are certainly to be found in Vedic passages." Vishnu in the Vedas by R. N. Dandekar from a Volume of Studies in Indology presented to Mr. kane P. 95.

वैदिक युग में शास्त्रीय निरूपण नहीं हुआ। ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण, विष्णु का लोक रक्षक तथा जनमन रंजनकारी रूप, उनकी लीलायें और नवधा भक्ति के अंकुर वेदों में मिलते हैं।

उपनिषत्काल के ज्ञान कोष में बुद्धि या विशुद्ध ज्ञान को लेकर चलने वाले और हृदय पक्ष समन्वित ज्ञान को लेकर चलने वाले दो मार्ग दिखाई देते हैं। वृहदारण्यक, कठोपनिषद् आदि निवृत्ति-परक ज्ञान मार्ग का और ईशावास्यादि उपनिषद् कर्म परक ज्ञान मार्ग का उपदेश देते हैं। कर्म के साथ बुद्धि और हृदय दोनों का योग देने वाले इसी कर्मपरक ज्ञान मार्ग से आगे भक्ति का विकास हुआ।[1] उपनिषदों में कहीं ब्रह्म सगुण और कहीं निर्गुण कहा गया है परन्तु भारतीय भक्ति-मार्ग ने ब्रह्म के उभयात्मक स्वरूप को अपनाया। दोनों रूप नित्य और सत् हैं। उपनिषत्काल में उपास्य की भावना व्यापक हो गई और उपासना की पद्धति में भी परिष्कार हो गया।

शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों के काल में ज्ञान और भक्ति पीछे पड़ गये। याज्ञिक अनुष्ठानों की प्रधानता हुई और कर्मकाण्ड का विश्लेषण हुआ। आरण्यक तथा उपनिषद्काल में कर्मकाण्ड से अधिक ज्ञान काण्ड की प्रतिष्ठा हुई। भक्ति उपेक्षित सी हो गई, परन्तु श्रद्धालु हृदयों में भक्ति के अंकुर विद्यमान रहे। ज्ञान प्रधान उपनिषद् काल के ऋषियों के कंठ से भक्ति के भाव कभी-कभी फूट पड़ते थे। श्वेताश्वर उपनिषद् के अन्त के श्लोक से विदित होता है कि प्रभु भक्ति के साथ गुरु-सेवा का महत्व भी प्रतिपादित हुआ। लोकमान्य तिलक ने भी लिखा है कि, 'वेद तथा उपनिषत्कालीन ज्ञान-मार्ग से योग व भक्ति ये दो शाखायें आगे चलकर निर्मित हुई।'[2] उपनिषदों में भक्ति के विभिन्न अङ्गों का प्रतिपादन है। कई उपनिषदों ने सब देवताओं को ब्रह्म ही मानकर[3] रुद्र इन्द्रादि देवताओं का उत्पन्न करने वाला भी बतलाया है।[4] 'पारब्रह्म का ज्ञान होने के लिये ब्रह्म चिन्तन करना आवश्यक है। इस हेतु पारब्रह्म का सगुण प्रतीक प्रथम आँखों के सामने रखना चाहिए, ऐसा छांदोग्य आदि पुराने उपनिषदों ने कहा है। उपासना मार्ग में सगुण प्रतीक के स्थान क्रमशः परमेश्वर का व्यक्त मानव रूपधारी प्रतीक ग्रहण ही भक्ति-

---

१. सूरदास—रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १३
२. गीता रहस्य—लोकमान्य तिलक, पृ० ५३७
३. मैत्रायण्युपनिषद् ४-१२-१३
४. श्वेताश्वतरोपनिषद् ४–२

मार्ग का आरम्भ है। ब्रह्मचिन्तनार्थ प्रथम यज्ञ के अङ्गों की या ओंकार की तथा आगे चलकर रुद्र, विष्णु इत्यादि वैदिक देवताओं अथवा आकाशादि सगुण व्यक्त ब्रह्म प्रतीक की उपासना प्रारम्भ होकर अन्त में इसी हेतु ब्रह्म-प्राप्त्यर्थ राम-कृष्ण, नृसिंह आदि की भक्ति प्रारम्भ हुई।[1] देवताओं का स्थान निर्गुण ब्रह्म ने, निर्गुण ब्रह्म का स्थान साकार ब्रह्म ने लिया तथा विष्णु की महत्ता सगुण स्वरूपों में बढ़ती गई। ब्राह्मण काल में विष्णु की श्रेष्ठता स्थापित हुई तथा अग्नि को विष्णु से गौण स्थान मिला।[2] मैत्रेयी उपनिषद् में विष्णु को जगत्पालक,[3] अन्न का स्वरूप बतलाया तथा कठोपनिषद् में आत्मा की ऊर्ध्वगामी गति को विष्णु के परमधाम की ओर जाने वाला पथिक कहा गया।[4]

जगत्पालक सूर्य को विष्णु का रूप बतलाया गया। मण्डूक उपनिषद् में भक्ति-भावना के सम्बन्ध में इस प्रकार उल्लेख है, 'प्रभु की प्राप्ति, परोक्ष आत्म तत्व की उपलब्धि, प्रवचन, मेधा तथा बहुत सुनने से नहीं होती। प्रभु जिस पर कृपा करते हैं, उसी को उनकी प्राप्ति होती है। आत्मदेव अपना स्वरूप उसी के समक्ष खोलकर रख देते हैं।[5] इस प्रकार हम देखते हैं कि जहाँ से कर्म में हृदय तत्व को प्रधानता दी जाने लगी, वहीं से भक्ति मार्ग का आरम्भ है। वेद के नाम पर प्रचलित कर्मकाण्ड की निन्दा गीता में कई स्थानों पर की गई है।[6] विष्णु के इस रूप साक्षात्कार के लिये ब्राह्मण ग्रन्थों में कुछ कर्मों की आवश्यकता बताई। एक स्थान पर ब्राह्मण ग्रन्थों में आया है कि ऐश्वर्य और सर्वस्व की प्राप्ति के लिए 'पुरुष नारायण' ने पंचरात्र-यज्ञ की विधि चलाई।[7] 'इसमें पुरुष सूक्त द्वारा नरमेध यज्ञ होता था और बलि के स्थान पर घृताहुति दी जाती थी।'[8] जब से वैष्णव यज्ञों में हिंसा वर्ज्य समझी जाने लगी तभी से वैष्णव धर्म में अहिंसा तत्व का प्रारम्भ होता है। यज्ञों में सत्व गुण का आधिक्य होता था। 'यज्ञ करने

१. गीता रहस्य—लोकमान्य तिलक, पृ० ५३७
२. ऐतरेय ब्राह्मण १-१
३. मैत्रेयोपनिषद् ६-१३
४. कठोपनिषद् ३-९
५. मण्डूकउपनिषद् तृतीय मंडल, द्वितीय खंड, श्लोक ३
६. गीता २-४२, ४४
७. शतपथ ब्राह्मण १३-६-१।
८. वैष्णव धर्म का विकास और विस्तार—कृष्णदत्त भारद्वाज एम. ए. आचार्य शास्त्री, कल्याण, वर्ष १६ अङ्क ४

वाले सत्वगुण भूमिष्ठ होने के कारण 'सात्वत' नाम से प्रसिद्ध हो गए।....इसलिए वैष्णव धर्म का नाम 'सात्वत धर्म' पड़ गया।'[1] इन कर्म विधानों से विदित होता है कि उपासना क्षेत्र में बौद्धिक क्षेत्र की ही प्रधानता नहीं थी—अपितु परोपकार, दया, प्रेम, अहिंसा आदि हृदय की वृत्तियों का भी प्रसार था।

वैष्णव भक्ति सिद्धान्तों का उत्कर्ष रामायण काल में हुआ। बाल्मीकि के राम सम्पूर्ण लोकों के आश्रय, सनातन, निर्गुण और आकाश रूप हैं। लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न अवतार धारण करने वाले विष्णु के ही अंश और सीता लक्ष्मी स्वरूपा हैं। हम देखते हैं कि अवतारवाद की पूर्ण प्रतिष्ठा रामायण काल में हो गई। निर्गुण ब्रह्म मानव धर्म की रक्षा करने के लिए, दुष्टों को दलने के लिए, भक्तों को प्रसन्न करने के लिए मनुष्य रूप धारण करता था। समस्त सृष्टि की विधात्री, पालिका और संहारिणी माया उसी राम के आश्रित है। माया के बंधन से छूटने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है। अन्तःकरण की शुद्धि के लिए माया से छूटने पर भक्ति करनी चाहिए जिससे मोक्ष भी प्राप्त होता है। बाल्मीकि भक्ति के साधन के लिए रामनाम स्मरण एवं कीर्तन को श्रेष्ठ मानते हैं। भक्ति की इस महत्वपूर्ण स्थापना की तुलना उपनिषद् काल से करने पर विदित होगा कि अब भक्ति ने अन्यान्य मार्गों से अपना पृथक मार्ग स्थापित कर लिया था।

महाभारत के विभिन्न आख्यानों और पात्रों से प्रतीत होता है कि उसमें श्रीकृष्ण को आदिकारण, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, ज्ञानी विज्ञानियों का चरम लक्ष्य, सगुण अवतार मानकर उपासना की गई। यादव कुल ने सात्वत धर्म को सर्वप्रथम माना। महाभारत में नारायणीय, सात्वत आदि सम्प्रदायों का प्रतिपादन है और सिद्धि प्राप्त भक्तों के भी आख्यान मिलते हैं। महाभारत के अतिरिक्त जनता में सात्वत धर्म के प्रचार की प्राचीनता सम्बन्धी अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं।[2] इन प्रमाणों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ई० पू० ७०० वर्ष के लगभग तथा उसके पूर्व भारतवर्ष में भागवत-धर्म (वैष्णव-धर्म) था। उसका प्रसार पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त तक हो गया था और संकर्षण-वासुदेव, बलराम-वासुदेव आदि की पूजा संयुक्त रूप में होती थी।

महाभारत के शान्ति पर्व में मेरु पर्वत पर सप्तर्षियों एवं स्वायंभुव मनु के सामने नारायणी सम्प्रदाय के तत्त्व सुनाये गए हैं। नारद के श्वेत दीप वाले प्रसङ्ग

१. वैष्णव धर्म का विकास और विस्तार—कृष्णदत्त भारद्वाज एम. ए. आचार्य शास्त्री, कल्याण वर्ष १६ अङ्क ४

२. वैष्णविज्म शैविज्म—भण्डारकर पृ० ४-५

में उनकी प्रार्थना से प्रसन्न होकर वासुदेव धर्म को भगवान् सुनाते हुए कहते हैं कि संकर्षण जीवमात्र के प्रतीक और वासुदेव के ही रूप हैं। वह वासुदेव सृष्टिकर्त्ता, आत्माओं के आत्मा और परब्रह्म परमात्मा हैं। देवता मनुष्य तथा अन्य पदार्थ उनसे ही उत्पन्न होकर उनमें ही लीन हो जाते हैं। ३४८ वें अध्याय में कहा है कि यह एकांतिक धर्म वही गीता धर्म है जिसे कृष्ण ने अर्जुन से कहा था। भगवान् विभिन्न रूपों में पृथ्वी पर अवतार लेते हैं यह भी माना गया। भगवान् वासुदेव धर्म संहारकों से, साधु सन्तों और महापुरुषों को बचाकर सुख शान्ति का साम्राज्य फैलाते हैं। स्वतः नारायण ही इस धर्म के प्रवर्त्तक हैं।

महाभारत और गीता से पूर्व जो कर्म-प्रधान और ज्ञान-प्रधान मार्ग चले आ रहे थे उनमें हृदय के योग का अधिक महत्त्व नहीं था। परन्तु दार्शनिकों को धीरे-धीरे हृदय के योग की आवश्यकता प्रतीत होने लगी और उन्होंने ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण तथा साधना-मार्ग की प्रक्रियाओं का विधान हमारे सांसारिक व्यवहारों में कर दिया। गीता ने अनासक्ति पूर्ण कर्त्तव्य-कर्म की स्थापना की। उसमें बताया कि कर्म नहीं, कर्मफल पाने की इच्छा छोड़ देनी चाहिए। भक्ति द्वारा वह फलाकांक्षा सुगमता से छूट जाती है।[1] गीता का भक्ति मार्ग प्रभु भक्ति में निरत साधक को फलाकांक्षा से दूर रख संसार में जूझ कार्य करना सिखलाता है। वह निवृत्ति परायण ज्ञान कांड के स्थान पर प्रवृत्ति परायण भगवद्भक्ति की प्रदाता है।[2] गीता में जीवात्मा में श्रद्धा, समर्पण, और भक्ति की भावना को महत्ता दी गई। उसके अनुसार कर्मों का समर्पण ही भक्ति तत्त्व है।[3] कर्मों का पर्यवसान ज्ञान में है और ज्ञान की अन्तिम पराकाष्ठा आत्म समर्पण में है।[4]

गीता में भक्ति का कर्म-ज्ञान-समन्वित व्यापक रूप दृष्टिगोचर होता है। गीता के अनुसार मोक्ष ज्ञान से ही होता है तथा भक्ति द्वारा ज्ञान की प्राप्ति होती है। अतः भक्ति ज्ञान का साधन है।[5] गीता के अनुसार ज्ञान प्रसार के भीतर ही भक्ति होती है। हम ईश्वर की भक्ति वहीं तक कर सकते हैं जहाँ तक कि हम उसको जान पाते हैं। गीता में ज्ञानी भक्त को श्रेष्ठ बताया गया है। गीता में भक्ति ज्ञान का पर्याय नहीं है। श्रीकृष्ण भगवान् का कथन है कि भक्ति द्वारा मैं

---

१. गीता १८-११
२. गीता ५-२
३. गीता १२-६
४. गीता ४-३३
५. गीता १८-५५

तत्वत: जाना जा सकता है। भक्ति के प्रभाव से ही भक्त उस ज्ञान मार्ग में तत्पर होता है जिससे भगवान् का स्वरूप प्रत्यक्ष होता है। ज्ञानी भगवान् के स्वरूप का जो ज्ञान प्राप्त करता है उससे तटस्थ रहता है, पर भक्त-ज्ञानी उस स्वरूप में हृदय से लीन हो जाता है। ज्ञान द्वारा भक्ति होती है और भक्ति द्वारा ज्ञान होता है। गीता आत्म-समर्पण के भाव से ओत-प्रोत है जो भक्ति की अन्तिम प्रक्रिया है। हमारे समस्त कर्मों, संकल्पों आन्तरिक और वाह्य चेष्टाओं का आराध्य के चरणों में समर्पण होना चाहिए। भगवान् का कथन है कि श्रद्धावान पुरुष ज्ञान को प्राप्त होता है तथा ज्ञान के कारण उसे भगवद् प्राप्ति से परम शान्ति मिलती है।[1] गीता वैधी और मर्यादा भक्ति की समर्थक है। नारायणीय और गीता का भागवत-धर्म एक ही है।

ग्रीक प्रभाव से प्रभावित होकर जैन धर्मावलवियों ने मन्दिरों में अपने तीर्थंकरों की नग्न मूर्तियाँ स्थापित कीं। अनीश्वर वादी बौद्धों ने महायान की स्थापना की, महायान के संस्थापक अश्वघोष के शिष्य नागार्जुन थे। महायान, योगाचार, मन्त्रयान आदि सम्प्रदायों ने मिलकर मञ्जुश्री, अवलोकितेश्वर, मैत्रेय आदि बोधिसत्वों की मूर्तियाँ स्थापित की। जैन-बौद्ध अनुकरण पर चौबीस अवतारों की प्रतिष्ठा की गई। बौद्धों में मूर्ति पूजा का प्रारम्भ हुआ।

गीता के अतिरिक्त भागवत धर्म की व्याख्या करने वाले श्रीमद्भागवत, नारद-भक्ति-सूत्र और शांडिल्य-भक्ति सूत्र तीन मुख्य ग्रन्थ हैं। इनमें नारद-पांचरात्र मे मंत्र-तंत्र का भी कुछ समावेश कर दिया गया। सम्भवत: भागवत तीसरी शताब्दि में बन चुकी थी। इसके कुछ अंश गीतोक्त भागवत धर्म से कुछ भिन्न हैं। गीता ज्ञान, कर्म एवं उपासना तीनों का समन्वय करती है और भगवद् भक्ति का उत्कर्ष स्थापित करती है लेकिन श्रीमद्भागवत शुद्ध रूप से भक्ति मार्ग का ही उपदेश देती है। श्रीमद्भागवत में ज्ञान और वैराग्य को भक्ति की सन्तान कहा है।[2] भक्ति का प्रचार और प्रसार भागवत्-ग्रन्थ से ही हुआ। "भागवत ने श्रीकृष्ण चरित्र के माधुर्य का लोगों को रसास्वादन कराकर कृष्णोपासना के वैष्णव पन्थ, द्रविड़, महाराष्ट्र, गुजरात, राजपूताना, उत्तर हिन्दुस्तान और बङ्गाल में स्थापित किये।"[3]

---

१. गीता ४-३६

२. श्रीमद्भागवत— महात्म्य प्रकरण, अध्याय १, श्लोक ४५

३. 'मराठी वाङ्मया चा इतिहास'—ल. रा. पांगारकर, प्रथम खण्ड पृ. ११०

आराध्य से सान्निव्य दास्य से अधिक सख्य, सख्य से अधिक वात्सल्य और वात्सल्यसे अधिक रति-भाव में रहता है। भागवत का आदर्श भाव रति भाव है। रति भाव ही भक्ति मार्ग में सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है। रति रूपी महारस प्रदान करने की क्रीड़ा में माखन लीला, चीरहरण, महारास इत्यादि हैं। श्रीमद्भागवत में रति भाव के परिपोषक महारास की क्रीड़ा का बड़ा मर्म-स्पर्शी वर्णन किया है। श्रीमद्-भागवत में योग की प्रक्रिया से भक्ति और सेवा की पद्धति को पृथक् और शान्तिप्रद बताया है।[1] रतिभाव द्वारा भगवान् की इस क्रीड़ा में परमानन्द प्राप्त होता है। शत सहस्र गोपियों का उद्धार भगवान् ने प्रेम के बल पर किया।

श्रीमद्भागवत् ने भक्ति को सर्वोपरि स्थान दिया। इसके एकादश स्कन्ध के चतुर्दश अध्याय में भगवान् स्पष्ट रूप से कहते हैं कि मैं न योग के द्वारा, न सांख्य (ज्ञान) के द्वारा, न स्वाध्याय एवं तप (वाणप्रस्थ) के द्वारा और न त्याग (सन्यास) के द्वारा ही प्राप्त होता हूँ। मेरी प्राप्ति का सुलभ साधन तो भक्ति है। एकनिष्ठा से की हुई मेरी भक्ति चांडाल तक को पवित्र कर देती है।[2] जो गद्-गद् वाणी से द्रवित चित्त हो, कभी रोता हुआ, कभी हँसता हुआ, कभी लज्जा को छोड़ गाता हुआ और नाचता हुआ, मेरी भक्ति में निरत होता है वह इस निखिल विश्व को पवित्र कर देताहै।

श्रीमद्भागवत का बाद के साहित्य पर बहुत प्रभाव पड़ा। निवृत्ति के स्थान पर प्रवृत्ति परायणता का फिर से प्रदुर्भाव हुआ। रामानुज, मध्व निम्बार्क, चैतन्य वल्लभ आदि सब आचार्य श्रीमद्भागवत से प्रभावित हुए। तुलसी, सूर आदि सभी भक्त कवियों में इन्हीं के सिद्धान्तों का प्रस्फुटन हुआ।

कृष्ण का विकास

कृष्ण का चरित्र वैदिक युग से लेकर आज तक काव्य में किसी न किसी रूप में विकसित होता रहा है। कृष्ण में अनेक भारतीय तथा अभारतीय भावनाओं का समावेश हो गया,[3] जिसके कारण अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने कृष्ण को केवल भावपात्र माना है। परन्तु वैदिक वाङ्मय से ही कृष्ण किसी न किसी रूप में हमारे सम्मुख आते हैं।

---

१. श्रीमद्भागवत १-६-६३

२. श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध, अध्याय १४, श्लोक २० से २६

३. वैष्णविज्म शैविज्म-भंडारकर, पृ. ५३

ऋग्वेद संहिता में कृष्ण का नाम आया है। एक स्थान पर वह कई सूत्रों के रचयिता के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं। सूत्रों के रचयिता कृष्ण आंगरिस गोत्र के ऋषि हैं। ऋग्वेद अष्टम मण्डल ७४ वें मन्त्र के ऋष्टा ऋषि कृष्ण बताये गये हैं।[१] अष्टम मण्डल के ८५, ८६, ८७ तथा दशम मण्डल के ४२, ४३, ४४ वें सूत्रों के ऋषि का नाम भी कृष्ण है। यह कृष्ण ऋषि देवकी पुत्र कृष्ण नहीं जान पड़ते। ऋषि कृष्ण के नाम पर कार्ष्णायिन गोत्र चला। वसुदेव ने संभवतः इसी गोत्र-प्रवर्तक ऋषि के नाम पर अपने पुत्र का नाम कृष्ण रखा होगा। वैदिक साहित्य के कृष्ण के रूप को अवतार और देवता किसी भी रूप की संज्ञा नहीं दी जा सकती। ऋग्वेद की दो अन्य ऋचाओं में अपत्य बालक रूप में कृष्णिय शब्द प्रयुक्त हुआ है।[२] आंगरिस ऋषि के शिष्य कृष्ण का उल्लेख कौषीतकि ब्राह्मण में मिलता है।[३] ऐतरेय आरण्यकमें कृष्ण हरित नाम आया है।[४] कृष्ण नामक एक असुरराज अपने दस सहस्त्र सैनिकों के साथ अंशुमती (यमुना) के तटवर्ती प्रदेश में रहता था। इन्द्र ने वृहस्पति की सहायता द्वारा उसे हराया।[५] इन्द्र को कृष्णासुर की गर्भवती स्त्रियों का वध करने वाला कहा गया है।[६]

छान्दोग्य उपनिषद् में कृष्ण देवकी पुत्र कहे गये हैं और उनको हम घोर अङ्गिरस ऋषि के यहाँ अध्ययन करता हुआ पाते हैं।[७] विष्णु के नारायण रूप को ब्राह्मण काल के अन्त तक परमदैवत माना जाने लगा और उसका सम्बन्ध वासुदेव से जोड़ दिया गया।[८] पाणिनि कृष्ण शब्द को तो नहीं परन्तु वासुदेव शब्द को अर्जुन शब्द के साथ प्रयोग करते हैं।[९] कृष्ण वसुदेव के पुत्र होने के कारण वासुदेव कहलाये। महाभाष्यकार पातंजलि ने एक स्थान पर लिखा है कि कृष्ण ने कंस को

---

१. वैष्णविज्म शैविज्म—भंडारकर, पृ. १५
२. ऋग्वेद १-११६-२३, १७-७
३. कृष्णो हताङ्गिरसो ब्राह्मणाम् छन्सीय तृतीयं सवनं ददर्श
   सांखायन ब्राह्मण, अध्याय ३०, आनन्दाश्रम, पूना.
४. ऐतरेय आरण्यक ३-२-६
५. ऋग्वेद ८।९६।१३-१५
६. ऋग्वेद १-१०-११
७. छांदोग्योपनिषद्, तृतीय अध्याय, सप्तदश खण्ड श्लोक ६, गीताप्रेस गोरखपुर.
८. सूर और उनका साहित्य—डा० हरवंशलाल शर्मा, पृ.१७७
९. वासुदेवार्जुनाभ्यां वुञ ४-३-९८

मारा और दूसरे स्थान पर लिखा है कि वासुदेव ने कंस को मारा। इस कथन से प्रतीत होता है कि वासुदेव और कृष्ण एक ही हैं। पाणिनि का समय अँग्रेज विद्वान् ईसवी पूर्व चौथी शताब्दी और जर्मन तथा भारतीय मनीषी ई० पूर्व ५०० वर्ष से पूर्व छठी या सातवीं शताब्दी मानते हैं। आर. जी. भण्डारकर ने अपने वैष्णविज्म और शैविज्म ग्रन्थ में वासुदेव सम्बन्धी शिलालेखों का वर्णन किया है।[1]

महाभाष्य में वासुदेव को पतञ्जलि ने वृष्णि वंश का माना है। उसमें वासुदेव शब्द का चार बार और कृष्ण शब्द का प्रयोग एक बार आया है। श्रीभण्डारकर का कथन है कि कृष्ण पाणिनी के अनुसार कृष्णायन ब्राह्मण गोत्र के हैं जो कि वशिष्ठ समुदाय के अन्दर आता है।[2] पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि जैसे वैयाकरणों के ग्रन्थों में 'वासुदेवक' सरीखे शब्द और कंसवध सरीखी लीलाओं के उल्लेख तथा 'चिरहिते कंसे', 'जघान कंसं किल वासुदेवः' सरीखे वाक्यों से प्रतीत होता है कि श्रीकृष्ण का आविर्भाव काल इन वैयाकरणों से बहुत पहले का है। पतञ्जलि का समय ईसा से २०० वर्ष पूर्व है।

चन्द्रगुप्त 'मौर्य' के दरबार में मकदूनिया के राजदूत मैगस्थनीज ने सात्वतों और वासुदेव कृष्ण का स्पष्ट उल्लेख किया है। प्रसिद्ध यात्री मैगस्थनीज ने लिखा है कि कृष्ण की पूजा मथुरा और कृष्णपुर में होती थी, जोकि ईसा के ३०० वर्ष पूर्व का काल है। डॉ० रामकुमार वर्मा कृष्ण को वासुदेव का पर्यायवाची मानने के पक्ष में हैं।[3] अतः कृष्ण ही विष्णु का द्योतक है। वासुदेव और कृष्ण में अन्तर मानते हुए भंडारकर का विचार है कि एक क्षत्रिय वंश का नाम था जिसे 'वृष्णि' भी कहते थे। वासुदेव इसी सात्वत वंश के एक महापुरुष थे जिनका समय ईसा के ६०० वर्ष पूर्व है। उन्होंने ईश्वर के एकत्व भाव का प्रचार किया और उनकी मृत्यु के उपरान्त वासुदेव को ही साकार रूप से ब्रह्म मान लिया गया। वासुदेव का प्रथम रूप नारायण बाद में विष्णु और अन्त में गोपाल कृष्ण हो गया।

द्वारका में भगवान् श्रीकृष्ण ने एक भूकम्प का हाल बताते हुए कहा है, 'समुद्रः सप्तमेऽह्नयेतां पुरींच प्लावयिष्यति।'[4]

अर्थात् 'हे उद्धव! आज से सातवें दिन समुद्र इस द्वारका को डुबा देगा।'

---

१. वैष्णविज्म शैविज्म—भण्डारकर, पृ० ४५
२. वैष्णविज्म शैविज्म—भण्डारकर, पृ० १५
३. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ४९२
४. भागवत ११-७-३

आज से पांच हजार वर्ष पूर्व ईराक में भी भूकम्प तथा प्रलय का होना सिद्ध होता है। हस्तिनापुर और बगदाद दोनों एक अक्षांश पर स्थित हैं और समान अक्षांशों के स्थानों में भूकम्प का एक साथ आना प्रकृति सिद्ध है। अमेरिका में एक मय जाति का उपनिवेश (मैक्सिको) है। इस उपनिवेश के खोज के सम्बन्ध में अमेरिका के पत्र (नेशनल ज्योग्राफिकल मैगजीन) के अगस्त १६३६ के अङ्क में लिखा था कि एक मय जाति का संवत ५००० वर्षों से कुछ पहले का है। भूगर्भ से बाहर आये हुये लावा के नीचे दबा हुआ एक स्मृति भवन प्राप्त हुआ है। भूशास्त्र वेत्ताओं ने उसे ५००० वर्ष पूर्व का बताया है। मय प्रदेश द्वारका के अक्षांश पर स्थित है। सम्भवतया द्वारका के भूकम्प के समय मैक्सिको में भी भूकम्प के कारण लावा निकला हो और उसमें यह स्मृति भवन दब गया हो। महायुद्ध के बाद हस्तिनापुर, द्वारका, उरनगर और मैक्सिको भिन्न-भिन्न चारों स्थानों में एक साथ भूकम्प का होना निश्चित करता है कि महाभारत तथा भागवत का वर्णन ५००० वर्ष पूर्व का है। इस समय श्रीकृष्ण वर्तमान थे और उनके जन्म का समय आज से लगभग ५००० वर्ष पूर्व कहा जा सकता है। श्रीयुत देवीदयाल का कथन है, 'श्रीकृष्ण का समय हिन्दू शास्त्रों के अनुसार लगभग पांच सहस्र वर्ष पहिले का है। अर्वाचीन पुरातत्व अन्वेषण विभाग इस निश्चय पर पहुँचा है कि श्रीकृष्ण आज से लगभग तीन हजार वर्षों से पहले हुए हैं। सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रीपार्जीटर साहिब ने अपनी खोजों से निश्चय किया है कि महाभारत का युद्ध ईसा से १००० वर्ष पहिले हुआ था।'[1]

मथुरा के पुरातत्त्व संग्रहालय में मथुरा के पास गायत्री टीले से निकली कुशान काल की एक मूर्ति उपलब्ध है। उसमें श्रीकृष्ण की जन्म लीला चित्रित है स्वर्गीय रायबहादुर दयाराम साहनी पुरातत्त्व विभाग १६२५-२६ की रिपोर्ट के अनुसार छांदोग्य उपनिषद् में वर्णित देवकी पुत्र श्रीकृष्ण को एक ऐतिहासिक व्यक्ति मानने के पक्ष में हैं। पहाड़पुर की खुदाई में भी राधाकृष्ण की झांकी मिली है। भण्डारकर ने वैष्णविज्म और शैविज्म ग्रन्थ में वासुदेव कृष्ण और वृष्णिवंश पर विचार किया है तथा महाकाव्य और बौद्ध ग्रन्थों से उदाहरण भी दिए हैं। वैदिक काल के विष्णु देवता ही पौराणिक काल में कृष्ण रूप में स्वीकार किए गये। वासुदेव शब्द का कृष्ण के साथ सम्बन्ध भी जोड़ दिया गया। जातक अर्थात बुद्ध के पूर्व जीवन की कथाओं में भी कृष्ण का अनेक स्थानों पर वर्णन हुआ है। इन

१. श्रीकृष्ण चरित की ऐतिहासिकता—योगेश्वर श्रीकृष्णांक—मानवधर्म अगस्त १६४५ देवीदयालजी चित्रकार पुरातत्व अन्वेषण विभाग दिल्ली, पृ० १३७

कथाओं में उनको बुद्ध बोधिसत्व, ऋषि, भराहायन गोत्र (कृष्णायन गोत्र) के आदि प्रवर्त्तक, दैवी शक्तियों से सम्भूत आदि बताया है। बौद्धों के (घट जातक) में 'उपसागर' और 'देवगब्भा' के पुत्रों का नाम वासुदेव और बलदेव आया है। गद्य-भाग के अन्तर्गत कराहा और केशव नाम भी आये हैं और इन शब्दों की टीका में कराहा को कराहायन गोत्र का बताया है। 'महाभाग' जातक की व्याख्या में आये हुए कराहा और वासुदेव शब्दों से इसकी पुष्टि होती है। दीघनिकाय बौद्ध ग्रन्थ के अनुसार वासुदेव का ही दूसरा नाम कृष्ण था। जैन सूत्रों में श्रीकृष्ण को वृष्णिवंश का एक महान पुरुष माना है। वासुदेव को उपास्य रूप में ग्रहण करने पर वैदिक पात्र कृष्ण के सब गुणों का आरोप वासुदेव में हो गया।

हम देखते हैं कि वैदिक काल से ही विष्णु को प्रधानता मिलने लगी थी। ऐतरेय ब्राह्मण में विष्णु को सर्वोपरि देव माना है।[१] विष्णु के वैशिष्ट्य की कथायें शतपथ ब्राह्मण और तैतरीयारण्यक में भी मिलती हैं।[२] विष्णु की महत्ता मैत्रेय उपनिषद् और कठोपनिषद्[३] में स्पष्ट रूप से बताई है तथा विष्णु के स्थान को 'परमं पदम्' कहा गया है।

ईसा के दो सौ वर्ष पूर्व से दो सौ वर्ष बाद तक के काल में कृष्ण हमारे सम्मुख 'महाभारत' के रूप में आते हैं। महाभारत में कृष्ण का दैवी अवतार रूप देखने में आता है। सभापर्व में भीष्म श्रीकृष्ण को समस्त भूतों से परे अव्यक्त प्रकृति और सनातन कर्त्ता मानते हैं।[४] सभापर्व में शिशुपाल ने श्रीकृष्ण की गोकुल सम्बन्धी लीलाओं का निर्देश किया है। महाभारत में कृष्ण के लिये गोविन्द नाम भी आया है परन्तु उसके अर्थ का गो (गाय) से सम्बन्ध नहीं है। विष्णु के पानी मथकर पृथ्वी निकालने के समय आदि पर्व में वाराह अवतार के प्रसङ्ग में गोविन्द शब्द आया है। वासुदेव कृष्ण ने शांति पर्व में पृथ्वी के उद्धार के समय अपना नाम गोविन्द बताया है। महाभारत में गोविन्द का सम्बन्ध गाय की प्रचलित कथाओं से नहीं था। महाभारत में कृष्ण विष्णु के अवतार माने गये हैं। महाभारत में कृष्ण का वर्णन दैवी शक्तियों से समन्वित पुरुषोत्तम के रूप में हुआ है। महाभारत के कृष्ण आचारवान, सर्वप्रिय, सत्यवादी, अद्वितीय योद्धा तथा राजनीतिज्ञ हैं। कृष्ण की बाल लीला का विस्तृत वर्णन महाभारत के खिलपर्व, हरिवंश पर्व में है।

१. ऐतरेय ब्राह्मण १-१
२. शतपथ १-२-५, १४-१-१
३. कठोपनिषद् ३-९
४. महाभारत २८-२५

भागवत धर्म का महाभारत काल में पुनरुद्धार हुआ। इस समय सांख्य, योग, पांचरात्र, वेद और पाशुपत चार सम्प्रदाय प्रचलित थे। पाशुपत शैव-सम्प्रदाय का मत था। विष्णु और रुद्र दोनों का महाभारत में समन्वय स्थापित हुआ और विष्णु को प्रधानता मिली। पांचरात्र मत का महाभारत में पूर्ण विवरण है जिसकी परम्परा वैदिक युग से चली आ रही थी। इस मत में श्रीकृष्ण की भक्ति को विशेषता दी गई, जिसका पूर्ण विकास श्रीमद्भगवत गीता में हुआ। महाभारत के नारायणीय उपाख्यान से प्रतीत होता है कि विष्णु और श्रीकृष्ण को परमेश्वर स्वरूप मानकर भक्ति करने वाले महाभारत काल में भागवत कहलाये। शांतिपर्व के नारायणीय उपाख्यान में इसकी पूर्ण व्याख्या है।

वासुदेव कृष्ण के रूप में वासुदेव के अवतार माने गये और प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और संकर्षण अर्थात् बलराम क्रम से मन, अहङ्कार और जीव के अवतार के रूप में समझे गये। श्रीमद्भगवत गीता में वासुदेव परमात्मा के लिये आया है। श्रीकृष्ण के साथ संकर्षण अर्थात् 'बल्देव' का सम्बन्ध अनेक स्थलों पर स्थापित हुआ है तथा बलदेव को विष्णु का अवतार माना गया।[1] परन्तु पाञ्चरात्र-मत में प्रद्युम्न और अनिरुद्ध का कृष्ण से भी सम्बन्ध स्थापित किया गया। यह कल्पना सात्वत-सम्प्रदाय की ही प्रतीत होती है जो सम्भवत: श्रीकृष्ण के समय में ही सात्वत लोगों में फैली। सात्वत लोग भी श्रीकृष्ण के ही वंश के थे। ३४१ और ३४२ वें अध्याय में नारायण के नामों की उत्पत्ति तथा शिव और विष्णु का अभेद बताया है। ३४२ और ३४३वें अध्यायों में श्वेत द्वीप से लौट आने पर नर और नारायण के संवाद का वर्णन है। सात्वत धर्म का वर्णन करते हुए इसे निष्काम भक्ति का पंथ बतलाया है और ऐकान्तिक विधि कहा है। भागवत धर्म की परम्परा के वर्णन का सारांश[2] यह है कि त्रेता युग में विस्वान् मनु और इक्ष्वाकु की परम्परा से यह धर्म चला। ३४८ वे अध्याय के अन्त में पाञ्चरात्र-मत के सिद्धान्त का वर्णन है और परमात्मा के समन्वित रूप की व्याख्या है। सात्वतों में भक्तिभावना का विशेष प्रकार कृष्ण के साथ उनके भाई संकर्षण, पुत्र प्रद्युम्न और पौत्र अनिरुद्ध का सम्बन्ध स्थापित होने पर हुआ। कृष्ण का सम्बन्ध नारायणीय उपाख्यान के आधार पर सात्वत, वासुदेव, नारायण और विष्णु के साथ स्थापित किया गया। वासुदेव को महाभारत के आदि पर्व में सात्वत,[3] द्रोणापर्व में सात्यकि,[4] और उद्योग पर्व में जनार्दन[5] कहा गया।

१. महाभारत आदि पर्व अध्याय १९७
२. महाभारत शांति पर्व ३४८, ३५१, ३५२
३. महाभारत आदि पर्व अध्याय २१८, श्लोक १२
४. ,, ९७-३६
५. ,, ७०-७

महाभारत के नारायणीय उपाख्यान में नारायण शब्द की व्याख्या की गई है। 'नार' जल को भी कहते हैं। ऋग्वेद में मिलता है कि सृष्टि से पूर्व सब जगह जल ही जल था फिर नारायण की नाभि से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की।[1] शतपथ ब्राह्मण में भी नारायण का उल्लेख हुआ है।[2] ऋग्वेद में पांचरात्र-सत्र का प्रयोजक पुरुष तथा पुरुष-सूक्त का कर्त्ता भी नारायण को ही बताया है।[3] तैत्तिरीयारण्यक में नारायण को सर्वगुण सम्पन्न बताया है।[4] महाभारत के नारायणीय उपाख्यान में नारायण को सर्वेश्वर का रूप दे दिया गया। महाभारत के वन पर्व अध्याय १८८-८९ के प्रलय प्रसङ्ग में नारायण के स्वरूप का उल्लेख है। महाभारत में मार्कण्डेय ने युधिष्ठिर को बताया कि जनार्दन ही स्वयम् नारायण हैं। वासुदेव और अर्जुन को महाभारत में कई स्थानों पर नर और नारायण बताया है।[5] कृष्ण को शांति पर्व में भी विष्णु का रूप बताया है।[6] महाभारत काल में इस प्रकार नारायण का सम्बन्ध वासुदेव से स्थापित हो गया था। भीष्म-पर्व के ६५-६६वे अध्याय के अध्ययन से प्रतीत होता है कि विष्णु का सम्बन्ध वासुदेव से महाभारत काल में ही जोड़ा गया। महाभारत काल में कृष्ण का वासुदेव नारायण और विष्णु के रूप में स्वीकरण सर्वसाधारण न था। कृष्ण में अवतारत्व का आरोप भी महाभारत काल में ही होने लगा था।

कृष्ण के गोविंद नाम का सम्बन्ध गोपालकृष्ण से है। गोविन्द नाम का उल्लेख श्रीमद्भागवत और महाभारत दोनों में है। महाभारत में गोविन्द शब्द का सम्बन्ध गोपाल कृष्ण से नहीं है। आदि पर्व में बताया है कि भगवान् का नाम गोविन्द इसलिये है कि उन्होंने 'वाराहावतार' में गो अर्थात् पृथ्वी की रक्षा की थी।[7] शांति पर्व में भी इसी प्रकार का वर्णन है।[8] भंडारकर ने गोविन्द की उत्पत्ति गोविद् से बतलाई है, जो ऋग्वेद में इन्द्र के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है।[9]

---

१. ऋग्वेद १०-८-५, १०-८२-६
२. शतपथ ब्राह्मण १३-३-४
३. ऋग्वेद १२-६-१, १२-१०-६०
४. १०-११
५. महाभारत वनपर्व १६-४७ तथा उद्योगपर्व ४९-१
६. महाभारत शांतिपर्व अध्याय ४८
७. महाभारत आदि पर्व २१-१२
८. महाभारत शान्तिपर्व ३४२-७०
९. वैष्णविज्म शैविज्म—भण्डारकर, पृ० ५१

हाप किम का कथन है कि 'महाभारत' में श्रीकृष्ण केवल मनुष्य के रूप में ही आते हैं, बाद में वे देवत्व के पद पर प्रतिष्ठित हुए। पर कीथ के विचारानुसार महाभारत में श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व पूर्ण रूप से देवत्व की भावना से युक्त है।[1]

महाभारत के बाद 'भगवद्गीता' में श्रीकृष्ण विष्णु के पूर्ण अवतार के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं। वे पूर्ण परब्रह्म है।[2] विष्णु या कृष्ण के ब्रह्म से एकत्व स्थापन से प्रतीत होता है कि कृष्ण ब्रह्म के साकार रूप हैं। गीता में आये हुए भक्ति के तीन मार्ग—ज्ञान-मार्ग, कर्म-मार्ग और भक्ति-मार्ग ने कृष्ण के रूप को और भी विकसित किया। भगवद् गीता में भगवान् को प्रकृति और पुरुष से भी परे एक सर्वव्यापक, अव्यक्त और अमृततत्त्व मानकर परमपुरुष कहा है। उसके दो स्वरूप हैं—व्यक्त और अव्यक्त। अव्यक्त के भी तीन भेद हैं—सगुण, सगुण निर्गुण और निर्गुण। उस परमपुरुष का मूर्तिमान अवतार होने के कारण कृष्ण ने अपने विषय में पुरुष का निर्देश अनेक स्थानों पर किया है।[3] कृष्ण ने अर्जुन को अपना विश्वरूप दिखाया है तथा उन्हें उपदेश दिया कि अव्यक्त से व्यक्त रूप की उपासना अधिक सहज है। निष्काम कर्म के उपदेशक कृष्ण योगीश्वर हैं।

कुछ विद्वानों का मत है कि आभीर जाति के इतिहास से कृष्ण का विकास हुआ। हरिवंश पुराण के ३५३२ संख्या वाले श्लोक में 'घोष' का उल्लेख है और यह बताया है कि गोप व्रज को छोड़कर वृन्दावन चले गए। 'घोष' का दूसरा नाम 'आभीर पल्ली' बताते है। हरिवंश पुराण में मथुरा के निकट महावन से लेकर द्वारका के पास अनूप आनर्त देश तक आभीरों का विस्तार बताया है।[4] महाभारत में यदुवंश के साथ अभीर वंश का घनिष्ठ सम्बन्ध दिखाते हुए लिखा है कि श्रीकृष्ण की मुख्यतः आभीरों से ही एक लाख नारायणी सेना निर्मित हुई थी और युद्ध में दुर्योधन की ओर से लड़ी थी। महाभारत में आभीरों को लुटेरे और म्लेच्छ बताया है जो पचनद प्रदेश में रहते थे। महाभारत में आया है कि वृष्णि-वंश के समाप्त हो जाने पर अर्जुन द्वारा उनकी स्त्रियोंको द्वारका से कुरुक्षेत्र ले जाते समय आभीरों ने उन पर आक्रमण कर दिया।[5] आभीरों को विष्णु पुराण में कोंकण और सौराष्ट्र निवासी बतलाया है। पहले आभीर चरवाहे थे, फिर वे पंजाब से मथुरा, सौराष्ट्र और

१. जर्नल आव् दि रायल एशियाटिक सोसाइटी, पृ० ५४८, १९१५
२. श्रीमद्भगवद गीता ७-७
३. गीता ९-८, १५-७, १०-२०, १०-४१, ९-३४।
४. हरिवंश पुराण श्लोक ५१६१-५१६३
५ महाभारत मौशल पर्व अध्याय ७

काठियावाड़ तक फैल गये। भागवत में वसुदेव आभीर पति नन्द को अपना भाई कहते हैं।[1] श्रीकृष्ण नन्द को मथुरा से विदा करते हुए और सन्देश भेजते हुए, उपनन्द, वृषभान आदि को अपना सजातीय कहते हैं।[2] आभीर स्वयं अपने आपको यदुवंशी आहुक की सन्तान मानते हैं।[3] आधुनिक अहीर शब्द 'आभीर' का ही विकृत रूप है। इतिहास से पता चलता है कि मराठा देश के उत्तर में आभीरों ने एक राज्य भी स्थापित किया था। नासिक में लगभग तीसरी शताब्दी के लिखे प्राप्त शिलालेख में 'आभीर' 'शिवदत्त' के पुत्र 'ईश्वरसेन' के राज्य के नवम् वर्ष का वर्णन है। वायु पुराण में आभीरों के दस राजाओं के एक राज्यवंश का वर्णन है।[4] उसमें यह भी लिखा है कि ये राजा सिन्ध से उत्तर की ओर आये और मधुपुर से लेकर आनर्त तक समस्त प्रान्त इनके आधीन हो गया। उन्होंने शक और कुशनों के पूर्व दश पीढ़ियों तक सिन्ध में राज्य किया। काठियावाड़ के एक अन्य उत्कीर्ण लेख में रुद्रभूति आभीर के दान का वर्णन है। यह शिलालेख रुद्रसिंह नामक क्षत्रप का लिखवाया हुआ सन् १८० ई० के आस पास का है।

आभीरों के इस इतिहास से आधुनिक विद्वानों का अनुमान है कि इन आभीरों ने 'वासुदेव' के साथ इन 'गोपालकृष्ण' तथा 'बालकृष्ण' वाली कथाओं का समावेश कर दिया। बालदेवी और बालदेवता की उपासना आभीरों में प्रचलित है। बालदेवता के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसका सम्बन्ध नीच घराने से था और उसका पालन-पोषण एक ऐसे कल्पित पिता के यहाँ हुआ था जिसे मालूम था कि वह बच्चा उसका नहीं है और उसके बहुत से निरीह भाइयों की हत्या हो चुकी है। इन्हीं आभीरों के द्वारा कृष्ण कथा में धेनुकवध आदि की कथायें स्थान पा गईं।[5] कैनेडी ने अपने लेख में जाट-गूजरों को आभीरों की ही सन्तान बतलाया है।

वेबर और ग्रियर्सन भी आभीरों के देवता बालकृष्ण को ईसा के पश्चात् का सिद्ध कर बालकृष्ण की कथाओं को ईसा की रूपान्तर मानते हैं। ग्रियर्सन का कथन है कि ईसा की दूसरी शताब्दी में ईसाइयों का एक दल सीरिया से आकर मद्रास के दक्षिण में आबाद हो गया, जिनकी भक्ति भावना का प्रभाव हिन्दुओं पर पड़ा और क्राइस्ट का क्रिस्टो तथा क्रिस्टो का कृष्ण बन गया। कुछ विद्वान् शेष नाग, शंख,

---

१. भागवत दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध पंचम अध्याय श्लोक २०, २३
२. भागवत दशम् स्कन्ध ४५-२३
३. आहुक वंशात् समुद्भूता आभीरा इति प्रकीर्तिता—यदुकुल प्रकाश
४. वायु पुराण खण्ड २, अध्याय ३७
५. ,, ,, अध्याय २७

ही थे। वृन्दावन के श्री रङ्गजी के मन्दिर और वंशीवालजी के मन्दिर में यह व्यवस्था है कि वहाँ का मुख्य पुजारी आज भी दाक्षिणात्य होता है। कृष्ण के गाने रङ्ग का भी संकेत दक्षिण की ओर ही है। ऐसा प्रतीत होता है कि बालकृष्ण एवं गोपलीला का स्वरूप निर्धारण दक्षिण में ही प्रथम बार हुआ। गोपालकृष्ण के व्यक्तित्व का निर्माण 'हरिवंशपुराण', 'वायुपुराण' और भागवतपुराण में हुआ है। कुछ पुराणों में कृष्ण चरित का वर्णन संक्षेप में है और कुछ पुराणों में कृष्ण लीलाओं का वर्णन विस्तार से है। कृष्ण चरित का निम्नलिखित पुराणों में विस्तार से वर्णन है। पद्मपुराण, वायुपुराण, वामनपुराण, कूर्मपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, हरिवंशपुराण और श्रीमद्भागवत।

ब्रह्म पुराण में कृष्ण की कथा विस्तारपूर्वक दी गई है। पद्मपुराण के पातालखण्ड में कृष्ण चरित का वर्णन है। श्रीकृष्ण के माहात्म्य का विवेचन ६९ अध्याय से ७२ अध्याय तक है और ७३ से ८३ अध्याय तक वृन्दावन आदि का माहात्म्य और श्रीकृष्ण की लीला का वर्णन है। इसमें वृन्दावन, द्वारका, गोकुल, मथुरा आदि का वर्णन और द्वादश वनों का उल्लेख है।

विष्णु पुराण के चौथे अंश के १५ वें अध्याय में शिशुपाल की मुक्ति का कारण बताया है और श्रीकृष्ण-जन्म का वर्णन है। पाँचवें अंश में कृष्ण का चरित्र विशेष रूप से दिया है तथा कृष्ण की लीलाओं के साथ रास का भी वर्णन है। इसी अंश में कृष्ण के चरित्र का विस्तृत वर्णन है।

श्रीमद्भागवत में भगवान् के अवतार और सृष्टि रचना को लीला विनोद का नाम दिया है। श्रीमद्भागवत के श्रीकृष्ण में स्तुतियों तथा अन्य पात्रों की उक्तियों द्वारा परम ब्रह्मत्व की अभिव्यंजना की गई है।[1] सत्रहवें और उन्नीसवें अध्याय में श्रीकृष्ण ने गोपों और गायों को दावानल से बचाया। इक्कीसवें अध्याय में वेणुगीत है। बाईसवें अध्याय की चीरहरण लीला के अन्तर्गत जो शब्द आये हैं उनका आध्यात्मिक दृष्टि से बड़ा महत्व है। महाभारत से लेकर पौराणिक युग तक के कृष्ण का समन्वित रूप श्रीमद्भागवत में मिलता है। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण को अवतार ही माना है। गीता और भागवत दोनों ने श्रीकृष्ण को ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज इन ६ गुणों से विशिष्ट माना है।

श्रीकृष्ण मुख्यतया तीन रूपों में हमारे सम्मुख आते हैं। १. महाभारत के श्रीकृष्ण २. गीता के कृष्ण ३. भागवत के कृष्ण। महाभारत के कृष्ण का स्वरूप वीरत्व विधायक है। गीता के कृष्ण परब्रह्म स्वरूप हैं और भागवत के

१. श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध ८-४५, ३-१३, २४-२५

वायुपुराण के द्वितीय खण्ड के अध्याय ३४ में स्यमंतक मणि की कथा के सम्बन्ध में कृष्ण का विवरण आया है। वायुपुराण द्वितीय खण्ड अध्याय ४२ में श्रीकृष्ण को अक्षर ब्रह्म से परे और राधा के साथ गोलोक-लीला विलासी कहा है।[1] यही उपनिषदों का अरूप, अशब्द, अनिर्देश्य और अनिर्वाच्य ब्रह्म है। यही किसी नाम द्वारा अभिहित न किया जाने वाला परम तत्त्व है जिसे सात्वत वैष्णव श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं।

अग्नि पुराण के १२ वें अध्याय में कृष्णावतार की कथा आई है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण के कृष्ण जन्म खण्ड में श्रीकृष्ण के चरित का पूर्ण विवेचन बड़े विस्तार के साथ हुआ है। प्रारम्भिक अध्यायों में कृष्ण जन्म के कारण का वर्णन है। चौथे में गोलोक का और पांचवें में राधा के मन्दिर का वर्णन है। छठे अध्याय में अंशावतारों का वर्णन है तथा राधा और कृष्ण के सम्बन्ध को स्पष्ट किया गया है। सातवें अध्याय में श्रीकृष्ण के जन्माख्यान और आठवें अध्याय में श्रीकृष्ण जन्माष्टमी व्रत का वर्णन है। नवें अध्याय में बलदेव के जन्म तथा नन्द के पुत्रोत्सव का वर्णन है और आगे कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है नवें अध्याय में श्रीकृष्ण के जन्म के समय उनका रूप वर्णन है।[2] ब्रह्मवैवर्तपुराण के १३ वें अध्याय के ५५ वें श्लोक से ६८ तक कृष्ण शब्द की व्याख्या की गई है। कृष्ण शब्द का क अक्षर ब्रह्मवाचक, ऋ अनन्तवाचक, ष, शिववाचक, न धर्म वाचक, अ विष्णुवाचक और विसर्ग नर-नारायण अर्थ का वाचक है। सर्वाधार, सर्वबीज और सर्व मूर्ति स्वरूप होने के कारण वे कृष्ण कहलाते हैं। कृषि निश्चेष्ट वचन अथवा निर्वाण वाचक, न कार भक्तिवाचक अथवा मोक्षवाचक और अ कार प्राप्तिवाचक अथवा दातृवाचक होने के कारण उनका नाम कृष्ण पड़ा। क कार के उच्चारण से भक्त जन्म-मृत्यु का नाश करके कैवल्य प्राप्त करता है, ऋकार अतुल दास्य भाव, षकार अभीप्सित भक्ति और नकार भगवान् का सहवास एवं सारूप्य देता है। क कार के उच्चारण से यम-किंकर काँप जाते हैं तथा ऋ कार के उच्चारण से भाग जाते हैं। ष कार के उच्चारण से पाप, न कार के उच्चारण से रोग और अ कार से मृत्यु सभी भीरू बनकर भाग जाते हैं।

१४ वें अध्याय में यशोदा के स्नान के लिए यमुना जाने पर श्रीकृष्ण के द्वारा शकट में रखे हुए दधि, दूध, घी, मट्ठा, मक्खन और मधु के खाये जाने का वर्णन है। १५ वें अध्याय में नन्द के कृष्ण के साथ गौ चराने जाने और इसी बीच कृष्ण के

१. वायु पुराण द्वितीय खंड अध्याय ४२, श्लोक ४२ से ५७
२. ब्रह्म वैवर्त पुराण कृष्ण जन्म खंड, अध्याय ९, श्लोक ५८-५९

माया द्वारा आकाश को मेघाच्छादित करने का वर्णन है। १६ वें अध्याय में बकासुर, प्रलम्ब, केशि आदि के वध की कथा है। १७ वें अध्याय में वृन्दावन का वर्णन है। १६ वें अध्याय में कालिय नाग-दमन लीला के अन्तर्गत सुरसा नागिनी श्रीकृष्ण की स्तुति करती है।[१] २० वें अध्याय में ब्रह्मा द्वारा गोवत्सबालकहरण का प्रसङ्ग है। २१ वें अध्याय में इन्द्र-यज्ञ भंजन और गोवर्द्धन धारण लीला है। २२ वे अध्याय में धेनुकासुर-वध का वर्णन है। २७ वें अध्याय में गोपी वस्त्रापहरण तथा २८ वें अध्याय मे रास-क्रीड़ा की कथा का वर्णन है। ब्रह्मवैवर्तपुराण के उत्तरार्द्ध में ६४ वें तथा ६५ वें अध्याय में कंस के धनुष यज्ञ में भाग लेने के लिए राजाओं को निमन्त्रण देने पर अक्रूर गोकुल में कृष्ण को बुलाने जाते हैं। ६६ वें अध्याय में राधाकृष्ण क्रीड़ा का शृङ्गार वर्णन है। ७२ वें अध्याय में कृष्ण की कृपा से कुब्जा सरूपवती बनती है। ७३ वें अध्याय में जब नन्द कृष्ण को छोड़ ब्रज जाते हैं और विरह कातर होते है तो श्रीकृष्ण उन्हें आध्यात्मिक बोध देते हैं।[२] ८१ वे अध्याय में कृष्ण उद्धव को ब्रज में जाने की आज्ञा देते हैं। ८८ वें अध्याय में उद्धव मथुरा वापिस आते हैं। आगे राधा-कृष्ण सम्बन्धित अनेक आख्यानों का उल्लेख है। ब्रह्मवैवर्त पुराण मे अनेकों स्तुतियों का समावेश है और अनेक उच्च-कोटि के शृङ्गारिक वर्णन आये है।

मार्कण्डेय पुराण की जो विषय सूची नारदीय पुराण में दी गई है उसके अनुसार यदुवंश, श्रीकृष्ण की लीलायें और द्वारिका चरित होने चाहिए परन्तु प्राप्त पोथियों में इनका अभाव है।

वामन पुराण में केशी, मुर तथा कालनेमि के वध की कथा है।

कूर्म-पुराण के पूर्वार्द्ध में २४ वें अध्याय में यदुवंश का वर्णन है। २५ वें अध्याय में श्रीकृष्ण पुत्र-प्राप्ति के लिए महादेव की आराधना करते हैं और २७ वें अध्याय में श्रीकृष्णात्मज साम्बादि की कथा का वर्णन है।

गरुड पुराण के आचार काड के १४४ वें अध्याय के ११ श्लोक में कृष्ण लीलाओं का उल्लेख है। इसमें पूतना वध, यमलार्जुन-उद्धार, कालिय-दमन, गोवर्द्धन धारण, केशी-चाणूर का वध, संदीपनि गुरु से शिक्षा लाभ आदि सभी कथाओं का संक्षेप में वर्णन है। गोपियों का तथा कृष्ण की रुक्मिणी, सत्यभामा आदि अष्ट पत्नियों का उल्लेख है परन्तु राधा का नाम नहीं है। २३७ वें अध्याय में गीता का

राधा का विकास—

राधा के विकास के सम्बन्ध में विचार करने पर ज्ञात होता है कि इसके दो पक्ष हैं। एक तत्त्व का पक्ष और दूसरा इतिहास का पक्ष। पाश्चात्य विद्वान राधा को ईसवी शताब्दी के बाद की कल्पना मानते हैं। डा० हरवंशलाल शर्मा का मत है कि, 'यद्यपि पौराणिक पंडित राधा का सम्बन्ध वेदों से लगाते हैं परन्तु ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में कृष्ण की प्रेमिका राधा को वेदों तक घसीटना असंगत ही प्रतीत होता है। गोपाल कृष्ण की कथाओं से परिपूर्ण भागवत, हरिवंश और विष्णु पुराण आदि प्राचीन ग्रन्थों में राधा का अभाव अनेक प्रकार के सन्देहों को जन्म देता है। गोपाल तापिनी, नारद-पांचरात्र, तथा कपिल पांचरात्र आदि ग्रन्थ इस विषय में प्रमाणिक नहीं कहे जा सकते, क्योंकि वे बहुत बाद की रचनायें हैं।'[1]

वास्तव में साहित्य के उज्ज्वल रस के माध्यम से राधा का धर्ममत में प्रवेश हुआ है और साहित्य के ही अवलम्बन से राधा का आविर्भाव और प्रसार हुआ है। परन्तु ज्योतिष तत्त्व, दार्शनिक आधार तथा अन्य विविध दृष्टिकोणों से सम्बन्धित राधा का स्वरूप और उसकी भावना वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों तथा उपनिषदों में भी विद्यमान है। तान्त्रिक ग्रन्थों और पुराणों में राधा का विशद विवेचन उपलब्ध होता है। कृष्ण की रासलीला की ज्योतिषिक व्याख्या करते हुए योगेशचन्द्र लिखते हैं, 'राधा नाम पुराना था और विशाखा का नामान्तर था। कृष्ण-यजुर्वेद में विशाखा, अनुराधा आदि नक्षत्रों का नाम है। राधा के बाद अनुराधा का नाम है। अतएव विशाखा नाम राधा है। अथर्ववेद में 'राधो विशाखे', यह स्पष्ट कथन है। विशाखा नाम का कारण यही है। इस नक्षत्र से शारद विषुव होता था और वर्ष दो शाखाओं में बँट जाता था। यह ईसा पूर्व २५००सौ की बात है। शायद इसके पहले नक्षत्र का नाम राधा था। राधा का अर्थ है सिद्धि। यह नाम क्यों पड़ा था, यह नहीं बताया जा सकता। कालक्रम में राधा और विशाखा एक हो गये हैं। महाभारत में कर्ण की धातृ-माता का नाम राधा है, और कर्ण राधेय के नाम से सम्बोधित होते थे।'[2]

ऋग्वेद के कुछ मन्त्र पद नीचे दिये गये हैं जिनमें कृष्ण की व्रज लीला संबंधी नाम राधा, गो, व्रज, गोप, अहि, कालीनाग, वृषभानु, रोहिणी, कृष्ण और अर्जुन आये है :—

१. स्तोत्रं राधानां पते। ऋ १-३०-२६

२. गवामपव्रज वृधि। ऋ १-१०-७

---

१. सूर और उनका साहित्य—डा० हरवंशलाल शर्मा, पृ० २६५

२. श्री राधा का क्रम-विकास—डा० शशिभूषणदास गुप्त, पृ० १०१

ये यं राधाकृष्णौ रसाब्धिर्देहनैवयं क्रीडनार्थं द्विधाभूत,एवा हरेः सर्वेश्वरी सर्वविद्या सनातनी कृष्णप्राणाधिदेवी 'चेति विविक्तेनवेदाः स्तुवन्ति, यस्या गति भागा वदन्ति। तथा—

'वृषभानुसुता गोपी मूलप्रकृतिरीश्वरी।'

ऋग्वेद के राधिकोपनिषद् के आधार पर कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति समस्त शक्तियों में प्रधान है। यही शक्ति परम अन्तरभूता श्री राधा है। ये कृष्ण की आराधिका हैं। कृष्ण इनकी आराधना करते हैं और ये कृष्ण की आराधना करती हैं इसलिये इन्हें राधा कहा जाता है। परम पुरुष कृष्ण अपने आनन्द रूप में स्वयं रमण करते हैं, उसमें लीन होते हैं और उसी शक्ति के मेल से सृष्टि का उन्मीलन करते हैं। अपनी आराधना में स्वयं लीन हो जाने के कारण उनकी शक्ति को राधा कहा गया है। दार्शनिक रूप से दोनों एक हैं। दोनों अभिन्न हैं। शरीर और इन्द्रियों की आधीनता मन और आत्मा से होने के कारण राधा तत्त्व कृष्ण तत्त्व से अभिन्न और उसी का आत्म-स्वरूप है।

अथर्ववेद के गोपालतापिनी उपनिषद् में एक प्रधान गोपी का वर्णन है। यह गोपी कृष्ण को बहुत प्रिय है और इसका नाम वहाँ पर गांधर्वी बताया है। गोपालतापिनी उपनिषद् के अतिरिक्त कृष्णोपनिषद् तथा राधिकातापिनी आदि उपनिषदों में राधा सम्बन्धी अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं।

माहेश्वर तंत्र के एकादश पटल (ज्ञान खण्ड) में राधा का उल्लेख मिलता है। रुद्रयामल तंत्र में गीता के समान योग का विस्तृत विवेचन है। इस ग्रन्थ के उत्तर तन्त्र में षड्दलकमल की कर्णिका के अङ्क में राधा कृष्ण का वर्णन है। रुद्रयामल तन्त्र के ३७ वें पटल, अड़तीसवें पटल तथा अनेक मन्त्रों में राधा का वर्णन आया है। सम्मोहन तन्त्र, गौतमीय तन्त्र, कृष्णयामल तन्त्र, मूर्द्धाम्नाय तन्त्र, हरितन्त्र आदि में भी राधा का नाम आया है। हरिलीलामृत तन्त्र में राधिका के विवाह का वर्णन है। मन्त्र महोदधि तन्त्र के द्वादश तरङ्ग में गोपाल सुन्दरी शब्द आया है। जीव गोस्वामी और कृष्णदास कविराज ने 'बृहद् गौतमीय तन्त्र' में भी राधा के बारे में एक श्लोक ढूँढ़ निकाला है।[1] जीव गोस्वामी ने 'ब्रह्म संहिता' की टीका में सम्मोहन तन्त्र में राधा सम्बन्धी एक श्लोक की चर्चा की है। तन्त्र की कथा का उल्लेख करके रूप गोस्वामी ने कहा है—'ह्लादिनी

१ देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता।
  सर्वलक्ष्मीमयी सर्वकान्तिः सम्मोहिनी परा।

जो महाशक्ति है—जो सर्वशक्ति वरीयसी है—वही राधा तत्सार भावरूपा है, तन्त्र में यह बात ही प्रतिष्ठित है ।'[१]

भागवत के दशम स्कन्ध के तीसवें अध्याय में एक ऐसी गोपी का उल्लेख है जो कृष्ण को सर्वाधिक प्यारी थी। रासलीला के बीच कृष्ण के अन्तर्धान होने पर गोपियाँ एक स्थान पर श्रीकृष्ण के चरण चिन्ह देख आपस में कहने लगी, 'जैसे हथिनी अपने प्रियतम गजराज के साथ गई हो, वैसे ही नन्द-नन्दन श्यामसुन्दर के साथ उनके कंधे पर हाथ रखकर चलने वाली किस बड़भागिनी के ये चरण चिह्न हैं ?' फिर भागवत में लिखा है :—

अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः ।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद् रहः ॥

अर्थात् अवश्य ही सर्वशक्तिमान भगवान् श्रीकृष्ण की इसने आराधना की है। तभी तो 'हमें छोड़कर वे प्रसन्न हो इसे एकांत में ले गये हैं। 'इसी आराधितः' शब्द से राधा शब्द की उद्भावना हो सकती है। कृष्ण की जो आराधिका है, वही राधा या राधिका है।

कृष्ण का गोपियों के साथ वृन्दावन लीला का वर्णन पहले पहल हरिवंश में मिलता है। इस हरिवंश के विष्णु पर्व के वीसवें अध्याय में गोपियों के साथ श्रीकृष्ण की रासलीला का संक्षेप में वर्णन है। गोपियों के साथ क्रीड़ा करने के समय जिस समय दामोदर हा राधे ! हा चन्द्रमुखी ! इत्यादि शब्दों से विरह प्रकट करते हैं तब वे वीरांगनागण उनकी मुख-निःसृत वाणी सुनती थीं।

विष्णु पुराण में भागवत पुराण के अनुरूप ही रास वर्णन है और उसी प्रियतमा 'कृतपुण्यामदालसा' गोपी का उल्लेख मिलता है :—

अत्रोपविश्य सा तेन कापि पुण्यैरलंकृता ।
अन्य जन्मनि सर्वात्मा विष्णुरभ्यर्चितो यया ॥

अर्थात् यहाँ बैठकर कोई रमणी उस कृष्ण द्वारा पुष्पों से अलंकृता हुई है, जिस रमणी के द्वारा दूसरे जन्म में सर्वात्मा विष्णु अभ्यर्चित हुए हैं।' यहाँ राधित या 'आराधित' शब्द के स्थान पर 'अभ्यर्चित' शब्द मिलता है और अन्य पुराणों में रास का इस प्रकार का वर्णन और कृष्ण प्रिया किसी गोपी विशेष का उल्लेख नहीं मिलता।

---

१. उज्ज्वल नीलमणि—राधा प्रकरण—रूप गोस्वामी ।

कृष्ण कविराज ने अपने चैतन्य चरितामृत में पद्मपुराण से राधा का उल्लेख उद्धृत किया है। पद्मपुराण में राधा आद्या प्रकृति तथा कृष्ण की वल्लभा है। नारद द्वारा राधा का स्तवन है। राधाकुण्ड के माहात्म्य का वर्णन है। राधा के पीहर का भी वर्णन है। चालीसवें सर्ग में राधाष्टमी व्रत का माहात्म्य बताया गया है। विष्णु-पंचक व्रत में राधा के साथ श्रीहरि की पूजा का उल्लेख मिलता है। अड़तीसवें अध्याय में कृष्ण की लीला भूमि के वर्णन के बाद कृष्ण की प्रिया आद्या प्रकृति राधिका ही कृष्णवल्लभा है। पद्म पुराण में एक स्थल पर राधा गोपियों के बीच स्वर्ण प्रभा के समान दिशाओं को चका-चौंध कर रही है। शिव पुराण में पार्वती खण्ड अध्याय दो में मेना की उत्पत्ति के साथ राधा का वर्णन है। नारद पुराण में राधा के अंश से सरस्वती आदि पाँच प्रकृतियों के उत्पन्न होने का विधान है। वाराह पुराण में आया है कि राधाकुण्ड में स्नान करने से राजसूय और अश्वमेघ यज्ञों का फल मिलता है। स्कन्ध पुराण में राधा को श्रीकृष्ण की आत्मा बताया है। ब्रह्माण्ड पुराण में राधा को कृष्ण की आत्मा व कृष्ण को राधिका की आत्मा बताया है। उसमें ब्रह्मा नारद संवाद में भी राधा का वर्णन मिलता है।[1] मत्स्य पुराण के श्लोकार्ध में राधा का उल्लेख है। पद्मपुराण के सृष्टि-खंड में भी यह श्लोक मिल रहा है। विष्णु के द्वारा सर्वव्यापिनी सावित्री के स्तव में कहा गया है कि शाँति-रूपा यह सावित्री द्वारका में रुक्मिणी और वृन्दावन में राधा हैं। वृन्दावन की राधा यहाँ पुराणतंत्रादि में वर्णित बहुत से देव-देवियों में एक देवी है।[2] देवी भागवत में राधा को मूल प्रकृति का रूप माना है। इसके ५० वें अध्याय में राधा के मन्त्र का स्वरूप जपविधि तथा फल का विवरण है। भविष्य पुराण में राधिका को निराकार ब्रह्म की विलासिनी शक्ति कहा है। आदि पुराण में राधा की सखियों का वर्णन है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में कृष्ण लीला का विशद चित्रण है और इसके कई खंडों में राधा का विस्तार से वर्णन मिलता है। परन्तु आजकल उपलब्ध ब्रह्मवैवर्त

---

१. 'आराधितमनाकृष्ण राधाराधितमानसः। कृष्णः कृष्णमनाराधा राधा कृष्णेति यः पठेत् ॥ शृणु गुह्यं तु मे तात नारायणमुखाच्छ्रुतम्। सर्वदा पूज्यते देवैः राधा वृन्दावने वने।

२. सावित्री-पुष्कर में सावित्री, वाराणसी में विशाला थी, नैमिष में लिंगधारिणी, प्रयाग में ललितादेवी....इसी प्रकार और भी बीस जगहों में बीस देवियों का उल्लेख करके सावित्रीदेवी को द्वारवती में रुक्मिणी और वृन्दावन में राधा कहा गया है। (वङ्गवासी) १७-१८२-१६६।

पुराण की प्रामाणिकता में अनेकों विद्वानों को संदेह है।[1] श्रीकृष्ण-जन्म-खंड के प्रथम अध्याय में श्री नारदजी के श्रीकृष्ण-जन्म विषयक प्रश्न है। द्वितीय अध्याय में भगवान् के गोकुलागम का और राधा के गोपालिका बनने का कारण बताया है। गोलोक में श्रीदामा से कलह, विरजा के नदी रूप और राधाजी के रत्न मण्डप में आगमन आदि की बातें हैं। तृतीय अध्याय में हरि का राधा के प्रति माहात्म्य वर्णन, राधा और श्रीदामा का परस्पर शाप भगवान् के द्वारा उसका समाधान है। चतुर्थ अध्याय में अत्याचारों से पीड़ित पृथ्वी का देवों सहित गोलोक-गमन आदि का वर्णन है। पाँचवें अध्याय में गोलोक वासिनी श्री राधाजी के महल के १६ द्वारों का और देवों के आगमन का वर्णन है। वहाँ भगवान् के तेजः स्वरूप का दर्शन करके ब्रह्मा, शिव और धर्मराज आदि द्वारा की हुई स्तुति है। छठे अध्याय में भगवान् द्वारा देवों को अभयदान, सभी गोलोक वासियों को राधा के सहित व्रजभूमि पर अवतार ग्रहण करने की आज्ञा और श्री राधा तथा अपने अंशों के द्वारा अनेक गोप-गोपियों के रूप धारण करने की आज्ञा है। अभिन्न प्रकृतिरूपिणी राधा का विरह के भय से व्याकुल होने का वर्णन तथा राधा के प्रति बोध वचन हैं। श्रीराधा का गोलोक धाम से गोप-गोपी सहित गोकुल में आगमन और श्रीहरि के मथुरा आगमन का भी वर्णन है। सातवें अध्याय में जन्म कथा और तेरहवें अध्याय में गर्गाचार्य द्वारा भगवान् का नामकरण है। चौदहवें अध्याय में राधा कृष्ण के विवाह का वर्णन है। सत्रहवें अध्याय में वृन्दावन वर्णन तथा राधा के षोडश नामों की स्तुति है। सत्ताईसवें अध्याय में राधा कृत पार्वती स्तोत्र एवं तीसवें अध्याय में राधा के प्रश्न के कारण ब्रह्माजी के शाप का कथन है। पैंतीसवें अध्याय में राधा और कृष्ण के संवाद के रूप में ब्रह्म भाखी भारती की कथा है। बावनवें अध्याय में राधा और कृष्ण के नामोच्चारण में राधा के प्रथम नामोच्चारण का कारण बताया है। त्रेपनवें अध्याय में राधा कृष्ण के वन विहार का वर्णन है। पुराण के उत्तरार्ध के बावनवें अध्याय में उद्धवजी का राधा के मन्दिर में आने का वर्णन और राधा का स्तोत्र दिया हुआ है। त्रेपनवें अध्याय में राधा और उद्धव का संवाद है तथा राधा उद्धव को वस्त्रालङ्कार देती हैं। पिच्चानवें अध्याय में राधा के दुःख का निवेदन है। छ्यानवें अध्याय में उद्धव के भवसागर को पार करने की प्रार्थना और श्री राधाजी द्वारा उपाय वर्णन है। सत्तानवेवें अध्याय में राधा का दिया हुआ ज्ञानोपदेश है।

---

१. वंकिमचन्द्र ने कहा है—'इसकी रचना प्रणाली आजकल के भट्टाचार्य जैसी है। इसमें षष्ठी, मनसा की कथा भी है।' —कृष्णचरित्र

पुराणों में राधा के उल्लेख के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण में 'संस्कृत साहित्य में राधा का स्वरूप' प्रकरण में दिया गया है। इन राधा सम्बन्धी पुराणों में प्राप्त उल्लेखों से प्रतीत होता है कि राधा केवल बाद के कवियों के भाव लोक की देवी ही नहीं थी अपितु राधा के अंकुर प्राचीनतम ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। चाहे आधुनिक प्राप्त अनेक पुराणों को अप्रमाणिक ठहराया जावे अथवा राधिका की प्रामाणिकता पर संदेह किया जावे परन्तु यह निश्चय प्रतीत होता है कि उसके अंकुर प्राचीनतम ग्रन्थों में विद्यमान हैं।

नारद-पांचरात्र के नमस्कार श्लोक में लिखा है[1]:—

लक्ष्मी सरस्वती दुर्गा सावित्री राधिका परा।[2] १।२

राधा शब्द के तात्पर्य के सम्बन्ध में कहा है :—

राशब्दोच्चारणाद् भक्तो भक्ति मुक्तिञ्च राति सः।
धा शब्दोच्चारणेनैव धावत्येव हरेः पदम्॥ २-३-३८

कुछ विद्वानों का मत है कि कृष्ण की प्रेम कहानी से ही राधा का उद्भव हुआ है। राधा का आविर्भाव और स्वरूप निर्धारण मूलतः भारतवर्ष के साहित्य के आधार पर हुआ है। आभीर जाति में कृष्ण और गोपियों की प्रेम लीला गीतों के रूप में बिखरी हुई थी। गोप जाति में चपल आभीर बंधुओं और युवक कृष्ण की प्रेम लीला के उपाख्यानों ने अनेक गानों का प्रादुर्भाव किया था। भंडारकर का कथन है कि 'राधा सीरिया से आये आभीरों की इष्ट देवी है। आभीरों के यहाँ बस जाने पर उनके बाल-गोपाल सात्वत धर्म के उपदेष्टा भगवान् कृष्ण के साथ सम्मिलित हो गये और कुछ शताब्दियों के पश्चात् आभीरों की इष्टदेवी राधा भी आर्य जाति में स्वीकार करली गई।' भारतवर्ष के प्राचीन-प्रेम साहित्य में कृष्ण की इस गोप लीला की कहानी के अन्दर कृष्ण की एक खास गोपी राधा से प्रेम लीला की धारा प्रवाहित होती हुई प्रतीत होती है। कृष्ण की प्रियतमा प्रधान गोपी के सम्बन्ध में दक्षिणात्य आलवार सम्प्रदाय के गानों का विवरण दे सकते हैं। इनके

---

१. एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता से रेवण्ड कृष्णमोहन वन्द्योपाध्याय द्वारा सम्पादित (परन्तु मुद्रित आकार में जिस रूप में पाते है इसे प्राचीन पाञ्चरात्र ग्रंथ नहीं मान सकते।)

२. तुननोय षडक्षरी महा विद्या कथिता सर्वसिद्धिदा।
प्रणयाद्या महामाया राधा लक्ष्मीः सरस्वती॥ २-३-७२

आविर्भाव के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं।[1] पाँचवीं सदी से नवीं सदी के अन्दर भिन्न-भिन्न समयों में आविर्भूत उनके चार हजार सङ्गीत 'दिव्य-प्रबन्धम्' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन गानों में बहुत से स्थलों पर कृष्ण की प्रियतमा एक प्रधान गोपी का उल्लेख है लेकिन राधा का उल्लेख कहीं नहीं मिलता। इस कृष्ण की प्रियतमा का नाम तामिल गानों में 'नाप्पिनाइ' मिलता है। 'नाप्पिनाइ' एक फल का नाम है। इस नाप्पिनाइ गोपी को कृष्ण की निकट आत्मीया भी कहा गया है तथा कृष्ण की प्रियतमा वही गोपी लक्ष्मी का अवतार बताई गई है :—

Daughter of Nandgopal. who like
A lusty elephant, who fleeth not,
With shoulders strong: Nappinnai. thou with hair
Diffusing fragrance open thou the door !
Come see how everywhere the cocks are crowing,
And in the *mathavi* bower the Kuil sweet
Repeats its song—Thou with a bell in hand,
Come, gaily open, with the lotus hands
And tinkling bangles fair, that we may sing
Thy cousin's name ! Ah, Elorembavay !
Thou who art strange to make them brave in fight,
Going before the three and thirty gods;
Awake from out thy sleep ! thou who art just;
Thou who art mighty, thou, O faultless one,
O Lady Nappinnai, with tender breasts
Like Unto little cups, with lips of red
And slender waist, Lakshmi, awake from sleep !
Proffer thy bride groom fans and mirrors now,
And let us bathe ! Ah. Elorembavay ![2]

राधा की तरह नाप्पिनाइ गजगामिनी, गौरी और सौन्दर्य की प्रतिमा है। कृष्ण की प्रियतमा और गोपियों में प्रधान यह नाप्पिनाई ही है। प्राचीन काल के

१. गोविन्दाचार्य कृत The Divine wisdom of the Dravida saints. The Holy Lives of the Azhvars. गोपीनाथराव कृत Sir Subrahmanya Ayyar Lectures (1923) और एस. के. आयंगर कृत Early History of Vaisnavism in South India आदि ग्रन्थों को देखिये।

२. J. S. M. Hooper कृत Hymns of the Alvars ग्रंथ में कवि अंडास की कविता देखिये।

तामिल ऋषियों में एक 'वृषवशीकरण' की प्रथा थी उसी के अनुरूप इन गानों में मिलता है कि श्रीकृष्ण ने बलवान भुजाओं से वृष को वश में करके गोपबाला नाप्पिनाइ को प्रिया के तौर पर प्राप्त किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि परवर्ती साहित्य की राधा ही तमिल साहित्य में नाप्पिनाइ बन गई हैं।

हाल के प्राकृत गानों के संकलन-ग्रन्थ 'गाहा-सत्तसई' को कोई पहली सदी की और कोई ई० २०० से ४५० की रचना बताते हैं, परन्तु किसी ने भी इसे छठी सदी के बाद का नहीं माना। 'गाहा-सत्तसई' में कृष्ण के व्रज-लीला सम्बन्धी कई पदों में से एक पद में राधा का स्पष्ट उल्लेख है। इससे प्रतीत होता है कि पाँचवे शताब्द तक राधा के स्वरूप की प्रतिष्ठा आर्य जाति में पूर्णरूपेण हो चुकी थी। इस सम्बन्ध में जयनाथ नलिन का कथन है, 'सप्तशती के इस अवतार से प्रकट है कि राधाकृष्ण की प्रेमकथा लोक जीवन में, ईसा पूर्व दूसरी शती में, घर कर चुकी थी। लोक-भाषा जन-जीवन का यथार्थ दर्पण है। लोक-भाषा 'प्राकृत' में आने से पूर्व ही राधा लोकगीतों में शृङ्गार की आलम्बन बन चुकी होगी। 'गाथा सप्तशती' में आभीरों के उन्मुक्त प्रेम, उच्छलित यौवन और निर्मल प्राकृत सौन्दर्य के जगमगाते चित्र है। सप्तशती में राधा एक यौवन मदमाती परकीया नायिका के रूप में आती है।'[1]

पुरातत्व वेत्ताओं ने पाँचवीं या छठी शताब्दी में निर्मित देवगिरि और पहाड़पुर की मूर्तियों को राधा और कृष्ण की प्रेम-लीलाओं की मूर्ति बताया है।[2] धारा के अमोघ वर्ष के ६८० ई० के शिलालेख में राधा कृष्ण, प्रिया के रूप में वर्णित है।[3] मालवाधिपति मुंज के ९७४ और ९७९ ई० के ताम्र पत्रों में राधा सम्बन्धी मङ्गलाचरण का श्लोक मिलता है :—

यल्लक्ष्मीवदनेन्दुना न सुखितं यन्नार्दितम्वारिधे—
र्वारा यन्न निजेन नाभिसरसीपद्मेन शांतिं गतम्।
यच्छेषाहिफणासहस्रमधुरश्वासैर्न चाऽश्वासितं
तद्राधाविरहातुरं मुररिपोर्वेल्लद्वपुः पातु वः॥[4]

ईसा की दूसरी शताब्दी से पाँचवीं शताब्दी के मध्य बने 'पंच तंत्र' (मित्र लाभ प्रथम तंत्र) की विष्णु रूप धारी रथकार की कथा में राधा को कृष्ण की परकीया प्रेमिका के रूप में चित्रित किया है। सहजिया सम्प्रदाय के परकीया पूजन की

१. विद्यापति एक तुलनात्मक समीक्षा—जयनाथ नलिन, पृ० ७१
२. गङ्गा पुरातत्त्वांक, पहाड़पुर की खुदाई—श्री के० एन० दीक्षित
३. गुजरात और उसका साहित्य—पं० कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी
४. प्राचीन लेखमाला प्रथम भाग संख्या १

प्रथा से प्रभावित होकर वैष्णवों ने कृष्ण पंथ में प्रवेश किया। डॉ० दिनेशचन्द्र सेन ने लिखा है, 'राधा का विवाह आमानघोष के साथ हुआ था परन्तु उसे कृष्ण की प्रेमिका मानकर उसकी उपासना प्रारम्भ की गई।'[१] ईसा के लगभग आठवीं सदी के पहले के कवि भट्टनारायण कृत 'वेणीसंहार' नाटक के नान्दी श्लोक में कालिन्दी के जल में रास के समय केलि कुपिता अश्रुकलुषा राधिका और उनके प्रति कृष्ण के अनुनय का वर्णन है।[२]

वृन्दावन का महत्व चैतन्य और उनके शिष्यों के यहाँ आने के बहुत पहले प्रसिद्ध हो चुका था। संभवतः इस नाम की बस्ती भी मध्यकाल में विद्यमान थी, जिसके उल्लेख यदा-कदा तत्कालीन साहित्य में मिल जाते हैं। काश्मीरी पण्डित विल्हण के विक्रमांक देवचरित में झूला के प्रसङ्ग में राधा का वर्णन इस प्रकार आया है।'

दोलालोलद्घन जघनया राधया यन्न भग्नाः
कृष्ण क्रीड़ाङ्गणविटपिनो नाधुनाप्युच्छ्वसन्ति।
जल्यक्रीड़ामथितमथुरा सूरि चक्रेण केचित्,
तस्मिन्वृन्दावनपरिसरे वासरा येन नीताः[३]

अर्थात् जिस वृन्दावन में चंचल और घन-जघन वाली राधा के झूला झूलने के कारण कृष्ण के विहार कुंज के वृक्ष टूटकर गिर पड़े हैं, जहाँ मथुरा नगरी के अनेक विद्वानों को मैं (विल्हण) ने शास्त्रार्थ में परास्त किया, वहीं वृन्दावन की भूमि में कई दिन तक मैंने निवास किया।

ईसा की नवीं सदी में (आनन्दवर्धन) के अलङ्कार ग्रंथ 'ध्वन्यालोक' में राधा कृष्ण के बारे में एक प्राचीन श्लोक मिलता है।[४] एक और पद अज्ञात् लेखक

१. History of Bengali Language and Literature—P. 127
—दिनेशचन्द्र सेन

२. कालिन्द्याः पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रसं,
गच्छन्तीमनुगच्छतोऽश्रुकलुषां कंसद्विषो राधिकाम्।
तत्पादप्रतिमानिवेशित–पदस्योद्भूतरोमोद्गते—
रक्षुन्नो–ऽनुनयं प्रसन्नदयिताद्दष्टस्य पुष्णातु वः।

३. राधा का क्रम विकास से उद्धृत—शशिभूषणदास गुप्त

४. विल्हण कृत विक्रमाङ्क देवचरित, १८, ८७ ब्रज का इतिहास से उद्धृत पृ० ६
—कृष्णदत्त वाजपेयी

द्वारा राधा विरह का लिखा हुआ ध्वन्यालोक में उद्धृत किया गया है। कृष्ण के द्वारका चले जाने पर राधा ने उन्हीं कपड़ों को शरीर पर लपेट कर और कालिन्दी के किनारे की कुंजों की मंजुल लताओं से लिपटकर बड़ी उत्कंठित होकर सधे हुए गद्गद् कंठ और विगलित स्वर से गाना गाया था उससे यमुना के जलचर गण ने भी उत्कंठा के साथ कूजना शुरू कर दिया :—

याते द्वारवतीपुरीं मधुरिपौ तद्वस्त्रसंव्यानया
कालिन्दीतटकुंजवंजुललतामालम्ब्य सोत्कंठया।
उद्गीतं गुरुवाष्पगद्गद्गलतारस्वरं राधया
येनान्तर्जलचारिभिर्जलचरैरुत्कंठमाकूजितम् ॥

दसवीं और ग्यारहवीं सदी के प्रसिद्ध आलंकारिक कुन्तकके 'वक्रोक्ति जीवित' अलंकार ग्रन्थ में भी यह पद मिलता है।[१] 'नल चम्पू' के रचयिता त्रिविक्रम भट्ट ने सन् ६१५ में राष्ट्रकूट-नृपति तृतीय इन्द्र की नौसरि लिपि की रचना की थी। 'नलचम्पू' में नलदमयन्ती के प्रसङ्ग में जो द्वयर्थक श्लोक लिखे गये हैं उनमें कृष्ण और उनके जीवन के सम्बन्ध में उल्लेख है। 'नलचम्पू' के एक श्लोक का अर्थ इस प्रकार लगा सकते हैं' 'कला कौशल में चतुर राधा परमपुरुष मायामय केशिहन्ता के प्रति अनुरक्त है।'[२]

काश्मीर में दसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में वल्लभदेव ने विभिन्न काव्यों की टीकाएँ की। उन्होंने माघकृत 'शिशुपाल वध' के ४।३५ श्लोक की टीका करते हुए 'लोचक' (ओढ़नी या दुपट्टा) शब्द की व्याख्या के अन्तर्गत एक श्लोक प्राचीन ग्रन्थ से उद्धृत किया है जिसमें 'राधा-कृष्ण' का नाम आया है। राधा कृष्ण को न देखकर दुःख प्रकट करती है—'निश्चय ही आज किसी अभागिनी ने मेरे कृष्ण का

---

१. डॉ० सुशीलकुमार दे द्वारा सम्पादित पद्यावली में उनके द्वारा लिखी गई कवि-परिचित 'अपराजित' देखिए—यह पद 'सदुक्ति कर्णामृत' में अज्ञात लेखक के नाम से और 'पद्यावली' में अपराजित कवि के नाम से उपलब्ध है। हेमचन्द्र के काव्यानुशासन में भी कुछ पाठान्तर के साथ मिलता है।

डॉ० नरेन्द्रनाथ लाहा द्वारा लिखित 'प्राचीन ओ मध्ययुगे भारतीय साहित्ये श्री राधार उल्लेख' नामक निबन्ध देखिये, 'सुवर्ण वणिक-समाचार' वर्ष ३४, अङ्क ६

२. 'प्राचीन ओ मध्य युगे भारतीय साहित्ये श्रीराधार उल्लेख'
—डा० नरेन्द्रनाथ लाहा—सुवर्ण वणिक् समाचार वर्ष ३४, अङ्क ६

हरण किया है।' राधा की बात सुनकर कोई सखि कहती है—'राधा, तुम क्या मधुसूदन की बात कह रही हो ?' राधा बात उलटते हुए कहती है, 'नहीं, नहीं अपनी प्राणप्रिय ओढ़नी की बात कह रही थी।'[1] सोमदेव सूर के दसवीं शताब्दी के 'यशस्तिलक चम्पू' में अमृतमति नामक नारी अपने आचरण का समर्थन इस प्रकार करती है, 'राधा क्या नारायण के प्रति अनुरागिणी नहीं थी।'[2]

संस्कृत-कविता संग्रह 'कवीन्द्र वचन समुच्चय' जो कि दसवीं शताब्दी का अथवा उसके पूर्व का माना जा सकता है राधाकृष्ण सम्बन्धी चार पदों का संग्रह है। एक पद में राधाकृष्ण उक्ति प्रत्युक्ति के बहाने प्रणययुक्त हास्यालाप देखिए :—

कोऽयं द्वारि हरिः प्रयाह्युपवनं शाखामृगेनात्र किं
कृष्णोऽहं दयिते बिभेमि तरां कृष्णः कथं वानरः।
मुग्धेऽहं मधुसूदनो व्रज लतां तामेव पुष्पासवा—
मित्थं निर्वचनीकृतो दयितया ह्रीतो हरिः पातु वः॥

अर्थात् 'द्वार पर कौन है ?' 'हरि' (कृष्ण, बन्दर), 'उपवन में जाओ, शाखामृग की यहाँ कौन-सी जरूरत है ?' 'हे दयिते, मैं कृष्ण हूँ'; 'तब तो और भी डर लग रहा है; बन्दर कैसे (काला) हो सकता है ?' 'हे मुग्धे, मैं मधुसूदन (मधुकर) हूँ, तो पुष्पित लता के पास जाओ।' 'प्रिया के द्वारा इस प्रकार निर्वचनीकृत लज्जित हरि हमारी रक्षा करें।'

दूसरे पद में मिलता है कि राधा ने एक दूती को कृष्ण की तलाश में भेजा। वह भली भाँति ढूँढ़ने के बाद कृष्ण को न पाकर राधा से लौटकर कहती है :—

मयान्विष्टो धूर्तः स सखि निखिलामेव रजनीम्
इह स्यादत्र स्यादिति निपुणमन्यामभिसृतः।
न दृष्टो भाण्डीरे तटभुवि न गोवर्धनगिरे
र्न कालिन्द्याः (कूले) न च निचुलकुञ्जे मुररिपुः॥

—हरिव्रज्या ३४

---

१. 'प्राचीन ओ मध्य युगे भारतीय साहित्ये श्रीराधार उल्लेख'
—डॉ० नरेन्द्रनाथ लाहा–सुवर्ण वाणिक् समाचार–वर्ष ३४, अङ्क ६

२. वही।

अर्थात् सखी, मैंने सारी रात उस धूर्त्त को ढूँढ़ा—यहाँ हो सकता है, वहाँ हो सकता है, इस तरह (खोजा), अवश्य ही उसने दूसरी गोपी के साथ अभिसार किया है। मुररिपु को मैंने वट वृक्ष के तले नहीं देखा, गोवर्धन गिरि के नीचे भी नहीं देखा, कालिन्दी के कूल पर भी नहीं देखा, वेतसकुंज में भी नहीं देखा।'

एक अन्य श्लोक इस प्रकार है :—

(....) धेनुदुग्धकलशमादाय गाप्यो गृहं
दुग्धे वष्कयिणीकुले पुनरियं राधा शनैर्यास्यति।
इत्यन्यव्यपदेशगुप्तहृदयः कुर्वन् विविक्तं व्रजं
देवः कारणनन्दसूनुरशिवं कृष्णः स मुष्णातु वः॥

अर्थात् गाय के दूध का कलश लेकर गोपियो, घर जाओ, जो गाएँ अभी भी दुही नहीं गई हैं, उनके दुहे जाने पर यह राधा भी तुम लोगों के बाद जायगी। दूसरे अभिप्राय को हृदय में गुप्त रखकर जो इस प्रकार से व्रज को निर्जन कर रहे हैं, वही नन्द पुत्र के रूप में अवतीर्ण देव तुम्हारे सारे अमङ्गल को हरण करें। एक और पद में कृष्ण गोवर्धन गिरि को कराग्र से धारण किये हैं उनको देख राधा की दृष्टि प्रियगुण के कारण प्रीतिपूर्ण हो उठी है।[१] एक और पद में राधा का नाम प्रत्यक्ष रूप से न होते हुए भी ऐसा प्रतीत होता है कि वह राधा के लिए प्रयुक्त हुआ है :—

ध्वस्तं केन विलेपनं कुचयुगे केनाञ्जनं नेत्रयो
रागः केन तवाधरे प्रमथितः केशेषु केन स्रजः।
तेना (शेपज) नीचकल्मषमुषमुषा नीलाब्जभासा सखि
किं कृष्णेन न यामुनेन पयसा कृष्णानुरागस्तव।[२]

भोजराज ने 'सरस्वती कंठाभरण' में 'कवीन्द्र वचन समुच्चय' में आये हुए राधा सम्बन्धी एक श्लोक का उद्धरण दिया है।[३] बारहवीं सदी में लिखे गये जैन ग्रन्थकार हेमचन्द्र के 'काव्यानुशासन' ग्रन्थ में भी यह श्लोक उद्धृत हुआ है। हेमचन्द्र ने राधा कृष्ण प्रेम सम्बन्धी एक और श्लोक 'काव्यानुशासन' में दिया है जो कि

१. वही ४२; सोन्नोक विरचित, सदुक्ति कर्णामृत और पद्यावली में भी उद्धृत
२. वही ५१२
३. कनककनिकषस्वच्छे रा (धा) पयोधर मण्डले इत्यादि। कवीन्द्रवचन-
—समुच्चय ४६

श्रीधरदास के 'सदुक्ति कर्णामृत' में भी दृष्टिगोचर होता है।[1] हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र (११००-११७५) ने गुणचन्द्र के सहयोग से नाट्य-शास्त्र सम्बन्धी नाट्य-दर्पण ग्रन्थ रचा जिसमें भेज्जल द्वारा लिखित 'राधा-विप्रलम्भ' नाटक का उल्लेख है। यदि यह भेज्जल कवि वही है जिनका उल्लेख अभिनव गुप्त द्वारा नाट्य-शास्त्र की टीका में आया है तो 'राधा-विप्रलम्भ' नाटक को दसवीं सदी से पहले की रचना मान सकते हैं।[2] शारदा तनय के 'भाव प्रकाशन' में जो बारहवीं सदी की रचना है राधा सम्बन्धी 'राम राधा' नाटक का उल्लेख है। 'भाव प्रकाशन' में आये श्लोक का उद्धरण इस प्रकार है :—

किमेषा कौमुदी किंवा लावण्यसरसी सखे।
इत्यादि रामाराधायां संशयः कृष्णभाषिते ॥[3]

कवि कर्णपूर के 'अलङ्कार-कौस्तुभ' में राधा सम्बन्धी कन्दर्प-मंजरी नाटक का उल्लेख है। तेरहवीं सदी के अन्तिम भाग की सर्वय-शिलालिपि में कृष्ण का 'राधाधव' के रूप में वर्णन है। सागर नन्दी के 'नाटक लक्षण रत्नकोश' में जो कि तेरहवीं सदी का है राधा नामक 'वीथि' नाटक का उल्लेख है। 'सदुक्ति कर्णामृत' में उद्धृत नाथोक द्वारा रचित एक पद में कृष्ण को 'राधाधव' कहा गया है।[4] प्राकृत छन्द के ग्रंथ 'प्राकृत पिंगल' में कृष्ण द्वारा 'राधामुख-मधुपान' की बात है।[5] एक दूसरे श्लोक में नौका-विलास लीला में यह राधा की ही उक्ति प्रतीत होती है।[6] 'राधा कल्पतरु' के अपभ्रंश स्तवक में रामशर्मा ने अपभ्रंश की राधा-कृष्ण सम्बन्धी दो कविताएँ दी हैं।[7]

---

१. 'प्राचीन ओ मध्ययुगे भारतीय साहित्ये श्री राधार उल्लेख'
—डॉ० नरेन्द्रनाथ लाहा—सुवर्णवणिक समाचार—वर्ष ३४, अङ्क ६

२. 'प्राचीन ओ मध्ययुगे भारतीय साहित्ये श्री राधार उल्लेख'
—डॉ० नरेन्द्रनाथ लाहा—सुवर्णवणिक समाचार वर्ष ३४, अङ्क ६

३. वही

४. वेणुनाद ५

५. चाणूर विहंडिय निअकुल मंडिअ, राहा मुह महु पाण करे जिमि भमरवरे।
—मात्रावृत्त २०७

६. अरेरे वाहहि कान्ह णाव छोड़ि डगमग कुगति ण देहि।
तइ इत्थि णइहि संतार देइ जो चाहहि सो लेहि॥ —मात्रावृत्त ६

७. Indian Antiquary पत्रिका (१९२२) ग्रियर्सन के प्रबन्ध The Apabhramsa stabakas of Rama-Sarman प्रबन्ध द्रष्टव्य

बारहवीं शताब्दी में लिखे जयदेव के गीतगोविन्द में राधा का पूर्ण विकसित रूप पाते हैं। बारहवीं शताब्दी के प्रथम भाग में संकलित श्रीधरदास की 'सदुक्ति-कर्णामृत' में राधा-कृष्ण प्रेम सम्बन्धी अनेक कविताएँ उपलब्ध होती हैं। लगभग बारहवीं शताब्दी में लीला-शुक बिल्वमङ्गल ठाकुर द्वारा रचित 'कृष्णकर्णामृत' ग्रन्थ में अनेक स्थानों पर राधा का वर्णन है। इस ग्रन्थ का परवर्ती वैष्णव धर्म के ऊपर विशेष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इसका बङ्गाल में जो पाठ प्रचलित है उसमें दो श्लोकों मे राधा का वर्णन है प्रथम श्लोक इस प्रकार है :—

तेजसेऽस्तु नमो धेनुपालिने लोकपालिने।
राधापयोधरोत्सङ्गशायिने शेषशायिने ।।७६।।

अर्थात् उस तेजोरूप को नमस्कार जो धेनुपालक और लोक पालक है; जो राधा के पयोधरोत्सङ्ग पर शयित है—जो शेषनाग पर शायित है द्वितीय श्लोक निम्नलिखित हैं :—

यानि त्वच्चरितामृतानि रसनालेह्यानि धन्यात्मनां
ये वा शैशवचापलव्यतिकरा राधावरोधोन्मुखाः।
ये वा भावित वेणुगीतगतयो लीला मुखाम्भोरुहे
धारावाहिकया वहन्तु हृदये तान्येव–तान्येव मे ।।४०६।।

अर्थात तुम्हारा जो चरितामृत धन्यात्माओं की रसना द्वारा लेहन योग्य है, राधा के अवरोध के लिये उन्मुख तुम्हारी जो शैशव-चापल-प्रसूत चेष्टाएँ हैं, या तुम्हारे मुख-कमल पर भावशबल वेणु-गीत गति-समूह की लीलाएँ हैं—वे धारा-वाहिक रूप से मेरे हृदय में बहती रहें।

इन दो पदों में ही राधा का उल्लेख मिलने पर प्रतीत होता है कि समस्त व्रजलीला सम्बन्धी पदों का लक्ष्य राधा की ओर है। कृष्णदास कविराज ने भी इनकी व्याख्या में राधा का उल्लेख किया है। यद्यपि कृष्णकर्णामृत के रचना काल के सम्बन्ध मे मतभेद है और लोग इसे १० वीं सदी से १५ वीं सदी के प्रथम भाग तक की रचना मानते हैं परन्तु श्रीधरदास के 'सदुक्तिकर्णामृत' में 'कृष्ण-कर्णामृत' का १०६ संख्या वाला पद उद्धृत है (१-५८।५) इसलिए इसे गीतगोविन्द के रचना काल बारहवीं शताब्दी के समय की रचना मान सकते हैं। 'कृष्ण कर्णामृत' का रचना स्थान दक्षिण भारत है इससे सिद्ध होता है कि बारहवीं सदी के लगभग दक्षिण मे वैष्णव धर्म के अन्तर्गत राधावाद की पूर्ण प्रतिष्ठा हो चुकी थी। कृष्णदास कविराज कृत चैतन्य चरितामृत से प्रतीत होता है कि महाप्रभु ने रामानन्द से राधा प्रेम सम्बन्धी गूढ़ तत्त्वों को सुना था इससे भी इस बात की पुष्टि होती है कि

बारहवीं सदी में रामानन्द कि राधा प्रेम सम्बन्धी सारे तत्त्व अवगत थे। कृष्ण-कर्णामृत के द्वितीय उल्लिखित श्लोक में 'राधावरोद्योन्मुख' शैशव-चापल्य जनित चेष्टाओं के अंतर्गत परवर्ती काल की दानलीला, नावलीला आदि के अंकुर मिलते हैं। प्रथम श्लोक में राधा लक्ष्मी से एकाकार हो गई है और द्वितीय श्लोक में भी जहाँ वर्णन है कि शेषशयन में शयित कृष्ण जिस राधा के पयोधरोत्सङ्ग पर शयित हैं, राधा लक्ष्मी का रूपांतर है। इससे प्रतीत होता है कि परवर्ती काल का लक्ष्मी तत्त्व और राधा तत्त्व का विभेद अभी स्थापित नहीं हुआ था। पहले वैष्णव ग्रंथों में राधावाद लक्ष्मीवाद से संयुक्त था। कृष्ण कर्णामृत और गीतगोविंद दोनों में लक्ष्मी और राधा दोनों कृष्णप्रिया हैं। ऐसे भी प्रमाण मिलते हैं कि इस समय की कविताओं में राधा-कृष्ण सीताराम के परवर्ती अवतार हैं।[1] परन्तु फिर भी राधिका का सौन्दर्य-माधुर्य लक्ष्मी के सौन्दर्य माधुर्य से बढ़कर है। ग्यारहवीं सदी के प्रथम भाग की वाक्पति-लिपि से स्पष्ट है कि लक्ष्मी से राधा श्रेष्ठ है। श्रीधरदास की 'सदुक्तिकर्णामृत' में भी अनेक कविताओं में लक्ष्मी प्रेम से राधा-प्रेम की श्रेष्ठता दृष्टिगोचर होती है। एक पद में श्री के साथ रमण करते समय भी हरि राधा का स्मरण कर रहे हैं परंतु इच्छा होते हुए भी राधा से मिल नहीं पा रहे इसका उन्हें खेद है।[2] जयदेव के समसामयिक उमापति धर के एक पद में मिलता है कि लक्ष्मी की अवतार रुक्मिणी को लेकर कृष्ण द्वारिका में हैं; जिस मन्दिर की रत्न छाया समुद्र के जल में विकीर्ण हो रही हैं, ऐसे मन्दिर में रुक्मिणी के गाढ़ आलिंगन से पुलकित मुरारि यमुनातीर के कुंजों में आभीर बालाओं के जो निभृत चरित हैं, उन्हीं के ध्यान में मूर्छित हो गए।[3] जयदेव के समसामयिक शरण कवि के एक पद में आया है कि द्वारावतीपति दामोदर कालिन्दी के तट वाल शैलोपांत भूमि के कदम्ब-कुसुम से आमोदित कंदरा में प्रथम-अभिसारमधुरा राधा की बातें स्मरण करके तप्त हो रहे हैं।[4] इससे प्रतीत होता है कि लक्ष्मी आदि के प्रेम से भी राधा का प्रेम श्रेष्ठ है। धीरे-धीरे लक्ष्मी दार्शनिक शक्ति रूप छोड़कर मधुर-रसाश्रिता होती जा रही थी और पूर्ववर्ती लक्ष्मी के अनेक गुण परवर्ती राधा में समाविष्ट हो जये। चण्डीदास के 'श्रीकृष्ण कीर्तन' में राधा का परिचय इस प्रकार प्राप्त है :—

---

१. विरंचि-कविकृत पद ३ व ४

२. राधा संस्मरतः श्रियं रमयतः खेदो हरिः पातु वः। वही उत्कण्ठा ४

३. विश्वं पायात् मसृणयमुनातीरवानीरकुञ्जे—
   ष्वाभीरस्त्रीनिभृतचरितध्यानमूर्च्छा मुरारेः ॥ वही १ पद्यावली में उद्धृत

४. वही २

ते कारणे पदुमा उदरे ।
उपजिला सागरेर घरे ।।

इसमें 'पदुमा' (पद्मा) राधा की माता है और सागर उनके पिता हैं। लक्ष्मी सागर से उत्पन्न हुई हैं इसलिए सागर राधा के पिता हैं। लक्ष्मी का जन्म पद्म से हुआ है इसलिए 'पदुमा' राधा की माता हैं। परवर्ती काल में राधा 'कमला' न होकर भी 'कमलिनी' हैं। पुराणों के अनुसार राधा के पिता वृषभानु गोप और राधा की माता कीर्तिदा हैं। जयदेव के गीत गोविन्द में ही नहीं अपितु जयदेव के समकालीन साहित्य में राधा की पूर्ण प्रतिष्ठा हो गई थी। उमापतिधर, शरण, गोवर्धनाचार्य और धोयी कवि का उल्लेख आया है। गीत गोविन्द में तो कृष्ण नायक और राधा नायिका के रूप में आई हैं। सखियाँ लीला-सहचरी हैं। 'सदुक्ति-कर्णामृत' में जयदेव के गीति गोविन्द से पृथक राधा कृष्ण लीला सम्बन्धी पद हैं। जयदेव के पूर्ववर्ती और समकालीन जैसे राजा लक्ष्मणसेन और उनके पुत्र केशवसेन की भी राधा कृष्ण लीला सम्बन्धी कविताएँ मिलती हैं। जयदेव के समसामयिक कवि उमापतिधर का कौमार-लीला सम्बन्धी पद है कि कृष्ण कुमार की अवस्था में कालिन्दी के जल में अथवा शैल में या उपशल्य में (गाँव के द्वारे पर) अथवा बरगद के पेड़ के नीचे घूमते फिर रहे हैं। उसी प्रकार राधा के घर के आँगन में भी आ जा रहे हैं।[1] उमापति धर के हरिक्रीड़ा सम्बन्धी एक पद में आया है कि कृष्ण जब रास्ते में जा रहे थे तब कोई गोपरमणी भौंहों से, कोई गोपी नेत्रों से, कोई मुस्कराकर चाँदनी छिटकाकर गुप्त रूप से कृष्ण का स्वागत करती है। इसलिए राधा के मुख-मण्डल पर गर्वजनित अवहेलन से विजय श्री छा गई। कंसारि कृष्ण का जो विनय शोभाधारी राधा के चेहरे पर दृष्टिगत हुआ उसमें आंतक और अनुनय समाविष्ट था :—

भ्रूवल्लीचलनैः कयापि नयनोन्मेषैः कयापि स्मित—
ज्योत्स्नाविच्छुरितैः कयापि निभृतं सम्भावितस्याध्वनि।
गर्वोद्भेदकृतावहेलविनय श्रीभाजि राधानने
सातंकानुनयं जयन्ति पतितः कंसद्विषो, दृष्टयः ।।[2]

---

१. कालिन्दीपुलिने मया न न मया शैलोपशल्येन न
न्यग्रोधस्य तले मया न न मयाराधापितुः प्राङ्गणे। दृष्टः कृष्ण इति। इत्यादि—

२. यह पद पद्यावली में भी उपलब्ध है।

अभिनन्द के एक पद में आया है कि कृष्ण का चित्त राधा के साथ नई क्रीड़ा करने को लुभा रहा है परन्तु यशोदा के डर के कारण बिलकुल निर्जन लतागृह में यमुना के किनारे प्रवेश करने का संकेत करते हैं।[1] लक्ष्मणसेन का हरि लीला-क्रीड़ा सम्बन्धी एक पद मिलता है :—

कृष्ण त्वद्वनमालया सह कृतं केनापि कुंजान्तरे
गोपी कुन्तलबर्हदाम तदिदं प्राप्तं मया गृह्यताम्।
इत्थं दुग्धमुखेन गोपशिशुनाख्याते त्रपानम्रयोः
राधामाधवयोर्जयन्ति वलितस्मेरालसा दृष्टयः॥

अर्थात् कृष्ण! एक दूसरे कुंज में कोई आकर तुम्हारी वनमाला के साथ गोपी कुन्तल के साथ मयूर पुच्छ एक साथ करके रख गया है। मुझे यह मिला है, यह लो। एक दुधमुंहा गोपशिशु के ऐसा कहने से राधामाधव की जो वलितस्मरालस और लज्जानम्र जो दृष्टि समूह है, उनकी जय हो। लक्ष्मणसेन के एक अन्य पद में निर्यक-स्कंध कृष्ण गहरी व्याकुलता में अपनी एकटक दृष्टि राधा पर डाल वेणु बजा रहे हैं।[2] लक्ष्मणसेन के पुत्र केशवसेन का एक पद इस प्रकार है :—

आहूताद्य मयोत्सवे निशि गृहं शून्यं विमुच्यागता
क्षीवः प्रेष्यजनः कथं कुलवधूरेकाकिनी यास्यति।
वत्स त्वं तदिमां नयालयमिति श्रुत्वा यशोदागिरो
राधामाधवयोर्जयन्ति मधुरस्मेरालसा दृष्टयः॥[3]

रूपदेव के एक पद मिलता है कि वृंदासखी दूसरी गोपरमणियों से कह रही है—यहाँ इस निचुल-निकुंज के बिलकुल अंदर मुलायम घास की यह विजन शैया किस रमणी की है? इस बात को सुनकर राधा-माधव की जो विचित्र मृदुहास्ययुक्त चितवन हैं वे तुम लोगों की रक्षा करें।[4] आचार्य गोपक के एक पद में कृष्ण के अभिसार का सुंदर वर्णन है। कृष्ण रात में आकर कोयल आदि की बोली बोलकर राधा को संकेत करते हैं। संकेत पाकर राधा द्वार खोलकर बाहर आ रही है। राधा के शंख, वलय और मेखला की ध्वनि सुनकर कृष्ण राधा के

---

१. राधायामनुबद्धनर्मनिभृताकारं यशोदा भया—
दम्यर्णोव्वतिनिर्जनेषु यमुनारोधोलतावेश्मसु। इत्यादि। कृष्णयौवनम् २
२. वेणुनाद २
३. यह पद पद्यावली में भी मिलता है।
४. यह पद 'सदुक्तिकर्णामृत' में भी उद्धृत है।

बाहर आने की बात समझ गये। इधर आहट के कारण वृद्धा के कौन है ? कौन है ? कहने के कारण कृष्ण व्यथित हो रहे हैं। ऐसी दशा में कृष्ण की रात राधा के घर के प्रागण के कोने में केलिविटप की गोद में बीती।

संकेतीकृतकोकिलादिनिनदं कंसद्विषः कुर्वतो
द्वारोन्मोचनलोलशंखवलयश्रेणिस्वनं शृण्वतः।
केयं केयमिति प्रगल्भजरतीनादेन दूनात्मनो
राधाप्रांगणकोणकेलिविटपि क्रोड़े गता शर्वरी ॥[1]

घनानन्द कवि के एक पद में मिलता है कि यह देखकर कि गोवर्धन को धारण करने में कृष्ण को कष्ट हो रहा है राधा व्यथित होती है और उनकी सहायता का आग्रह करती हुई शून्य गगन में गोवर्धन धारण करने की नकल करते हुए वृथा हाथ हिला रही है।

अज्ञात नामा एक और कवि के पद में गोवर्धन धारण किए हुए कृष्ण को राधा भी सभी गोपियों के साथ ताक रही है। दूसरी गोपियों के राधा से कहने पर कि तुम कृष्ण के दृष्टिपथ से बहुत दूर हट जाओ, तुम्हारे प्रति आसक्त दृष्टि हो कृष्ण के हाथ कहीं शिथिल न हो जायँ। राधा के दृष्टि से दूर हटने की बात सोचकर कृष्ण गिरिधारण के श्रम से जोरों से साँस लेने लगे।

दूरं दृष्टिपथात्तिरोभव हरेर्गोवर्धनं बिभ्रत–
स्त्वय्यासक्तदृशः कृशोदरि करः स्रस्तोऽस्य मा भूदिति।
गोपीनामितिजल्पिते कलयतो राधा—निरोधाश्रये
श्वासाः शैलभरश्रमभ्रमकराः कृष्णस्य पुष्णन्तु वः ॥[2]

आचार्य गोपीक का एक दिवसाभिसार सम्बन्धी पद इस प्रकार है :—

मध्याह्नद्विगुणार्कदीधितिदलत्सभोगवीथीपथ—
प्रस्थानव्यथितारुणाङ्गुलिदलं राधा पद माधवः।
मौलौ न्यक्षपले मुहुः समुदितस्वेदे मुहुर्वक्षसि
न्यस्य प्राणयति प्रकम्पविधुरैः श्वासोर्भिवातैर्मुहुः ॥[3]

पुष्पदलों की भाँति अरुणाङ्गुलि दलों से शोभित जो राधा के कमनीय चरण हैं वे आज संयोग-वीथी-पथ पर प्रस्थान से व्यथित है, क्योंकि वह पथ मध्याह्न के

---

१. हरिक्रीड़ा १, यह पद पदावली में उद्धृत् है।
२. पदावली में यह पद शुभाङ्ग के नाम से उद्धृत है।
३. सदुक्ति कर्णामृत, ३-६३-४

दूने सूर्य-ताप से तप्त है, इसलिए कृष्ण राधा के पगों के ताप को दूर करने के निमित्त बार-बार उसे माल्ययुक्त मस्तक पर रख रहे हैं, पसीने से शीतल वक्ष पर रख रहे हैं, प्रकम्पविधुर श्वासोर्मिवात से बार-बार उपशमित कर रहे हैं।

'कवीन्द्र वचनसमुच्चय' और 'सदुक्तिकर्णामृत' से उद्धृत उपरोक्त कविताओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि जयदेव के युग में तथा उनसे दो-तीन शताब्दियों से पूर्व के युग में राधा-कृष्ण-लीला सम्बन्धी साहित्य की धारा प्रवाहित थी। बारहवीं सदी के जयदेव के गीत गोविन्द एवं रूप गोस्वामी द्वारा संगृहीत 'पद्यावली' नामक संकलन ग्रन्थ इस बात की पुष्टि करते हैं कि जयदेव के युग और उसके दो एक शताब्दियों पूर्व राधाकृष्ण प्रेम-युक्त वैष्णव-काव्य का व्यापक प्रसार था। पद्यावली में रूप गोस्वामी के समसामयिक कवियों, उनके पूर्व के कवियों, जयदेव के समसामयिक कवियों की कविताएँ संगृहीत हैं। रूप गोस्वामी ने बंगाल में लिखी कविताओं का ही नहीं अपितु दक्षिणात्य, उत्कल, तिरभुक्ति (तिरहुत) आदि दूसरे स्थानों की कविताओं का भी संग्रह किया है इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि तेरहवीं, चौदहवीं, पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में बङ्गाल, बिहार, उड़ीसा के एक व्यापक भू-भाग में राधाकृष्ण-प्रेम सम्बन्धी कविताएँ रची गईं। आठवीं से बारहवीं शताब्दी के मध्य विभिन्न देवताओं से सम्बंध रखने वाली शृङ्गार रसात्मक कविताएँ रची गईं, जयदेव के युग में भी हर-गौरी सम्बंधी शृङ्गार रसात्मक कविताएँ रची गईं। परन्तु धीरे-धीरे शृङ्गार रसात्मक काव्य में राधा कृष्ण के प्रेमलीला सम्बंधी उपाख्यान की प्रधानता होती गई और बारहवीं शताब्दी में मधुर-रसात्मक कविता में राधाकृष्ण की पूर्ण प्रतिष्ठा हो गई। डॉ० शशिभूषणदास गुप्त लिखते हैं, 'बारहवीं शताब्दी से प्रेम की कविता के क्षेत्र में राधाकृष्ण की प्रतिष्ठा भी शायद दो कारणों से हुई थी। पहली बात तो यह है कि सेन राजाओं का पारिवारिक धर्म, वैष्णव धर्म था; और बारहवीं तथा तेरहवीं शताब्दी के बङ्गाल तथा वृहत्तर बङ्गाल की कवि-गोष्ठी में सेन राजाओं का प्रभाव अस्वीकार नहीं किया जा सकता। दूसरी बात है राधाकृष्ण का चरवाही का जीवन प्रेम की कविता के लिए अधिकतर उपयोगी था, साथ ही लीला की विचित्रता में भी सबसे अधिक समृद्ध था। इस लीला का अवलम्बन करके रची गई कविताओं के माध्यम से कविगण एक ओर देव-लीला के वर्णन की शांति पाते थे और साथ ही उसके माध्यम से मानवीय प्रेम की सूक्ष्मातिसूक्ष्म रस विचित्र लीला को रूपायित करने का उन्हें पूरा मौका भी मिलता है। इसी प्रकार राधाकृष्ण सम्बंधी प्रेम कविताओं का क्रम-प्राधान्य प्रतिष्ठित होने लगा।'[1]

१. श्री राधा का क्रम विकास—डॉ० शशिभूषणदास गुप्त, पृ० १३८-१३९

राधाकृष्ण सम्बंधी कविताओं के रचयिता प्राचीन कवियों को चाहे वैष्णव मानें अथवा यह कहें कि कवि थे और उन्होंने नर-नारी प्रेम सम्बन्धी अनेक कविताएँ रचीं, परंतु यह स्वीकार करना होगा कि एक ही दृष्टि और एक ही प्रेरणा से उन्होंने राधा कृष्ण को लेकर कविताएँ लिखीं। उनके लिए राधाकृष्ण प्रेम-कविता के आलम्बन-विभाव मात्र थे। हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि छठी शताब्दी के अन्दर ही आभीर जाति की परिधि को छोड़कर राधाकृष्ण का उपाख्यान प्रेम गीत और तुक बन्दियों के रूप में भारतवर्ष के अनेक क्षेत्रों में फैल गया था। परवर्ती काल में जब यह विश्वास दृढ़ हो गया कि राधाकृष्ण के अवलम्बन के बिना प्रेम-कविता हो ही नहीं सकती तो पूर्ववर्ती काल की रचित मानवीय प्रेम की कविताओं का भी राधा-कृष्ण के नाम पर प्रचार हो गया। 'पद्यावली' में एक श्लोक में निर्जन में सखी के प्रति राधा की उक्ति मिलती है।[1] इस श्लोक के बाद ही रूप गोस्वामी ने अपना एक श्लोक उद्धृत किया है :—

प्रियः सोऽयं कृष्णः सहचरि कुरुक्षेत्रमिलित—
स्तथाऽहं सा राधा तदिदमुभयोः सङ्गमसुखम्।
तथाप्यन्तः खेलन्मधुरमुरलीपञ्चमजुषे
मनो मे कालिन्दीपुलिनविपिनाय स्पृहयति ॥३८७॥

अर्थात् 'हे सखी, वही प्रिय कृष्ण कुरुक्षेत्र में मिले थे; मैं भी वही राधा हूँ, हम दोनों का सङ्गम-सुख भी वही रहा, किन्तु तो भी जिस वन में मधुर मुरली के पञ्चम स्वर का मेल हुआ करता था, उसी कालिंदी तटवर्ती वन के लिए मन ललच रहा है।'

निश्वासा वदनं दहन्ति हृदयं निर्मूलमुन्मथ्यते
निद्रा नैति न दृश्यते प्रियमुखं रात्रिदिवं रुद्यते ।
अंगं शोषमुपैति पादपतितः प्रेयांस्तथोपेक्षितः
सख्यः कं गुणमाकलय्य दयिते मानं वयं कारिता ॥२३८॥

अर्थात् 'निश्वास मेरे वदन का दहन कर रहे हैं; हृदय आमूल उन्मथित हो रहा है; नींद नहीं आ रही हैं, प्रियमुख नहीं दिखाई पड़ रहा है, रात-दिन केवल रो रही हूं। मेरी देह सूख रही है, पादपतित प्रिय की भी उपेक्षा कर दी है। सखियों ने न जाने मुझ में कौन-सा गुण देखकर दयित के प्रति ऐसा मान कराया था।'

एक अन्य कविता को राधा सम्बन्धी कहा जाता है :—

प्रस्थानं वलयैः कृतं प्रियसखैरस्रैरजस्रं गतं
धृत्या न क्षणमासितं व्यवसितं चित्तेन गन्तुं पुरः ।
गन्तुं निश्चितचेतसि प्रियतमे सर्वे समं प्रस्थिता ।
गन्तव्ये सति जीवित–प्रियसुहृत्सार्थः कथं त्यज्यते ॥३१८॥

अर्थात् 'वलय प्रस्थान कर गये हैं, प्रिय मित्र आँसू भी धीरे-धीरे चले गए हैं, क्षण भर के लिए भी धीरज नहीं है, चित्त भी पहले ही से जाने को उद्यत हैं। प्रियतम के जाने को कृत-संकलन होते ही सभी साथ-साथ चले। उनका जाना अगर ठीक ही है तो प्राणप्रिय सृहृत् का सङ्ग क्यों छोड़ा जाय ?'

रूप गोस्वामी ने पद्यावली में अमरू कवि की निम्नलिखित कविता को कलहान्तरिता राधा के प्रति दक्षिण सखी वाक्य बताया है :—

अनालोच्य प्रेम्णः परिणतिमनादृत्य सुहृद—
स्त्वया कान्ते मानः किमिति सरले प्रेयसि कृतः ।
समाश्लिष्टा ह्येते विरहदहनोद्भासुरशिखाः
स्वहस्तेनांगारास्तदलमधुनारण्यरुदितैः ॥२३०॥

अर्थात् हे सरले, प्रेम की परिणति पर विचार न करके, सुहृदों का अनादर करके प्रिय कान्त के प्रति मन क्यों किया था ? तुमने इस विरहाग्नि में उठने वाले अङ्गारों का आलिंगन किया है, अब अरण्यरोदन करने से क्या लाभ होगा ?

पद्यावली में क्षेमेन्द्र, नलचम्पू के त्रिविक्रम, दीपक आदि प्राचीन कवियों की पार्थिव प्रेम की कविता 'राधा-कृष्ण-प्रेम' के रूप में ग्रहण की गई। पूर्ववर्ती कवियों का स्थूल और सूक्ष्म सब प्रकार का प्रेम-वर्णन परवर्ती काल में गोपी प्रेम या

राधा-प्रेम के रूप में ग्रहण किया जा सकता था। राधा-प्रेम सम्बन्धी जितने विशद वर्णन हैं वास्तव में भारतीय प्रेम काव्य की धारा से ग्रहण किये गये हैं। पूर्ववर्ती काल की संस्कृत और प्राकृत की भारतीय प्रेम-कविताओं की तुलना आदि परवर्ती काल की राधा-प्रेम सम्बन्धी कविताओं से करें तो प्रतीत होगा कि वैष्णव कवियों ने कविरीतियों और कविप्रसिद्धियों को ही अपनाया था। पूर्ववर्ती प्रेम-कविता से ही राधा का स्वरूप निर्मित हुआ है। वैष्णव कविता में राधिका की वयः सन्धि, तरुणी का प्रेम-चापल्य, प्रेम की निविड़ता, गहराई, मिलन-विरह, मान-अभिमान आदि किसी दशा का वर्णन लें, पूर्ववर्ती काव्य में उसी प्रकार का वर्णन पार्थिव नयिका की दशा के रूप में मिलता है। विभिन्न दृष्टिकोणों से देखने से विदित होगा कि पूर्ववर्ती कवियों की प्राकृत नायिका और परवर्ती कवियों की राधिका में कितनी समता है। डॉ० शशिभूषणदास गुप्त का मत है कि, 'साहित्यिक पक्ष से विचार करने पर हम राधा के परिचय में कह सकते हैं कि राधा भारतीय कविमानसभूत नारी का ही एक विशेष रसमय विग्रह है। वैष्णव-साहित्य में जितने शृङ्गारों का वर्णन है, रसोद्गार, खण्डिता, कलहान्तरिता आदि का जो वर्णन है, वह सारा का सारा भारतीय काव्य-साहित्य और रतिशास्त्र का अनुसरण करते हुये चलता है। प्राकृत रति का स्थूल सूक्ष्म नाना वैचित्र्यमय सु-निपुण वर्णन सर्वदा प्राकृत प्रेम के स्थान पर अप्राकृत प्रेम का एक आभास देने के लिए ही लिखा गया था, इस बात को स्वीकार नहीं किया जा सकता। ऐसा प्रतीत होता है कि आरम्भ में यह भारतीय प्रेम-कविता की धारा के साथ अविच्छिन्न रूपमें ही निःसृत हुआ था। पार्थक्य की रेखा तो खींची गई बहुत बाद में। परवर्ती काल में गौड़ीय गोस्वामियों द्वारा जब राधातत्त्व मजबूती से प्रतिष्ठित हो गया, तब भी साहित्य के अन्दर राधा अपनी छाया सहचरी मानवती नारी को सोलहों आने नहीं छोड़ सकी। काया और छाया ने अविनाबद्धभाव से एक मिश्र रूप की सृष्टि की है।'[१]

द्वितीय-अध्याय

राधा की व्युत्पत्ति और उसके विभिन्न स्वरूप

* राधा शब्द की व्युत्पत्ति
* राधा का आध्यात्मिक स्वरूप
* राधा का दार्शनिक स्वरूप
* राधा का वैज्ञानिक स्वरूप
* राधा का ज्योतिष स्वरूप
* राधा का धार्मिक स्वरूप
* राधा का पौराणिक स्वरूप

द्वितीय–अध्याय

राधा की व्युत्पत्ति और उसके विभिन्न स्वरूप

राधा शब्द की व्युत्पत्ति—

'राध्' संसिद्धौ धातु से राधा शब्द बनता है। इसी प्रकार सान्त 'राधस्' शब्द भी 'राध्' धातु से ही बनता है। राध् धातु से 'सर्वधातुभ्योऽसुन्' उणादि सूत्र में अस् हो जाने से राधस् ऐसा रूप बन जाता है, उसके तृतीया के एकवचन में राधसा ऐसा बन जाता है अर्थात् राधा शब्द के तृतीया के एक वचन का राधया और राधस् शब्द के तृतीया के एक वचन का रूप राधसा, परन्तु दोनों का एक ही अर्थ है।

श्रीमद्भागवत पुराण में आया है :—

अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्नो विहाय गोविंदः प्रीतो यामनयद् रहः॥[1]

जीव गोस्वामी ने अपनी वैष्णवतोषिणी टीका में इसकी टीका करते हुए लिखा है कि, 'राधयति आराधयतीति राधा राधेति नामकरणञ्चदर्शितं' अर्थात् जो आराधन करे उसे राधा कहते हैं भगवान् श्रीकृष्ण इन्होंने ही प्रसन्न किए हैं और आराधना करके अपने वश में कर लिए हैं। कृष्ण इनकी आराधना किया करते हैं अथवा ये सर्वदा कृष्ण की आराधना करती हैं इसलिए ये राधा कहलाती हैं। प्रेमाधिक्य के कारण उपासक और उपास्य में एक रूपता हो जाती है।[2] 'जहाँ पुरुषत्व विवक्षा गौण हो जाती है वहाँ इस प्रकार कहते हैं कि श्रीकृष्ण की आत्मा श्री राधाजी हैं और जहाँ स्त्रीत्व विवक्षा गौण हो जाती है वहाँ कहते हैं कि श्री राधा की आत्मा श्रीकृष्ण हैं वस्तुतः आत्मा एक ही है दृष्टि भेद से उस तत्व का बोध

---

१. श्रीमद्भागवत १०-३०-२८

२. श्रीकृष्णेति कृष्णेति गिरा वदन्त्यः, श्रीकृष्णपादाम्बुजलग्नमानसाः,
श्रीकृष्णरूपास्तु बभूवुरंगना, श्चित्रं न पेशस्कृतकीटवत्॥ —गर्गसंहिता

(श्रीकृष्ण के नाम का स्मरण करती-करती और उनके चरण कमलों में चित्त लगाये हुए गोपियां श्रीकृष्णरूप हो गई। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि छोटा कीट भय से बड़े का चिंतन करते-करते उसी के समान हो जाता है।)

कराने के लिए नामों का अन्तर कर लिया है। स्वयं श्रीभगवान् श्यामसुन्दर ने ही श्री राधाजी से इस बात का स्पष्टीकरण किया है।'[1]

देवर्षि श्री रमानाथजी भट्ट का कथन है कि, 'अनुभव का विषय रस्य पदार्थ भी जब आप ही हो जाता है तब उस रूपान्तरापन्न रसनीय विषय रूप रस को ही राधस् या सिद्धि कहते हैं। व्याकरण वेत्ताओं को मालूम है कि राध् धातु का भाव प्रत्यय सहित 'राधा' शब्द है और उसका अर्थ है तद्रूप हो जाना।'[2]

भट्टजी सिद्धि शब्द में और राधस् किंवा राधा शब्द में भेद नहीं मानते। वे लिखते हैं, 'राध् धातु का भाव प्रत्यय सहित 'राधा' शब्द है और उसका अर्थ है तद्रूप हो जाना। सिद्धि शब्द की भी व्युत्पत्ति वैसी ही है और अर्थ भी तद्रूपापत्ति है राधस् कहो, राधा कहो, राधिका कहो और चाहे सिद्धि कहो, सबका एक ही अर्थ और तात्पर्य है। 'भगवतः सिद्धिः'—भगवान् की सिद्धि का अर्थ राधस् या राधा भी होता है। षिध् धातु से भाव में 'क्ति' कर देने से सिद्धि शब्द तैयार होता है, और उसका अर्थ भी रूपान्तरापत्तिः किंवा तद्रूपापत्तिः होता है, अब 'भगवतः सिद्ध का' स्फुट अर्थ यह होता है कि भगवान् का रूपान्तर ग्रहण करना और यही श्रीराधा हैं।'[3]

देवी भागवत के अनुसार सर्वेश्वर प्रभु की सम्पूर्ण कामनाओं को सिद्ध करने के कारण श्री स्वामिनीजी का नाम श्री राधा है।[4] श्री नारद पाञ्चरात्र में आया है कि, 'दुःखहर्ता समर्थ कृष्ण भगवान् को प्रेमपूर्वक आराधन करने से और लीलारस में परिपूर्ण मग्न होने से उनको राधा कहा है।[5] श्री कृष्णयामल में कहा है कि,

१. ये राधिकायां त्वयि केशवे मयि,
भेदं न कुर्वन्ति हि दुग्धशौक्ल्यवत्।
त एव मे ब्रह्मपदं प्रयान्ति
तद्दैतुकस्फूर्जितभक्तिलक्षणाः ॥ —गर्गसंहिता
देखिये—श्रीराधा तत्व रहस्य-राधा अङ्क—श्री शान्तनुविहारीजी द्विवेदी, पृ० ४५

२. आदि शक्ति श्री राधिका–देवर्षि पं० रमानाथजी भट्ट, राधा अङ्क, पृ० १११

३. " " " "

४. राध्नोति सकलान्कामान् तस्माद्राधेतिकीर्तिता–'देवी भागवत'

५. अनयाऽराधितः कृष्णो भगवान्हरिरीश्वरः।
लीलया रसवाहिन्या तेनराधा प्रकीर्तिता ॥ —श्री नारद पाञ्चरात्र

१११ में माता यशोदा के प्रश्न करने पर श्री राधिका स्वयं अपने नाम की व्युत्पत्ति इस प्रकार बतलाती हैं, 'जिनके रोमकूपों में अनेकों विश्व वर्तमान हैं, वे महाविष्णु ही 'रा' शब्द हैं और 'धा' विश्व के प्राणियों तथा लोकों में मातृवाचक धाय है, अत: मैं इनकी दूध पिलाने वाली माता, मूल प्रकृति और ईश्वरी हूं। इसी कारण पूर्वकाल में श्रीहरि तथा विद्वानों ने मेरा नाम 'राधा' रक्खा है।[1]

ब्रह्मवैवर्त पुराण के श्रीकृष्ण जन्म खंड के अध्याय ५२ में आया है कि श्रीकृष्ण की प्राणाधिक प्रिया होने के कारण ही योग माया परा प्रकृतिरूपा श्रीराधा का नाम पुरुष रूप परमात्मा श्रीकृष्ण के साथ संयुक्त है। परा प्रकृति का नाम पुरुष के नाम के पूर्व लगाने की प्रणाली शास्त्रीय मर्यादा के अनुकूल है।[2]

शान्तनु विहारीजी द्विवेदी ने अपनी साधना को राधा कहने की बात की ओर इस प्रकार संकेत किया है, 'न केवल साकार प्रभु की प्राप्ति के लिए की गई आराधना मात्र को ही श्री राधाजी कहा गया है, अपितु निराकार और निर्गुण आराधना करने वालों ने भी श्री राधाजी को अपनी मूर्तिमती साधना स्वीकार किया है। निर्गुण धारा के रहस्यवादी सन्त श्री कबीरजी महाराज ने एक दोहे में बतलाया है कि अगम पुरुष से जो वृत्तियों का बहिर्मुखीन प्रवाह चलता है उसे 'धारा' कहते हैं और जब वही वृत्तियों की धारा उलट जाती है अन्तर्मुखीन हो जाती है तब उसे राधा कहते हैं और इस राधा को उसके एकमात्र स्वामी में जहाँ उस धारा का मूल उत्तम स्थान है वहाँ मिलाकर स्मरण करो, कहने का अभिप्राय यह है कि अपनी साधना को राधा कहने की बात नवीन नहीं है। व्याकरण की दृष्टि से भी 'राध् साध संसिद्धौ' ये दोनों धातु एकार्थक हैं तथा राधा और साधना शब्द के प्रत्यय भी एकार्थक ही हैं।'[3]

राधा का आध्यात्मिक स्वरूप—

स्कंध पुराण में श्रीमद्भागवत के माहात्म्य का वर्णन करते हुए शाण्डिल्यजी कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण की आत्मा हैं—राधिका उनसे रमण करने के कारण ही रहस्य-रस के मर्मज्ञ ज्ञानी पुरुष उन्हें आत्माराम कहते हैं :—

---

१. ब्रह्मवैवर्त पुराण, श्रीकृष्ण जन्म खण्ड, अध्याय १११, श्लोक ५७, ५८
२. ,, ,, ५२, श्लोक ३४ से ४०
३. श्री राधा तत्वरहस्य—श्री शांतनुविहारीजी द्विवेदी, राधा अङ्क, पृ० ४७ भाग १०, जनवरी १९३८

आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ।
आत्मारामतया प्राज्ञैः प्रोच्यते गूढवेदिभिः ।।[1]

एक बार द्वारिका में श्रीकृष्ण की रानियों ने कालिंदीजी से यह प्रश्न किया जैसे हम सब श्रीकृष्ण की धर्मपत्नी हैं, वैसे ही तुम भी तो हो। हम तो उनकी विरहाग्नि में जली जा रही हैं, उनके वियोग-दुःख से हमारा हृदय व्यथित हो रहा है, किन्तु तुम्हारी यह स्थिति नहीं है, तुम प्रसन्न हो इसका क्या कारण है ? इस पर कालिन्दीजी ने उत्तर दिया कि, 'अपनी आत्मा में ही रमण करने के कारण भगवान् श्रीकृष्ण आत्माराम हैं और उनकी आत्मा हैं—श्री राधाजी ! मैं दासी की भाँति राधाजी की सेवा करती रहती हूँ, उनकी सेवा का ही यह प्रभाव है कि विरह हमारा स्पर्श नहीं करता।'[2] इससे प्रकट होता है कि श्री राधिकाजी श्रीकृष्ण भगवान् का साक्षात् स्वरूप हैं। इस सम्पूर्ण विश्व की आत्मा श्रीकृष्ण हैं और उन श्रीकृष्ण की आत्मा श्री राधा हैं। जो श्रीकृष्ण हैं वही श्री राधा हैं, जो श्रीराधा हैं वही श्रीकृष्ण हैं। दोनों एक हैं, अद्वितीय है। महाकाश का घटाकाश के साथ जो सम्बन्ध है वही सम्बन्ध श्रीकृष्ण का राधा के साथ है। दोनों केवल उपाधि भेद से पृथक् हैं परन्तु वास्तव में एक ही हैं। दुग्ध और उसकी धवलता की भाँति तथा सूर्य और उसके प्रकाश की भाँति श्रीराधा और राधारमण में पृथग्भाव नहीं है। श्री भगवान् श्यामसुन्दर ने ही श्री राधाजी से इस बात का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है :—

ये राधिकायां त्वयि केशवे मयि. भेदं न कुर्वन्ति हि दुग्ध शौक्ल्यवत्।
त एव मे ब्रह्मपदं प्रयान्ति, अहेतुक स्फूर्जित भक्ति लक्षणाः ।।[3]

श्री ब्रह्मसंहिता में कहा गया है कि, 'जो कृष्ण हैं वही राधा हैं, जो राधा हैं वही कृष्ण हैं।'[4] अर्थात् दोनों एक ही तत्व हैं एवं अभिन्न हैं।

---

१. श्री स्कन्द महापुराण संहिता, द्वितीय वैष्णव खण्ड श्रीमद्भागवत माहात्म्य प्रथम अध्याय श्लोक २२

२. आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका।
तस्या दास्य प्रभावेण विरहोऽस्मान् न संस्पृशेत् ।।११।।
श्री स्कन्ध महापुराण, संहिता, द्वितीयवैष्णवखण्ड, श्रीमद्भागवत माहात्म्य द्वितीय अध्याय

३. गर्गसंहिता

४. यः कृष्णः सापि राधा या राधा कृष्ण एव सः ।। ब्रह्मसंहितायाम्

बृहदारण्यक के मैत्रेयी ब्राह्मण में आत्मा का लक्षण बताया है कि, 'न वा सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति। आत्मतस्तु कामाय सर्व प्रियं भवति' जो कुछ मित्र-पुत्रादि, घर, प्रिया और परिवार है वे आत्मा के अर्थ ही प्रिय होते हैं अर्थात् जिसमें प्रियत्व का अतिशय है, जिसकी किंचित-सी झलक मात्र से और सब वस्तु प्रिय होती है उस हृदय के हित को आत्मा कहते हैं।

सामवेद-रहस्य में आया है कि, 'इस पुरुष ने अपने रमण के लिये अपने स्वरूप को प्रकट किया।'[१] यह पुरुष अनादि और एक है। यही दो प्रकार का रूप धारण कर सब रसों को ग्रहण करता है। श्रुति में कहा है—'वह आत्मा द्वैताद्वैत स्वरूप और द्वैताद्वैत विवर्जित है।[२] श्रीराधा और कृष्ण शुद्ध प्रेम रूपी युगल मूर्तियाँ हैं। विष्णु को परमतत्त्व माना गया है। इस विष्णु के दो रूप हैं, सगुण और निर्गुण। इनके चार अंश हैं, जिनमें से केवल एक ही से समस्त ब्रह्माण्ड परिव्याप्त है। उसी को प्रकृति-पुरुषात्मक रूप कहते हैं।[3] यही भगवान् का सगुण रूप है। इसी से रज, सत्व और तम की उत्पत्ति होती है। जो निर्गुण रूप है वही 'अक्षर ब्रह्म' है। इसी में ज्ञानियों का लय होता है। इन विष्णु का निवास-गोलोक में है, जहाँ रस भरा हुआ है। भगवान् को तभी 'रसो वै सः' कहा गया है। यही राधा कृष्ण हैं।

राधा तापिनी में कहा है कि, 'जो यह राधा और जो यह कृष्ण आनन्द रस के सागर हैं वह एक ही लीला करने के लिए दो रूप बन गये हैं। जैसे छाया से देह शोभित होती है इसी प्रकार श्री राधाजी से श्रीकृष्ण शोभायमान हैं। इनके चरित्र पढ़ने सुनने से जीव इनके शुद्ध परमधाम को प्राप्त होता है।'[४]

श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार राधिका के सम्बन्ध में लिखते हैं, 'भगवान् श्रीकृष्ण समग्र ब्रह्म या पुरुषोत्तम हैं। ब्रह्म, परमात्मा, आत्मा सब इन्हीं के विभिन्न लीला स्वरूप हैं। श्री राधाजी इन्हीं की स्वरूपा शक्ति हैं। श्री राधाजी और श्रीकृष्ण सर्वथा अभिन्न हैं। भगवान् श्रीकृष्ण दिव्य चिन्मय आनन्द विग्रह है और

---

१. स एवायंपुरुषः स्वरमणार्थं स्वस्वरूपं प्रकटितवान्

२. द्वैताद्वैत स्वरूपात्मा द्वैताद्वैत विवर्जितः।

३. विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितोजगत। —गीता
'पादोस्य विश्वभूतानि त्रिपादोऽस्यामृतं दिवि ॥ —यजुर्वेद ३१।३

४. येयं राधा यश्च कृष्ण रिसाब्धिर्देहश्चैकः क्रीडनार्थं विधाऽभूत्।
देहो यथा छायया शोभमानः शृण्वन् पठन्याति तद्धाम शुद्धम् ॥ —राधा[तापि]नी

श्री राधाजी दिव्य चिन्मय प्रेम विग्रह हैं। वे रसराज हैं, ये महाभाव हैं। भगवान् की इन्हीं स्वरूपा शक्ति मे अनन्त कोटि शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं जो जगत् का सृजन, पालन और संहार करती हैं। श्री राधाजी ही श्रीलक्ष्मी, श्रीप्रभा, श्रीसीता, श्रीरुकमणी हैं। इनमें कोई भेद नहीं है। जैसे चन्द्र-चन्द्रिका, सूर्य और प्रभा एक दूसरे से सर्वथा अभिन्न हैं।'[१] कृष्णोपनिषद् के अनुसार वृन्दा भक्ति है इसलिए वृन्दावन भक्ति वन है। भक्ति क्षेत्रमें अवतरित गोपालकी लीलायें कृष्ण लीलायें हैं।[२] श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार का कथन है, 'भगवान् की इस परमोज्वल दिव्य-रसलीला का यथार्थ प्रकाश तो भगवान् की स्वरूप भूता ह्लादिनी शक्ति नित्य निकुञ्जेश्वरी श्रीवृषभानुनन्दिनी श्री राधाजी और तरङ्गभूता प्रेममयी गोपियों के ही हृदय में होता है और वे ही निरावरण होकर भगवान् की परम अन्तरङ्ग रसमयीलीला का रसास्वादन करती हैं।'[३] पोद्दारजी ने चीरहरण लीला का विवेचन करते हुए चीर को आवरण बताया है। वे 'प्रेम-प्रेमी और प्रियतम के बीच में एक पुष्प का भी परदा नहीं रखना चाहते।' उनके अनुसार, 'प्रेम की प्रकृति है सर्वथा व्यवधान रहित, अबाध और अनन्न मिलन।' वे आगे लिखते हैं, 'भगवान् यही सिखाते हैं कि संस्कार शून्य होकर, निरावरण होकर, माया का पर्दा हटाकर आओ, मेरे पास आओ। अरे, तुम्हारा यह मोह का पर्दा तो मैंने ही छीन लिया है, तुम अब इस पर्दे के मोह में क्यों पड़ी हो? यह परदा ही तो परमात्मा और जीव के बीच में बड़ा व्यवधान है, यह हट गया बड़ा कल्याण हुआ। अब तुम मेरे पास आओ, तभी तुम्हारी चिर आकांक्षाएँ पूरी हो सकेंगी। परमात्मा श्रीकृष्ण का यह आह्वान, आत्मा के आत्मा परम प्रियतम के मिलन का यह मधुर आमन्त्रण भगवत्कृपा से जिसके अन्तर्देश में प्रकट हो जाता है, वह प्रेम में निमग्न होकर, सब कुछ छोड़कर, छोड़ना भी भूलकर प्रियतम श्रीकृष्ण के चरणों में दौड़ आता है। फिर न उसे वस्त्रों की सुधि रहती है और न लोगों का ध्यान। न यह जगत को देखता है न अपने को। यह भगवत्प्रेम का रहस्य है। विशुद्ध और अनन्य प्रेम में ऐसा ही होना है।'[४]

---

१. श्रीराधाकृष्ण का तात्विक स्वरूप-हनुमानप्रसादजी पोद्दार, राधांक, पृ० १५१
२. देखिये—ब्रज का आध्यात्मिक रहस्य- वासुदेवशरण अग्रवाल—पोद्दार अभिनंदन

राधा पूर्ण शक्ति और श्रीकृष्ण पूर्ण शक्तिमान हैं। दोनों अभिन्न हैं परन्तु लीला रसास्वादनार्थ भिन्न-भिन्न दिखलाई पड़ते हैं। जिस प्रकार कस्तूरी और उसकी गन्ध, अग्नि और उसकी ज्वाला पृथक् दिखाई पड़ने पर भी वास्तव में एक ही वस्तु है उसी प्रकार श्रीराधा अखन्ड रसस्वरूपा हैं। श्रीकृष्ण साक्षात ईश्वर है तो राधा स्वयं शक्ति स्वरूपा हैं। श्रीकृष्ण का जो कुछ आनन्द है वह राधा के समीप है। श्रीराधा का देह, मन, प्राण, आत्मा जो कुछ है वह सदैव श्रीकृष्ण प्रेम से विभाजित है। राधा श्रीकृष्ण की निज शक्ति स्वरूपा श्रेष्ठ प्रेयसी और क्रीड़ा की सहायिनी हैं। राधा कृष्ण उभय एक ही आत्म स्वरूप हैं। रसास्वादनार्थ उन्होंने दो देह धारण कर लिए हैं। देवर्षि पं० रमानाथजी भट्ट लिखते हैं, यह राधस राधा किंवा राधिका श्री पुरुषोतम की इस प्रकार (श्रीकृष्ण की) नित्य सिद्धा प्रिया हैं। इसी बात को यदि लौकिक रूप से कहना चाहें तो यों कह सकते हैं कि शृङ्गार रस रूप भावना में जब पुरुष अपनी प्रिय की भावना करता है तब वह अपने भाव को ही स्त्री रूप देता है। 'भाव को स्त्री रूप बनाये बिना स्त्री की भावना ही नहीं हो सकती। इसी प्रकार जब स्त्री अपने प्रिय की भावना करती है तब उसे भी अपने भाव को पुरुष रूप देना होता है। स्त्री के हृदय में भावात्मक पुरुष है और पुरुष के हृदय में भावात्मक प्रिया है। भाव पदार्थ नित्य सिद्ध है, इसलिए वे तद्रूपापन्न प्रिया-प्रियतम दोनों ही नित्य सिद्ध और रस रूप हैं। इस प्रकार दोनों एक रूप रहते हुए भी श्रीकृष्ण की नित्य सिद्धा प्रिया श्रीराधिका हैं। श्रीराधिका प्रथमा शक्ति हैं, प्रथमा सिद्धि हैं, अतएव सर्वश्रेष्ठा हैं, निष्कामा हैं, प्रेममयी हैं।'[1]

देवीभागवत नवम् स्कंध के द्वितीय अध्याय में राधिकाजी को भगवान् की प्रकृति बतलाया है। वृहद् ब्रह्म संहिता के द्वितीय पाद के पंचमाध्याय में भगवान् नारायण अपनी प्रेयसी महालक्ष्मीजी से वृन्दावन रहस्य वर्णन करते हुए कहते हैं, 'श्रीलीला तथा राधिका नाम वाली कृष्णमयी देवी परादेवता हैं जो गोपन करने के कारण गोपी कहलाती हैं। वह सर्वलक्ष्मी स्वरूपा हैं और श्रीकृष्ण को आनन्द देने वाली होने के कारण ह्लादिनी शक्ति हैं तथा नाना क्रीड़ा करने में निपुण हैं। इन्हीं के कला के कोटि-कोटि अंश से दुर्गा आदि त्रिगुणात्मिकता शक्तियाँ हैं। जिस प्रकार तुम लक्ष्मी हो उसी प्रकार गोपी भी लीला है। मैं कृष्ण सहस्रों ब्रह्माण्डों का नायक हूँ और सबका कारण लीला मेरे में ही आश्रित है। हे देवी! जिस प्रकार से

१. आदि शक्ति श्रीराधिका—देवर्षि पं० रमानाथजी भट्ट राधा अङ्क, पृ० १११–११२

में व्यापक हूँ उसी प्रकार से ये मेरी प्रिया। जिस-जिस स्वरूप को मैं धारण करता हूँ उनके अनुसार ही मेरी लीला भी। चेतन और अचेतन रूप समस्त जगत हम दोनों से व्याप्त है। वही हमारी शक्ति राधिका है और दूसरी गोपियाँ उसकी सखियाँ हैं।'[1]

श्री नन्दनन्दन स्वयं सच्चिदानन्द मय हैं। चिद्‌शक्ति एक एवं अखण्ड तत्त्व होने पर भी त्रिरूपा है। सदेश में 'सन्धिनी', चिदेश में 'सम्वित्' एवं आनन्दांश में 'ह्लादिनी'।[2] श्रीभगवान् की सत्ताओं का जिसमें समावेश है वही उनकी 'सन्धिनी' शक्ति है। श्री नन्दनन्दन में भगवता का ज्ञान ही उनकी संवित् शक्ति है एवं श्री ब्रजेन्द्रनन्दन को आह्लाद प्रदान करने वाली और स्वयं उनके सुख से सुखानुभव करने वाली ह्लादिनी शक्ति है। उनमें आह्लादिनी सर्वप्रधान शक्ति है। ये परम अन्तरंग भूता श्रीराधा ही हैं जिनका आराधन श्रीकृष्ण भी करते हैं। इन्हीं के संयोग से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई है। यथार्थ में संसार की समस्त शक्तियाँ श्री राधाजी का अंश हैं, किरण हैं, तथा इन्हीं की भिन्न-भिन्न प्रतिमूर्तियाँ हैं। श्री राधे आदि शक्ति हैं। श्रीकृष्ण की इसी ह्लादिनी वा आनन्द शक्ति के आधार पर श्रीकृष्ण की 'वृन्दावन लीला' का रहस्य राधा से बार-बार विविध रूपों में विविध प्रकार से मिलना और राधा सम्मिलन के अथवा राधा की सत्सङ्गति से उत्पन्न हुए 'आनन्द' का उपयोग करना ही है।

'श्रीराधा ही दुर्गा, राधा ही पार्वती और राधा ही 'पराशक्ति' है। राधा ही रासेश्वरी नाम से विभूषित होती है और राधा ही कृपानिधान श्रीभगवान् का रुख पाकर आदर्श शक्ति के रूप में अखिल विश्व की आकलांत रूप से (सेवा) करने वाली मधुरिमामयी जगन्माता हैं। अखिल विश्व ही उसके हृदय गर्भ में विश्राम ले रहा है। श्रीराधा ही ब्रह्म की वह प्रकृति शक्ति है, जो 'सृजति जगपालति हरति रुख पाय कृपा निधान की', के रूप में विश्व की सृष्टि स्थिति और संहार करने वाली भी बनी हुई है, अखिल विश्व की 'लीला' उस 'लीलामयी' की ही (अपार) लीलामयी लीला है, वही इस ब्रह्माण्ड का शासन अपनी सत, रज और तम गुणमयी त्रिगुणात्मका प्रकृति त्रिशूल रूप 'शासनदण्ड' से किया करती हैं।'[3]

---

१. गोपनादुच्यतेगोपी श्रीलीला राधिकाभिधा।
देवीकृष्णमयी ज्ञेया राधिका परं देवता ॥५॥
देखिये—श्लोक ५०, ५१, ५२, ५३, ५४

२. ह्लादिनी सन्धिनी सम्वित् त्वयेका सर्वसंस्थितौ। (विष्णुपुराण)

३. जगन्माता श्रीराधा—श्रीमत्परमहंस स्वामी शिवानन्द सरस्वती ऋषिकेश
राधा अङ्क, पृ० १४

वैष्णव धर्म की राधा अपने मूल रूप में सांख्य की प्रकृति है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में राधा कृष्ण को एक माना है।[1] सूर ने भी लिखा है, 'प्रकृति पुरुष एकै करि जानहु बातनि भेद करायो।' सांख्य के प्रकृति और पुरुष भिन्न है परन्तु शक्तिवाद में आत्मा और आत्मा की प्रकृति भिन्न नहीं है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में इन दोनों का समन्वय कर दिया गया है, राधाकृष्ण भिन्न भी हैं और अभिन्न भी हैं।

बृहदारण्यक उपनिषद् में नाम रूप कर्म को अनात्मा या माया माना है। यही प्रकृति है, 'मायां तु प्रकृति विधान् मायिन तु महेश्वरम्।' श्वेताश्वेतर उपनिषद् में माया को प्रकृति और महेश्वर को मायाधिपति बताया है। उसे हिन्दी कवियों ने भी शक्ति प्रकृति, लक्ष्मी, राधा और सीता आदि संज्ञा प्रदान की है।

श्री राधाजी भगवान् की ही छाया शक्ति है और इसका नाम योगमाया भी भी है और यह प्रकृतिदेवी का एक स्वरूप भेद है। भगवान् परमात्मा अन्तर्यामी हैं और गोपियाँ प्रकृति तथा अन्तःकरण की वृत्तियाँ हैं। रासलीला ब्रह्मानुभव का रहस्य प्रकट करती है। जीवात्मा परमात्मा के साथ अनेक सम्बन्ध स्थापित कर भगवतस्वरूप प्राप्त करता है। रासलीला के द्वारा जीवात्मा का परमात्मा के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध प्रकट किया जाता है।

राधा का दार्शनिक स्वरूप—

जीवगोस्वामी ने राधा को दार्शनिक स्वरूप देने की चेष्टा की। व्रजलीला के वर्णन में कृष्ण का अगणित गोपियों से सम्बन्ध का विवरण है जिनमें राधा भी एक गोपी बताई है। जीवगोस्वामी ने अनेकतत्त्व सनातन गोस्वामी और गोपालभट्ट से लिये थे। रूपगोस्वामी ने उज्ज्वल नीलमणि ग्रन्थ के 'कृष्णवल्लभा' अध्याय में लिखा है कि जो वल्लभा साधारण गुण समूह युक्त है और जिसका विस्तीर्ण प्रेम तथा सुमाधुर्य सम्पद् के अग्रभाग में आश्रय है वे कृष्ण वल्लभा हैं जिनके दो भाग हैं स्वकीया और परकीया। रुक्मिणी, सत्यभामा और विवाहिता स्वकीया और गोपियाँ परकीया हैं। रूपगोस्वामी ने स्वकीया महिषियों की संख्या द्वारकापुरी में सोलह हजार आठ मानी है। वास्तव में कृष्ण की समस्त प्रेयसियाँ स्वकीया हैं। कृष्ण की एक 'साधारणी' नायिका कुब्जा भी है। प्रकट लीला में 'कन्या' और 'परोढ़ा' दो प्रकार की परकीया मानी हैं। धन्या आदि अविवाहित व्रज कुमारियाँ 'कन्या' और दूसरे गोपगणों से विवाहिता गोपियाँ जो कृष्ण पर आसक्त थीं

---

१. ब्रह्मवैवर्त्त पुराण, श्रीकृष्णखंड, अध्याय १५, श्लोक ६६–६८

परकीया हैं। परोढ़ा (प्रौढ़ा) गोपियाँ 'साधन परा', 'देवी' और 'नित्य प्रिया' तीन प्रकार की हैं। साधन परा भी यौथिकी और अयौथिकी दो प्रकार की हैं तथा यौथिकी भी 'मुनि' और 'उपनिषद्' दो प्रकार की हैं।

जीव उभय कोटि (जीव कोटि और भगवत् कोटि) में प्रवेश करने की सामर्थ्य रखता है। जीव प्रेम-भक्ति से भगवान् के स्वरूप भूत धाम में प्रवेश पा साधन-भजन द्वारा साधना के लीला परिकरत्व पाता है। उत्तम साधक व्रजधाम में प्रवेश कर कृष्ण वल्लभा-रूप में गोपीदेह पाते हैं। नित्य प्रिया, नित्य सिद्ध गोपी नित्यकाल तक वृन्दावन में श्रीकृष्ण की संगिनी होती है और दूसरे प्रकार की जीव के ही साधनलब्ध दिव्य प्रेम वपु होती हैं। दोनों के बीच में 'देवी' हैं जो श्रीकृष्ण के अंशरूप में देवयोनि में जन्म लेने पर उनके संतोष साधन के लिए जन्म लेती हैं। कृष्णावतार में यही देवियाँ गोप कन्या के रूप में स्थानीय सखी होती है। राधा, चन्द्रावली, विशाखा, ललिता, श्यामा, पद्मा, शैव्या. भद्रा, तारा, चित्रा, गोपाली, घनिष्ठा और पालिका आदि नित्य प्रिया गोपियों में प्रधान हैं। प्रत्येक का एक यूथ और उसमें असंख्य गोपियाँ होने के कारण राधा आदि आठ प्रधान गोपियों को यूथेश्वरी कहा जाता है। इनमें राधा और चन्द्रावली प्रधान में भी राधा ही सब में श्रेष्ठ हैं। यह गुणों के ही कारण राधा आदि आठ प्रधान गोपियों को यूथेश्वरी कहा जाता है। इनमें राधा और चन्द्रावली प्रधान में भी राधा ही सब में श्रेष्ठ है। यह गुणों के कारण अति वरीयसी और महाभाव स्वरूपा है। रूप गोस्वामी ने कहा है कि यह वृषभानुनन्दिनी (१) सुष्ठुकांत स्वरूपा (२) धृतषोडश शृङ्गारा (३) द्वादशाभरणाश्रिता हैं। 'सुष्ठुकांतस्वरूपा' के लक्षण इस प्रकार बताये हैं— राधिका के केशदाम संकुचित हैं, दीर्घनेत्रों वाला मुख चंचल है, वक्षस्थल पर पीनस्तन सुन्दर हैं, कटिक्षीण है, स्कंधदेश अवनमित है, कर युगल में नखरत्न शोभित है। राधिका के सोलहश्रृङ्गार का वर्णन है। राधिका स्नाता है, उनके नासाग्र में मणियाँ हैं, नीलवस्त्र सुशोभित हैं, कटि तट पर नीवी है, मस्तक पर वेणी बँधी है, श्रवणों में उत्तंस हैं, अङ्ग चन्दनादि से चर्चित हैं, कुसुमित चिकुरामाल्यधारिणी हैं, पद्महस्ता हैं, उनके मुखकमल में ताम्बूल, चिकुर पर कस्तूरी बिन्दु है, नयन कज्जलयुक्त है। कपोल आदि चित्रित हैं, चरणों में महावर लगा है और ललाट पर तिलक सुशोभित है। राधिका के द्वादश आभरण हैं, माथे पर मणीन्द्र, श्रवणों में स्वर्णकुण्डल, नितंब पर काँची, गले में स्वर्णपदक, श्रवणों में स्वर्णशलाका, करों में वलय, कंठ में कंठभूषण, उङ्गलियों में अँगूठियाँ, वक्ष पर तारानुकारी हार, भुजों में अङ्गद, चरणों में रत्ननूपुर, चरणों की उङ्गलियों में तुङ्ग अंगुरीयक हैं।

इस वृन्दावनेश्वरी के अनन्त गुणों में से मुख्य गुण निम्नलिखित हैं—मधुरा, नववया, चलापांगा, उज्ज्वलस्मिता, चारू-सौभाग्य-रेखाढ्या, गन्धोत्मादित-माधवा, संगीतप्रसराभिज्ञा, रम्यवाक्, नर्मपंडिता, करुणापूर्णा विदग्धा, पटवान्विता, लज्जा-शीला, सुमर्यादा, धैर्यगांभीर्यशालिनी, सुविलासा, महाभाव, परमोत्कर्ष-तर्षिणी, गोकुलप्रेमवसति, जगच्छ्रेणीलसद्यशा, गुर्र्पितगुरुस्नेहा, सखीप्रणयितावशा, कृष्णप्रियावलीमुख्या, सन्नताश्रयकेशवा।

यूथेश्वरीगण में राधिका प्रधान हैं जिनके यूथ की सखियाँ सर्व गुणमंडिता और श्रीकृष्ण के मन को विलास-विभ्रम द्वारा आकर्षित करती हैं। इन सखियों के पाँच विभेद हैं—सखी, नित्यसखी, प्राणसखी, प्रियसखी और परम श्रेष्ठ-सखी। कुसुमिका, विन्ध्या, धनिष्ठा आदि साधारण सखियाँ हैं। कस्तूरिका, मणि मंजरिका आदि नित्य सखी हैं। शशिमुखी, वासंती, लासिका आदि प्राण सखी हैं जो वृन्दावेश्वरी राधिका के स्वरूप से समानता रखती हैं। कुरंगाक्षी, सुमध्या, मदनालसा, कमला, माधुरी, मंजुकेशी, कन्दर्पमाधवी, मालती, कामलता, शशिकला आदि प्रिय सखी हैं। ललिता, विशाखा, चित्रा, चम्पकलता, तुंगविद्या, इन्दुलेखा, रंगदेवी आदि सुदेवी परमश्रेष्ठ सखी हैं। ये सखी लीला विस्तारिणी हैं और इनका राधाकृष्ण लीला में मुख्य स्थान है। राधिका प्रेम का विषय है। इस विषय का अवलम्बन लेकर होने वाली लीला को सखियाँ वैचित्र्य और माधुर्य में विस्तार करती हैं। इनको खण्डिता की दशा में राधा के प्रति सहानुभूति एवं अनुराग तथा श्रीकृष्ण के प्रति विद्वेष होता है और मान की दशा में कृष्ण के प्रति अनुराग और राधा के प्रति विराग होता है। राधिका से इनका कोई पृथक् अस्तित्व न होकर उसका ही क्रम विस्तार है। ये गोपियाँ राधिका का कायव्यूह हैं। इनको राधिका से कृष्ण के मिलन में परम आनन्द आता था और उनके मिलन के लिए ही चेष्टायें करती थीं।

रूपगोस्वामी रति विश्लेषण के द्वारा भी राधिका की श्रेष्ठता सिद्ध करते हैं। रति साधारण, समञ्जसा और समर्था तीन प्रकार की होती हैं। जो रति गहरी न होकर कृष्ण के दर्शन द्वारा ही उत्पन्न होती है और जिसका निदान संयोग इच्छा ही है वह साधारण रति है जिसका उदाहरण भागवत पुराण की कुब्जा का प्रेम है। समंजसा रति में पत्नीभाव का अभिमान रहता है और कभी-कभी संयोग की तृष्णा उत्पन्न होती है। रुक्मिणी आदि की कृष्ण के प्रति रति इसका उदाहरण है। समंजसा रति में कभी-कभी निज सुख-स्पृहा की संभावना रहती है परन्तु समर्था रति में नहीं। तादात्म्य होने के कारण जिसमें कुलधर्म, धैर्य्य, लज्जादि सब

भूल जाते है वह समर्था रति कहलाती है। यह रति 'सान्द्रतमा', 'अद्भुत विलासोर्मि' की चमत्कारकर्त्री है। इसमें स्व-संभोगेच्छा न होकर सभी उद्यम कृष्ण सौख्यार्थ हैं।

यह समर्था रति ही प्रौढा होकर महाभाव दशा को प्राप्त होती है। यह रति धीरे-धीरे दृढ़ हो प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग और भाव के रूप में परिणत होती है। रूप गोस्वामी का कथन है कि सर्वथा कारण रहते हुए भी जिसका ध्वंस नहीं होता, युवक-युवतियों के इस प्रकार के भाव बन्धन को प्रेम कहते है।[1] परमावस्था प्राप्त कर जब प्रेम 'चिद्दीपदीपन' होता अर्थात् प्रेमविषयोपलब्धि का प्रकाशक होता हैं और हृदय को द्रवीभूत करता है तो उसे स्नेह कहते हैं।[2] उत्कृष्टता प्राप्त कर जब स्नेह नए-नए माधुर्य लाता है परन्तु स्वयं अदाक्षिण्य धारण करता है तो उसे मान कहते हैं।[3] मान के विस्रम्भ प्रदान करने को प्रणय कहते हैं।[4] प्रणयोत्कर्ष के कारण जब चित्त के अधिक दुख का भी अनुभव सुख के रूप में होता है तो वह प्रेम राग कहाता है।[5] सदानुभूत प्रिय को और उसकी अनुभूति को नित्यनवत्व प्रदान करने वाला राग अनुराग कहाता है।[6] अनुराग के 'यादवाश्रयवृत्ति' और स्व-संवेद्यदशा के प्राप्त होने पर भाव कहते हैं।[7] प्रेमप्रकाश की पराकाष्ठा यही है। इस भाव के तीन स्वरूप हैं। प्रथम के ह्लादांश के

---

१. सर्वथाध्वंसरहित सत्यपि ध्वसकारणे।
यद्भावबन्धनं यूनोः स प्रेमा परिकीर्तितः ॥५७॥
स्थायी भाव प्रकरण, उज्ज्वल नीलमणि-रूपगोस्वामी

२. आरुह्य परमां काष्ठां प्रेमा चिद्दीपदीपनः ॥७०
हृदयं द्रावयन्नेष स्नेह इत्यभिधीयते ॥७१

३. स्नेहस्तूत्कृष्टतावाप्त्या माधुर्यं मानयन्नवम।
यो धारयत्यदाक्षिण्यं स मान इति कीर्त्यते ॥८७

४. मानो दधानो विस्रम्भं प्रणयः प्रोच्यते बुधैः ॥९८

५. दुःखमप्यधिकं चित्ते सुखत्वेनैव व्यज्यते।
यतस्तु प्रणयोत्कर्षात्स राग इति कीर्त्यते ॥११५

६. सदानुभूतमपि यः कुर्यान्नवनवं प्रियम्।
रागो भवन्नवनवः सोऽनुराग इतीर्यते ॥१३४

७. अनुरागः स्वसंवेद्यदशां प्राप्य प्रकाशितः।
यावदाश्रयवृत्तिश्चेद्भाव इत्यभिधीयते ॥१४२

स्वसंवेदरूपत्व' में प्रेमानन्दानुभव होता है। द्वितीय के संविदंश के 'श्रीकृष्णादि-कर्मसंवेदनरूपत्व' में कृष्णविषयक ज्ञान होता है। तृतीय के 'संवेधरूपत्व' में प्रेमानुभूति और चैतन्य का एक अपूर्व मिश्रण होता है। इसी प्रकार भाव में तीन सुख मिलते हैं। प्रथम सुख श्रीकृष्णानुभव है, द्वितीय सुख में प्रेमादि के द्वारा अनुभूत चर हो श्रीकृष्ण अनुरागोत्कर्ष के द्वारा अनुभूत होते हैं। तृतीय सुख में श्रीकृष्णानुभवनरूप यह अनुरागोत्कर्ष अनुभूत होता है। जिस प्रकार अनुरागोत्कर्ष-रूप भाव श्रीराधा के हृदय में उदित हो उन्हें प्रेमानन्दमयी करता है उसी प्रकार भक्तों और सिद्धों के चित्त को श्रीराधा का प्रेमानन्द विलोड़ित करता है। इन भावों में जो भाव कृष्णवल्लभागण में एक मात्र व्रजदेवी में ही सम्भव है उसे महाभाव कहते हैं। महाभाव रूढ़ और अधिरूढ़ दो प्रकार का है। जिस महाभाव से सारे सात्त्विक भाव उद्दीप्त हों उन्हें रूढ़ महाभाव और जब अनुभाव महाभाव के अनुभवों से भी विशिष्टता प्राप्त करलें तो अधिरूढ़ महाभाव कहलाते हैं। इस सम्बन्ध में विश्वनाथ चक्रवर्ती ने कहा है—जहाँ कृष्ण के सुख में पीड़ा की आशंका से क्षणभर के लिए भी असहिष्णुता होती है—वही रूढ़ महाभाव है। करोड़ ब्रह्माण्डगत समस्त सुख भी जिसके सुख का लेशमात्र नहीं होता, सारे बिच्छुओं–सर्पों के दशन का दुःख भी जिसके दुःख का लेशमात्र नहीं होते, कृष्ण के मिलन–विरह से इस प्रकार का दुःख–सुख जिस दशा में होता है उस दशा को ही अधिरूढ़ महाभाव कहते हैं। इस अधिरूढ़ महाभाव के 'मोदन' और 'मादन' दो भेद हैं। जीव गोस्वामी ने 'लोचन रोचनी' टीका में लिखा है कि मोदन हर्षवाचक है मादन में दिव्यमद्य के समान मत्तता है। मादनाख्य महाभाव में श्रीकृष्ण मिलन के सर्व प्रकार के आनन्द-वैचित्री का अनुभव हैं। मोदनाख्य महाभाव से सकान्त-कृष्ण के चित्त में भी क्षोभ उत्पन्न होता है और कृष्ण कान्ताओं के प्रेम की अपेक्षा भी प्रेमाधिक्य व्यक्त होता है। राधा के यूथ में ही मोदनाख्य सम्भव है। ह्लादिनी शक्ति का यही सुविलास है। कुरुक्षेत्र में रुक्मिणी, सत्यभामा आदि के साथ रहने पर भी राधा के दर्शन से कृष्ण के चित्त में क्षोभ उत्पन्न हुआ। कृष्ण के दर्शन से राधा में प्रेमातिशयता और प्रेमाधिक्य दिखाई पड़ने के कारण राधा का प्रेम श्रेष्ठ है। विरहावस्था में मोहन ही मोदन हो जाता है। मादन ह्लादिनी का सार है। रति से लेकर महाभाव तक समस्त प्रेम-वैचित्र्य के उल्लास का यह अनुभव कराता है। राधा को छोड़ अन्य किसी में यह मादनाख्य महाभाव सम्भव नहीं है इस हेतु ही श्रीराधिका 'कांताशिरोमणि' कहलाती है।[1]

१. सर्वभावोद्गमोल्लासी मादनोऽयं परात्परः।
राजते ह्लादिनीसारो राधायामेव यः सदा ॥

मनुष्य के दृष्टांत और भाषा के द्वारा अप्राकृत वृन्दावन धाम के श्रीराधाकृष्ण की नित्य लीला को साहित्यिक रूप देने का प्रयास किया गया। अलङ्कार शास्त्र के आधार पर नायक-नायिका के भेदों पर विचार करने के उपरांत यह स्वीकार किया गया कि कृष्ण और राधा श्रेष्ठ नायक-नायिका हैं। श्रीकृष्ण की राधा तथा व्रजदेवियों के साथ यह लीला प्राकृत कार्य न होकर 'काम-क्रीड़ा-साम्य' है जिसे साहित्यिक रूप एवं आलङ्कारिक विश्लेषण के रूप में प्राकृत-क्रीड़ा के अनुरूप भाव से ग्रहण किया गया है। प्राकृत काम के वैचित्र्य और सर्वातिशयता प्रकट करने के लिए राधा में समस्त चेष्टाओं और लीलाओं का आरोपण किया गया। काम शास्त्र के अनुसार श्रेष्ठ नायिका में उपलब्ध होने वाले देह धर्म और मनोधर्म का समावेश राधा में किया गया। कांताप्रेम श्रेष्ठ माना जाता है परन्तु परकीया-रति उनसे भी श्रेष्ठ है जिसकी परिणति राधा-प्रेम में होती है। प्रधाना गोपिनी राधिका का साहित्य में परिचय परोड़ा(प्रौढ़ा) गोपी रूपमें मिलता है। 'कवीन्द्र वचन-सम्मुचय' में राधा प्रेम असती-व्रज्या के अंदर माना है। प्राचीन श्लोकों में राधा के अवैध प्रेम का आभास मिलता है। उज्ज्वल नीलमणि में राधा और चन्द्रावली का वर्णन नित्य प्रिया के रूप में है। राधा का प्रेम सब कुछ कृष्ण सुखैक तात्पर्य है।[1] राधादि सब श्रीकृष्ण की नित्य-प्रेयसी हैं।[2] रूपगोस्वामी श्रीकृष्ण के नित्य-प्रेयसीत्व को ही राधादि गोपियों का स्वरूप परिचय मानते हैं। बाहर उनका अनूढ़ा कन्यापन या दूसरे गोपियों का स्त्रीत्व योगमाया द्वारा घटित हुआ एक प्रातिभासिक सत्यमात्र है। भागवत के रास वर्णन में आया है कि गोपियाँ जब रासकुंज में श्रीकृष्ण के साथ रासलीला में तल्लीन थीं तब भी योगमाया के प्रभाव से गोपियों का माया विग्रह अपने पतियों की बगल में था। भागवत के रास वर्णन में कहा है, 'व्रजवासी गोपों ने भगवान् श्रीकृष्ण में तनिक भी दोष बुद्धि नहीं की। वे उनकी योगमाया से मोहित होकर ऐसा समझ रहे थे कि हमारी पत्नियाँ हमारे पास ही हैं।'[3] जीवगोस्वामी परकीयावाद का समर्थन न करके परम स्वकीया में ही राधा-प्रेम का

---

१. राधा चन्द्रावलीमुख्याः प्रोक्ता नित्यप्रिया व्रजे।
कृष्णवन्नित्य सौन्दर्य-वैदग्ध्यादिगुणाश्रयाः॥

उज्ज्वल नीलमणि, कृष्णवल्लभा ३६

२ तद्वंचनार्थमेव स्वयं योगमायया मिथ्यैव प्रत्यायितं तद्विधा नात्युद्वाहादिकम्। नित्य-प्रेमस्य एव खलु ताः कृष्णस्य। (प्रथम अङ्क)

३. राधा का क्रम विकास—शशिभूषणदास, पृ० २३२

चरमोत्कर्ष मानते हैं। अप्रकट व्रजलीला में राधा के कृष्ण उपपति नहीं राधा-कृष्ण की परम स्वकीया हैं। वे गोपाल लीला में स्वकीया को परम सत्य और परकीया को मायिक मानते हैं। जीवगोस्वामी ने अपने 'गोपाल-चम्पू' नामक गद्य-पद्य काव्य में राधा कृष्ण का विवाह कराया है। प्रकट लीला में राधा और अन्य गोपियों ने व्यावहारिक जीवन में अपने पति आदि को स्वीकार किया। कृष्ण को प्राण-वल्लभ मानते हुए भी योगमाया के कारण उनके स्वरूप-सम्बन्ध का ज्ञान आवृत रहता था और एक परकीया अभिमान रहता था। गोस्वामियों ने परकीयावाद को प्रधानता दी और सहजिया लोगों ने वैष्णव-धर्म में इसे और दृढ़ता प्रदान की। इस प्रेम के कृष्ण विषय और राधा आश्रय हैं।

राधिका कृष्ण की प्रेमरूपा ह्लादिनी शक्ति का पूर्णतम आधार हैं। जीव के लिए राधा के भाव से कृष्ण की सेवा सम्भव नहीं है इसलिए जीव के लिए सखी भाव की साधना कही है। सखी भाव की साधना के दो रूप है। १. रागात्मिका स्वातन्त्रमयी सेवा २. रागानुगा आनुगत्यमयी सेवा। नित्य व्रज धाम में सुबल, नन्द, यशोदा, राधिका आदि कृष्ण के नित्य परिकरों को ही रागात्मिका सेवा करने का अधिकार है। राग आत्मधर्म में ही प्रतिष्ठित रहकर करने वाली सेवा को रागात्मिका सेवा कहते हैं। जीव व्रज-परिकरणों का आनुगत्य स्वीकार कर कृष्ण की सेवा को उनके राग के अनुग के रूप में स्वीकार कर सकता है। सुबल आदि व्रज सखाओं की कृष्ण के प्रति सखाभाव से प्रीति नित्य सिद्ध आत्म धर्म हैं। इसलिए सुबल आदि की कृष्ण की सखा भाव से सेवा रागात्मिका सेवा है। भक्तों के लिए सख्य प्रीति परमादर्श और परम साध्य वस्तु है।

राधा प्रेम पूर्ण मधुर रस का रागात्मक प्रेम होने के कारण राधा के सिवा और कहीं सम्भव नहीं है। सखियाँ इस राधाकी कायव्यूहस्वरूप हैं और उन सखियों की अनुगता मंजरीगण सेवा दासी हैं। श्री रूपमंजरी आदि मंजरीगण गोलोक की नित्य परिकर हैं तथा अनुगभाव से उनकी सेवा और लीला आस्वादन ही जीव का श्रेष्ठ काम्य है। श्रीराधा ही विचित्र अवस्थान के अन्दर इस कृष्ण लीला में विचित्र अवलम्ब ग्रहण करती हैं। उपर्युक्त राधा सम्बन्धी गोस्वामियों के विवरण के कारण श्री शशिभूषणदास का मत है, कि, 'वृन्दावन के गोस्वामियों के आविर्भाव के पहले ही प्रधान गोपिनी के रूप में राधा-वैष्णव साहित्य में सुप्रतिष्ठित हो चुकी थी?'

राधा का वैज्ञानिक स्वरूप—

जिसका हमें कुछ ज्ञान न हो सके उसे कृष्ण और जो हमारी समझ में आ जावे उसे शुक्ल कहते हैं। निगूढ़ को कृष्ण और प्रकाशित को शुक्ल कहते हैं।

यदि काला परदा डाल दिया जावे तो कुछ नहीं दिखाई देता और न दीखने वाली वाली वस्तु को काली और प्रकाशवान वस्तु को श्वेत कहते हैं। कृष्ण वर्ण तीन प्रकार का होना है :—१. अनुपाख्य कृष्ण २. अनिरुक्त कृष्ण ३. निरुक्त कृष्ण। सृष्टि के पहले की अवस्था को कृष्ण कहा जाता है :—

'आसीदिदं तमोभूतम्'। (मनु०)

कार्य उत्पन्न न होने तक अपने कारण में निगूढ़ रहता है और उसके ज्ञान से हम विमुख रहते हैं। कार्य की अपेक्षा से कारणावस्था को कृष्ण और कार्योत्पत्ति दशा को शुक्ल कहते हैं। जहाँ दीखने वाले जगत का कोई ज्ञान नहीं, उस सब जगत की कारणावस्था-पूर्वावस्था को दृश्यमान् जगत की अपेक्षा कृष्ण ही कहेंगे। इसलिए सब जगत के कारण भगवान् विष्णु व आद्याशक्ति कृष्णवर्ण कहलाते हैं। इस कृष्ण का कभी अनुभव न होने के कारण और शास्त्रवेद्य होने के कारण इसे अनुपाख्य कृष्ण कहा जाता है। जिसका अनुभव तो हो परन्तु इदमित्थम् रूप से एक केन्द्र में पकड़कर निर्वचन न किया जा सके उसे अनिरुक्त कृष्ण कहा जाता है। उदाहरणार्थ आकाश में, अंधकार में अथवा नेत्र बन्द कर लेने पर काले रूप का अनुभव होता है परन्तु वह सर्वरूप का अनुभव कालेपन से भासित होता है, किसी केन्द्र में पकड़कर उस काले रूप को निरुक्त नहीं किया जा सकता। तीसरा निरुक्त कृष्ण कोयला आदि पदार्थों में है। इनमें अनुपाख्य कृष्ण का अनिरुक्त कृष्ण में और अनिरुक्त कृष्ण का निरुक्त कृष्ण में अवतार होता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि पूर्व-पूर्वकृष्ण का उत्तरोत्तर कृष्ण में विकास होता है।

वैदिक सिद्धान्तानुसार चन्द्रमा, पृथ्वी और सूर्य ये तीनों मण्डल निरुक्त कृष्ण हैं। वेद में पृथ्वी को कृष्ण और पृथ्वी के काले किरणों के समूह को अन्धकार कहा है :—

'चन्द्रमा वै ब्रह्मा कृष्णः' (शतपथ १३।२।१।७)

श्रुतियों में चन्द्रमा को कृष्ण कहा है।[1] सूर्यमण्डल को कृष्ण कहा है और हिरण्यमय प्रकाश भाग को सूर्य का रथ बताया है। अभिप्राय यह है कि प्रकाश मण्डल संयोगज है और कई प्राणों के सम्बन्ध से बनता है। सूर्यमण्डल स्वभावतः कृष्ण ही है। इन तीनों से परे जो परमेष्ठीमण्डल है वह अनिरुक्त कृष्ण है।

---

१. आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्मयेन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यन्॥

सूर्य रूपों का अधिदेवता है उसकी किरणों से ही सब रूप बनते हैं इसलिए सूर्यमंडल की उत्पत्ति के पूर्व परमेष्ठीमंडल में कोई रूप नहीं कहा जा सकता। उसको 'आपोमयमण्डल' अथवा 'सोममयमण्डल' कहते हैं। सोम, वायु और आप तीनों एक ही द्रव्य की अवस्थायें हैं। वायु घनीभूत होने पर 'आप' होती है। इसी द्रव्य में 'अनिरुक्त कृष्ण' वर्ण प्रतीत होता है। यह द्रव्य परमेष्ठी की किरणों द्वारा बहुत बड़े आकाश में व्याप्त है। सोममण्डल में सूर्य का स्थान अंधकारमय जंगल में टिमटिमाते हुए दीपक की भाँति है। जहाँ तक सूर्य का प्रकाश है उसे ब्रह्माण्ड कहते हैं, उसकी परिधि के बाहर अनन्त आकाश में 'अनिरुक्त कृष्ण' सोम अथवा आप है। वही अनिरुक्त कृष्ण काले आकाश के रूप में प्रतीत होता है। 'वह कृष्ण है और सूर्य प्रकाश की प्रतिमा राधा है। राध् धातु का अर्थ है, 'सिद्धि'। सूर्य प्रकाश में ही सब कार्य सिद्ध होते हैं—अतः राधा नाम वहाँ अन्वर्थ (सार्थक) है। कृष्ण श्याम तेज है, राधा गौर तेज। कृष्ण के अङ्क में (गोदी में) अर्थात् श्याम तेजोमय मंडल के बीच में राधा विराजित है।'[1]

सोम मंडल ब्रह्माण्ड की परिधि में व्याप्त है। जिस प्रकार आकाश में कोई दीवाल बनाई जाय तो प्रतीत होता है कि यहाँ पर आकाश (अवकाश) नहीं रहा परन्तु वास्तव में दीवाल के आधार रूप से आकाश वहाँ पर है जो दीवाल के हटते ही प्रतीत होने लगता है। इसी प्रकार कृष्ण सोममंडल सूर्यप्रकाश के कारण प्रतीत नहीं होता यद्यपि प्रकाश उसी के आधार पर है और वह प्रकाश में अनुस्यूत है। प्रकाश के हटने पर (सूर्यास्त होने पर) वह श्याम तेज फिर प्रतीत होने लगता है। वैज्ञानिक दृष्टि से यदि देखें तो विदित होगा कि बिना अंधकार के प्रकाश और बिना प्रकाश के अन्धकार कहीं नहीं रहता, दोनों-दोनों में अनुस्यूत हैं। उदाहरण के लिए देखिए यदि अंधकार में एक दीपक प्रकाश कर रहा है यदि वहाँ दूसरा और रख दिया जावे तो प्रकाश और बढ़ जावेगा और इसी प्रकार की अवस्था दूसरा-तीसरा तथा अनेकानेक दीपकों के रखने से होगी। इससे आभास मिलता है कि एक दीपक के रहने पर भी उसमें अनुस्यूत अंधकार था जिसको दूसरे दीपक ने दूर किया और इसी प्रकार तीसरे ने तथा अन्य दीपकों ने। श्याम तेज ही अंधकार रूप से प्रतीत होता है। प्रकाश में अनुस्यूत श्याम तेज

---

१. श्री कृष्णावतार पर वैज्ञानिक दृष्टि—गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी,
पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ—ब्रज साहित्य मंडल मथुरा, पृ० ६३

पता चलता है कि सहस्त्रों दीपों एवं सूर्य का प्रकाश रहने पर भी श्याम तेज आकाश की भाँति व्याप्त और अनुस्यूत रहता है। किसी स्थान पर अनेक दीप रखे हैं और एक दीपक के सम्मुख यदि लकड़ी आदि आवरण पदार्थ रख दिया जावे तो कुछ अंश में प्रकाश का आवरण होकर धीमी-सी छाया दीख पड़ेगी। एक दीपक का आवरण होने पर अन्य दीपकों का प्रकाश होते हुए भी छाया का होना सिद्ध करता है कि प्रकृत दीपक अंधकार के अंश को दूर करता था। निविड़ अंधकार में बिना प्रकाश के अंधकार की प्रत्यक्षानुभूति ही नहीं हो सकती। बिना प्रकाश के नेत्र रश्मि कार्यविहीन हो जाती है। अतः 'सिद्ध हुआ कि गौर तेज और श्याम तेज-राधा और और कृष्ण, अन्योन्य आलिङ्गित रूप में ही सदा रहते हैं, कभी कृष्ण के अङ्क में राधा छिपी हुई है, कभी राधा के अञ्चल में कृष्ण दुबक गए हैं। इसी से दोनों एक रूप माने जाते हैं। एक ही ज्योति के दो विकास हैं और एक के बिना दूसरे की उपासना निंदित मानी गई है।'[1]

गौरतेजो विना यस्तु श्यामतेजः समर्चयेत।
जपेद्वा ध्यायते वापि स भवेत् पातकी शिवे॥
'तस्माज्ज्योतिरभूद् द्वेधा राधामाधवरूपकम्॥[2]

विष्णु रूप परमेष्ठिमण्डल का अवतार होने का कारण भगवान् श्रीकृष्ण का श्याम रूप था। गौरवर्ण राधा से उनका अन्योन्य तादात्म्य सम्बन्ध था। वहाँ राधा (प्रकाश भाग) परमेष्ठि मण्डल की अपनी नहीं परकीया है, इसी हेतु यहाँ भी राधा का कृष्ण के साथ विवाह सम्बन्ध नहीं हुआ। वेद में परमेष्ठि मण्डल को 'गोसव' और पुराण में 'गोलोक' कहा है। इसका कारण है कि गौ-जिन्हें किरण कहते हैं उनकी उत्पत्ति परमेष्ठिमण्डल में ही होती है। उन गौओं का आगे के मण्डलों में विकास होने के कारण सूर्य और पृथ्वी के प्राणों में 'गौ' नाम आया है। ब्राह्मण ग्रंथों में इन गौओं का विवरण मिलता है। 'गौ' पशु में इस प्राण की प्रधानता है इसलिए गौ को आराध्य माना है। गौ का उत्पादक और पालक होने के कारण परमेष्ठी गोपाल है। प्रथमतः गौ प्राप्त होने के कारण गोविन्द हुए। श्रीकृष्ण परमेष्ठी के अवतार होने के कारण गौओं के सहचारी हुए और गोपाल तथा गोविन्द कहलाये। परमेष्ठी का इन्द्र से सख्य (साहचर्य) होने के कारण भगवान् श्रीकृष्ण का भी इन्द्रांश

---

१. श्रीकृष्णावतार पर वैज्ञानिक दृष्टि—गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ—व्रज साहित्य मंडल मथुरा, पृ० ६३३

२. संमोहन तन्त्र, गोपाल सहस्त्र नाम

अर्जुन से साहचर्य-पूर्ण सौहार्द हुआ। चन्द्रमण्डल भी अवतारों में माना है जिसके 'प्राणों' का प्रतिफल भी कृष्णचरित में हुआ है। चन्द्रमा समुद्र में (आपोमयमंडल में)[१] रहता है इसलिए भगवान् श्रीकृष्ण ने भी समुद्र के बीच 'द्वारका' बसाई। चन्द्रमण्डल श्रद्धामय है इसलिए भगवान् श्रीकृष्ण भी श्रद्धालु थे और ब्राह्मणों के भी अपने हाथों से चरण धोते तथा दबाते थे। रासलीला का भी चन्द्रमा से बहुत सम्बन्ध है। चन्द्रमा राशि चक्र से रासलीला करता रहता है।

राधा का ज्योतिष स्वरूप—

अनेक विद्वान राधा-कृष्ण तत्त्व में किसी धार्मिक तत्त्व को न मानकर ज्योतिष तत्त्व को मानते हैं। वेदों में विष्णु शब्द का प्रयोग सूर्य के अर्थ में हुआ है। प्रातः मध्याह्न और सायं का होना मानो सूर्य रूपी विष्णु का त्रिपादों से परिक्रमण करना है। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वर्ग, मर्त्य और पाताल इन तीनों लोकों में त्रिपात् वामन अवतार के पद क्षेप की कल्पना को जन्म मिला है। कृष्ण इन्हीं विष्णु के अवतार माने जाते हैं और सूर्य की रश्मि स्थानीय या प्रतिबिम्ब हैं। श्री योगेशचन्द्रराय ने दिखाया है कि पुराणादि में वर्णित गर्गमुनि एक ज्योतिष विशेषज्ञ थे।[२] उन्होंने आदित्य के अवतार कृष्ण का पहले आविष्कार किया और कृष्ण के नामकरण से लेकर सारी शिक्षा-दीक्षा का भार लिया। कृष्ण सूर्य का प्रतिबिम्ब है और गोपी तारका का।[3] कृष्ण की जितनी भी व्रज में जन्म से लेकर अलौकिक लीलायें हुई हैं समस्त तारों पर आधारित हैं। कृष्ण की रासलीला की ज्योतिष व्याख्या योगेशचन्द्र ने इस प्रकार की है, 'राधा नाम पुराना था और विशाखा का नामान्तर था। कृष्ण यजुर्वेद में विशाखा, अनुराधा आदि नक्षत्रों का नाम है। राधा के बाद अनुराधा का नाम है। अतएव विशाखा नाम राधा है। अथर्ववेद में 'राधोविशाखे', यह स्पष्ट कथन है। विशाखा नाम का कारण यही है। इस नक्षत्र में शारद विष्णुव होता था और वर्ष दो शाखाओं में बँट जाता था। यह ईसा पूर्व २५०० सौ की बात है। शायद इसके पहले नक्षत्र का नाम राधा था। राधा का अर्थ है सिद्धि। यह नाम क्यों पड़ा था, यह नहीं बताया जा सकता।

---

१. [अ] आपोमय होने के कारण अन्तरिक्ष का नाम निघंटु में समुद्र आया है।
[ब] 'चन्द्रमा अपस्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि।' —ऋग्वेद

२. भारतवर्ष पत्रिका, माघ १३४० बंगाब्द

३. गो शब्द का एक अर्थ है 'रश्मि', अतएव सूर्य ही गोप और तारका गोपी है।

कालक्रम में राधा और विशाखा एक हो गये हैं। महाभारत में कर्ण की धातृ-माता का नाम राधा है, और कर्ण राधेय के नाम से संबोधित होते थे।'

अमरकोष में भी राधा का नाम विशाखा आया है—राधा विशाखा पुष्येतु सिद्ध्यतिष्यौ श्रविष्ठया।[1]

विशाखा की ओर कार्तिकी पूर्णिमा को सूर्य विशाखा में रहता है। राधा का सूर्य से अदृश्य मिलन होता है। युगवत् तारा और सूर्य दृष्टिगोचर नहीं हो सकते हैं। प्राचीन समय में लोग यह मानते थे कि तारा का तारापन सूर्य की रोशनी से ही है। गोप कृष्ण हैं, गो रश्मि है और गोपी तारा है। जिस प्रकार रवि के चहुँ ओर मंडलाकार में तारे हैं उसी प्रकार कृष्ण रास के मध्य में हैं और गोपिका मंडलाकार में हैं। चन्द्रमा पुल्लिंग नहीं है इसलिए वह राधा की प्रतिनायिका माना गया है। अमावस की रात्रि को चन्द्र, सूर्य मिलते है जिसका अभिप्राय है कि गुप्त रूप से कृष्ण चन्द्रावली की कुंज में जाते हैं। वृषभानु वृष राशिस्थ भानु रश्मि है इसीलिये राधा को वृषभानु की कन्या बताया गया है। राधा की जननी का नाम पद्मपुराण में (कीर्तिदा) आया है। इसी प्रकार ज्योतिष तत्त्वानुसार कृत्तिका को वृषराशि में बताये जाने के कारण राधा की जननी का नाम कृत्तिका माना है। 'अयने भवः आयनः', अयन में उत्तरायण के दिनों में जन्म होने के कारण आयन नाम पड़ा और उत्तरायण फलशून्य नपुंसक हुआ। इसीलिए राधा के पति का नाम आयन घोष (बाद में आयान घोष) कहलाता है। इसी प्रकार ज्योतिषतत्त्व कवि कल्पना के आधार पर रूपक धर्मी बन गए। पौराणिक युग के इस ज्योतिष तत्त्व को परवर्ती लोग भूलकर रूपक को ही सत्यमान बैठे। राधा कृष्ण की लीला का विकास इस प्रकार रूपकों से ही हुआ है। पुराणादि में जिन कृष्ण का उल्लेख मिलता है वह श्री योगेशचन्द्र के अनुसार ईसा पूर्व तीसरी सदी में हुए और राधा ईसा की तीसरी सदी में हुई।

परवर्ती काल में राधा की सखियों में विशाखा को मुख्य माना है परंतु उसके अतिरिक्त अनुराधा (ललिता), ज्येष्ठा, चित्रा, भद्रा आदि अन्य सखियों के नाम आये हैं। तारका नाम की एक ब्रज की देवी है।[2] चंद्रावली का दूसरा नाम सोमभा मिलता है जिसका सम्बंध चंद्र से है। चंद्रावली के सम्बंध में रूपगोस्वामी के दो श्लोक देखिए:—

---

१. अमर कोष १८८ निर्णय सागर प्रेस, बम्बई

२. भविष्योत्तर और स्कंदसंहिता के मतानुसार, जीव गोस्वामी के कृष्ण सन्दर्भ में उल्लिखित।

पद्मा। हला सच्चं भणसि। तथाहि—
विज्जोदन्ती राहा पेक्खिज्जई ताव तारआलीहिं।
गअणे तमालसामे जाव चन्दाअली पफुरइ॥
ललिता। (विहस्य संस्कृतेन)
सहचरि वृषभानुजायाः प्रादुर्भावे वरत्विषोपगते।
चन्द्रावली शतान्यपि भवन्ति निर्धूतकान्तीनि॥[1]

कृष्ण के परिवार की अन्य कई स्त्रियों के नाम भी प्रसिद्ध नक्षत्रों के नाम पर रखे गये हैं। वासुदेव की पत्नी को रोहिणी, बलदेव की पत्नी को रेवती, कृष्ण की बहन को चित्रा (सुभद्रा) कहा गया है।

श्रीरूपगोस्वामी ने अपने नाटकों आदि में राधा का तारका रूप माना है। उन्होंने जो आलंकारिक वर्णन किए हैं उनमें कितने ही स्थानों पर इसका परिचय मिलता है। ललित माधव के प्रथम अङ्क में राधा का दूसरा नाम तारा आया है— 'तारा नाम लोओत्तरा कण्णआ।' एक दूसरे स्थान पर राधा को लेकर एक सुंदर श्लेप की योजना की है—

दनुज दमनवक्षः पुष्करे चारुतारा।
जयति जगदपूर्वा कापि राधाभिधाना।

विदग्ध माधव नाटक में सूत्रधार के श्लोक में आया है :—

सोऽयं वसन्तसमयः समियाय यस्मिन्
पूर्णं तमीश्वरमुपोढ़नवानुरागम्।
गूढ़ग्रहा रुचिरया सह राधयासौ
रंगाय संगमयिता निशि पौर्णमासी॥

रासलीला का चन्द्रमा से विशेष सम्बंध है। चंद्रमा राशि चक्र से रासलीला करता है। प्राचीन काल में नक्षत्रों की गणना कृत्तिका से होती थी। कृत्तिका से गणना करने पर विशाखा नक्षत्र जिसका दूसरा नाम राधा भी है सब नक्षत्रों के मध्य में आता है और इस हेतु 'रासेश्वरी' है। राधा के आगे के नक्षत्र को 'अनुराधा' कहते हैं।

कृष्ण मिलन के लिए, देवी पूर्णमासी के साथ राधिका का आविर्भाव होता है। इसी प्रकार वैशाख पूर्णिमा को राधा या विशाखा नक्षत्र के साथ पूर्णिमा का

---

१. विदग्धमाधव, सप्तम अंक

आविर्भाव होता है।[1] रूप गोस्वामी की रचना में ऐसे और भी अनेकों स्थलों पर उदाहरण मिलते हैं।[2] इन नाटकों में अनेक स्थानों पर राधा सूर्य की उपासिका के रूप में हमारे सम्मुख आती है।

जिस पूर्णिमा को चन्द्रमा विशाखा पर रहता है, सूर्य कृत्तिका पर रहता है। सूर्य की वृषराशि से जोकि सम्मुख स्थिति होती है विशाखा युत चन्द्रमा प्रकाशित होता है। कृत्तिका के सूर्य के 'वृष' राशि के होने के कारण यह राधा वृषभानु सुता कहलाती है। कार्तिकी पूर्णिमा जबकि पूर्णचन्द्रमा (पूर्णिमा का चन्द्रमा) राधा के ठीक सम्मुख कृत्तिका पर आता है रास का मुख्य दिन है। इस प्रकार ज्योतिष की घटनायें भगवान् श्रीकृष्ण की 'रासलीला' पर बिलकुल ठीक घटती हैं और राधा 'रासेश्वरी' का रूप धारण कर लेती है।

इससे प्रतीत होता है कि वैदिक युग के विष्णु का सम्बन्ध सूर्य के साथ था और ज्योतिष तत्त्व का पौराणिक युग से वर्णित कृष्ण लीला पर यथेष्ट प्रभाव था।

राधा का धार्मिक स्वरूप—

बारहवीं सदी में भी राधा की जो वसंत से मिली-जुली प्रतिष्ठा दिखाई देती है, स्पष्ट रूप से किसी दार्शनिक मतवाद का मिश्रण उसमें नहीं दिखाई देता। बारहवीं सदी के साहित्य-विशेषतः लीलाशुक के कृष्णकर्णामृत और जयदेव के गीत-गोविन्द में लीलावाद के साथ ही राधा को प्रधानता मिली। बहिः सृष्टि के आधार पर ही लीला होती है स्वरूप शक्ति का लीला से विशेष सम्बन्ध नहीं है। लक्ष्मी के रूप में जिस लीला विलास का आभास पुराणों में मिलता है, जिस लीला विलास के संकेत श्री सम्प्रदाय में मिलते हैं उसी लीला विलास को वैष्णवों ने बारहवीं

१. प्रति वैशाखपूर्णिमायां प्रायो विशाखानक्षत्रस्य सम्भवात् ।

—विश्वनाथ चक्रवर्ती की टीका ।

२. पुरतोऽद्य—वृन्दे राधामनुलक्ष्य मानेन विधुनेव मधुरीकृतेयं माधवीया पौर्णमासी ।

—दानकेलीकौमुदी ।

तथा और देखिए—
ललिता—सहस्साहस्सेहिं वुन्दे पहेलिअं दिव्वयाहेलि विप्पणारो ।
णिअमहि विसमहिदस्साए ललिदरज्जइ माहवो भुअणे ॥
वृन्दा—सहि राधानिस्वस्य ।
हरिः—पुनरिदं महं मासपर्यायो माधवराधो ।

—विदग्धमाधव, सप्तम अङ्क

सदी में राधा और कृष्ण की अप्राकृत लीला के रूप में आस्वादन किया। जयदेव के समय में राधा-कृष्ण के युगल रूप से अपने को थोड़ा सा दूर हटाकर लीला-दर्शन, लीला-आस्वादन और लीला का जयगान ही भक्तों की चरम प्रार्थनीय वस्तु बन गई। धर्म के क्षेत्र में जयदेव का स्वर गूँज उठा। लीलामय के माधुर्य की महिमा सब स्थानों पर गाई जाने लगी। मधुररस का घनीभूत विग्रह राधा होने के कारण उसकी प्रतिष्ठा मधुररस के आधार पर होने लगी और इस माधुर्य रूपिणी देवी के कारण भगवान् श्रीकृष्ण भी मधुर दिखाई देने लगें। गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय का प्रचार होने लगा। निंवार्क सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण को परब्रह्म माना गया और लक्ष्मी, श्री आदि के स्थान पर गोपिका राधा को ही कृष्ण की शक्ति माना जाने लगा। श्रीकृष्ण भगवान् को 'रमापति', 'श्रीपति' 'रमामानस हंस', के रूप में मानकर प्रेमदायिनी राधा को उनकी वामांग-विहारिणी माना गया। निंवार्क ने लिखा है– 'वृषभानुनन्दिनी' (राधिका) देवी को स्मरण करता हूँ—जो अनुरूप सौभगा के रूप में (कृष्ण के) वाँये अङ्ग में आनन्द से विराज रही हैं, जो सहस्र सखियों के द्वारा परिसेवित होती हैं और जो समस्त मनः कामनाएँ पूर्ण करती हैं।'[1] ऐश्वर्याधिष्ठात्री लक्ष्मी के स्थान पर प्रेमाधिष्ठात्री इस ब्रज वधू की-प्रेम पात्री होने के कारण-प्रधानता मानी जाने लगी। निंवार्काचार्य के 'प्रातः स्मरण स्तोत्र' में राधा कृष्ण के बारे में वर्णन मिलता है तथा 'कृष्णाष्टक' और 'राधाष्टक' की भी रचना हुई।

सोलहवीं शताब्दी में गौड़ीय वैष्णव मतावलम्वी गोस्वामियों में राधातत्व का विकास हुआ। भक्तराय रामानन्द का चैतन्यदेव से गोदावरी के तीर पर जो विस्तृत विचार हुआ उससे प्रतीत होता है कि दक्षिण देशीय वैष्णवों में राधातत्व प्रचलित था। चैतन्य चरितामृत को देखने से प्रतीत होता है कि दक्षिणात्य भ्रमण के बाद ही महाप्रभु के राधा भाव का सम्यक् विकास हुआ। गौड़ीय वैष्णवों का दार्शनिक मत विशेषकर सनातन गोस्वामी, रूपगोस्वामी और जीवगोस्वामी के संस्कृत ग्रन्थों पर आधारित है। जीवगोस्वामी .. 'श्रीकृष्ण संदर्भ' और 'प्रीति संदर्भ' का राधा तत्व रूप गोस्वामी के 'संक्षेप भागवतामृत' और 'उज्ज्वल नीलमणि' से मिलता है।

श्रीमद्भागवत में परमतत्व के तीन रूप मिलते हैं। जो अद्वय ज्ञान हैं उसी को तत्व कहते हैं। वह अद्वय ज्ञान तत्व ही ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् कहलाता है। 'भग' शब्द का अर्थ ऐश्वर्य है। विविध विचित्र शक्ति ही सारे ऐश्वर्यों को

---

१. निम्बार्क दशश्लोकी–पंचम श्लोक

देती है, इसीलिए पूर्ण विकसित शक्तिमान पुरुष को भगवान् कहते हैं। यही भगवान् परमात्मा के रूप में जीव और जड़ जगत् रूप प्रकृति के संस्रव में प्रतिभात होते हैं। भगवान् केवल स्वरूप शक्ति में ही विलास करते हैं। ब्रह्म और भगवान् गौड़ीय मत में अंश और अंशी समझे जाते हैं। जीव गोस्वामी ने 'भगवत-सन्दर्भ' के सारे विवेचनों के अन्त में भगवान् का वर्णन इस प्रकार किया है— 'जो सच्चिदानंदैकरूप स्वरूप भूत, अचित्यविचित्र, अनन्तशक्तियुक्त हैं, जो धर्म होकर भी धर्मी हैं, निर्भेद होकर भी भेदयुक्त हैं, अरूपी होकर भी रूपी हैं, व्यापक होकर भी परिच्छिन्न हैं, जो परस्पर विरोधी अनन्त गुणों के निधि हैं, जो स्थूल सूक्ष्म विलक्षण स्वप्रकाशाखण्ड स्वरूपभूत श्री विग्रह हैं, स्वानुरूपास्वशक्ति की आविर्भावलक्षणा लक्ष्मी के द्वारा जिनका वामांश रंजित है, जो स्वप्रभा विशेषाकाररूप परिच्छद और परिकर-सहित निजधाम में विराजमान हैं, जो स्वरूपशक्ति के विलासरूप अद्भुतगुणलीलादि द्वारा आत्माराम मुनिगणों के चित्त को भी लीलारस से चमत्कृत करते हैं, जो स्वयं सामान्य प्रकाशाकार में ब्रह्मतत्व के रूप में अवस्थित हैं, जो जीवाख्यतटस्थाशक्ति के और जगत्-प्रपंच के मूलीभूत मायाशक्ति के आश्रय हैं, वही भगवान् हैं।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि एक ही अद्वय-अखंड परमतत्व के शक्ति प्रकाश से तीन भेद हैं। ब्रह्मावस्था में इन शक्तियों का अस्तित्व और लीला विचित्रता कुछ अनुभव में नहीं आती। भगवान् जीवशक्ति और मायाशक्ति से प्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट न होने पर भी उन शक्तियों के मूलाश्रय स्वरूप-शक्ति में लीलामग्न रहते हैं। परमात्मा का सीधा सम्बन्ध स्वरूप शक्ति से न होकर जीव शक्ति और माया शक्ति से है। भगवान् की अचिन्त्य अनन्त शक्ति के तीन रूप हैं—अन्तरंगा स्वरूपशक्ति, तटस्था जीवशक्ति और बहिरंगा मायाशक्ति। विष्णुपुराण में शक्ति को परा, क्षेत्रज्ञा और अविद्या कहा है। स्वरूप शक्ति प्रकृति से परे अप्राकृत नित्य गोलोक धाम की वस्तु है। जीव तथा माया शक्ति दोनों ही प्रकृति के वश में होने के कारण प्राकृतिक शक्ति हैं। जीव शक्ति और माया शक्ति का संस्रव भगवदंश पुरुष परमात्मा से होने के कारण भगवान् से इनका परोक्ष सम्बन्ध है। भगवान् की इस अनन्त शक्ति को त्रिविधा न कहकर चतुर्विधा भी कह सकते हैं। स्वाभाविक अचिन्त्य शक्ति के द्वारा एक ही परम तत्व प्रथमतः सर्वदा स्वरूप में, द्वितीयतः तद्रूपवैभव में, तृतीयतः जीव में, और चतुर्थतः प्रधान या प्रकृति में अवस्थान करता है। जिस प्रकार सूर्य प्रथमतः अन्तर्मण्डल के तेज रूप में, द्वितीयतः अन्तर्मण्डल के संलग्न तेजोमण्डल के रूप में, तृतीयतः मण्डल से निकलने वाली रश्मि के रूप में और चतुर्थतः उसकी प्रतिच्छवि के रूप में अवस्थान करता है उसी प्रकार सूर्य के अन्तर्मण्डल के तेज के अनुरूप

परमतत्व के स्वरूप का अवस्थान, मंडल तद्रूपवैभव के रूप में अवस्थान, जीव मंडल बहिर्गत रश्मि के रूप में और जगत् प्रतिच्छबि के रूप में अवस्थान है।[1]

'परमतत्व के इस चतुर्धा अवस्थान के अन्दर से हमें परमतत्व की त्रिविधा शक्ति की बात मालूम हुई। स्वरूप-शक्त्याख्या अंतरंगा शक्ति के द्वारा वे पूर्ण-भगवान् के स्वरूप में और वैकुण्ठादि स्वरूप-वैभव के रूप में अवस्थान करते हैं, रश्मि स्थानीय तटस्था शक्ति के द्वारा 'चिदेकात्मशुद्ध-जीव' के रूप में और मायाख्या वहिरंगा शक्ति के द्वारा प्रतिच्छविगत वर्णशावल्यस्थानीय वहिरङ्गवैभव जड़ात्म-प्रधान, (प्रकृति) के रूप अवस्थान करते हैं,'[2] पुराणादि में कथित भगवान् की 'अपरा' शक्ति माया को गौड़ीय वैष्णवों ने 'तदयाश्रया' शक्ति कहा है। अन्तरङ्गा स्वरूप शक्ति श्रीभगवान् की पटरानी की भाँति और बहिरङ्गा मायाशक्ति बहिर्द्वार-सेविका-दासी की भाँति है। जीवगोस्वामी ने भागवत-पुराण के 'ऋतेऽर्थयत् प्रतीयेत' आदि श्लोक की व्याख्या करते हुए कहा है—'परमार्थ-स्वरूप मेरे सिवा ही जो प्रतीत होता है, मेरी प्रतीति से जिसकी प्रतीति का अभाव है, मेरे बाहर ही जिसकी प्रतीति है—अगर अपने आप जो प्रतीत नहीं हो सकता है—अर्थात्, मदाश्रयत्व के बिना जिसकी कोई स्वतः प्रतीति नहीं है—वही मेरी माया है—जीवमाया और गुणमाया।'

वैष्णव गण परिणामवादी हैं क्योंकि जीव और जगत् को विवर्त न बताकर ब्रह्म का ही परिणाम बताते हैं। सृष्टि आदि लीलात्रयी की सत्यता है, ईश्वर का सत्य संकल्प, सत्य परायण परिणाम होने के कारण वह भ्रम और मिथ्या न होकर सत्य है।[3] चित् और अचित्, जीव और जड़ जगत् दोनों ही ब्रह्म की मायाशक्ति की सृष्टि हैं परन्तु गौड़ीय वैष्णव जीव सृष्टि का अवलम्बन करने वाली भगवान् की शक्ति को पृथक् विशेष शक्ति मानते हैं। विष्णु पुराण में जीवभूता विष्णु शक्ति को क्षेत्रज्ञाख्या अपरा शक्ति कहा है। गीता के अनुसार भगवान् अपनी प्रकृति को परा और अपरा दो भागों में बाँटते हैं। जीव शक्ति को स्वरूप शक्ति और बहिरङ्गा माया शक्ति दोनों के मध्य की होने के कारण तटस्था शक्ति कहा जाता है। जीव शक्ति असंख्य है जिसके भगवद् उन्मुख और भगवद् विमुख दो वर्ग हैं। भगवद् ज्ञान-

१. एकमेव तत् परमतत्त्वं स्वाभाविकाचिन्त्यशक्त्या सर्वदैव स्वरूपतद्रूपवैभवजीव-प्रधानरूपेण चतुर्धावतिष्ठते। सूर्यान्तर्मण्डलस्थतेज इव मण्डल तद्बहिर्गतरश्मि-तत्प्रतिच्छबिरूपेण। 'भगवत्सन्दर्भ'।

२. राधा का क्रम विकास—शशिभूषणदास गुप्त, पृ० १८९-१९०

३. परमात्म-संदर्भ, ७१

भाव और भगवद् ज्ञान का अभाव इन दोनों वर्गों के कारण हैं। भगवद् उन्मुख जीव वैकुण्ठ में नित्य-भगवत्-परिकरत्व को प्राप्त होता है और भगवद् विमुख जीव माया के द्वारा परिभूत होकर संसारी होता है। जड़तम अज प्रकृति से अथवा केवल अज पुरुष से जीव का जन्म नहीं होता। सोपादिक जीव प्रकृति-पुरुष दोनों के मिलन से उत्पन्न होता है। त्रिगुणात्मिका प्रकृति के अज होने के कारण, शुद्ध जीव रूप पुरुष भी अज है। माया जीव में स्वरूप विस्मृति अथवा जीव-विमोहन उत्पन्न करती है। ईश्वर प्रपत्ति के ही द्वारा माया से छुटकारा मिलता है। माया शक्ति जड़ स्वभावा है और जीव शक्ति चैतन्य स्वभावा है। अणु स्वभाव जीव परमात्मा का रश्मिस्थानीय चित्कण होने के कारण चिच्छक्ति कहा जाता है जो भगवान् की स्वरूप भूता चिच्छक्ति नहीं है। अणु स्वभाव जीव भगवान् का ही अंश है।

भगवान् के ऐश्वर्य और माधुर्य की पूर्णता स्वरूप शक्ति के साथ विचित्र लीला विलास में है। वीर्य, यश: आदि भगवान् के छः गुण स्वरूप शक्ति के ही भिन्न-भिन्न विकास हैं। माया के द्वारा भगवान् भगवद्रूप में परिमित, अनुभूत तथा लक्षित होते हैं इसलिए स्वरूप शक्ति भी भगवान् की माया है। कहा गया है। कि, 'मायाख्या स्वरूप भूता नित्य शक्ति से युक्त होने के कारण विष्णु को भी मायामय कहते हैं।'[1] स्वरूप शक्ति भगवान् की आत्ममाया है जिसका तात्पर्य भगवदिच्छा है और जो 'चिच्छक्ति' है। माया प्रकृति से परे विशुद्ध भगवत्तत्व में स्वरूप शक्ति के अतिरिक्त अन्य कोई शक्ति वृत्ति नहीं है। सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान् के स्वरूप में तीन धर्म मिलते हैं सत्, चित् और आनन्द। इन तीन धर्मों का आश्रय लेकर भगवान् की स्वरूप-शक्ति भी तीन प्रकार की हुई—संधिनी, संवित् और ह्लादिनी। विष्णुपुराण में आया है, "सबके आधारभूत आप में ह्लादिनी (निरन्तर आह्लादित करने वाली) और संधिनी (विच्छेद रहित), संवित् (विद्या शक्ति) अभिन्न रूप में रहती है। आप में (विषय जन्म) आह्लाद या ताप देने वाली (सात्विकी या तामसी) अथवा उभय मिश्रा (राजसी) कोई भी संवित् नहीं है, क्योंकि आप निर्गुण हैं।"[2] यहाँ ह्लादकारी शक्ति का अर्थ सत्व गुणात्मिका शक्ति, तापकारी का अर्थ तामसी शक्ति, मिश्रा का अर्थ राजसी भक्ति है।

---

१. भगवत्-सदर्भ में उद्धृत 'चतुर्वेदशिखा' नाम्नी श्रुति। 'महासंहिता, में कहा गया है—'आत्ममाया तदिच्छास्यात्'।

२. ह्लादिनी सन्धिनी संवित्त्वय्येका सर्वसंस्थितौ।
ह्लादतापकरी मिश्रा त्वयि नो गुणवर्जितं॥ १–१२–६९
विष्णुपुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर

भगवान् के सत्, चित् और आन्दांश पर ही संधिनी, संवित् और ह्लादिनी शक्तियाँ आश्रित हैं। संधिनी शक्ति मत्ता अर्थात् सत्ताकारी, संवित-विद्याशक्ति और ह्लादिनी-आह्लादकरी शक्ति है। ह्लादिनी शक्ति के द्वारा भगवान् स्वयं ह्लादक रूप होकर आह्लादित होते और दूसरों को आह्लादित करते हैं। संधिनी के द्वारा सत्ता रूप होकर भगवान् सत्ता धारण करते और धारण कराते हैं, संवित् शक्ति के द्वारा भगवान् ज्ञान रूप होकर स्वयम् जानते और दूसरों को जनाते हैं। सत्ता के परम उत्कर्ष से संवित के पाये जाने के कारण संधिनी से संवित् प्रधाना है और संवित् के चरम उत्कर्ष के द्वारा ही आनन्दानुभूति होने के कारण ह्लादिनी शक्ति सर्वश्रेष्ठ है।

स्वरूपभूता मूल शक्ति के अन्दर जब स्वप्रकाशतालक्षणवृत्ति विशेष के द्वारा जब भगवान् के स्वरूप का आविर्भाव होता है तो उसे विशुद्ध सत्व कहते हैं जिसे त्रिगुणात्मिका माया का स्पर्शाभाव होता है। विशुद्ध सत्व में संधिनी अंश प्रधान होने पर 'आधार-शक्ति', संविद् अंश प्रधान होने पर 'आत्म-विद्या', ह्लादिनी-सारांश प्रधान होने पर 'गुह्या-विद्या' और एक ही साथ तीनों शक्तियों की प्रधानता होने पर श्री आदि का प्रादुर्भाव होता है जो सम्पद्-रूपिणी हैं। अनन्तवृत्तिकाया स्वरूप-शक्ति ही भगवद्वामांशवर्तिनी लक्ष्मी हैं। भगवान् स्वरूप भूता अंतरंगा महाशक्ति ही महालक्ष्मी हैं। श्री आदि उसी महालक्ष्मी की वृत्तिरूपा हैं। श्रीशक्ति के अप्राकृत और प्राकृत भेद से दो रूप हैं। महालक्ष्मी के संधिनी, संवित् और ह्लादिनी तीन भेद हैं। भगवान् की स्वरूप शक्ति के अन्दर स्वप्रकाशतालक्षण वृत्ति विशेष है जो कि विशुद्ध सत्त्व है, जिससे भगवान् श्रीकृष्ण के धाम, परिकर, सेवकादि रूप वैभव का विस्तार होता है। इस स्वरूप वैभव के अन्तर्गत ही लीला-पार्षदगण हैं इसी के साथ श्रीकृष्ण का लीला-वैचित्र्य होता है। इस वैभव में प्रथम धाम तत्त्व हैं। भगवान् और उनका धाम एक है और वैकुण्ठादि धाम उनके स्वरूप के शुद्ध सत्त्वमय विस्तार हैं। भगवद्-धाम भी भगवान् के समान् नित्य हैं। समस्त धामों में उच्च गोलोक है जिससे गोकुल बना है। अप्रकट गोकुल और प्रकट गोकुल एक हैं। श्रीकृष्ण की अनन्त अचिन्त्य शक्ति से प्रकट और अप्रकट धाम तथा लीला का विस्तार होता है। श्रीकृष्ण की लीला-विचित्रता के अनुसार कृष्णलोक के द्वारका, मथुरा और वृन्दावन तीन प्रकाश हैं। तीनों धामों में भगवान् की लीला भी तीन प्रकार की हैं और परिकरादि भी तीन प्रकार के हैं। धाम के अनुसार ही अप्रकट धाम में यमुनादि नदियाँ, कुंज-निकुंज, कदम्ब-अशोक, गोप-गोपी, धेनु-वत्स, शुक-सारी आदि हैं। द्वारका-मथुरा में यादवगण ही कृष्ण के लीला-परिकर हैं और वृन्दावन लीला में गोप-गोपीगण ही नित्य परिकर हैं।

भगवान् स्वरूप में रसमय हैं। स्वरूप-शक्ति के अन्दर की ह्लादिनी-शक्ति इस रसमयता का कारण है। ह्लाद स्वरूप भगवान् को आह्लादित करना तथा दूसरों को ह्लाददान करना आह्लाद शक्ति के दो काम हैं। इसका जीव कोटि और भगवान् कोटि दोनों में प्रवेश है। ह्लादिनी भगवान् को लीला रस के दान के द्वारा रसमय करती है और जीवन कोटि में प्रवेश करके भक्त के हृदय में विशुद्धतम आनंद का विधान करती है। जीव का भगवान् की ओर उन्मुख होकर आनन्द प्राप्त करना ही भक्ति है। ह्लादिनी भगवान् में रसरूपिणी और भक्त के हृदय में भक्ति-रूपिणी है। राधा स्वरूप शक्ति की सार-भूता, ह्लादिनी शक्ति की भी सार हैं। वह नित्य प्रेमस्वरूप की प्रेम-स्वरूपिणी है। वह प्रेमदात्री भी हैं। राधा श्रीकृष्ण में ह्लादिनी शक्ति के रूप में अवस्थान करती है। ह्लादिनी शक्तिका कण जीव के भीतर गिरकर उसे भक्ति से आप्लुत करने के कारण राधा भगवान् की प्रेमकल्पलता और भक्त की भी प्रेमकल्पतरु कहलाती है।[1] भगवान् की स्वरूप शक्ति लक्ष्मी या महालक्ष्मी भगवान् के ऐश्वर्य, कारुण्य, माधुर्य आदि की आधार हैं। ह्लादिनी शक्ति समस्त शक्तियों में श्रेष्ठ है और उसकी विग्रह राधिका ही कृष्ण की शक्तियों में श्रेष्ठ है। लक्ष्मी की परिणति गोपियों तथा राधिका के रूप में हुई जिनमें राधिका श्रेष्ठ है। गोलोक कृष्णधाम में लक्ष्मी की प्रतिमूर्ति रुक्मिणी का अवस्थान द्वारका-मथुरा में है। सर्वोत्तम धाम व्रजभूमि या वृन्दावन में राधा गोपियों के साथ वास करती हैं। वृन्दावन की व्रज देवियाँ भगवान् की स्वरूप-शक्ति-प्रादुर्भाव रूपा होने के कारण 'वृन्दावन-लक्ष्मी' है।[2] व्रजवधुएँ ह्लादिनी की रहस्य लीला में प्रवर्त्तक हैं। राधिका का स्वरूप 'प्रेमोत्कर्ष पराकाष्ठा' मय है क्योंकि 'परममधुर प्रेमवृत्तिमयी' व्रज गोपियों में वे सर्वांशोद्रेकमयी है। उनमें लक्ष्मीत्व है। भगवत् शक्ति के रूप में सर्वश्रेष्ठ राधिका में शक्ति तत्व ही नहीं है। वे सत्य और नित्य-निग्रहवती भी हैं।

प्रेम पराकाष्ठा में मिलित यह जो अप्राकृत वृन्दावन-धाम का युगल रूप है वही भक्तों के लिए आराध्यतम वस्तु है। इस वृन्दावन में श्रीकृष्ण और राधा नित्य-किशोर-किशोरी हैं, नित्य किशोर-किशोरी की यह नित्य-प्रेम लीला ही एक

---

१. कृष्णकेर आह्लादे ताते नाम ह्लादिनी।
सेइ शक्तिद्वारे सुख आस्वादे आपनि॥
सुखरूप कृष्णकेर सुख आस्वादन।
भक्त गणे सुख दिते ह्लादिनी कारण॥ चरितामृत (मध्य–८ अ)

२. श्रीकृष्ण सन्दर्भ।

मात्र आस्वाद्या है। कहा जा सकता है कि दोनों एक होकर भी लीला के बहाने दो हैं—अभेद में ही भेद है। अचिन्त्य शक्ति के बल से ही इस अभेद में लीला विलास से भेद है यही अचिन्त्य भेदाभेद है।'[1]

कृष्ण की पूर्णरस स्वरूपता ह्लादिनी शक्ति के सहारे दूसरे के अन्दर प्रेम-भक्ति का संचार करती है। ह्लादिनी का जितना संचार जिसके अन्दर होता है वह उतना ही भक्त होता है। स्वयं पूर्ण ह्लादिनी रूपा होने के कारण राधिका में प्रेम भक्ति की प्रकाश-पराकाष्ठा है और वे कृष्ण की सर्वश्रेष्ठ भक्त हैं। ह्लादिनी शक्ति संवित्-शक्ति का ही चरमोत्कर्ष होने के कारण कृष्ण प्रेम चिद्वस्तु और चिदानन्द-स्वरूप है।

असमोर्ध्वचमत्कार के द्वारा उन्मादक होने पर अनुराग महाभाव रूप में परिणत हो जाता है[2] जो कि राधिका का स्वरूप है। राधिका के अतिरिक्त और किसी में प्रेम-निर्यास रूप में महाभाव की पराकाष्ठा संभव न होने के कारण ये प्रेम पराकाष्ठा रूपिणी हैं। व्रज की गोपियों को महाभाव का अधिकार है परन्तु राधिका प्रेम-वृन्दावन की वृन्दावनेश्वरी हैं और महाभाव का पराकाष्ठा रूप 'अधिरूढ़ महाभाव' इनमें ही है। राधिका में कृष्ण-सेवा, कृष्ण-परानिष्ठा, कृष्ण में सम्भ्रम मुक्त परम स्वजनभाव और समभाव तथा कृष्ण में ममताधिक्य आदि वृत्तियों और चेष्टाओं की अवधि है। प्रेम-प्रकाश की विशेष सीमा होने के कारण राधिका में श्रीकृष्ण के सारे रसमयत्व की अनुभूति और आस्वादन की परम स्फूर्ति है।

परतत्त्व नित्य 'पराख्य-स्वरूपशक्ति-विशिष्ट है। यह परमतत्त्व-स्वप्राधान्य से स्फूर्ति पाने पर पुरुषोत्तम और पराख्य शक्ति के प्राधान्य के कारण स्फूर्ति पाने से धर्मादि संज्ञा पाता है। शशिभूषणदास गुप्त लिखते हैं, 'पराक्ति ही भगवान् के ज्ञान-सुख-कारूण्य-ऐश्वर्य आदि के माधुर्य-धर्मरूपा होकर स्फुरित होती है। वह शक्ति ही शब्दाधार में नाम रूपा, धरादि-आकार में धामरूपा होकर प्रकट होती है, और वही पराशक्ति 'ह्लादिनो सार-समवेत-संविदात्मक' अर्थात् ह्लादिनी का सार घनीभूत होकर जिस गहरे संवित् को उत्पन्न (करता है वही संवेदात्मक) युवतीरत्न के रूप में श्रीराधादि के अन्दर विग्रहवती होती है। इसलिए शक्ति और शक्तिमान् रूप राधा-कृष्ण का अभेद सत्य होने पर भी अखण्ड अद्वय-स्वरूप के अन्दर 'विशेष विजृम्भित' भेद कार्य के द्वारा राधादि रूप विभाव का वैलक्षण्य विभाजित होने पर ही शृङ्गाराभिलाष सिद्ध होता है। पराशक्ति की यह जो राधादि के रूप में

१. राधा का क्रम विकास—शशिभूषणदास गुप्त, पृ० २०१

२. अनुराग एवासमोर्ध्वचमत्कारेणोन्मादको महाभावः। —श्रीकृष्ण सन्दर्भ

इस प्रकार किया है, 'इस पुरुष का शरीर शुद्ध प्रेम है और इसके इन्द्रिय, मन तथा आत्मा भी शुद्ध प्रेम ही हैं। इस पुरुष का शरीर ही श्री वृन्दावनधाम है। इन्द्रियाँ सखी परिकर हैं, मन श्रीकृष्ण हैं और आत्मा श्रीराधा हैं। इस प्रकार चारों मिलकर एक ही हित पुरुष हैं।'[1]

'राधा श्रीहरि कृपा रूपी गुप्त-गंगा की सदा बहने वाली धारा है। इसीलिए इसे गुप्ती, गोपनीया अथवा गोपी कहते हैं। इसका उत्तम स्थान जीव मात्र का हृदय है। यह आह्लादिनी शक्ति हृदय-कमल पर ही प्रतिष्ठित है। सच्चिदानन्द से उसकी जोड़ी मिली हुई है कि वहाँ पृथकत्व सम्भव नहीं है। जैसे 'र' कार में 'अ' कार मिला हुआ है। 'र' कार श्रीहरि हैं और 'अ' कार आह्लादिनी शक्ति। जब मनुष्य की आँख की पुतली भीतर को खुलती है, तब पहली दृष्टि हृत्कमल पर अंकित एवं सहस्रार के 'म' कार से सम्बन्धित और संपुटित इसी 'रा' पर पड़ती है। दृष्टि और दृश्य के समन्वय को राधे कहते हैं।'[2]

श्री वृन्दावन को देह, श्रीकृष्ण को मन, इन्द्रियों को सखी परिकर और राधा को प्राणात्मा भी कहा जाता है, श्री किशोरीशरण अलि ने 'रस-भक्ति' का विवेचन करते हुए लिखा है, 'श्रुतियों से अगोचर, श्री ब्रह्मा, शिव, शुक और सनकादिकों से अलक्ष्य जो 'रस' कभी नन्दनन्दन और वृषभानुनन्दिनी नाम से ब्रज में अवतीर्ण हुआ था, वह परात्पर रस ही इस अभिनव धारा का परमोपास्य है, जो कि प्रकृत्या क्रीड़ाप्रिय होने के कारण क्रीड़ार्थ अपनी प्राणात्मा को राधा, मन को श्रीकृष्ण, देह को श्री वृन्दावन और इन्द्रियों को सखी बताकर नित्य किशोर वपु से ही श्री वृन्दावन में ही अनादि काल से नित्य क्रीड़ा किया करता है।'[3]

१. श्रीराधा रहस्य—आचार्य हितरूपलालजी गोस्वामी,
—श्रीकृष्णांक-गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ० ४८३

२. श्रीराधे-महात्मा श्री बालकरामजी विनायक-राधांक, पृ० ३३

३. श्रीहितराधावल्लभीय—साहित्य रत्नावली की भूमिका-किशोरीशरण अलि

तृतीय-अध्याय

संस्कृत साहित्य में राधा का स्वरूप

* वैदिक साहित्य में राधा
* पुराण साहित्य में राधा
* तन्त्र शास्त्र में राधा
* संस्कृत साहित्य में राधा

तृतीय-अध्याय

संस्कृत साहित्य में राधा का स्वरूप

वैदिक साहित्य में राधा—

वेदों में प्रयुक्त हुए शब्दों की व्याख्या विद्वानों ने अनेक प्रकार से की है। कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग भी वेदों में हुआ है, व्याख्याकारों ने जिनका अर्थ अथवा भाव राधा से लगाया है। यजुर्वेद के ३१ वें अध्याय के बाईसवें मन्त्र में लिखा है :—

श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे।
पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् ॥
—शुक्लयजुर्वेद ३१-२२

महीधर ने श्री का अर्थ किया है सम्पत्ति और लक्ष्मी का अर्थ किया है सौन्दर्य, वह वस्तु जिसके द्वारा कोई वस्तु मनुष्यों के द्वारा लक्षित की जाती है (लक्ष्यते दृश्यते जनैः सा लक्ष्मीः। सौन्दर्यमित्यर्थः) वश्य होने के कारण पत्नी कहा गया। जिस प्रकार कोई जाया पति के वश में रहती है, उसी प्रकार सम्पत्ति और सौन्दर्य पुरुष के वश में रहते हैं। हरिव्यास देव ने वेदांत कामधेनु की टीका (सिद्धांत रत्नावली) में श्री का तात्पर्य राधा से लिया है। अर्थात्, विष्णु की दो पत्नियाँ हैं—एक हैं राधा और दूसरी हैं लक्ष्मी। इस प्रकार हरिव्यासदेव के अनुसार 'राधा' का संकेत इस वैदिक मन्त्र में मिलता है। श्री रुक्मिणीजी को लक्ष्मी का अवतार और श्री राधाजी को श्रीजी का अवतार बताया गया है। व्रजभूमि में इसीलिए श्री राधाजी को प्रायः श्रीजी के नाम से पुकारा जाता है। भगवान् कृष्ण के साथ तो साक्षात् राधाजी का नाम लिया जाता है। राधाजी की शक्ति 'श्री' के बिना किसी भी अवतार अथवा देवता का नाम पूरा नहीं समझा जाता अतएव हम सभी के साथ श्री शब्द का प्रयोग करते हैं। इस वेद में भगवान् के चार अंश बताये गये हैं जिनमें केवल एक ही से सकल ब्रह्माण्ड व्याप्त है। इसको भगवान् का प्रकृति-पुरुषात्मक स्वरूप कहते हैं।

सामवेद रहस्य में आया है :—

'स एवायं पुरुषः स्वरमणार्थं स्वस्वरूपं प्रकटितवान् तद्रूपं रस-संवलितं आनन्द रसोऽयं पुराविदो वदन्ति सर्वे आनन्द-रसा यस्मात्प्रकटिता भान्ति।

अर्थात् इस पुरुष ने अपने रमण के लिए अपने स्वरूप को प्रकट किया, उस रस संवलित रूप को पुराविद (ज्ञानी) लोग आनन्द रस कहते हैं। सब आनन्द और रस इसी से प्रकट होते हैं। यह पुरुष आनन्द रूप में रमण करने के कारण लोक और वेद में श्री राधा कहकर गाया जाता है।

ऋग्वेद आश्वलायनि शाखा परिशिष्ट श्रुतिः में आया है :—

राधया माधवो देवो माधवेनैव राधिका। विभ्राजन्ते जनेषुवा।

राधा के हेतु से माधव व माधव से ही राधिका विशेष शोभायमान होते हैं।

सामवेद में सामरहस्य लक्ष्मीनारायण संवाद में लिखा है कि :—

अनाद्योऽयं पुरुष एक एवास्ति तदेवं रूपं द्विधा विधाय सर्वान् रसान् समाहरति स्वयमेव नायिकारूपं विधाय समाराधनतत्परोऽभूत् तस्मात् तां राधां रसिकानन्दां वेदविदोवदन्ति, तस्मादानन्दमयोऽयं लोकः। इति।'

(यह सबका आदि कारण पुरुष एक ही है। इस प्रकार उस रूप को दो प्रकार वाला करके सब रसों को समाहार करता है अर्थात् प्रकाशित करता है। स्वयं ही शृङ्गार प्रदर्शिनी नायिका रमणी का रूप करके उस नायिका के समाराधन में अर्थात् मानादि लीला के समय सेवन में तत्पर परायण हुआ। वेदों के जानने वाले उस कारण से उस नायिका राधा को प्रेमामृत रस के स्वाद लेने में कुशल, रसिकों के आनन्द देने वाली कहते हैं। उस कारण से यह लोक-गोलोक आनन्द मय है।)

वेद में 'राधस्' शब्द का प्रचुर प्रयोग हुआ है। यह शब्द नाना विभक्तियों में प्रयुक्त हुआ है :—

सञ्चोदय चित्रमर्वाग् राध इन्द्र वरेण्यम् असदित् ते विभु प्रभु। (१।९।५)
यस्य सह्यवर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः। (२।१२।१४)
सखाय आनिषीदत सविता स्तोम्यो नु नः दाता राधांसि शुम्भति। (१।२२।८)

यह शब्द अपने तृतीयान्त 'राधसा' रूप में अनेकत्र प्रयुक्त है। (१।४८।१४; ३।१०।२०; ४।५५।१०; १०।२३।१ आदि)। चतुर्थ्यन्त 'राधसे' भी बहुशः उपलब्ध होता है—१।१७।७; २।४।१६; ४।२०।२; ५।३५।४; १०।१७।१३ आदि। षष्ठयन्त

'राधस्' का भी प्रचुर प्रयोग मिलता है—१।१५।५, ४।२०।७, ६।४४।५, १०।१४०।५ आदि। 'राधसाम्' षष्ठी बहुवचन का प्रयोग एक स्थान पर हुआ है (८।९०।२) तथा सप्तम्यन्त 'राधसि' का भी एक बार ऋग्वेद में प्रयोग हुआ है (४।३२।३१)।

'निघण्टु में 'राधः' शब्द धन नाम में पठित है (२।१०)। यह शब्द **'राध् साध ससिद्धौ' से असुन् प्रत्यय** जोड़ने से निष्पन्न होता है, इसलिए स्कंद स्वामी ने इस पद का अर्थ इस प्रकार किया है – वह वस्तु, जो धर्म आदि पुरुषार्थों को सिद्ध करता है—(सद्नुवन्ति साध्नुवंति धर्मादीन् पुरुपार्थानिति स्कंद स्वामी) सकारान्त होने के अतिरिक्त यह आकारान्त भी है। इस प्रकार राधा शब्द का प्रयोग दो मन्त्रों में हुआ है :—

१. स्त्रोत्रं राधाना पते गिर्वाहो वीर यस्यते विभूतिरस्तु सुनृता।

यह मन्त्र ऋग्वेद (१।३०।५) में, सामवेद में तथा अथर्ववेद (२०।४५।२) तीनों वेदों में समान रूप से उपलब्ध होता है।

२. इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते पिबा त्वस्य गिर्वणः।

यह मन्त्र ऋग्वेद के एक स्थल (३।५१।१०) पर तथा सामवेद के दो स्थलों (१६५,७३७) पर प्रयुक्त हुआ है। यह दोनों मन्त्रों में राधानां पते' इसी रूप में प्रयुक्त हुआ है और दोनों स्थानों पर यह इन्द्र के विशेषण के रूप में आया है।

पं० बलदेव उपाध्याय राधा शब्दके सम्बन्ध में लिखते हैं:–'मेरी दृष्टि में 'राधः' तथा 'राधा' दोनो की उत्पत्ति 'राध् वृद्धौ' धातु से है, जिसमें 'आ' उपसर्ग जोड़ने पर 'आराध्यति' धातुपद बनता है। फलतः इन दोनों शब्दों का समान अर्थ है आराधना, अर्चना, अर्चा। 'राधा' इस प्रकार वैदिक राधः या राधा का व्यक्तिकरण है। राधा पवित्र तथा पूर्णतम आराधना की प्रतीक है। 'आराधना' की उदात्तता उसे प्रेम पूर्ण होने से है। जिस आराधना या अर्चना में विशुद्ध प्रेम नहीं झलकता, जो उदात्त प्रेम के साथ नहीं सम्पन्न की जाती, क्या वह कभी सच्ची 'आराधना' कहलाने की अधिकारिणी होती है? कभी नहीं। इस प्रकार राधा शब्द के साथ प्रेम के प्राचुर्य का, भक्ति की विपुलता का, भाव की महनीयता का सम्बन्ध कालान्तर में जुटता गया और धीरे-धीरे राधा विशाल प्रेम की प्रतिमा के रूप में साहित्य और धर्म में प्रतिष्ठित हो गई।'[1]

उपर्युक्त मन्त्रों में इन्द्र 'राधानां पते' नाम से सम्बोधित किये गये हैं। इसलिए वेद में वे ही 'राधापति' हैं। कालान्तर में जब इन्द्र का प्राधान्य विष्णु के

१. भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा—पं० बलदेव उपाध्याय, पृ० ३१

ऊपर हुआ और कृष्ण का विष्णु के साथ सामञ्जस्य हुआ तब कृष्ण का राधापति होना स्वाभाविक है।

बृहद् ब्रह्म संहिता—बृहद् ब्रह्म सहिता में राधा और कृष्ण में कोई अन्तर नहीं माना है—

यः कृष्णः सापि राधा या राधा कृष्ण एव सः ॥

अर्थात् जो कृष्ण हैं सोई राधा हैं, जो राधा हैं सोई कृष्ण हैं अर्थात् एक हैं। जितने भगवान् के रूप हैं उतने ही रूप वाली लीला देवी हैं जो लोकों में अनेक नाम से प्रसिद्ध हैं। श्री वृन्दावन में यह राधा नाम से ही प्रसिद्ध हैं।[1] वेदोक्त लीला नाम ही श्री राधिकाजी का व्रज में श्यामा नाम से प्रसिद्ध है।[2] बृहद ब्रह्म संहिता में आया है—

आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभि
स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः।
गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभतो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥४।३७॥

श्रीकृष्ण जीवनधन और वृषभानु नन्दिनी ही राधा हैं। बृहद् ब्रह्म संहिता के द्वितीय पाद के पञ्चमाध्याय में भगवान् नारायण अपनी प्रेयसी महालक्ष्मीजी से वृन्दावन रहस्य वर्णन करते हुए कहते हैं, "हे लक्ष्मीजी मादन रति रूपा परम विशुद्ध प्रेमाशक्ति प्रदान करके रसिकानन्द प्रपन्नों की रक्षा करने वाली कृष्णमयी परादेवता लीला शक्ति केलि विशारदा हैं। इन्हीं के कला के कोटानुकोटि अंश से दुर्गा, सरस्वती, शची प्रभृति त्रिगुणात्मिका शक्तियाँ हैं। जैसे लक्ष्मी तुम्हो हो उसी प्रकार लीलादेवी ही गोपिका हैं। जैसे कोटानुकोटि ब्रह्माण्ड नायक हम नारायण ही कृष्ण हैं उसी प्रकार चेतना चेतनमय सम्पूर्ण त्रिपाद, एक पाद विभूति के कारण लीलादेवी हमारे ही आश्रय से रहने वाली हमारी पराशक्ति हैं।" हे देवी लक्ष्मीजी जैसे हम व्यापक हैं उसी प्रकार हमारी प्राणवल्लभा लीलादेवी भी व्यापिका है पर व्यूह विभव अन्तर्यामी अर्चा प्रभृति जैसा हमारा स्वरूप है उसी प्रकार लीलादेवी को भी समझना चाहिए चेतना चेतनमय सब जगत हम और हमारी शक्ति से व्याप्त है

---

१. यावन्ति मम रूपाणि लीला तावत्स्वरूपिणी।
नानाभिधानैरन्यत्र राधा वृन्दावने वने ॥

२. वैकुण्ठे तु रमा प्रोक्ता अयोध्यायां तु जानकी।
रुक्मिणी द्वारवत्यां तु राधा वृन्दावने वने ॥

वही हमारी शक्ति राधिका गोपी हैं और जन शब्द का अर्थ ललितादि सखीगण है।[1] जीवगोस्वामी ने 'ब्रह्म संहिता' की टीका के श्लोक के निर्दिष्ट वचन को उद्धृत किया है—

राधया माधवो देवो माधवेनैव राधिका।

सनत्कुमार-संहिता—सनत्कुमार संहिता में कृष्ण और राधिका की अभिन्नता स्थापित की गई है—

राधाकृष्णेति संज्ञाख्यं राधिकारूपमङ्गलम्।

राधाकृष्ण इस संज्ञा से युक्त राधिकाजी का रूप मङ्गल है अथवा राधिकाजी के रूप का मङ्गल है। इसके अनुसार कृष्ण को राधिका कहा जा सकता है अथवा राधिका को कृष्ण कहा जा सकता है।

सामरहस्य उपनिषद्—सामरहस्य उपनिषद् में आया है :—

स एवायं पुरुषः स्वयमेव समाराधनतत्परोऽभूत्। तस्मात् स्वयमेव समाराधनमकरोत्॥ अतो लोके वेदे श्रीराधा गीयते।....अनादिरयं पुरुष एक एवास्ति॥ तदेव रूपं द्विधा विधाय समाराधनतत्परोऽभूत्। तस्मात् तां राधां रसिकानन्दां वेदविदो वदन्ति।

'वही पुरुष स्वयं ही अपने आपकी आराधना करने के लिए तत्पर हुआ। आराधना की इच्छा होने के कारण उस पुरुष ने अपने आप ही अपने-आपकी आराधना की। इसलिए लोक एवं वेद में श्री राधा प्रसिद्ध हुई। वह अनादि

---

१. गोपनादुच्यते गोपी श्रीलीला राधिकाभिधा।
देवीकृष्णमयी ज्ञेया राधिका परदेवता॥५०॥
सर्वलक्ष्मी-स्वरूपा च श्रीकृष्णानन्ददायिनी।
अतः सा ह्लादिनी शक्तिर्नानाकेलिविशारदा॥५१॥
तत्कलाकोटि-कोट्यंशा दुर्गाद्या त्रिगुणात्मिकाः
यथा लक्ष्मीस्त्वमेवासौस्तथात्रीलात्र गोपिका॥५२॥
अहं नारायणः कृष्णो ब्रह्माण्डायुतनायकः।
सर्वस्य कारणं लीला सा मय्येव कृताश्रया॥५३॥
यथाहं व्यापको देवि! तथेयं मम वल्लभा।
यथा यथा स्वरूपोऽहं ज्ञेया लीला तथा तथा॥
निश्चिन्त्यमलां सर्वभावाभ्यां पूरिन्तं जगत्।
सेयाहं राधिका, गोपीजनस्तस्याः सखीगणः॥

पुरुष तो एक ही है। किन्तु अनादि काल से ही वह अपने को दो रूपों में बताकर अपनी आराधना के लिए तत्पर हुआ है, इसीलिए वेदज्ञ श्रीराधा को रसिकानन्द रूपा (रसराज की आनन्द मूर्ति) बतलाते हैं।

कृष्णोपनिषद्—श्री कृष्णोपनिषद् में आया है—

वामाङ्ग सहिता देवी राधा वृन्दावनेश्वरी।
सुन्दरी नागरी गौरी कृष्णहृदभृङ्गमंजरी॥

कठवल्ली उपनिषद्—कठवल्ली उपनिषद् में आया है—

"यदापश्यः पश्यन्ति रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।"

रुक्म अर्थात् सुवर्ण के वर्ण (रङ्ग) वाला। अतः राधिकाजी का कनक गौर तेजोमय शरीर है।

श्री राधिकोपनिषद्—श्री राधिकाजी की महिमा तथा उनके स्वरूप को बताने वाला ऋग्वेद का एक राधिकोपनिषद् है। राधिकोपनिषद् गद्य में है। इसमें राधा कृष्ण की परमान्तरङ्गभूता ह्लादिनी शक्ति बताई गयी है। राधा की व्युत्पत्ति राध् धातु से है। इस राधिकोपनिषद् का भाषान्तर इस प्रकार है—"ऊर्ध्वरेता बाल ब्रह्मचारी सनकादि ऋषियों ने भगवान् ब्रह्माजी की उपासना करके उनसे पूछा—'हे देव! परम देवता कौन है? उनकी शक्तियाँ कौन-कौन हैं? उन शक्तियों में सबसे श्रेष्ठ, सृष्टि की हेतुभूता कौन शक्ति है?' सनकादि के प्रश्न को सुनकर श्री ब्रह्माजी बोले—'पुत्रो! सुनो; यह गुह्यों में भी गुह्यतर-अत्यन्त गुप्त रहस्य है, जिस किसी के सामने प्रकट करने योग्य नहीं है। जिनके हृदय में रस हो, जो

'ॐ अथोर्ध्वमन्थिन ऋषयः सनकाद्या भगवन्तं हिरण्यगर्भमुपासित्वोचुः। देव कः परमोदेव; का वा तच्छक्तयः, तासु च का वरीयसी भवतीति सृष्टि हेतुभूता च केलि। सहोवाच 'हे पुत्रकाः श्रणुतेदं हुवाव गुह्याद्गुह्यतरमप्रकाश्यं यस्मै कस्मै न देयम्। स्निग्धाय ब्रह्मवादिने गुरुभक्ताय देयमन्यथादातुर्महदघं भवतीति। कृष्णो ह वै हरिः परमोदेवः षडविधैश्वर्यपरिपूर्णो भगवान् गोपीगोपसेव्यो वृन्दाऽऽराधितो वृन्दवनाधिनाथः स एक एवेश्वरः तस्य ह वै हे तनुर्नारायणोऽखिल ब्रह्माण्डाधिपतिरेकोशः प्रकृतेः प्राचीनो नित्यः एवं हि तस्य शक्तयस्त्वनेकधा। आह्लादिनी सन्धिनी ज्ञानेच्छाक्रिय द्याः शक्तयः तास्वाह्लादिनी वरीयसी परमान्तरङ्गभूता राधा। कृष्णेन् आराध्यते इति राधा। कृष्णं समाराधयति सदेति राधिका गान्धर्वेति व्यपदिश्यत इति अस्या एव कायव्यूहरूपा गोप्यो महिष्यः श्रीश्चेति। ये यं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धिर्देहेनैकः क्रीडनार्थं द्विधाऽभूत। एषा वै हरेः सर्वेश्वरी सर्वविद्या सनातनी कृष्णप्राणाधिदेवीचेति विभक्ते वेदाः

ब्रह्मवादी हों, मुमुक्षु हों—उन्हीं को इसे बताना है; नहीं तो किसी अनधिकारी को देने से महापाप होगा। भगवान् हरि श्रीकृष्ण ही परम देव हैं, वे (ऐश्वर्य, यश, श्री, धर्म, ज्ञान और वैराग्य इन) छहों ऐश्वर्यों से परिपूर्ण भगवान् हैं। गोप-गोपियाँ उनका सेवन करती हैं, वृन्दा (तुलसीजी) उनकी आराधना करती हैं, वे वृन्दावन के स्वामी हैं, वे ही एक मात्र परमेश्वर हैं। उन्हीं के एक रूप हैं—अखिल ब्रह्माण्डों के अधिपति नारायण, जो उन्हीं के अंश हैं, वे प्रकृति से भी प्राचीन और नित्य हैं। उन श्रीकृष्ण की ह्लादिनी, सन्धिनी, ज्ञान, इच्छा, क्रिया आदि बहुत प्रकार की शक्तियाँ हैं। इनमें आह्लादिनी सबसे श्रेष्ठ है। यही परम अंतरङ्गभूता 'श्री राधा' है, जो श्रीकृष्ण के द्वारा आराधिता हैं। श्रीराधा भी श्रीकृष्ण का सदा समाराधन करती हैं, अतः वे राधिका कहलाती हैं। इनको 'गांधर्वा' भी कहते हैं। समस्त गोपियाँ, पटरानियाँ और लक्ष्मीजी इन्हीं की कायव्यूह रूपा हैं। ये श्रीराधा और रस-सागर श्रीकृष्ण एक ही शरीर हैं, लीला के लिए ये दो बन गये हैं। ये श्रीराधा भगवान् श्रीहरि की सम्पूर्ण ईश्वरी हैं, सम्पूर्ण सनातनी विद्या हैं, श्रीकृष्ण के प्राणों की अधिष्ठात्री देवी हैं। एकांत में चारों वेद इनकी स्तुति करते हैं। इनकी महिमा का मैं (ब्रह्मा) अपनी समस्त आयु में भी वर्णन नहीं कर सकता। जिन पर इनकी कृपा होती है, परमधाम उनके करतलगत हो जाता है। इन राधिका को न जानकर जो श्रीकृष्ण की आराधना करना चाहता है, वह मूढ़तम है—महामूर्ख है। श्रुतियाँ इनके निम्नांकित नामों का गान करती हैं—

स्तुवन्ति, यस्या गतिं ब्रह्मभागा वदन्ति। महिमाऽस्याः स्वायुर्मानेनापिकालेन वक्तुं न चोत्सहे। सैव यस्य प्रसीदति, तस्य करतलविकलितं परमं धामेति। एतामवज्ञाय यः कृष्णमाराधयितुमिच्छति, स मूढतमोमूढतमश्चेति। अथ हैतानि नामानि गायन्ति श्रुतयः। राधा रासेश्वरी रम्या कृष्णमन्त्राधिदेवता। सर्वाद्या सर्ववन्द्या च वृन्दावनविहारिणी॥ वृन्दाराध्या रमाऽशेष गोपीमण्डलपूजिता। सत्या सत्यपरा सत्यभामा श्रीकृष्णवल्लभा॥ वृषभानुसुता गोपी मूलप्रकृतिरीश्वरी। गान्धर्वा राधिका रम्या रुक्मिणी परमेश्वरी॥ परात्परतरापूर्णा पूर्णचन्द्रनिभानना। भुक्तिमुक्तिप्रदा नित्य भवव्याधिविनाशिनी॥ इत्येतानि नामानि यः पठेत्स जीवन्मुक्तो भवति। इत्याह हिरण्य गर्भो भगवानिति। सन्धिनी तु धामभूषणशय्यासनादिमित्र भृत्यादिरूपेण परिणता मृत्युलोकावतरण काले मातृपितृरूपेण चाऽभूदित्यनेकावतार कारण ज्ञान शक्तिस्तु क्षेत्रज्ञशक्तिरिति। इच्छान्तर्भूता माया सत्त्व रजस्तमोमयी बहिरङ्गा जगत्कारणभूता संसारविद्या रूपेण जीवबन्धनभूता क्रियाशक्तिस्तु लीलाशक्तिरिति इमामुपनिषद-

१. राधा, २. रासेश्वरी, ३. रम्या, ४. कृष्णमंत्राधिदेवता, ५. सर्वाद्या, ६. सर्ववन्द्या, ७. वृन्दावनविहारिणी, ८. वृन्दाराध्या, ९. रमा, १०. अशेष गोपीमण्डल पूजिता, ११. सत्या, १२. सत्यपरा, १३ सत्यभामा, १४. कृष्ण वल्लभा, १५. वृषभानुसुता, १६. गोपी, १७. मूल प्रकृति, १८. ईश्वरी, १९. गान्धर्वा, २०. राधिका, २१. आरम्या, २२. रुक्मिणी, २३. परमेश्वरी, २४. परात्परतरा, २५. पूर्णा, २६ पूर्णचन्द्रनिभानना, २७. मुक्तिप्रदा, २८. भवव्याधिविनाशिनी।

इन अट्ठाईस नामों का जो पाठ करते हैं, वे जीवन्मुक्त हो जाते हैं—ऐसा भगवान् श्री ब्रह्माजी ने कहा है।

यह तो आह्लादिनी शक्ति का वर्णन हुआ। इनकी संधिनी शक्ति (श्रीवृन्दावन) धाम, भूषण, शय्या तथा आसन आदि एवं मित्र-सेवक आदि के रूप में परिणत होती है और इस मर्त्यलोक में अवतार लेने के समय वही माता-पिता के रूप में प्रकट होती है। यही अनेक अवतारों की कारणभूता है। ज्ञान शक्ति ही क्षेत्रज्ञ शक्ति है। इच्छा-शक्ति के अन्तर्भूत माया है। यह सत्त्व-रज-तमोमयी है और वहिरङ्गा है, यही जगत् की कारणभूता है। यही अविद्या रूप से जीव के बन्धन में हेतु है। क्रिया शक्ति ही लीला शक्ति है।

जो इस उपनिषद् को पढ़ते हैं, वे अव्रती भी व्रती हो जाते हैं। वे वायु से पवित्र एवं वायु को पवित्र करने वाले तथा सब ओर पवित्र एवं सबको पवित्र करने वाले हो जाते हैं। वे श्रीराधा-कृष्ण के प्रिय होते हैं और जहाँ तक उनकी दृष्टि पड़ती है, वहाँ तक सबको पवित्र कर देते हैं। ॐ तत्सत्।"

पं० बलदेव उपाध्याय इन उपनिषदों को अर्वाचीन मानने के पक्ष में हैं, "इनके समय का निर्णय यथार्थ रूप से नहीं किया जा सकता। इनका आविर्भाव-काल १७ वीं शती के अनन्तर ही प्रतीत होता है। यदि ये इस काल से पूर्ववर्ती होते, तो गौड़ीय गोस्वामियों के ग्रन्थों में इनका संकेत तथा उद्धरण अवश्य ही कहीं न कहीं उपलब्ध होता। ऐसे सुस्पष्ट वचनों का उद्धरण न देना आश्चर्य की बात है। फलतः इनकी अर्वाचीनता नितांत स्पष्ट है।"[1]

मधीते, सोऽव्रती व्रती भवति, सर्वतीर्थेषु स्नातो भवति, सोऽग्निपूतो भवति, स वायुपूतो भवति, स सर्वपूतो भवति, राधाकृष्ण प्रियः भवति स यावच्चक्षुः पात पंक्तो पुनाति। ॐ तत्सत् इति श्री श्री महावेदे ब्रह्मभागे परम रहस्ये श्री राधिकोपनिषत् सम्पूर्णम्।

१. भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा—पं० बलदेव उपाध्याय, पृ० २१

राधा तापिनी उपनिषद्—अथर्ववेद में भी एक राधातापिनी उपनिषत् की कल्पना की गई है जिसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इसमें राधिका की प्रशस्त स्तुति है जो सर्वश्रेष्ठ बतलाई गई है। श्रीकृष्ण का उत्कृष्ट प्रेम तथा सातिशय आदर राधा के निमित्त है। यह राधा-तापिनी उपनिषत् इस प्रकार है।

"एक बार ब्रह्मवादी ऋषियों के चित्त में यह तर्क उत्पन्न हुआ कि अन्य उपासकों को छोड़ श्रीराधिका की ही उपासना क्यों की जाती है। उसी क्षण एक तेज का पुञ्ज प्रकट हुआ। वह तेज श्रुतियों का समुदाय ही था ॥१॥ श्रुतियों ने कहा—

सम्पूर्ण उपास्य देवताओं में देवत्व शक्ति श्री राधिकाजी से आविर्भूत होती है अतएव समस्त अविभूत और अधिदेवों की जननी श्री राधाजी को हम सब नमन करती हैं ॥२॥

श्री राधिकाजी की कृपा के लवलेशमात्र से देवता आनन्दित हो-होकर हँसते और नृत्य करते हैं और उनकी भृकुटी के नेक ही वक्र होने पर थर-थर कांपते रहते हैं। अतः हमें किसी प्रकार के दूषण न दबा लेवें, इसी के लिये व्याहृतियों से स्तवन करती हुई हम श्री राधाजी को नमन करती हैं ॥३॥

इन्द्रनील मणियों के समान भगवान् श्रीकृष्ण का श्याम विग्रह भी जिसकी कान्ति से गौर प्रतीत होता है। काकादि जैसे क्रूर कर्मा प्राणी भी जिसकी दृष्टि से पुनीत बन जाते हैं उन विश्व माता श्री राधिकाजी को हम सब नमन करती हैं। ॥४॥

जिनका हम श्रुतियों और सांख्य योग वेदांत भी पार नहीं पा सकते एवं पुराण भी जिसका वर्णन नहीं कर सकते, उस ब्रह्म स्वरूपिणी श्री राधिकाजी को हम प्रणाम करती हैं ॥५॥

ब्रह्मवादिनो वदन्ति, कस्माद्राधिकामुपासते आदित्योऽभ्यद्रवत् ॥१॥ श्रुतयः ऊचुः। सर्वाणि राधिकाया दैवतानि सर्वाणि भूतानि राधिकायास्तां नमामः ॥२॥ देवतायतनानि कम्पन्ते राधाया हसन्ति नृत्यन्ति च सर्वाणि राधादैवतानि। सर्वं पापक्षयायेति व्याहृतिभिर्हुत्वाऽथ राधिकायै नमामः ॥३॥ भासा यस्याः कृष्ण देहोऽपि गौरो जायते देवस्येन्द्रनीलप्रभस्य। भृङ्गाः काकाः कोकिलाश्चापि गौरास्तां राधिकां विश्वधात्रीं नमामः ॥४॥ यस्या अगम्यतां श्रुतयः सांख्ययोगा वेदांतानि ब्रह्मभावं वदन्ति। न यां पुराणानि विदन्ति सम्यक् तां राधिकां देवधात्रीं नमामः ॥५॥ जगद्भर्तुं विश्वसंमोहनस्य श्रीकृष्णस्य प्राणतोऽधिकामपि। वृन्दारण्ये

जगन्नियन्ता विश्व विमोहन श्री नन्दनन्दन की प्राणप्रिया हमारी परमोपास्या शरणागतों को अभय देने वाली श्री राधिका को हम सब प्रणाम करती हैं ॥६॥

प्रेम परायण विश्वम्भर श्रीनन्दनन्दन रासकेलि में जिनकी चरण रज को भी मस्तक पर धर लेते हैं और जिनके प्रेम में अपनी मुरली-लकुट आदि विभूतियों को भी भुला देते हैं, एवं स्वयं बिके हुए से प्रतीत होते हैं, उन श्री राधिकाजी को हम नमन करती हैं ॥७॥

वृन्दावन में जिसकी अद्भुत लीला देखकर चन्द्रमा और देवाङ्गनायें निमग्न होकर अपने शरीरों की सुधि-बुधि भूल जाती हैं, और प्रेमोन्मत्त चर भी अचर की भाँति स्तब्ध बन बैठते हैं उन श्री राधिकाजी को हम प्रणाम करती हैं ॥८॥

भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र जिनकी अङ्करूपी शय्या के आगे सच्चिदानन्द स्वरूप अपने गोलोक का भी स्मरण नहीं करते, लक्ष्मी और पार्वती आदि सभी शक्तियाँ जिसके अंश हैं उस शक्ति सिन्धु श्री राधिकाजी का हम सब प्रणाम करती हैं ॥९॥

सखियाँ स्वर, ग्राम और मूर्च्छनाओं के द्वारा जिसके गुणों का गान करती हैं, और उनके प्रेमवश हो जिसने अपनी एक शक्ति से वृन्दावन में ब्राह्मी रात्रि रची अर्थात् रास विलास की आनन्द सुधा का अविच्छिन्न रूप से पान कराया, उस श्रीराधिकाजी को हम प्रणाम करती हैं ॥१०॥

कभी द्विभुज कृष्ण रूप धारण करके सुन्दर स्वरों पर मृदुल अंगुली रखकर बजाता है और श्री नन्द-नन्दन कुन्द कल्पवृक्ष आदि के पुष्पों से जिनका शृङ्गार करते हैं उन श्री राधिकाजी को हम नमस्कार करती हैं ॥११॥

श्री राधा और कृष्ण दोनों एक ही रस के समुद्र हैं, केवल भक्तों को आनन्द देने वाली लीलाओं के लिए ही दो रूप बने हैं, वस्तुतस्तु ये दो रूप भी देह और

स्वेष्टदेवीं च नित्यं तां राधिकां वरधात्रीं नमामः ॥६॥ यस्य: रेणुं पादयोर्विश्वभर्ता धरते मूर्ध्नि रहसि प्रेमयुक्तः स्रस्तवेणुः कबरीं न स्मरेद्यल्लीनः क्रीतवत्तु तां नमामः ॥७॥ यस्याः क्रीडां चन्द्रमा देवपत्न्यो दृष्ट्वा नग्ना आत्मनो न स्मरन्ति । वृन्दारण्ये, स्थावरा, जंगमाश्च भावाविष्टा राधिकां तां नमामः ॥८॥ यस्या अङ्के विलुठन् कृष्ण देवो गोलोकाख्यं नैव सस्मार धामपदं सांशा कमला शैलपुत्री तां राधिकां शक्तिधात्रीं नमामः ॥९॥ स्वरैः ग्रामैश्च त्रिभिर्मूर्च्छनाभिर्गीता यैर्या सखिभिः प्रेमबद्धा । ब्राह्मीं निशां यात्मनोदैकशक्त्या वृन्दारण्ये राधिकां तां नमामः ॥१०॥ क्वचिद्भूत्वा द्विभुजा कृष्णदेहा वंशीरन्ध्रे वादयामासचक्रे । यस्या गुणां कुन्दमन्दार पुष्पैर्मालां कृत्वानुनयेद्वै वदेवः ॥११॥ येयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धिर्देहश्चैकः क्रीडनार्थं द्विधाऽभूत् । देहो यथा छायया शोभमानः शृण्वन् पठन् याति तद्धाम

छाया के सदृश ही हैं, कभी किसी दशा में भी इनका वियोग नहीं होता, इनके चरित्रामृत को कर्णों द्वारा पीकर भक्तजन विशुद्ध पद की प्राप्ति कर लेते हैं, अर्थात् सदा के लिए अमर बन जाते हैं ॥१२॥

अब इस विद्या की गुरु परम्परा बताते हैं। यह तत्त्व ज्ञान आदित्य से वशिष्ठ को उनसे बृहस्पति को उनसे उनके शिष्य कच इन्द्रादि को प्राप्त हुआ ॥१३॥

पुराण साहित्य में राधा—

ब्रह्म पुराण—संस्कृत में 'प्रिया' राधिका को भी कहा जाता है। उपनिषदों में और पुराणों में इसका प्रमाण मिलता है। इसी के आधार पर ब्रजभाषा में भी श्री राधाजी को 'प्यारी' कहा जाता है। ब्रह्मपुराण के इक्यासी अध्याय के सोलहवें श्लोक में आया है—

सह रामेण मधुरमतीव वनिता प्रियम् ॥
जगौ कमलपादोऽसौ नाम तत्र कृतव्रतः ॥१६॥

पद्मपुराण—राधाकृष्ण सबसे परे, सब में भरे और सर्वरूप हैं। भगवान् शिव देवर्षि नारद से कहते हैं—

देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता।
सर्व लक्ष्मी स्वरूपा सा कृष्णाह्लादस्वरूपिणी ॥
ततः सा प्रोच्यते विप्र ह्लादिनीति मनीषिभिः।
तत्कलाकोटिकोट्यंशा दुर्गाद्यास्त्रिगुणात्मिकाः ॥
सा तु साक्षान्महालक्ष्मीः कृष्णो नारायणः प्रभुः।
नैतयोर्विद्यते भेदः स्वल्पोऽपि मुनिसत्तम ॥
इयं दुर्गा हरो रुद्रः कृष्णः शक्र इयं शची।
सावित्रीयं हरिर्ब्रह्मा धूमोर्णासौ यमो हरिः ॥
बहुना किं मुनिश्रेष्ठ विना ताभ्यां न किंचन।
चिदचिल्लक्षणं सर्वं राधाकृष्णमयं जगत् ॥

(पद्मपुराण पाताल खण्ड ५०।५३ से ५७)

राधा आद्या प्रकृति तथा कृष्ण की वल्लभा है। दुर्गा आदि त्रिगुणमयी देवियाँ उसकी कला के करोड़वें अंश को धारण करती हैं, और उनकी चरण की धूलि के स्पर्शमात्र से करोड़ों विष्णु उत्पन्न होते हैं—

युक्त ॥१२॥ वसिष्ठं च बृहस्पति चार्याणस्यापयति यजमानस्यर्वाहृस्दत्यक्ष्च ॥१३॥
इति अथर्ववेदीय श्री राधिकातापिनी उपनिषद् ॥

तत्प्रिया आद्या प्रकृतिस्त्वाद्या राधिका कृष्णवल्लभा ।
तत्कलाकोटिकोट्यंशा दुर्गाद्या स्त्रिगुणात्मिकाः ॥
तस्या अङ्घ्रिरजः स्पर्शात् कोटिविष्णुः प्रजायते ॥११८॥

—पातालखण्ड अध्याय ६६

राधा का आविर्भाव वृषभानु के यहाँ होता है परन्तु वह न बोलती न सुनती और न चलती-फिरती है। नारद को यह ज्ञान होता है कि भगवान् कृष्ण राधा सहित भूतल पर पधारे हैं। उसके दर्शन की कामना से नारद व्रज में आते हैं। नारद ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वृषभानु के यहाँ पहुँचते है जहाँ वे अपने पुत्र को दिखाते हैं। उसके लक्षणों को देखकर नारद कहते हैं, 'वृषभानु ! सुनो, तुम्हारा यह पुत्र नन्द-नन्दन का, बलराम का प्रिय सखा होगा।' देवर्षि जब चलने को उद्यत हुए तो वृषभानु ने कहा—'भगवन् ! मेरी एक पुत्री है; सुन्दर तो वह इतनी है, मानों सौन्दर्य की खानि कोई देवपत्नी इस रूप में उतर आई हो। पर आश्चर्य यह है कि वह अपनी आँखें सदा निमीलित रखती है। इसलिए हे भगवत्तम ! श्री चरणों में मेरी यह प्रार्थना है कि एक बार अपनी सुप्रसन्न दृष्टि उस बालिका पर भी डालकर उसे प्रकृतिस्थ करदें।' नारद वृषभानु के पीछे २ अन्तःपुर में जाकर देखते हैं—स्वर्णनिर्मित सजीव सुन्दरतम प्रतिमा-सी एक बालिका भूमि पर लोट रही है। नारदजी उसे जग-जननी का रूप जान, वृषभानु को बाहर भेजकर स्तवन करने लगे। देवर्षि की वाणी काँप रही है परन्तु वे स्तवन करते ही जा रहे हैं—

तत्त्वं विशुद्धसत्त्वासु शक्तिर्विद्यात्मिका परा।
परमानन्दसन्दोहं दधती वैष्णवं परम्।
कलयाऽऽश्चर्यविभवे ब्रह्मरुद्रादिदुर्गमे।
योगीन्द्राणां ध्यानपथं न त्वं स्पृशसि कर्हिचित्।
इच्छाशक्तिर्ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिस्तवेशितुः।
तवांशमात्रमित्येवं मनीषा मे प्रवर्त्तते॥
आनन्दरूपिणी शक्तिस्त्वमीश्वरि न संशयः।
त्वया च क्रीडते कृष्णो नूनं वृन्दावने वने॥
कौमारेणैव रूपेण त्वं विश्वस्य च मोहिनी।
तारुण्यवयसा स्पृष्टं कीदृक्ते रूपमद्भुतम्॥

—पद्मपुराण पा० खंड

'देवि ! तुम्हीं ब्रह्म हो; सच्चिदानन्द ब्रह्म के सत्-अंश से स्थित सन्धिनी शक्ति की चरम परिणति-विशुद्ध तत्त्व तुम्हीं हो; विशुद्ध सत्वमयी तुम में ही

चिदंश की संवित् शक्ति, संवित की चरम परिणति विद्यात्मिका पराशक्ति-ज्ञान शक्ति का भी निवास है; तुम्हीं आनन्दांश की ह्लादिनी शक्ति, ह्लादिनी की भी चरम परिणति महाभाव रूपिणी हो; आश्चर्यवैभवमयि ! तुम्हारी एक कला का भी ज्ञान ब्रह्म-रुद्र तक के लिए कठिन है, फिर योगीन्द्रों के ध्यान-पथ में तो तुम आ ही कैसे सकती हो ? मेरी बुद्धि तो यह कह रही है कि इच्छा शक्ति, ज्ञान शक्ति, क्रिया शक्ति—ये सभी तुम ईश्वरी के अंश मात्र हैं।...श्रीकृष्ण की आनन्द रूपिणी शक्ति तुम्हीं हो, तुम्हीं उनकी प्राणेश्वरी हो—इसमें कोई संशय नहीं; तुम्हारे ही साथ निश्चय श्रीकृष्णचन्द्र वृन्दावन में क्रीड़ा करते हैं। ओह देवि ! जब तुम्हारा कौमार रूप ही ऐसा विश्व मोहन है, तब वह तरुणरूप कितना विलक्षण होगा।'

नारद ने फिर श्रीकृष्ण की स्तुति की जिसे सुनकर कन्यारूप राधा ने चौदह वर्ष की किशोरीरूप से नारद को दर्शन दिए उसी समय अन्य दिव्य भूषण-वसन से सज्जित अगणित सखियाँ भी वहाँ प्रकट हो जाती हैं। श्रीराधा को घेर लेती हैं। उस रूप एवं सौन्दर्य को देखकर नारद के नेत्र निमेष शून्य एवं अङ्ग निश्चेष्ट हो जाते हैं, मानों वे सचमुच अन्तिम अवस्था में जा पहुँचे हों।

राधाचरणाम्बु-कणिका का स्पर्श कराकर एक सखी देवर्षि को चैतन्य करती है और कहती है—'मुनिवर्य !' अनन्त सौभाग्य से श्रीराधा के दर्शन तुम्हें हुए हैं। महाभागवतों को भी इनके दर्शन दुर्लभ हैं। देखो, ये अब तुम्हारे सामने से फिर अन्तर्हित हो जायगी, प्रदक्षिणा करके नमस्कार कर लो। जाओ गिरिराज-परिसर में, कुसुम सरोवर के तट पर एक अशोकलता फूल रही है, उसके सौरभ से वृन्दावन सुवासित हो रहा है, वहाँ उसके नीचे हम सबको अर्द्ध रात्रि के समय देख पाओगे....।

श्रीराधा का वह कैशोर रूप अंतर्हित हो गया। बालक रूप से रत्न पालने पर वे पुनः प्रकट हो गईं।

इसी खण्ड के चौहत्तरवें अध्याय में इसी अध्यात्म पक्ष की रासलीला की कथा है जहाँ उन्होंने राधा के शौर्य और रूप के दर्शन किये।

पद्मपुराण के खण्ड अध्याय ७३ और ८२ में ब्रह्म के स्वरूप का बहुत सुन्दर निरूपण श्रुतियों के मार्ग की व्याख्या करते हुए किया गया है। अध्याय ७३ में व्यासजी के इस प्रश्न पर कि उपनिषदों में जिस सत्य परब्रह्म का प्रतिपादन किया गया है, जिसको वेदों ने कहीं प्रकृति, कहीं पुरुष और कहीं शून्य कहकर अनेक प्रकार से वर्णन किया है, आपका वह वास्तविक स्वरूप कौनसा है, भगवान् ने उन्हें वृन्दावन और उसमें श्री राधाकृष्ण के दर्शन कराये हैं।

पद्मपुराण में राधाकुण्ड के महात्म्य का वर्णन है ।[1] उसमें राधाष्टमी का भी वर्णन मिलता है । राधाष्टमी के व्रत के सम्बन्ध में लिखा है कि राधाष्टमी व्रत में रत वे वैष्णव जानने योग्य हैं ।[2]

धर्मवृद्धि और अधर्म के ह्रास के निमित्त जब श्रीकृष्ण का आविर्भाव ब्रज में हुआ उसी समय उनकी विभूतियाँ भी पृथ्वी पर पधारीं । उनमें प्रधान श्रीराधा थीं । भाद्रपद शुक्ला अष्टमी को आपका प्रादुर्भाव हुआ ।[3] उस दिन व्रत करना, श्री राधिकाजी का पूजन करना, गान वाद्य नृत्य आदि अभिनय करना चाहिए । हजार एकादशी व्रतों से भी सौगुना फल राधाष्टमी के व्रत का है । सुमेरू समान सुवर्ण के दान से भी अधिक राधाष्टमी के व्रत का फल है ।[4] श्री वृषभानु गोप यज्ञ के लिए भूमि में हल जोत रहे थे उस समय आप (सीताजी की भाँति) धरती से प्रकट हुई थीं ।[5] पद्मपुराण में आया है कि यद्यपि श्री ब्रज सुन्दरीगण सब ही प्रेम मूर्ति एवं प्रेम विभाजित हैं तथापि श्री स्वामिनीजी उन सब में सर्वोत्तमा हैं अर्थात् रूप, गुण, सौभाग्य एवं प्रेम में सर्वश्रेष्ठा हैं । ७० वें अध्याय में राधा मूल प्रकृति बतलाई गई हैं और उस प्रकृति की अंश रूपिणी नाना गोपियों का उल्लेख है, जो उसके स्वर्ण सिंहासन के आस-पास रहती हैं । इसी खण्ड के ७७ वें अध्याय में राधा विद्या तथा अविद्या-रूपिणी, परा, त्रयी, शक्ति रूपा, माया रूपा, चिन्मयी, देवत्रय की उत्पादिका तथा वृन्दावनेश्वरी बतलाई गई है । जिसका आलिंगन कर वृन्दावनेश्वर सर्वदा आनन्दमग्न रहते हैं—

---

१. यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं तथा प्रियम् ।। —पद्मपुराण का महात्म्य

२. राधाष्टमी व्रतरता विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः राधाष्टमी व्रत माहात्म्य ।
—पद्मपुराण ब्रह्मखंड अध्याय १, श्लोक ३१

३. भाद्रे मासि सिताष्टम्यां जाता श्रीराधिका यतः ।
अष्टमी साऽद्य संप्राप्ता तां कुर्वा (र्या) म प्रयत्नतः ।।२१
—तृतीय ब्रह्मखण्डम्, अध्याय ७

४. एकादश्याः सहस्रेण यत्फलं लभते नरः ।
राधा जन्माष्टमी पुण्यं तस्माच्छतगुणाधिकम् ।।८।।
मेरुतुल्यसुवर्णानि दत्त्वा यत्फलमाप्यते ।
सकृद्राधाष्टमीं कृत्वा तस्माच्छतगुणाधिकम् ।।९।। वही, अध्याय ७

५. भाद्रे मासि सिते पक्षे अष्टमीसंज्ञके तिथौ ।
वृष भानोर्यज्ञभूमौ जाता सा राधिका दिवा ।।३९।।
—तृतीय ब्रह्मखण्डम् सप्तम अध्याय

तासां मध्ये तु या देवी तप्तचामीकरप्रभा ॥१३॥
द्योतमाना दिशः सर्वाः कुर्वती विद्युदुज्ज्वलाः ।
प्रधानं या भगवती यया सर्वमिदं ततम् ॥१४॥
सृष्टिस्थित्यन्तरूपा या विद्याऽविद्या त्रयी परा ।
स्वरूपा शक्तिरूपा च मायारूपा च चिन्मयी ॥१५॥
ब्रह्मविष्णु शिवादीनां देहकारणकारणाम् ।
चराचरं जगत् सर्वं यन्मायापरिरम्भितम् ॥१६॥
वृन्दावनेश्वरी नाम्ना राधा धात्राऽनुकारणात् ।
तामालिङ्ग्य वसन्तं तं मुदा वृन्दावनेश्वरम् ॥१७॥

—पद्मपुराण, पातालखण्ड, अ० ७७

इस पुराण की पूर्ण मान्यता है कि राधा के समान न कोई स्त्री है और न कृष्ण के समान कोई पुरुष है–'न राधिका समा नारी न कृष्णसदृशः पुमान्' (१ लोक ५१) अर्थात् राधाकृष्ण की युगलमूर्ति आदर्श नायिका-नायक की है।

पद्मपुराण पातालखण्ड वृन्दावन माहात्म्य में आया है कि कृष्णप्यारी राधिकाजी गोपन से अर्थात् प्रेम को छिपाने के कारण गोपी कही जाती हैं।

पद्मपुराण अध्याय ८१ पाताल खण्ड में आया है कि इस प्रकार वृन्दावन में प्यारी राधिका के सहित कल्पवृक्ष की जड़ पर रत्न सिंहासन के ऊपर अच्छी प्रकार बैठे हुए कृष्ण को स्मरण करे।[1] इसके अनन्तर नारद के लिये मन्त्र का अर्थ इस प्रकार कहा है। "कृष्ण प्यारी राधिकाजी गोपन से अर्थात् प्रेम के छिपाने के कारण गोपी कही जाती हैं अथवा गोपवंश में अवतार लेने से गोपी कृष्ण मयी, कृष्ण स्वरूपिणी देवी कही गई, राधिका पर देवता हैं। हे विप्र नारद! वे राधिका सब लक्ष्मियों की स्वरूप हैं। कृष्ण के आनन्द रूपवाली होने के कारण मनीषियों ने उन्हें ह्लादिनी कहा है। उन राधिकाजी की कलाओं के करोड़-करोड़ अंशों वाली त्रिगुणात्मक दुर्गा इत्यादि हैं। वे राधा साक्षात् महालक्ष्मी हैं, कृष्ण नारायण स्वामी हैं। हे मुनियों में श्रेष्ठ! इन राधाकृष्ण में थोड़ा भी भेद नहीं है अर्थात् दोनों

१. इत्थं कल्पतरोर्मूले रत्नसिंहासनोपरि ।
वृन्दारण्ये स्मरेत् कृष्णं संस्थितं प्रियया सह ॥४३॥
—पद्मपुराण पाताल खण्ड अध्याय ८१

एक हैं।[1]" वृन्दावन महात्म्य सम्बन्धी अध्याय ८२ में कृष्ण ने कहा–"हे महेश्वर, जो मुझको ही प्राप्त है और मेरी प्यारी को नहीं। अर्थात् मुझे भजता है और मेरी प्यारी राधिका को नहीं भजता, वह किसी समय भी इस प्रकार हमको नहीं पाता हमने तुमसे कहा। तुम भी इन मेरी प्यारी राधिका के आश्रय होकर मेरा युगल राधाकृष्ण मंत्र जपते हुए सदा मेरे स्थान वृन्दावन में टिको, विराजमान रहो।" तभी से गोपीश्वर नामक महादेव वृन्दावन में स्थित हुए।[2] पद्मपुराण में राधा की माताजी का पीहर इस प्रकार वर्णित है—"मलन्दनस्य नृपतेः कान्यकुब्जस्य सत्तमा। कीर्तिनाम्नी सुता साध्वी सा पत्नी वृषभानोर्हमहीपालस्य सदगुणा॥ तस्यां सूर्यसुतातीरे रावलग्रामउत्तमे। छायारूपेण सञ्जाताष्टम्यां सोमे दिनान्तरे॥"

विष्णुपुराण—विष्णुपुराण में राधा का नाम नहीं मिलता और श्री राधाजी की प्रणय लीलाओं का स्पष्ट उल्लेख है। विष्णुपुराण पञ्चम अंश तेरहवें अध्याय के श्लोक २३ से ४१ तक गोपियों की प्रणय लीला के वर्णन में एक विशेष प्रेम-पात्र सखी का उल्लेख है।[3] यह वर्णन श्रीमद्भागवत से मिलता है। इस उल्लेख को ही आचार्यों ने श्री राधाजी का सांकेतिक उल्लेख बताया है। इससे श्री राधाजी के

---

१. अथ तुभ्यं प्रवक्ष्यामि मन्त्रार्थं शृणु नारद ॥५१॥
गोपनादुच्यते गोपी राधिका कृष्ण-वल्लभा।
देवीकृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता ॥५२॥
सर्वलक्ष्मीस्वरूपा सा कृष्णाह्लादस्वरूपिणी।
ततः सा प्रोच्यते विप्र ह्लादिनीति मनीषिभिः ॥५३॥
तत्कलाकोटिकोट्यंशा दुर्गाद्यास्त्रिगुणात्मिकाः।
सा तु साक्षात् महालक्ष्मीः कृष्णो नारायणः प्रभुः ॥५४॥
नैतयोर्विद्यते भेदः स्वल्पोऽपि मुनिसत्तम ॥५५॥
—पद्मपुराण पाताल खण्ड, वृन्दावन माहात्म्य, अध्याय ८१

२. यो मामेव प्रपन्नश्च मत्प्रियां न महेश्वर।
न कदापि स चाप्नोति मामेवं ते मयोदितम् ॥८४॥
त्वमप्येनां समाश्रित्य राधिकां मम वल्लभाम्।
जपन् मे युगलं मन्त्रं सदा तिष्ठ ममालये ॥८८॥
—पद्मपुराण पाताल खण्ड, वृन्दावन माहात्म्य, अ० ८२

३. कापि तेन समायाता कृतपुण्या मदालसा।
पदानि तस्याश्चैतानि घनान्यल्पतनूनि च ॥३३॥
—विष्णुपुराण, पञ्चम अंश, अध्याय १३

भाव की अत्यन्त उज्वलता व गोपनीयता प्रकट होती है और यह भी प्रकट हो जाता है कि श्री राधा-भाव गोपी-भाव की ही सीमा है। श्री व्रजेन्दनन्दन की अनन्त शक्तियों में स्वाभाविक तीन शक्ति प्रधान मानी गई हैं। शास्त्रों में उनको चिच्छक्ति, मायाशक्ति एवं जीवशक्ति कहा गया है। इन शक्तियों का विष्णुपुराण में भी उल्लेख है। विष्णुपुराण के अनुसार विष्णु-शक्ति परा है, क्षेत्रज्ञ नामक शक्ति अपरा है और कर्म नाम की तीसरी शक्ति अविद्या कहलाती है।[1] उसमें 'चिच्छक्ति' को एक एवं अखण्ड तत्त्व होने पर भी त्रिरूपा कहा है। संदेश में 'सन्धिनी', चिदेश में 'सम्वित्' एवं आनन्दांश में 'ह्लादिनी' कहा है।

शिवपुराण—शिवपुराण-रुद्र संहिता २, पार्वती खण्ड ३, अध्याय दो में मेना की उत्पत्ति का वर्णन है, इसी में राधा का वर्णन भी आया है। ब्रह्माजी नारदजी को मेना की उत्पत्ति बताते हुए कहते हैं कि मेरे दक्ष नामक पुत्र की सृष्टि को प्रकट करने वाली साठ कन्या हुईं। कश्यपादि के साथ उसने कन्याओं का विवाह किया। इनमें स्वधा नामवली कन्या पितरों को दी। उसके धर्म की मूर्ति तीन कन्या हुईं। मेना नाम वाली ज्येष्ठ कन्या, मध्या धन्या, कलावती सबसे छोटी थी, यह सब पितरों की मानसी कन्या हैं। एक समय ये तीनों बहिनें श्वेत द्वीप में भगवान् विष्णु का दर्शन करने गईं। वहाँ बड़ा समाज हुआ। सनकादि सिद्ध ब्रह्मपुत्र वहाँ आये। सनकादि मुनियों को देखकर सब सावधान होकर उत्थित हुए परन्तु ये दोनों बहनें वहाँ ही स्थित रहीं, खड़ी नहीं हुईं। सनत्कुमार योगीश्वर ने दण्ड रूप शाप दिया कि तुम नर भाव से मोहित हो इस हेतु स्वर्ग से दूर हो मनुष्यों की स्त्री होगी। जब तीनों कन्याओं ने सनत्कुमारजी के चरणों में प्रणाम किया और अनुग्रह की प्रार्थना की तो उन्होंने कहा। विष्णु का अंश रूप जो हिमालय पर्वत है जो हिम का आधार है यह ज्येष्ठा उसकी कामिनी होगी इसी की कन्या पार्वती होगी। और यह दूसरी कन्या धन्या महायोगिनी जनक की स्त्री होगी। जिसके यहाँ महालक्ष्मी सीता उत्पन्न होगी। कलावती वैश्य वृषभान की प्रिया होगी, द्वापर के अन्त में उससे राधा प्रगट होगी। कलावती वृषभान को प्राप्त हो कौतुक से राधा के साथ जीवन्मुक्त हो गोलोक को जायगी इसमें सन्देह नहीं। कलावती की सुता राधा

---

१. विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथापरा।
अविद्या कर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते ॥६१॥
—विष्णुपुराण, षष्ठ अंश, सातवां अध्याय

साक्षात् गोलोक की निवास करने वाली गुप्त स्नेह में निबद्ध हुई कृष्ण की पत्नी होगी।[1]

श्रीमद्भागवत—श्रीमद्भागवत महापुराण में स्पष्ट रूप से राधा का उल्लेख कहीं नहीं मिलता, परन्तु फिर भी विद्वान् राधा की कल्पना कितने ही स्थलों पर करते हैं। श्रीमद्भागवत जैसे पुराण में जिसमें कि श्रीकृष्ण के चरित्र का इतना विशद चित्रण है राधा का स्पष्ट रूप से वर्णन न होना ही राधा की प्राचीनता के सम्बन्ध में सन्देह उत्पन्न करता है। अनेक विद्वानों का मत है कि श्री शुकदेवजी ने राधा के गोपनीय रहस्य को प्रकट प्रकाशित करना उचित नहीं समझा इस हेतु श्रीराधा तत्त्व प्रकट प्रतीत न होते हुए भी निगूढ़ भाव से समस्त श्रीमद्भागवत में अन्तर्निहित हैं।[2] श्रीमद्भागवत में अनेक स्थानों पर राधा के भाव के अतिरिक्त राधा शब्द राधा के लिए प्रयुक्त न होकर अन्य अर्थों में प्रयुक्त हुआ है जिनका अर्थ राधा से लगाने का प्रयास विद्वानों ने किया है।

श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कंध के प्रथम अध्याय में मङ्गलाचरण इस प्रकार किया गया है:—

---

१. तासां मध्ये स्वधानाम्नीं पितृभ्यो दत्तवान् सुताम्।
तिस्रोऽभवन्सुतास्तस्यास्सुभगा धर्म्ममूर्तयः ॥५॥
मेनानाम्नी सुता ज्येष्ठा मध्या धन्या कलावती।
अन्त्या एतास्सुतास्सर्वाः पितृणाम्मानसोद्भवाः ॥७॥
नरस्त्रियः सम्भवन्तु तिस्रोऽपि ज्ञानमोहिताः।
स्वकर्मणः प्रभावेण लभध्वं फलमीदृशम् ॥२२॥
वृषभानस्य वैश्यस्य कनिष्ठा च कलावती।
भविष्यति प्रिया राधा तत्सुता द्वापरान्ततः ॥३०॥
कलावती वृषभानस्य कौतुकात्कन्यया सह।
जीवन्मुक्ता च गोलोकं गमिष्यति न संशयः ॥३३॥
कलावती सुता राधा साक्षाद् गोलोकवासिनी।
गुप्तस्नेहनिबद्धा सा कृष्णपत्नी भविष्यति ॥४०॥
—शिवपुराण, रुद्र संहिता २, पार्वती खण्ड ३, अध्याय २

२. द्रष्टव्य—श्रीमद्भागवत में श्री राधातत्त्व—श्री राधानाम—पं० श्रीकृष्णवल्लभ शर्मा उपाध्याय—राधा विशेषांक—जनवरी १९३८, पृ० ५३

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदाय आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥१॥

पर शब्द से परा और पर दोनों का ही बोध होता है। परा श्री राधा और पर श्रीकृष्ण ही हैं। इस प्रकार इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि हम श्री राधाकृष्ण युगल का ध्यान करते हैं।

श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कंध के चतुर्थ अध्याय में श्री शुकदेवजी ने कथा प्रारम्भ करने से पूर्व श्रीराधा का नामोल्लेख पूर्वक मङ्गलाचरण किया है—

नमो नमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वतां
विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम्।
निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा
स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः ॥१४॥

'सात्वत-भक्तों के पालक, कुयोगियों के लिए दुर्ज्ञेय प्रभु को हम नमस्कार करते हैं। वे भगवान् कैसे हैं? स्वधामनि-अपने धाम वृन्दावन में; राधसा श्रीराधा के साथ, क्रीड़ा करने वाले हैं। और वे राधा कैसी हैं? जिन्होंने समानता और आधिक्य को निरस्त कर दिया है अर्थात् जिनसे बढ़कर तो क्या, समानता करने वाला भी कोई नहीं है।'[1]

श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के तीसवें अध्याय में लीला करते-करते गोपियाँ वृन्दावन के वृक्ष और लता आदि से श्रीकृष्ण का पता पूछने लगतीं हैं और एक स्थान पर श्रीकृष्ण के और उनके साथ ही किसी व्रजयुवती के चरणचिह्न देख कहने लगती हैं, "जैसे हथिनी अपने प्रियतम गजराज के साथ गयी हो, वैसे ही नन्दनन्दन श्यामसुन्दर के साथ उनके कंधे पर हाथ रखकर चलने वाली किस बड़भागिनी के

१. यहाँ राधया न कहकर राधसा पर्यायवाचक शब्द का प्रयोग किया है। अर्थ में किसी प्रकार की भिन्नता नहीं है। राधस् शब्द शक्ति तथा ऐश्वर्य का वाचक भी है। राध् धातु से 'सर्वधातुभ्योऽसन्' इस औणादिक सूत्र से अस् प्रत्यय करने पर 'राधस्' शब्द सिद्ध होता है और इसी के तृतीया के एक वचन में राधसा ऐसा बन जाता है अर्थात् राधा शब्द के तृतीया के एक वचन का राधया और राधस् शब्द के तृतीया के एक वचन का रूप राधसा बनता है अर्थ दोनों का एक ही है।

चरण चिन्ह हैं। अवश्य ही सर्वशक्तिमान भगवान् श्रीकृष्ण की यह 'आराधिका' होगी। इसीलिये इस पर प्रसन्न होकर हमारे प्राण प्यारे श्यामसुन्दर ने हमें छोड़ दिया है और इसे एकान्त में ले गये हैं—

अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद् रहः ॥२८॥[1]

---

१ (अ) इस श्लोक की टीका में गौड़ीय वैष्णव गोस्वामियों ने स्पष्ट ही 'राधा' का गूढ़ सकेत खोज निकाला है। 'अनया राधितः' का पदच्छेद दो प्रकार से किया गया है—अनया-राधितः तथा अनया+आराधितः। दोनों में समान अर्थ की ही अभिव्यक्ति होती है। श्री सनातन गोस्वामी ने अपनी 'बृहत्तोषिणी' व्याख्या में लिखा है—'राधयति आराधयतीति श्रीराधेति नामकरणञ्च' श्री जीवगोस्वामी ने भी यही बात अपनी 'वैष्णव तोषिणी' व्याख्या में दुहराई है। विश्वनाथ चक्रवर्ती तथा धनपति सूरि ने भी यहाँ 'राधा' का नामकरण गुप्त भाव से स्वीकार किया है।

(ब) श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती ने अपनी 'सारार्थदर्शिनी' व्याख्या में कहा है कि पैर के चिह्नों को देखकर गोपियों ने समझ लिया कि ये चिह्न निःसंदेह वृषभानु-नन्दिनी ही के हैं, परन्तु नाना प्रकार की गोपियों के संघट्ट में उसका बाहर प्रकाशन उन्हें अनुचित जान पड़ा। इसीलिए उस विशिष्ट गोपी का नाम-निरुक्ति द्वारा उसके सौभाग्य को सहर्ष अभिव्यक्त किया 'पदचिह्नैरेव तां वृषभानुनन्दिनीं परिचित्य अन्तराश्वस्ता बहुविधगोपीजन संघट्टे तत्र बहिरपरिचर्यामिवाभिनयन्त्यः तस्याः सुहृद तन्नामनिरुक्तिद्वारा तस्याः सौभाग्यं सहर्षमाहुः।

श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती ने अपनी सारार्थदर्शिनी टीका में लिखा है—

"राधयतीति राधेति नाम व्यक्तिर्वभूवेति
मुनि प्रयत्नेन तदीय नामाप्यधात् परं।
किन्तु तदास्य चन्द्रास्स्वयं निरोतिस्म कृपालु
तस्याः सौभाग्यं भेर्य्या इव वादनार्थम् ॥"

अर्थात् राधा नाम प्रगट हो गया। श्रीशुकदेव मुनि ने नाम छिपाने का प्रयत्न किया किन्तु फिर भी प्रकाशित हो गया।

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदाय आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥१॥

पर शब्द से परा और पर दोनों का ही बोध होता है। परा श्री राधा और पर श्रीकृष्ण ही हैं। इस प्रकार इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि हम श्री राधाकृष्ण युगल का ध्यान करते हैं।

श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कंध के चतुर्थ अध्याय में श्री शुकदेवजी ने कथा प्रारम्भ करने से पूर्व श्रीराधा का नामोल्लेख पूर्वक मङ्गलाचरण किया है—

नमो नमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वतां
विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम्।
निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा
स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः ॥१४॥

'सात्वत-भक्तों के पालक, कुयोगियों के लिए दुर्ज्ञेय प्रभु को हम नमस्कार करते हैं। वे भगवान् कैसे हैं? स्वधामनि-अपने धाम वृन्दावन में; राधसा श्रीराधा के साथ, क्रीड़ा करने वाले हैं। और वे राधा कैसी हैं? जिन्होंने समानता और आधिक्य को निरस्त कर दिया है अर्थात् जिनसे बढ़कर तो क्या, समानता करने वाला भी कोई नहीं है।'[1]

श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के तीसवें अध्याय में लीला करते-करते गोपियाँ वृन्दावन के वृक्ष और लता आदि से श्रीकृष्ण का पता पूछने लगतीं हैं और एक स्थान पर श्रीकृष्ण के और उनके साथ ही किसी ब्रजयुवती के चरणचिह्न देख कहने लगती हैं, "जैसे हथिनी अपने प्रियतम गजराज के साथ गयी हो, वैसे ही नन्दनन्दन श्यामसुन्दर के साथ उनके कंधे पर हाथ रखकर चलने वाली किस बड़भागिनी के

---

१. यहाँ राधया न कहकर राधसा पर्यायवाचक शब्द का प्रयोग किया है। अर्थ में किसी प्रकार की भिन्नता नहीं है। राधस् शब्द शक्ति तथा ऐश्वर्य का वाचक भी है। राध् धातु से 'सर्वधातुभ्योऽसन्' इस औणादिक सूत्र से अस् प्रत्यय करने पर 'राधस्' शब्द सिद्ध होता है और इसी के तृतीया के एक वचन में राधसा ऐसा बन जाता है अर्थात् राधा शब्द के तृतीया के एक वचन का राधया और राधस् शब्द के तृतीया के एक वचन का रूप राधसा बनता है अर्थ दोनों का एक ही है।

चरण चिन्ह हैं। अवश्य ही सर्वशक्तिमान भगवान् श्रीकृष्ण की यह 'आराधिका' होगी। इसीलिये इस पर प्रसन्न होकर हमारे प्राण प्यारे श्यामसुन्दर ने हमें छोड़ दिया है और इसे एकान्त में ले गये हैं—

अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद् रहः ॥२८॥[1]

---

१ (अ) इस श्लोक की टीका में गौड़ीय वैष्णव गोस्वामियों ने स्पष्ट ही 'राधा' का गूढ़ सकेत खोज निकाला है। 'अनया राधितः' का पदच्छेद दो प्रकार से किया गया है—अनया-राधितः तथा अनया+आराधितः। दोनों में समान अर्थ की ही अभिव्यक्ति होती है। श्री सनातन गोस्वामी ने अपनी 'वृहत्तोषिणी' व्याख्या में लिखा है—'राधयति आराधयतीति श्रीराधेति नामकरणञ्च' श्री जीवगोस्वामी ने भी यही बात अपनी 'वैष्णव तोषिणी' व्याख्या में दुहराई है। विश्वनाथ चक्रवर्ती तथा घनपति सूरि ने भी यहाँ 'राधा' का नामकरण गुप्त भाव से स्वीकार किया है।

(ब) श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती ने अपनी 'सारार्थदर्शिनी' व्याख्या में कहा है कि पैर के चिह्नों को देखकर गोपियों ने समझ लिया कि ये चिह्न निःसंदेह वृषभानु-नन्दिनी ही के हैं, परन्तु नाना प्रकार की गोपियों के संघट्ट में उसका बाहर प्रकाशन उन्हें अनुचित जान पड़ा। इसीलिए उस विशिष्ट गोपी का नाम-निरुक्ति द्वारा उसके सौभाग्य को सहर्ष अभिव्यक्त किया 'पदचिह्नैरेव तां वृषभानुनन्दिनीं परिचित्य अन्तराश्वस्ता बहुविधगोपीजन संघट्टे तत्र बहिरपरिचर्यामिवाभिनयन्त्यः तस्याः सुहृद तन्नामनिरुक्ति-द्वारा तस्याः सौभाग्यं सहर्षमाहुः।

श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती ने अपनी सारार्थदर्शिनी टीका में लिखा है—

"राधयतीति राधेति नाम व्यक्तिर्बभूवेति
मुनि प्रयत्नेन तदीय नामाप्यधात् परं।
किन्तु तदास्य चन्द्रास्स्वयं निरोतिस्म कृपानु
तस्याः सौभाग्यं भेर्य्या इव वादनार्थम्॥"

अर्थात् राधा नाम प्रगट हो गया। श्रीशुकदेव मुनि ने नाम छिपाने का प्रयत्न किया किन्तु फिर भी प्रकाशित हो गया।

चरण चिन्ह हैं। अवश्य ही सर्वशक्तिमान भगवान् श्रीकृष्ण की यह 'आराधिका' होगी। इसीलिये इस पर प्रसन्न होकर हमारे प्राण प्यारे श्यामसुन्दर ने हमें छोड़ दिया है और इसे एकान्त में ले गये हैं—

अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद् रहः ॥२८॥[1]

---

१ (अ) इस श्लोक की टीका में गौड़ीय वैष्णव गोस्वामियों ने स्पष्ट ही 'राधा' का गूढ़ सकेत खोज निकाला है। 'अनया राधितः' का पदच्छेद दो प्रकार से किया गया है—अनया-राधितः तथा अनया+आराधितः। दोनों में समान अर्थ की ही अभिव्यक्ति होती है। श्री सनातन गोस्वामी ने अपनी 'बृहत्तोषिणी' व्याख्या में लिखा है—'राधयति आराधयतीति श्रीराधेति नामकरणञ्च' श्री जीवगोस्वामी ने भी यही बात अपनी 'वैष्णव तोषिणी' व्याख्या में दुहराई है। विश्वनाथ चक्रवर्ती तथा धनपति सूरि ने भी यहाँ 'राधा' का नामकरण गुप्त भाव से स्वीकार किया है।

(ब) श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती ने अपनी 'सारार्थदर्शिनी' व्याख्या में कहा है कि पैर के चिह्नों को देखकर गोपियों ने समझ लिया कि ये चिह्न निःसंदेह वृषभानु-नन्दिनी ही के हैं, परन्तु नाना प्रकार की गोपियों के संघट्ट में उसका बाहर प्रकाशन उन्हें अनुचित जान पड़ा। इसीलिए उस विशिष्ट गोपी का नाम-निरुक्ति द्वारा उसके सौभाग्य को सहर्ष अभिव्यक्त किया 'पदचिह्नैरेव तां वृषभानुनन्दिनीं परिचित्य अन्तराश्वस्ता बहुविधगोपीजन संघट्टे तत्र बहिरपरिचर्यामिवाभिनयन्त्यः तस्याः सुहृद तन्नामनिरुक्ति-द्वारा तस्याः सौभाग्यं सहर्षमाहुः।

श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती ने अपनी सारार्थदर्शिनी टीका में लिखा है—

"राधयतीति राधेति नाम व्यक्तिर्बभूवेति
मुनि प्रयत्नेन तदीय नामाप्यधात् परं।
किन्तु तदास्य चन्द्रास्स्वयं निरोतिस्म कृपानु
तस्याः सौभाग्यं मेर्ष्या इव वादनार्थम् ॥"

अर्थात् राधा नाम प्रगट हो गया। श्रीशुकदेव मुनि ने नाम छिपाने का प्रयत्न किया किन्तु फिर भी प्रकाशित हो गया।

श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के पाँचवे अध्याय में नन्द बाबा के यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव के वर्णन में श्री स्वामिनीजी का प्रसङ्ग आता है—

तत आरभ्य नन्दस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान् ।
हरेर्निवासात्मगुणो रमाक्रीडमभून्नृप ।।१८।।[1]

परीक्षित् ! उसी दिन से नन्द बाबा के व्रज में सब प्रकार की ऋद्धि-सिद्धियाँ अठखेलियाँ करने लगीं और भगवान् श्रीकृष्ण के निवास तथा अपने स्वाभाविक गुणों के कारण वह लक्ष्मीजी का क्रीड़ा स्थल बन गया ।

अर्थात् श्रीहरि श्रीकृष्ण के निवासात्मक गुण से रमा श्री राधा का भी क्रीड़ास्पद व्रज हुआ ।

श्री रास पंचाध्यायी के प्रथम श्लोक में बड़ी चातुरी से राधा भाव अन्तर्निहित है—

भगवानपि ता रात्रीं शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ।।[2]

इस श्लोक का अपि शब्द प्रत्यक्ष आनुगत्य सूचन करता है अर्थात् मल्लिका जिसमें फूली हुई है, ऐसी शरद ऋतु की रात्रि को देखकर पहले श्री रासेश्वरीजी की रमण करने की इच्छा हुई पुनः भगवान् भी रमण करने लगे ।

श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण के साथ श्री राधिका का विवाह होने का बीज रूप में प्रमाण देखने को मिलता है—

(स) श्री निम्बार्क मत के अनुयायी शुकदेव टीकाकार ने अपने 'सिद्धांतप्रदीप' में 'राधितः' पद की एक विलक्षण व्याख्या की है। 'राधितः' का अर्थ है राधा से संयुक्त। अर्थात् कृष्ण के विहार में राधा ही हेतुभूत है। उसके बिना वृन्दावन में कृष्ण का विहार ही फीका है। राधा-कृष्ण का निकुञ्ज बिहार नितांत गोपनीय होता है। यह अनुभवैकगम्य दिव्य वस्तु है। इसी अभिप्राय से शुकमुनि ने न उस विशिष्ट गोपी का नाम निर्देश किया है और न कृष्ण के साथ उसके विहार का ही स्पष्ट वर्णन किया है—

राधा सह जाता अस्य तथा 'तारकादिभ्य इतच'। राधाकृष्णविहारे हेतुभूतेयमित्यर्थः तया सह विहारोऽतिगोप्यत्वन्नोक्तः ।

१. श्रीमद्भागवतपुराण १०-५-१८
२. श्रीमद्भागवतपुराण १०-२९-१

विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते
चरणमीयुषां संसृतेर्भयात्।
करसरोरुहं कान्तकामदं
शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥[1]

अपने प्रेमियों की अभिलाषा पूर्ण करने वालों में अग्रगण्य यदुवंशशिरोमणे ! जो लोग जन्म-मृत्यु रूप संसार के चक्कर से डरकर तुम्हारे चरणों की शरण ग्रहण करते हैं, उन्हें तुम्हारे करकमल अपनी छत्र-छाया में लेकर अभय कर देते हैं। हमारे प्रियतम ! सबकी लालसा-अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाला वही करकमल, जिस हस्तकमल से राधिकाजी का पाणिग्रहण हुआ है हमारे सिर पर रख दो।

नारद पुराण—नारद पुराण में सनत्कुमार के नारद से कहने पर कि अर्चावतार से कृष्ण की पूजा करनी चाहिए, भक्त प्रार्थना करता है कि निरन्तर हृदयगत हरि कृष्ण का चिन्तन कर शरण में प्राप्त होता हूं वे कृष्ण ही मेरा नित्य पालन करेंगे।[2] नारद पुराण में आया है कि—

तवास्मि राधिकानाथ कर्मणाः मनसा गिरा।
कृष्णकान्तेति चैवास्मि युवामेव गतिर्मम ॥२६॥[3]

"हे राधिकानाथ, हे कृष्णकान्ते राधे, हम कर्म से, मन से, वाणी से तुम्हारे हैं। तुम दोनों ही मेरी गति हो।"

नारद पुराण में राधाजी के ही अंश से सरस्वती आदि पाँच प्रकृतियों के उत्पन्न होने का विधान है—

जृम्भश्वासे तु कृष्णस्य प्रविष्टे राधिका मुखम् ॥६१॥
या तु देवी समुद्भूता वीणापुस्तकधारिणी।
तस्याः विधानं विप्रेन्द्र शृणु लोकोपकारकम् ॥६२॥[4]

कृष्णजी की जँभाई की श्वास राधिकाजी के मुख में प्रवेश होने पर वीणा पुस्तक लिए हुए जो देवी सरस्वती पैदा हुई, हे ब्राह्मणश्रेष्ठ, उस सरस्वती का लोकोपकार करने वाला विधान सुनो।

---

१. श्रीमद्भागवतपुराण १०-३१-५
२. प्रपन्नोऽस्मीति सततं चिन्तयेद्धृद्गतं हरिम्।
स एव पालनं नित्यं करिष्यति ममेति च ॥२५॥
—नारद पु० पूर्वार्ध—अ० ८२
३. नारद पु० पूर्वार्ध—अ० ८२
४. नारद पु० पूर्वार्ध खंड-अ० ८३

ब्रह्मवैवर्त पुराण—ब्रह्मवैवर्त पुराण का मुख्य विषय राधाकृष्ण लीला है। इसका आधार श्रीमद्भागवत पुराण होते हुए भी राधा की कल्पना के कारण इसका स्वरूप परिवर्तित दृष्टिगोचर होता है। लीला के हेतु कृष्ण जो कि महाविष्णु से भी श्रेष्ठ हैं राधा के साथ अवतार लेते हैं। राधा श्रीकृष्ण की मूल प्रकृति हैं। ब्रह्मवैवर्तकार ने नारी रूप में प्रकृति का चित्रण कर प्रकृति के एक विशाल रूप को शक्ति रूपा नारीमें परिणत किया है। यह नारी रूपा प्रकृति साकार ब्रह्मके साथ रमण करने वाली बन जाती है। इस रमण में इसका सहयोग देने वाली अनेक सहचरी प्रकृति रूपा शक्तिशालिनी देवियाँ हैं। सहचरी रूप प्रकृति और ब्रह्म के साथ रमण करने वाली प्रकृति में अन्तर करने के लिए उसे मूल प्रकृति की संज्ञा दे राधा नाम से प्रख्यात किया है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण के ब्रह्म खण्ड अध्याय ५ में आया है कि रासमण्डल में श्रीकृष्ण के वामपार्श्व से एक कन्या प्रकट हुई, जिसने दौड़कर फूल ले आकर उन भगवान् के चरणों में अर्घ्य प्रदान किया।[1]

प्रकृति खंड के अध्याय २ में वर्णन है कि श्रीकृष्ण के रोम कूप से असंख्य गोप प्रकट हो गये जिन्हें श्रीकृष्ण ने अपना पार्षद बना लिया ऐसे ही श्रीराधा के रोम कूपों से बहुत-सी गोपकन्याएँ प्रकट हुईं। वे सभी राधा के समान ही जान पड़ती थीं।[2]

पुराणों के अनुसार राधा की उत्पत्ति दैवी है, मानुषी नहीं है। वह परमात्मभूत श्रीकृष्ण के वामार्द्ध से उत्पन्न हुई थी। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार प्राचीन-काल में गोलोक स्थित परमरम्य वृन्दावन के रास मण्डल में, जो शतश्रृङ्ग पर्वत के एक भाग में स्थित है और मालती आदि पुष्पों से घिरा हुआ है, एक शोभन रत्नमय सिंहासन पर जगदीश्वर श्रीकृष्ण विराजमान थे। उसी समय उस इच्छामय के हृदय में रमण की उत्कण्ठा जाग उठी। उनकी यह रमणेच्छा ही मूर्तिमयी

१. आविर्बभूव कन्यैका कृष्णस्य वामपार्श्वतः ।।
धावित्वा पुष्पमानीय ददावर्घ्यं प्रभोः पदे ।।२५।।
रासे संभूय गोलोके सा दधाव हरेः पुरः ।।
तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिर्द्विजोत्तम ।।२६।।
—ब्र० वै० पुराण, ब्रह्म खंड, अध्याय ५

२ राधाङ्गलोमकूपेभ्यो बभूवुर्गोपकन्यकाः ।।
राधातुल्याश्च सर्वास्ता नान्यतुल्याः प्रियंवदाः ।।
—ब्र० वै० पुराण, प्रकृतिखंड, अध्याय २

होकर सुरेश्वरी श्रीराधा के रूप में प्रकट हो गईं। इसी बीच प्रभु दो रूपों में विभक्त हो गये। उनका दाहिना अंग श्रीकृष्ण के रूप में स्थित हो गया और बाँया अङ्ग (वामार्द्ध) श्रीराधा के रूप में स्थित हुआ—

पुरा वृन्दावने रम्ये गोलोके रासमण्डले।
शतश‍ृङ्गैकदेशे च मालतीमल्लिकावने ॥२६॥
रत्नसिंहासने रम्ये तस्थौ तत्र जगत्पतिः ॥
स्वेच्छामयश्च भगवान्बभूव रमणोत्सुकः ॥२७॥
रिरंसोस्तस्य जगतां पत्युस्तन्मल्लिकावने ॥
इच्छया च भवेत्सर्वं तस्य स्वेच्छामयस्य च ॥२८॥
एतस्मिन्नन्तरे दुर्गे द्विधारूपो बभूव सः ॥
दक्षिणांगं च श्रीकृष्णो वामार्द्धांगा च राधिका ॥२९॥[1]

प्रकृति खण्ड के अध्याय ४८ में वर्णन है कि राधा श्रीकृष्ण की आराधना करती हैं और श्रीकृष्ण श्रीराधा की। वे दोनों परस्पर आराध्य और आराधक हैं। सन्तों का कथन है कि उनमें सभी दृष्टियों से पूर्णतः समता है। महेश्वरि ! मेरे ईश्वर श्रीकृष्ण रास में प्रियाजी के धावन कर्म का स्मरण करते हैं, इसीलिए वे उन्हें 'राधा' कहते हैं, ऐसा मेरा अनुमान है। दुर्गे ! भक्त पुरुष 'रा' शब्द के उच्चारणमात्र से परम दुर्लभ मुक्ति को पा लेता है और 'धा' शब्द के उच्चारण से वह निश्चय ही श्रीहरि के चरणों में दौड़कर पहुँच जाता है। 'रा' का अर्थ है 'पाना' और 'धा' का अर्थ है 'निर्वाण' (मोक्ष)। भक्त-जन उनसे निर्वाण-मुक्ति पाता है, इसलिए उन्हें 'राधा' कहा गया है। श्रीराधा के वामांश-भाग से महालक्ष्मी का प्राकट्य हुआ है। उससे ही शस्य की अधिष्ठात्री देवी तथा गृहलक्ष्मी का प्राकट्य हुआ है। वे ही शस्य की अधिष्ठात्री देवी तथा गृहलक्ष्मी के रूप में भी आविर्भूत हुई हैं। देवी महालक्ष्मी चतुर्भुज विष्णु की पत्नी हैं और वैकुण्ठ धाम में वास करती हैं। राजा को सम्पत्ति देने वाली राजलक्ष्मी भी उन्हीं की अंशभूता हैं। राजलक्ष्मी की अंशभूता मर्त्यलक्ष्मी हैं, जो गृहस्थों के घर-घर में वास करती हैं। वे ही शस्याधिष्ठातृदेवी तथा वे ही गृहदेवी हैं। स्वयं श्रीराधा श्रीकृष्ण की प्रियतमा हैं तथा श्रीकृष्ण के ही वक्षःस्थल में वास करती हैं। वे उन परमात्मा श्रीकृष्ण के प्राणों की अधिष्ठात्री देवी हैं[2]—

१. ब्रह्मवैवर्त पुराण, प्रकृतिखंड, अध्याय ४८

२. संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्त पुराणांक—गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ० २१०

राधा भजति तं कृष्णं स च तां च परस्परम् ।
उभयोः सर्वसाम्यं च सदा सन्तो वदन्ति च ।।३८।।
भवनं धावनं रासे स्मरत्यालिंगनं जपन् ।
तेन जल्पति संकेतं तत्र राधां स ईश्वरः ।।३९।।
राशब्दोच्चारणाद्भक्तो राति मुक्तिं सुदुर्लभाम् ।
धाशब्दोच्चारणाद्दुर्गे धावत्येव हरेः पदम् ।।४०।।
कृष्णवामांशसम्भूता राधा रासेश्वरी पुरा ।
तस्यांश्चांशांशकलया बभवुर्देवयोषितः ।।४१।।
रा इत्यादानवचनो धा च निर्वाणवाचकः ।
ततोऽवाप्नोति मुक्तिं च तेन राधा प्रकीर्तिता ।।४२।।
बभूव गोपीसंघश्च राधायाः लोमकूपतः ।
श्रीकृष्णलोमकूपेभ्यो बभूवुः सर्वबल्लवाः ।।४३।।
राधावामांशभागेन महालक्ष्मीर्बभूव सा ।
तस्याधिष्ठातृदेवी सा गृहलक्ष्मीर्बभूव सा ।।४४।।
चतुर्भुजस्य सा पत्नी देवी वैकुण्ठवासिनी ।
तदंशा राजलक्ष्मीश्च राजसम्पत्प्रदायिनी ।।४५।।
तदंशा मर्त्यलक्ष्मीश्च गृहिणां च गृहे गृहे ।
दीपाधिष्ठातृदेवी च सा चैव गृहदेवता ।।४६।।
स्वयं राधा कृष्णपत्नी कृष्णवक्षःस्थलस्थिता ।
प्राणाधिष्ठातृदेवी च तस्यैव परमात्मनः ।।४७।।[1]

प्रकृति खण्ड अध्याय ४९ में राधा का सुदामा को शाप देने तथा सुदामा का श्रीराधा को मानवी रूप में प्रकट होने का वर्णन है। राधा व्रज में वृषभानु वैश्य की कन्या हुई। रायाण वैश्य के साथ उनका सम्बन्ध निश्चित हुआ। उस समय श्रीराधा घर में अपनी छाया को स्थापित करके स्वयं अन्तर्धान हो गईं। विधाता ने वृन्दावन में श्रीकृष्ण के साथ श्रीराधा का विधि पूर्वक विवाह कर्म सम्पन्न कराया।

---

१. ब्रह्मवैवर्त पुराण, प्रकृतिखण्ड अध्याय ४८

साक्षात् राधा श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल में वास करती थीं और छाया राधा रायाण के घर में।[1]

इसी अध्याय में आगे आया है कि श्रीकृष्ण की पत्नी श्री राधा हैं, जो उनके अर्धांग से प्रकट हुई हैं। वे तेज, अवस्था, रूप तथा गुण सभी दृष्टियों से उनके अनुरूप हैं। विद्वान् पुरुष को पहले 'राधा' नाम का उच्चारण करके पश्चात् 'कृष्ण' नाम का उच्चारण करना चाहिए। इस क्रम में उलट फेर करने पर वह पाप का भागी होता है, इसमें संशय नहीं है।[2] राधा श्रीकृष्ण की पूजनीया हैं और भगवान् श्रीकृष्ण राधा के पूजनीय हैं। वे दोनों एक दूसरे के इष्ट देवता हैं।[3]

---

१. अतीते द्वादशाब्दे तु दृष्ट्वा तां नवयौवनाम् ।
सार्द्धं रायाणवैश्येन तत्सम्बन्धं चकार सः ॥ ८॥
छायां संस्थाप्य तद्गेहे साऽन्तर्धानमवाप ह ।
बभूव तस्य वैश्यस्य विवाहश्छायया सह ॥३९॥
गते चतुर्दशाब्दे तु कंसभीतिच्छलेन च ।
जगाम गोकुलं कृष्णः शिशुरूपी जगत्पतिः ॥४०॥
कृष्णमाता यशोदा या रायाणस्तत्सहोदरः ।
गोलोके गोपकृष्णांशः सम्बन्धात्कृष्णमातुलः ॥४१॥
कृष्णेन सह राधायाः पुण्ये वृन्दावने वने ।
विवाहं कारयामास विधिना जगतां विधिः ॥४२॥
स्वप्ने राधापदाम्भोजं न हि पश्यन्ति बल्लवाः ।
स्वयं राधा हरेः क्रोडे छाया रायाणमन्दिरे ॥४३॥

ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्रकृतिखण्ड, अध्याय ४२

२. श्रीकृष्णपत्नी सा राधा तदर्धाङ्गसमुद्भवा ।
तेजसा वयसा साध्वी रूपेण च गुणेन च ॥५९॥
आदौ राधां समुच्चार्य पश्चात्कृष्णं वदेद् बुधः ।
व्यतिक्रमे ब्रह्महत्यां लभते नात्र संशयः ॥६०॥

ब्र० वै० पुराण, प्रकृतिखण्ड, अध्याय ४९

३. राधा पूज्या च कृष्णस्य तत्पूज्यो भगवान्प्रभुः ।
परस्पराभीष्टदेवे भेदकृन्नरकं व्रजेत् ॥६४॥

ब्र० वै० पुराण, प्रकृतिखण्ड, अध्याय ४९

प्रकृति खण्ड के अध्याय ५५ में श्रीराधा के ध्यान, षोडशोपचार पूजन परिचारिका पूजन, परिहारस्तवन, पूजन-महिमा तथा स्तुति एवं उसके माहात्म्य का वर्णन है। श्लोक १० से १५ तथा १६ तक स्वरूप वर्णन है। तत्पश्चात् सामवेदोक्त रीति से परिहार नामक स्तुति है—परिहार के मन्त्र इस प्रकार हैं—

त्वं देवी जगतां माता विष्णुमाया सनातनी।
कृष्णप्राणाधिदेवी च कृष्णप्राणाधिका शुभा ॥४४॥
कृष्णप्रेममयी शक्तिः कृष्णे सौभाग्यरूपिणी।
कृष्णभक्तिप्रदे राधे नमस्ते मङ्गलप्रदे ॥४५॥
अद्य मे सफलं जन्म जीवनं सार्थकं मम।
पूजिताऽसि मया स च या श्रीकृष्णेन पूजिता ॥४६॥
कृष्णवक्षसि या राधा सर्वसौभाग्यसंयुता।
रासे रासेश्वरीरूपा वृन्दा वृन्दावने वने ॥४७॥
कृष्णप्रिया च गोलोके तुलसी कानने तु या।
चम्पावती कृष्णसंगे क्रीड़ा चम्पककानने ॥४८॥
चन्द्रावली चन्द्रवने शतशृङ्गे सतीति च।
विरजादर्पहन्त्री च विरजातटकानने ॥४९॥
पद्मावती पद्मवने कृष्णा कृष्णासरोवरे।
भद्रा कुञ्ज कुटीरे च काम्या वै काम्यके वने ॥५०॥
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्वाणी नारायणोरसि।
क्षीरोदे सिन्धुकन्या च मर्त्ये लक्ष्मीर्हरिप्रिया ॥५१॥
सर्वस्वर्गे स्वर्गलक्ष्मीर्देवदुःखविनाशिनी।
सनातनी विष्णुमाया दुर्गा शङ्करवक्षसि ॥५२॥
सावित्री वेदमाता च कलया ब्रह्मवक्षसि।
कलया धर्म्मपत्नी त्वं नरनारायण प्रभोः ॥५३॥
कलया तुलसी त्वं च गङ्गा भुवनपावनी।
लोमकूपोद्भवा गोप्यः कलांशा रोहिणी रतिः ॥५४॥
कला कलांशरूपा च शतरूपा शची दितिः।
अदितिर्देवमाता च त्वत्कलांशा हरिप्रिया ॥५५॥
देव्यश्च मुनिपत्न्यश्च त्वत्कलाकलया शुभे।
कृष्णभक्ति कृष्णदास्यं देहि मे कृष्णपूजिते ॥५६॥
एवं कृत्वा परीहारं स्तुत्वा च कवचं पठेत्।
पुरा कृतं स्तोत्रमेतद्भक्तिदास्यप्रदं शुभम् ॥५७॥

कृष्ण कहते हैं कि 'तुम मेरे पाँचों प्राणों की अधिष्ठात्री देवी हो,' राधा मेरे लिये प्राणों से भी बढ़कर प्रिय है।[1] तुम महाविष्णु की माता, मूलप्रकृति ईश्वरी हो।[2] सती और पार्वती के रूप में तुम्हारा ही प्राकट्य हुआ है।[3] तुम्हीं अपनी कला से वसुन्धरा हुई हो, गोलोक में तुम्हीं समस्त गोपालों की अधीश्वरी राधा हो। तुम्हारे विना मैं निर्जीव हूँ।[4]

ब्रह्म वैवर्त पुराण के कृष्ण जन्म खण्ड के तृतीय अध्याय के अन्त में श्रीराधा और श्रीकृष्ण के गोकुल में अवतार लेने का एक कारण श्रीदाम और राधा का परस्पर शाप बताया है। एक बार गोलोक में श्रीकृष्ण विरजादेवी के समीप थे। श्रीराधा को यह ठीक नहीं लगा। श्रीराधा सखियों सहित वहाँ जाने लगीं तब श्रीदाम ने उन्हें रोका। इस पर श्रीराधा ने श्रीदाम को शाप दे दिया कि 'तुम असुर योनि को प्राप्त हो जाओ।' तब श्रीदाम ने भी श्रीराधा को यह शाप दिया कि 'आप भी मानवी-योनि में जाँय। वहाँ गोकुल में श्रीहरि के ही अंश महायोगी रायाण नामक एक वैश्य होंगे। आपका छाया रूप उनके साथ रहेगा। अतएव भूतल पर मूढ़ लोग आपको रायाण की पत्नी समझेंगे, श्रीहरि के साथ कुछ समय आपका विछोह रहेगा।'

इससे श्रीदाम और श्रीराधा दोनों को ही क्षोभ हुआ। तब श्रीकृष्ण ने श्रीदाम को सान्त्वना देकर कहा कि 'तुम त्रिभुवन विजेता सर्व श्रेष्ठ शङ्खचूड नामक असुर होओगे और अन्त में श्रीशङ्कर के त्रिशूल से भिन्न-देह होकर यहाँ मेरे पास लौट आओगे।'

श्रीराधा को बड़े ही प्रेम के साथ हृदय से लगाकर भगवान् ने कहा

---

१. पञ्चप्राणाधिदेवी त्वं राधा प्राणाधिकेति मे ॥

२. महाविष्णोश्च माता त्वं मूलप्रकृतिरीश्वरी।
सगुणां त्वां च कलया निर्गुणा स्वयमेव तु ॥
—ब्र० वै० पुराण, अध्याय ५५, श्लोक ७५

३. महालक्ष्मीश्च वैकुण्ठे भारती च सतां प्रसूः।
पुण्यक्षेत्रे भारते च सती त्वं पार्वती तथा ॥
—ब्र० वै० पुराण, अध्याय ५५, श्लोक ७६

४. गोलोके राधिका त्वं च सर्वगोपालकेश्वरी।
त्वया विनाऽहं निर्जीवो ह्यशक्तः सर्व कर्म्मसु ॥
—ब्र० वै० पुराण, अध्याय ८१

'वाराहकल्प में मैं पृथ्वी पर जाऊँगा और ब्रज में जाकर वहाँ के पवित्र काननों में तुम्हारे साथ विहार करूँगा। मेरे रहते तुमको क्या भय है ?

इसी निमित्त से लीलामय श्रीराधा और श्रीकृष्ण वाराहकल्प में पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए। श्री राधाजी गोकुल में श्रीवृषभानु के घर प्रकट हुईं।[1]

ब्रह्मवैवर्त पुराण के पाँचवें अध्याय में श्रीराधा के विशाल भवन एवं अन्तःपुर की शोभा का वर्णन है। छठे अध्याय में देवताओं द्वारा तेजः पुञ्ज में श्रीकृष्ण और राधा के दर्शन तथा स्तवन, श्रीराधा सहित गोप-गोपियों को ब्रज में अवतीर्ण होने के लिये श्रीहरि का आदेश, श्रीराधा की चिन्ता तथा श्रीकृष्ण का उन्हें सान्त्वना देते हुए अपनी और उनकी एकता का प्रतिपादन करना और फिर श्रीहरि की आज्ञा से राधा और गोप-गोपियों का नन्द-गोकुल में गमन वर्णित है। इसमें राधा और कृष्ण के सम्बन्ध में आया है कि जैसे दूध में धवलता, अग्नि में दाहिका शक्ति, पृथ्वी में गन्ध और जल में शीतलता है, उसी तरह तुममें मेरी स्थिति है। धवलता और दुग्ध में, दाहिका शक्ति और अग्नि में, पृथ्वी और गन्ध में तथा जल और शीतलता में जैसे ऐक्य (भेदाभाव) है, उसी तरह हम दोनों में भेद नहीं है। मेरे बिना तुम निर्जीव हो और तुम्हारे बिना में अदृश्य हूँ। सुन्दरि ! तुम्हारे बिना मैं संसार की सृष्टि नहीं कर सकता, यह निश्चित बात है। ठीक उसी तरह जैसे कुम्हार मिट्टी के बिना घड़ा नहीं बना सकता और सुनार सोने के बिना आभूषणों का निर्माण नहीं कर सकता। स्वयं आत्मा जैसे नित्य है, उसी प्रकार साक्षात् प्रकृति स्वरूपा तुम नित्य हो तुम में सम्पूर्ण शक्तियों का समाहार संचित है। तुम सबकी आधारभूता और सनातनी हो।[2]

श्रीकृष्ण जन्म खण्ड के १३ वें अध्याय में श्रीराधा-कृष्ण के नाम-माहात्म्य का परिचय है। 'राधा' शब्द की व्युत्पत्ति देवताओं, असुरों और मुनीन्द्रों को भी अभीष्ट है तथा वह सबसे उत्कृष्ट एवं मोक्षदायिनी है। राधा का 'रेफ' करोड़ों जन्मों के पाप तथा शुभाशुभ कर्म भोग से छुटकारा दिलाता है। 'आकार' गर्भवास, मृत्यु तथा रोग को दूर करता है। 'धकार' आयु की हानि का और 'आकार' भवबन्धन का निवारण करता है। राधा नाम के श्रवण, स्मरण और कीर्तन से उक्त सारे

---

१. ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण जन्म खन्ड, श्लोक ६७-११७

२. यथा क्षीरे च धावल्यं दाहिका च हुताशने।
भूमौ गन्धो जले शैत्यं तथा त्वयि मयि स्थिते ॥२१७॥
धावल्यदुग्धयोरैक्यं दाहिकानलयोर्यथा।
भूगन्धजलशैत्यानां नास्ति भेदस्तथाऽऽवयोः ॥२१८॥ —ब्र० वै० पु० अ० ६

दोषों का नाश हो जाता है; इसमें संशय नहीं है। 'राधा नाम का 'रेफ' श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों में निश्चल भक्ति तथा दास्य प्रदान करता है। 'आकार' सर्ववाञ्छित, सदानन्द स्वरूप, सम्पूर्ण सिद्ध-समुदाय रूप एवं ईश्वर की प्राप्ति कराता है। 'धकार' श्रीहरि के साथ उन्हीं की भाँति अनन्त काल तक सहवास का सुख, समान ऐश्वर्य, सारूप्य तथा तत्त्वज्ञान प्रदान करता है। 'आकार' श्रीहरि की भाँति तेजो राशि, दानशक्ति, योगशक्ति, योगमति तथा सर्वदा श्रीहरि की स्मृति का अवसर देता है। श्रीराधा नाम के श्रवण, स्मरण और कीर्तन का सुयोग मिलने से मोहजाल, पाप, रोग, शोक, मृत्यु और यमराज सभी काँप उठते हैं; इसमें संशय नहीं है।[1]

अध्याय १५ में श्रीकृष्ण और राधा को सदा अभिन्न बताया है। श्रीभगवान् कहते हैं, 'जो तुम हो, वही मैं हूँ, हम दोनों में किंचित् भी भेद नहीं है। जैसे

मया विना त्वं निर्जीवा चादृश्योऽहं त्वया विना।
त्वया विना भवं कर्तुं नालं सुन्दरि निश्चितम् ॥२१९॥
विना मृदा घटं कर्तुं यथा नालं कुलालकः।
विना स्वर्णं स्वर्णकारोऽलङ्कारं कर्तुमक्षमः ॥२२०॥
स्वयमात्मा यथा नित्यस्तथा त्वं प्रकृतिः स्वयम्।
सर्वशक्ति समायुक्तासर्वाधारा सनातनी ॥२२१॥

—ब्रह्मवैवर्त पुराण, श्रीकृष्ण जन्मखण्ड, अध्याय ६

१. सुरासुरमुनीन्द्राणां वांछितां मुक्तिदां पराम्।
रेफो हि कोटिजन्माद्यं कर्मभोगं शुभाशुभम् ॥१०५॥
आकारो गर्भवासं च मृत्युं च रोगमुत्सृजेत्।
धकार आयुषो हानिमाकारो भवबंधनम् ॥१०६॥
श्रवणस्मरणोक्तिभ्यः प्रणश्यति न संशयः।
रेफो हि निश्चलां भक्तिं दास्यं कृष्णपदाम्बुजे ॥१०७॥
सर्वेप्सितं सदानंदं सर्वसिद्धौघमीश्वरम्।
धकारः सहवासं च तत्तुल्यकालमेव च ॥१०८॥
ददातिसार्ष्टिसारूप्यं तत्त्वज्ञानं हरेः समम्।
आकारस्तेजसां राशिं दानशक्तिं हरौ यथा ॥१०९॥
योगशक्तिं योगमतिं सर्वकालं हरिस्मृतिम्।
श्रुत्युक्तिस्मरणाद्योगान्मोहजालं च किल्विषम् ॥११०॥
रोगशोकमृत्युयमा वेपंते नात्र संशयः।
राधामाधवयोः किंचिद्व्याख्यानं च यतः श्रुतम् ॥१११॥

—ब्रह्म वैवर्त पुराण, श्रीकृष्ण जन्म खन्ड, अध्याय १३

दूध में धवलता, अग्नि में दाहिका शक्ति और पृथ्वी में गन्ध रहती है, उसी प्रकार मैं सदा तुममें व्याप्त हूँ। जैसे कुम्हार मिट्टी के विना घड़ा नहीं वना सकता तथा जैसे स्वर्णकार सुवर्ण के विना कदापि कुण्डल नहीं तैयार कर सकता; उसी प्रकार मैं तुम्हारे विना सृष्टि करने में समर्थ नहीं हो सकता। तुम सृष्टि की आधारभूता हो और मैं अच्युत वीज रूप हूँ।[१]

अध्याय १५ के प्रारम्भिक श्लोकों में आया है कि एक दिन नन्द कृष्ण के साथ भाण्डीर वन में जाकर गौओं को चराने लगे। इसी वीच में श्रीकृष्ण ने अपनी माया से आकाश को मेघाच्छन्न कर दिया। झंझावात दारुण शब्द कर वहने लगा, वृष्टि से पादप काँपने लगे। नन्द ने सोचा कि वच्चे कृष्ण को घर पहुँचाऊँ कि इतने में राधा वहाँ आ गई और नन्द ने उससे कृष्ण को घर पहुँचाने के लिए कहा।[२]

राधा कृष्ण को लेकर चली और इसी भांडीर वन में एक अत्यन्त सुन्दर मण्डप के नीचे ब्रह्मा ने उन दोनों का विवाह करा दिया। उसमें सभी विधि अनुष्ठान किये गये हवन हुआ, सात प्रदक्षिणायें हुईं, पाणिग्रहण हुआ, वेदोक्त सप्त मन्त्रों से सप्तपदी का पाठ हुआ और दोनों ने एक दूसरे के गले में पारिजात पुष्पों की माला डालीं।[३]

इस अध्याय में श्रीराधा के लिए कृष्ण को कहते हैं, "तुम्हीं श्री हो, तुम्हीं सम्पत्ति हो और तुम्हीं आधार स्वरूपिणी हो। तुम सूर्य शक्ति स्वरूपा हो और मैं

१. त्वं मे प्राणाधिका राधे प्रेयसी च वरानने ॥५७॥
यथा त्वं च तथाऽहं च भेदो हि नावयोर्ध्रुवम्।
यथा क्षीरे च धावल्यं यथा अग्नौ दाहिका सति ॥५८॥
यथा पृथिव्यां गन्धश्च तथाऽहं त्वयि संततम्।
विना मृदा घटं कर्तुं विना स्वर्णेन कुण्डलम् ॥५९॥
कुलालः स्वर्णकारश्च नहि शक्तः कदाचन।
तथा त्वया विना सृष्टि महं कर्तुं न च क्षमः ॥६०॥
सृष्टेराधारभूता त्वं वीजरूपोऽहमच्युतः।
आगच्छ शयने साध्वि कुरु वक्षः स्थले हि माम् ॥६१॥
—श्रीकृष्ण जन्म खण्ड, अध्याय १५

२. गीत गोविन्द का प्रथम श्लोक इसी आधार पर वना है।

३. ब्रह्म वैवर्त पुराण—श्रीकृष्ण जन्म खण्ड, अध्याय १५, श्लोक १२२ से १२८ तक।

अविनाशी सर्वरूप हूँ। जब मैं तेजः स्वरूप होता हूँ, तब तुम तेजोरूपिणी होती हो। जब मैं शरीर रहित होता हूँ, तब तुम भी अशरीरिणी हो जाती हो। सुन्दरि ! मैं तुम्हारे संयोग से ही सदा सर्व-बीजस्वरूप होता हूँ। तुम शक्तिस्वरूपा तथा सम्पूर्ण स्त्रियों का स्वरूपधारण करने वाली हो। मेरा अंग और अंश ही तुम्हारा स्वरूप है। तुम मूल प्रकृति ईश्वरी हो। वरानने ! शक्ति बुद्धि और ज्ञान में तुम मेरे ही तुल्य हो।[1] कृष्ण का कथन है कि 'राधा' नाम का उच्चारण करने वाला पुरुष मुझे 'राधा' से भी अधिक प्रिय है।[2] ब्रह्माजी का कथन है कि तुम स्वयं श्रीकृष्ण हो और ये श्रीकृष्ण राधा हैं, अथवा तुम राधा हो और ये स्वयं श्रीकृष्ण हैं।[3] परमात्मा श्रीकृष्ण की तुम देहरूपा हो; अतः तुम्हीं इनकी आधार-

---

१. श्रीकृष्णं च तदा तेऽपि त्वयैव सहितं परम् ।
त्वं च श्रीस्त्वं च संपत्तिस्त्वमाधारस्वरूपिणी ॥६३॥
सर्वशक्तिस्वरूपासि सर्वरूपोऽहमक्षरः ।
यदा तेजः स्वरूपोऽहं तेजोरूपाऽसि त्वं तदा ॥६४॥
न शरीरी यदाहं च तदा त्वमशरीरिणी ।
सर्वबीजस्वरूपोऽहं सदा योगेन सुन्दरि ॥६५॥
त्वं च शक्तिस्वरूपा च सर्वस्त्रीरूपधारिणी ।
ममाङ्गांशस्वरूपा त्वं मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥६६॥
शक्त्या बुद्ध्या च ज्ञानेन मया तुल्या वरानने ।
आवयोर्भेदबुद्धिं च यः करोति नराधमः ॥६७॥

—श्रीकृष्ण जन्मखन्ड, अध्याय १५

२. सा प्रीतिर्मम जायेत राधाशब्दात्ततोऽधिका ।
प्रिया न मे तथा राधे राधावक्ता ततोऽधिकः ॥७२॥

—श्रीकृष्ण जन्म खंड, अध्याय १५

३. त्वं कृष्णाङ्गार्धसंभूता तुल्या कृष्णेन सर्वतः ।
श्रीकृष्णस्त्वमयं राधा त्वं राधा वा हरिः स्वयम् ॥१३१॥

—श्रीकृष्ण जन्मखन्ड, अध्याय १५

भूता हो।[1] ये श्रीकृष्ण नित्य हैं और तुम भी नित्या हो। तुम इनकी अंशस्वरूपा हो या ये ही तुम्हारे अंश हैं।[2]

अध्याय १६ में श्लोक ८५ से ८७ तक राधा के ध्यान करने का उल्लेख करते हुए राधा को रासेश्वरी, रम्यरासोल्लासरसोत्सुक्य रास-मण्डल-मध्यस्थ, रासाधिष्ठातृदेवता, रासेशवक्षःस्थलस्थिता, रसिका, रसिकप्रिया, रमा, रमणोत्सुका और शरच्चन्द्रराजी, प्रभा-मोचन-लोचना जैसे विशेषणों से अलंकृत किया है।

सत्रहवें अध्याय में राधिका को वृषभानुस्त्री कलावती की पुत्री और श्रीकृष्ण की अर्द्धांश बताया है जो उन्हीं के समान तेजस्वी हैं।[3] इसी अध्याय में श्रीराधारानी के षोडश नामों का वर्णन भगवान् श्री नारायण नारद से इस प्रकार करते हैं, "राधा, रासेश्वरी, रासवासिनी, रसिकेश्वरी, कृष्ण प्राणाधिका, कृष्णप्रिया, कृष्णस्वरूपिणी, कृष्णवामाङ्गसम्भूता, परमानन्द रूपिणी, कृष्णा, वृन्दावनी, वृन्दा, वृन्दावन विनोदिनी, चन्द्रावली, चन्द्रकांता और शरच्चन्द्रप्रभानना—ये सारभूत सोलह नाम उन सहस्र नामों के ही अन्तर्गत हैं। राधा शब्द में 'धा' का अर्थ है संसिद्धि (निर्वाण) तथा 'रा' दानवाचक है। जो स्वयं निर्वाण (मोक्ष) प्रदान करने वाली हैं; वे 'राधा' कही गयी हैं। रासेश्वर की ये पत्नी हैं; इसलिए इनका नाम 'रासेश्वरी' है। उनका रासमण्डल में निवास है; इससे वे 'रासवासिनी' कहलाती हैं। वे समस्त रसिक देवियों की परमेश्वरी हैं; अतः पुरातन संतमहात्मा उन्हें 'रसिकेश्वरी' कहते हैं। परमात्मा श्रीकृष्ण के लिये वे प्राणों से भी अधिक प्रियतमा हैं, अतः साक्षात् श्रीकृष्ण ने ही उन्हें 'कृष्णप्राणाधिका' नाम दिया है। वे श्रीकृष्ण

---

१. आत्मना देहरूपा त्वमस्याधारस्त्वमेव हि।
अस्यास्तु प्राणैस्त्वं मातस्त्वत्प्राणैरयमीश्वरः ॥१०५॥
—श्रीकृष्ण जन्मखंड, अध्याय १५

२. नित्योऽयं च तथा कृष्णस्त्वं च नित्या तथाऽम्बिके ॥१०६॥
अस्यांशा त्वं त्वदंशोवाऽप्ययं केन निरूपितः ॥१०७॥
—श्रीकृष्ण जन्मखंड, अध्याय १५

३. पितृणां मानसी कन्या कमलांशा कलावती।
सुन्दरी वृषभानस्य पतिव्रतपरायणा ॥
यस्याश्च तनया राधा कृष्ण प्राणाधिका प्रिया ॥२९॥
श्री कृष्णार्द्धांगसंभूता तेन तुल्या च तेजसा ॥३०॥
—ब्र० वै० पु० श्रीकृष्ण जन्मखंड, अध्याय १७

की अत्यन्त प्रिया कान्ता हैं अथवा श्रीकृष्ण ही सदा उन्हें प्रिय हैं; इसलिए समस्त देवताओं ने उन्हें 'कृष्णप्रिया' कहा है। वे श्रीकृष्ण रूप को लीलापूर्वक निकट लाने में समर्थ हैं तथा सभी अंशों में श्रीकृष्ण के सदृश हैं; अतः 'कृष्णस्वरूपिणी' कही गई हैं। परमसती श्रीराधा श्रीकृष्ण के आधे वामाङ्ग भाग से प्रकट हुई हैं; अतः श्रीकृष्ण ने स्वयं ही उन्हें 'कृष्णवामाङ्गसम्भूता' कहा है। सती श्रीराधा स्वयं परमानन्द की मूर्तिमती राशि हैं; अतः श्रुतियों ने उन्हें 'परमानन्दरूपिणी' की संज्ञा दी है।"[1]

अध्याय २८ में श्रीराधा के साथ श्रीकृष्ण का वन-विहार वर्णन है। ५२ से ५४ अध्याय तक श्रीकृष्ण के अन्तर्धान होने से श्रीराधा और गोपियों का दुःख से रोदन, श्रीकृष्ण का उनके साथ विहार, श्रीराधा नाम के प्रथम उच्चारण का कारण श्रीकृष्ण द्वारा श्रीराधा का शृङ्गार वर्णन है। ५२ अध्याय में बताया है कि 'रा' शब्द के उच्चारण मात्र से ही माधव हृष्ट-पुष्ट हो जाते हैं और 'धा' शब्द का उच्चारण होने पर तो अवश्य ही भक्त के पीछे वेग पूर्वक दौड़ पड़ते हैं।[2]

६८ वें अध्याय में श्रीकृष्ण को व्रज में जाते देख राधा का विलास एवं मूर्छा, श्रीराधा का उठना और प्रियतम के लिए विलाप करके मूर्छित होना, रत्नमाला का श्रीकृष्ण को राधा की अवस्था बताना और श्रीकृष्ण का राधा के लिए स्वप्न में मिलने का वरदान देकर व्रज में जाना वर्णित है।

७० वें अध्याय में अक्रूर कहते हैं कि आप ही राधारमण तथा राधा का रूप धारण करते हैं। राधा के आराध्य देवता तथा राधिका के प्राणाधिक प्रियतम भी आप ही हैं, आपको नमस्कार है। राधा के वश में रहने वाले, राधा के अधिदेवता और राधा के प्रियतम ! आपको नमस्कार है। आप राधा के

---

१. ब्रह्म वैवर्त पुराण, श्रीकृष्ण जन्म खंड, अध्याय १७, श्लोक २२०–२३०

२. इति दृष्टं सामवेदे कौथुमे मुनिसत्तम।
राशब्दोच्चारणादेव स्फीतो भवति माधवः ॥३८॥
धाशब्दोच्चारतः पश्चाद्धावत्येव ससंभ्रमः।
आदौ पुरुषमुच्चार्य पश्चात्प्रकृतिमुच्चरेत् ॥३९॥
—ब्र० वै० पुराण श्रीकृष्ण जन्मखंड अध्याय ५२

प्राणों के अधिष्ठाता देवता हैं तथा सम्पूर्ण विश्व आपका ही रूप है, आपको नमस्कार है।[1]

७३ अध्याय में रास मण्डल और राधा-सदन का वर्णन, श्रीराधा के महत्व का प्रतिपादन तथा उनके साथ कृष्ण के नित्य सम्बन्ध का कथन है।

अध्याय ६० के अन्त में अन्त में नन्द कृष्ण से रासमण्डल, गोपांगनाओं, गोपबालकों, यशोदा, रोहिणी और उनकी प्रिया राधा का स्मरण दिलाकर गोकुल चलने के लिए कहते हैं।

अध्याय ६२ में उद्धव को कदली वन में प्रवेश होने पर अत्यन्त निर्जन रम्य स्थान में राधिका का आश्रम मिला। वहाँ पर राधा चन्द्रकला के समान सुन्दरी थी, उनके नेत्र पूर्णतया खिले हुए कमल के सदृश थे, उन्होंने भूषणों का त्याग कर दिया था, केवल कानों में स्वर्ण के रङ्ग-विरंगे कुण्डल झलमला रहे थे, अत्यन्त क्लेश के कारण उनका मुख लाल हो गया था, वे शोक से मूछित हो भूमि पर पड़ी हुई रो रही थीं; *उनकी चेष्टाएँ शांत थी, उन्होंने आहार का त्याग कर दिया था;* उनके अधर और कण्ठ सूख गये थे, केवल कुछ-कुछ साँस चल रही थी।[2]

अध्याय ६३ में राधा उद्धव संवाद में राधा उद्धव से कहती है कि क्या श्रीकृष्ण इस रमणीय वृन्दावन में फिर आवेंगे ? क्या मैं उनके पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख का पुनः दर्शन करूँगी तथा रासमण्डल में उनके साथ पुनः क्रीड़ा करूँगी ! क्या सखियों के साथ पुनः जल विहार हो सकेगा ? और क्या श्रीनन्दनन्दन-शरीर में पुनः चन्दन लगा पाऊँगी।[3]

अध्याय ६४ में उद्धव द्वारा राधा को सान्त्वना प्रदान करने का वर्णन है। उद्धव कहते हैं तुम्हीं राधा हो; तुम्हीं कृष्ण हो। तुम्हीं श्रीकृष्ण हो। तुम्हीं

---

१. राधारमणरूपाय राधारूपधराय च ।६१।
राधाराध्याय राधायाः प्राणाधिकतराय च ।
राधासाध्याय राधाधिदेव प्रियतमाय च ।६२।
राधाप्राणाधिदेवाय विश्वरूपाय ते नमः ।
वेदस्तुतात्मवेदज्ञरूपिणे वेदिने नमः ।६३।
स्वयं प्रकृतिरूपाय प्राकृताय नमो नमः ।६५।
प्रकृतीश्वररूपाय प्रधानपुरुषाय च ।६६।

—ब्र० वै० पु० श्रीकृष्ण जन्मखण्ड, अध्याय ७०

२. ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण जन्मखण्ड, अध्याय ६२, श्लोक ६०, ६१, ६२

३. ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण जन्मखण्ड, अध्याय ६२, श्लोक ४, ५, ६

पुरुष हो, तुम्हीं परा प्रकृति हो। पुराणों तथा श्रुतियों में कहीं भी राधा और माधव में भिन्नता नहीं पायी जाती।[1] इस अध्याय में नारियों के मध्य गोपिकाओं को सबसे बढ़कर धन्य और मान्य माना है। इन्हीं राधिका के चरण कमल की रज को प्राप्त करने के लिए ब्रह्मा ने साठ हजार वर्षों तक तप किया था। ये पराशक्ति राधा गोलोक में निवास करने वाली और श्रीकृष्ण की प्राणप्रिया हैं। जो-जो श्रीकृष्ण के भक्त हैं, वे राधा के भी भक्त हैं।[2] ६७ अध्याय में उद्धव द्वारा राधा-महत्व-वर्णन तथा उद्धव के यशोदा के पास चले जाने पर राधा के मूर्छित होने का वर्णन है।

अध्याय १११ में राधिका द्वारा 'राम' आदि भगवन्नाओं की व्युत्पत्ति और उनकी प्रशंसा तथा यशोदा के पूछने पर अपने 'राधा' नाम की व्याख्या है। राधिका कहती हैं—"पूर्व काल में नन्द ने मुझे भाण्डीर-वट के नीचे देखा था, उस समय मैंने व्रजेश्वर नन्द को वह रहस्य बतलाया था और उसे प्रकट करने को मना कर दिया था। मैं ही स्वयं राधा हूँ और रायाण गोप की भार्या मेरी छाया मात्र है। रायाण श्रीहरि के अंश, श्रेष्ठ पार्षद और महान् हैं।[3]

जिनके रोम कूपों में अनेकों विश्व वर्तमान हैं, वे महाविष्णु ही 'रा' शब्द हैं और 'धा' विश्व के प्राणियों तथा लोकों में मातृवाचक धाय है; अतः मैं इनकी दूध पिलाने वाली माता, मूल प्रकृति और ईश्वरी हूँ। इसी कारण पूर्वकाल में श्रीहरि तथा विद्वानों ने मेरा नाम 'राधा' रखा है।[4]

---

१. त्वमेव राधा त्वं कृष्णस्त्वं पुमान्प्रकृतिः परा।
राधामाधवयोर्भेदो न पुराणे श्रुतौ तथा॥
—ब्र० वै० पु० श्रीकृष्ण जन्म खन्ड, अध्याय ६४, श्लोक ७

२. संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्त पुराणाङ्क—गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ० ५६६
—अध्याय ६४ श्लोक ७८, ७६,८०

३. ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्ण जन्म खण्ड, अध्याय १११, श्लोक ५५, ५६

४. राशब्दस्य महाविष्णुर्विश्वानि यस्य लोमसु।
विश्वप्राणिषु विश्वषु धा धात्री मातृवाचकः॥५७॥
धात्री माताऽहमेतेषां मूलप्रकृतिरीश्वरी।
तेन राधा समाख्याता हरिणा च पुरा बुधैः॥५८॥
ब्रह्म वै० पुराण, श्रीकृष्ण जन्म खण्ड, अध्याय १११

अध्याय १२२ में राधा द्वारा गणेश की अग्रपूजा का कथन है। अध्याय १२३ में गणेशकृत राधा-प्रशंसा, पार्वती राधा-सम्भाषण, पार्वती के आदेश से सखियों द्वारा राधा का शृङ्गार और उनकी विचित्र झाँकी, ब्रह्मा, शिव, अनन्त आदि के द्वारा राधा की स्तुति है। अध्याय १२४ में आया है कि जो नराधम राधा और माधव में भेद करते हैं, उनका वंश नष्ट हो जाता है और वे चिरकाल तक नरक में यातना भोगते हैं।[1]

अध्याय १२५ में राधा और श्रीकृष्ण का पुनः मिलाप, राधा के पूछने पर श्रीकृष्ण द्वारा अपना तथा राधा का रहस्योद्‌घाटन है। श्रीकृष्ण बतलाते हैं, 'राधे ! जैसे तुम गोलोक में राधिका देवी हो, उसी तरह गोकुल में भी हो। तुम्हीं वैकुण्ठ में महालक्ष्मी और सरस्वती हो। क्षीरोदशायी की प्रियतमा मर्त्यलक्ष्मी तुम्हीं हो। धर्म की पुत्रवधू लक्ष्मी स्वरूपिणी शांति के रूप में तुम्हीं वर्तमान हो। भारतवर्ष में कपिल की प्यारी पत्नी सती भारती तुम्हारा ही नाम है। तुम्हीं मिथिला में सीता नाम से विख्यात हो। सती द्रौपदी तुम्हारी ही छाया है। द्वारका में महालक्ष्मी के अंश से प्रकट हुई सती रुक्मिणी के रूप में तुम्हीं वास करती हो। पाँचों पाण्डवों की पत्नी द्रोपदी तुम्हारी कला है। तुम्हीं राम की पत्नी सीता हो; रावण ने तुम्हारा ही अपहरण किया था। सति ! जैसे तुम अपनी छाया और कला से नाना रूपों में प्रकट हो, वैसे ही मैं भी अपने अंश और कला से अनेक रूपों में व्यक्त हूँ।[2]

---

१. राधामाधवयोर्भेदं ये कुर्वन्ति नराधमाः ।
वंशहानिर्भवेत्तेषां पच्यंते नरके चिरम् ।।४५।।
—ब्र० वै० पुराण, श्रीकृष्ण जन्म खन्ड, अध्याय १२४

२. यथा त्वं राधिका देवी गोलोके गोकुले तथा ।
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्भवती च सरस्वती ।।९६।।
भवती मृत्युलक्ष्मीश्च क्षीरोदशायिनः प्रिया ।
धर्मपुत्रवधूस्त्वं च शांतिर्लक्ष्मीः स्वरूपिणी ।।९७।।
कपिलस्य प्रिया कांता भारते भारती सती ।
त्वं सीता मिथिलायां च त्वच्छाया द्रौपदी सती ।।९८।।
द्वारवत्यां महालक्ष्मीर्भवती रुक्मिणी सती ।
पंचानां पांडवानां च भवती कलया प्रिया ।।९९।।
रावणेन हृता त्वं च त्वं च रामस्य कामिनी ।
नानारूपा यथा त्वं च छायया कलया सति ।।१००।।
—ब्र० वै० पुराण, श्रीकृष्ण जन्म खन्ड, अध्याय १२६

हम इस पुराण के विस्तृत विवेचन के उपरांत इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि राधा 'गोलोक' की अधिष्ठात्री देवी हैं जिन्हें श्रीदामा के शाप के कारण पृथ्वी पर आना पड़ा और कृष्ण राधा को प्रसन्न करने के हेतु इस लोक में आये। ब्रह्मवैवर्त-कार राधा और कृष्ण में अभेद देखते हैं। राधा और कृष्ण समान हैं। वे भिन्न होते हुए भी अभिन्न हैं। वे परस्पर आराध्य और आराधक है। राधा को कृष्ण की पूरक शक्ति कहा है। इस पुराण में राधा को कृष्ण की अर्द्धांश और मूल प्रकृति कहा है। अनेक स्थलों पर राधा शब्द की व्युत्पत्ति बताई है। एक स्थान पर रास से 'रा' और 'धा' धातु के 'धा' को लेकर राधा की सिद्धि की गई है। दूसरे स्थान पर 'रा' को दानवाचक और 'धा' को निर्वाण वाचक मानकर राधा को निर्वाण प्रदात्री कहा है। तीसरे स्थान पर 'रा' महाविष्णु है जिनके रोमकूपों में अनेक विश्व वर्तमान हैं, 'धा' विश्व के प्राणियों तथा लोकों में मातृवाचक धाय है, अतः राधा मूल प्रकृति है। इसमें राधा को कृष्ण की अर्द्धांश और मूल प्रकृति कहा है। राधा तरुणी के रूप में और कृष्ण छोटे बालक के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं। इस पुराण में राधा और कृष्ण का विवाह भी करा दिया है। कृष्ण राधा को अनेक पौराणिक गाथायें सुनाते हैं श्रीराधा के साथ कृष्ण का वनविहार एवं रास विलास वर्णन है। उद्धव के राधा के यहाँ पहुँचने पर राधा की प्रेम विह्वलता के अनेक चित्र उपस्थित किए हैं तथा राधा का पुनर्मिलन भी कराया है। राधा की स्तुतियाँ भी इस पुराण से उपलब्ध होती है ब्रह्मवैवर्तपुराण की राधा संतत तरुण, रासरङ्गानु-रक्ता तथा केलि-कलित रूप में हमारे सम्मुख आई है।

वाराहपुराण—वाराह पुराण के १६४ वें अध्याय में कृष्ण के वृषासुर को मारने और राधाकुण्ड के निर्माण का वर्णन मिलता है। राधाकुण्ड में स्नान करने से राजसूय और अश्वमेघ यज्ञों का फल मिलता है। यह मोक्षराज तीर्थ है, मुक्ति-दाता है और इसमें स्नान करने से ब्रह्म हत्या के पाप शीघ्र नष्ट हो जाते हैं—

कोपेन पार्ष्णिघातेन मह्यां तीर्थं प्रवर्तितम्।
वृषभस्य वधाज्ज्ञेयं तीर्थं सुमहदद्भुतम् ॥३३॥
स्नातस्तत्र तदा कृष्णो वृषं हत्वा महासुरम्।
वृषहत्यासमायुक्तः कृष्णश्चिन्तान्वितोऽभवत् ॥३४॥
वृषो हतो मया चायमरिष्टः पापपूरुषः।
तत्र राधा समाश्लिष्य कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ॥३५॥
स्वनाम्ना विदितं कुण्डं कृतं तीर्थमदूरतः।
राधाकुण्डमिति ख्यातं सर्वपापहरं शुभम् ॥३६॥

अरिष्ट राधाकुण्डाभ्यां स्नानात्फलमवाप्नुयात् ।
राजसूयाश्वमेधानां नात्र कार्या विचारणा ॥३७॥

—वाराहपुराण, १६४ अध्याय

स्कन्द पुराण—श्री स्कन्द पुराण में श्रीमद्भागवत के माहात्म्य का वर्णन करते हुए स्वयं श्री वेदव्यासजी ने भागवत का अभिप्राय इन शब्दों में दिखलाया है, "श्रीराधा भगवान् श्रीकृष्ण की आत्मा है, उनके साथ सदा रमण करने के कारण ही रहस्य-रसके मर्मज्ञ ज्ञानी पुरुष श्रीकृष्ण को 'आत्माराम' कहते हैं।"[1]

पुराणों के मत में भगवान् श्रीकृष्ण की राधिका स्वयं आत्मरूप हैं, जिसके साथ वे सर्वदा रमण किया करते हैं और इसी कारण वे 'आत्माराम' शब्द के द्वारा प्रशंसित किये जाते हैं—

आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ ।
आत्मारामतया प्राज्ञैः प्रोच्यते गूढवेदिभिः ॥२२॥

—स्कन्दपुराण, भागवत माहात्म्य अध्याय १

श्रीकृष्ण की प्रियतमा श्री कालिन्दीजी अन्य पत्नियों से उनके स्वरूप का प्रतिपादन करती हैं। श्री राधिका ही आत्माराम श्रीकृष्ण की आत्मा हैं। उनकी सेवा के प्रभाव से ही श्रीकृष्ण का वियोग हमें स्पर्श भी नहीं करता। रुक्मिणी, सत्यभामा आदि श्रीकृष्ण की जितनी भी पत्नियाँ हैं, वे सब राधा के ही अंश का विस्तार है। श्रीराधा तथा श्रीकृष्ण सदा सर्वदा एक दूसरे के सम्मुख रहते हैं, अर्थात् इनका परस्पर संयोग नित्य सिद्ध है। श्रीकृष्ण ही राधा हैं और श्रीराधा ही श्रीकृष्ण हैं, इन दोनों का प्रेम ही वंशी है। तथा राधा की प्यारी सखी चन्द्रावली भी श्रीकृष्ण-चरणों के नखरूपी चन्द्रमाओं की सेवा में आसक्त रहने के कारण ही 'चन्द्रावली' नाम से कही जाती है।

आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका ।
तस्या दास्यप्रभावेण विरहोऽस्मान् न संस्पृशेत् ॥११॥
तस्या एवांशविस्तारा: सर्वा: श्रीकृष्णनायिका: ।
नित्यसम्भोग एवास्ति तस्या: सामुख्ययोगत: ॥१२॥
स एव सा च सैवास्ति वंशी तत्प्रेमरूपिका ।
श्रीकृष्णनखचन्द्रालिसङ्गाच्चन्द्रावली स्मृता ॥१३॥

—स्कन्द पुराण २, वैष्णव खन्ड ६, भागवत माहात्म्य, अ० २

---

१. आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ ।
आत्माराम इति प्रोक्तो मुनिभिर्गूढवेदिभिः ॥ —स्कंदपुराण

मत्स्य पुराण—मत्स्य पुराण में आया है कि रुक्मिणी द्वारका में और राधिकाजी वृन्दावन वन में विराजमान हैं—

रुक्मिणी द्वारवत्यां तु राधा वृन्दावने वने ॥—आनन्दाश्रम सं० १३-३८

ब्रह्मांड पुराण—ब्रह्माण्ड पुराण में राधिका को नित्य कृष्ण की आत्मा और कृष्ण को निश्चय राधिका की आत्मा बताया है—

राधा कृष्णात्मिका नित्यं कृष्णो राधात्मको ध्रुवम् ।

इस पुराण में कृष्ण ने अपने मुख से कहा है, "जिह्वा में, नेत्र में, हृदय में तथा सर्व अङ्गों में व्यापिनी राधा का मैं आराधन करता हूँ ।"[1]

गणेश व परशुराम संग्राम में कुठार से कटा हुआ दाँत पृथ्वी पर गिरने पर शोकातुर शङ्करजी के ध्यान करने पर गोलोक से राधा सहित कृष्ण आये। राधिका ने अपने कर से कपोल का स्पर्श किया और सिर को सूंघा। केवल कपोल के स्पर्श मात्र से उनका घाव पूर्ण हो गया।[2] पद्मपुराण के अध्याय ४३ में राधा का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

सकलगुणगरिष्ठो राधिकांके निविष्टो
मम कृतमपराधं क्षंतुमर्हत्वगाधम् ॥७॥
या राधा जगदुद्भवस्थितिलयेष्वाराध्यते वा जनैः
शब्दं बोधयतीशवक्त्रविगलत्प्रेमामृतास्वादनम् ॥
रासेशी रसिकेश्वरी रमणहृन्निष्ठानिजानंदिनी
नेत्री सा परिपातु मामवनतं राधेति या कीर्त्यते ॥८॥
पायाद्यः स चराचरस्य जगतो व्यापी विभुः सच्चिदा
नंदाब्धिः प्रकटस्थितो विलसति प्रेमांधया राधया ॥
कृष्णः पूर्णतमो ममोपरि दयाक्लिन्नातरः
स्तात्सदा येनाहं सुकृती भवामि च भवाम्यानंदलीनांतरः ॥१०॥

---

१. जिह्वा राधा स्तुती राधा नेत्रे राधा हृदिस्थिता ।
सर्वाङ्गव्यापिनी राधा राधैवाराध्यते मया ॥ —ब्रह्माण्ड पुराण

२. सतु दंतकुठारेण विच्छिन्नो भूतलेऽपतत् ॥४॥
राधया सहितः श्रीमान् श्रीदाम्ना चापराजितः ॥२१॥
प्रणिपत्य यथा न्यायं पूजयामास चागतम् ।
प्रवेश्याभ्यंतरे वेश्म राधया सहितं विभुम् ॥२३॥
यदा नैवोत्तरं प्रादात्पार्वती शिवसन्निधौ ।
तदा राधाऽब्रवीद्देवी शिव रूपा सनातनी ॥४६॥

इस पुराण में ब्रह्मा-नारद-संवाद में भी राधा का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

"आराधितमनाकृष्ण राधा राधितमानसः। कृष्णः कृष्णमनाराधा राधा कृष्णेति यः पठेत् ॥ शृणु गुह्यं तु मे तात नारायणमुखाच्छ्रुतम्। सर्वदा पूज्यते देवैः राधा वृन्दावने वने।"[१]

देवी भागवत—

श्री देवी भागवत में राधा की उपासना तथा पूजा पद्धति का विशेष विवरण मिलता है जिससे प्रतीत होता है उस युग में राधा को श्रीकृष्ण का साहचर्य प्राप्त हो गया था। इसमें राधा को मूल प्रकृति के रूप में ही माना है। श्रीकृष्ण की भाँति ही राधा भी पराशक्ति की अवतार है। आद्या प्रकृति के पाँच रूप हैं—१. दुर्गा, २. राधा, ३. लक्ष्मी, ४. सरस्वती, ५. सावित्री—

गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती।
सावित्री च सृष्टि विधौ प्रकृतिः पंचधास्मृता ॥१॥

—नवम् स्कन्ध प्रथम अध्याय

राधा पंच प्राण की अधिष्ठात्री देवी हैं जो श्रीकृष्ण को प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। वे सब प्रकृति देवियों से भी अधिक सुन्दरी और सर्वश्रेष्ठ हैं। वे सब पदार्थ में विद्यमान हैं, सौभाग्य के गर्व से अत्यन्त गर्वित है और उनके गौरव की सीमा नहीं है। वे श्रीकृष्ण का वामाङ्ग स्वरूप हैं गुण और तेज में कोई उनके तुल्य नहीं है। वे श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठतम, सबकी सारभूत, सर्वोत्कृष्ट, सबकी आदि सनातनी परमानन्द स्वरूपा धन्या मान्या और सबकी पूजिता हैं। वे परमात्मा श्रीकृष्ण के रास की क्रीड़ा की अधिदेवी हैं जिनसे रास मण्डल की उत्पत्ति हुई है और जो रासमण्डल की भूषण स्वरूप हैं। वे रासिकेश्वरी, रसिकों में अग्रगण्य और सदा रासावास में स्थिति करती हैं। गोलोक उनका निवास स्थान है और उनसे समस्त गोपियाँ उत्पन्न हुई हैं। वे परमानन्द, परम सन्तोष और परम हर्ष रूपा हैं, जो सत्वादि तीनों गुणों से अतीत पदार्थ और निराकार हैं किन्तु निर्लिप्त भाव से

१. एतयोरावयोः प्रम्बोश्चापि भेदो न दृश्यते।
एवमुक्त्वा तु सा राधा क्रोडे कृत्वा गजाननम् ॥५१॥
मूर्ध्न्युपाघ्राय पस्पर्श स्वहस्तेन कपोलके।
स्पृष्टमात्रे कपोले तु क्षतं पूर्त्तिमुपागतम् ॥५२॥

—ब्रह्मांड पुराण, अध्याय ४२

सर्वत्र अवस्थान करती हैं। वे सबकी आत्मा स्वरूप हैं। वे सब विषयों में ही निश्चेष्ट और अहंकार रहित हैं और भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये ही केवल शरीर धारण करती हैं।[1] समस्त जगत में जितनी स्त्रियाँ वास करती हैं वे सब श्रीराधा के अंश कला कलांश और अंशांश से उत्पन्न हुई हैं।[2] श्रेष्ठतम मुनिगण, देवतागण सभी उनकी पूजा करते हैं। गोलोक रास मण्डल में पहले राधा की पूजा हुई—

तत्पश्चात् त्रिषु लोकेषु देवता मुनिपुंगवैः।
प्रथमं पूजिता राधा गोलोके रास मंडले ॥१५२॥

—नवम् स्कन्ध प्रथम अध्याय

धूप दीपादि विविध उपहार द्वारा परमानन्द से राधा की पूजा एवं वंदना होती है सुयज्ञ राजा ने भूतल पर राधा का पूजन सर्वप्रथम किया।

पुष्पधूपादिभिर्भक्त्या पूजिता वंदिता सदा।
पृथिव्यां प्रथमं देवी सुयज्ञेनैव पूजिता ॥१५५॥

—नवम् स्कन्ध प्रथम अध्याय

नवम् स्कन्ध के अध्याय दो में आया है कि कुछ कालोपरान्त वह श्रीकृष्ण प्रिया मूल प्रकृति दो भागों में विभक्त हुई, उसके वाम अङ्ग से कमला और दक्षिण अङ्ग से राधिका की उत्पत्ति हुई। राधिका के रोमों से गोप कन्याओं की उत्पत्ति हुई, वह सब गोपांगना राधा के अनुरूप राधा की ही पार्श्वचरी और सभी प्रियंवदा थीं।[3]

नवम् स्कन्ध के तृतीय अध्याय में महाविष्णु की उत्पत्ति चिन्मयी राधा से बतलाई गई है। यह महाविष्णु महान् विराट्-स्वरूप बालक के रूप में चित्रित किये गये हैं। परमात्म स्वरूपा प्रकृति संज्ञक राधा से उत्पन्न यह बालक सम्पूर्ण विश्व का आधार बतलाया गया है। इसके प्रत्येक रोम कूप में असंख्य ब्रह्माण्डों की सत्ता है। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु और शिव विद्यमान हैं। इस प्रकार इस बालक के शरीर में विद्यमान ब्रह्माण्डों की संख्या बताई नहीं जा सकती।

---

१. देवीभागवत नवम् स्कंध प्रथम अध्याय श्लोक ४४ से ५०
२. " " " ५८
३. अथ कालांतरे सा च द्विधारूपा बभूव ह।
वामार्धांगाच्च कमला दक्षिणार्धाच्च राधिका ॥५४॥
राधांगलोमकूपेभ्यो बभूवुर्गोपकन्यकाः।
राधानुल्याश्च ताः सर्वा राधादास्यः प्रियंवदाः ॥६२॥

—नवम् स्कन्ध अध्याय २

बारहवें अध्याय में गङ्गा की स्तुति करते हुए आया है कि गङ्गा ने राधा के रास महोत्सव में अवस्थान किया।[१] रास मण्डल में न राधा है न कृष्ण हैं सम्पूर्ण जलमय है—

कष्टेन चेतनां प्राप्य ददर्श रास मण्डले।
स्थलं सर्वं जलाकीर्णं राधा कृष्णविहीनकम् ॥५७॥

—अध्याय १२

संसारवासी पुरुषों का उद्धार करने के लिए ही राधा और कृष्ण दोनों ने जलमयी मूर्ति धारण की है। अभिन्न देह राधा और कृष्ण अङ्गोत्पन्न गङ्गा सबको भोगैश्वर्य और मुक्ति प्रदान करती है।[२]

तेरहवें अध्याय में गङ्गा के वर्णन में आया है कि पूर्वकाल के समय गङ्गा ने शिवलोक में द्रवमूर्ति धारण की थी, गङ्गा श्रीकृष्ण और राधा के अङ्ग से उत्पन्न हैं इसलिए वह दोनों का ही अङ्ग और आत्म स्वरूपिणी हैं।[३] कृष्ण और राधा की तदाकारता तथा कृष्ण के वक्षस्थल में राधा की स्थिति का वर्णन इस अध्याय में निम्न प्रकार से मिलता है—

क्षतं तेजः स्वरूपं च रूपं तत्र स्थितं क्षणम्।
निराकारं च साकारं ददर्श द्विविधं क्षणम् ॥१०३॥
एकमेव क्षणं कृष्णं राधया रहितं परम्।
प्रत्येकासनसंस्थं च तया सार्धं च तत्क्षणम् ॥१०४॥
राधा रूपधरं कृष्णं कृष्णरूपं कलत्रकम्।
किं स्त्रीरूपं च पुरुषं विधाता ध्यातुमक्षमः ॥१०५॥

---

१. देवीभागवत नवम् स्कन्ध, अध्याय १२, श्लोक २०

२. तनश्च राधया सार्धं श्रीकृष्णो द्रवतामिति।
ततो ब्रह्मादयः सर्वे तुष्टुवुः परमेश्वरम् ॥५६॥
राधा कृष्णांगसम्भूता भुक्तिमुक्तिफल प्रदा।
स्थाने स्थाने स्थापिता सा कृष्णेन च परात्मना ॥७६॥

—देवीभागवत नवम् स्कन्ध, अध्याय १२

३. पुरा बभूव गोलोके सा गङ्गा द्रवरूपिणी।
राधा कृष्णांग सम्भूता तदंशा तत्स्वरूपिणी ॥७॥

—नवम्स्कन्ध, अध्याय १२

हृत्पद्मस्थं च श्रीकृष्णं ध्यात्वा ध्यानेन चक्षुषा।
चकार स्तवनं भक्त्या परिहार मनेकधा ॥१०६॥
ततः स्वचक्षुरुन्मील्य पुनश्च तदनुज्ञया।
ददर्श कृष्णमेकं च राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥१०७॥

चौदहवें अध्याय में बताया है कि राधिका श्रीकृष्ण के वामाङ्ग से उत्पन्न हुई हैं तथा राधा और कमला दोनों में कुछ भी भिन्नता नहीं है।[1]

इसी स्कन्ध के ५० वें अध्याय में राधा के मन्त्र का स्वरूप, जपविधि तथा फल का विवरण विशेष रूप से दिया गया है। राधा का मन्त्र है–"श्रीराधायैस्वाहा" इस मन्त्र के आदि में माया बीज (ह्रीं) का प्रयोग करने से यह श्रीराधावाञ्छा-चिन्तामणि मन्त्र वन जाता है, जिसका स्वरूप है—'ह्रीं श्रीराधायै स्वाहा। "राधा की पूजा किये विना मनुष्य श्रीकृष्ण की पूजा के लिये अनधिकारी माना जाता है; इसलिये वैष्णय मात्र का कर्त्तव्य है कि वे श्रीराधा की पूजा अवश्य करें। श्रीराधा श्रीकृष्ण की प्राणाधिका देवी हैं। कारण, भगवान् इनके आधीन रहते हैं। ये नित्य रासेश्वरी भगवान् के रास की नित्य स्वामिनी हैं। इनके बिना भगवान् रह ही नहीं सकते। ये सम्पूर्ण कामनाओं को सिद्ध करती हैं, इसी से ये राधा नाम से कही जाती हैं।"

कृष्णार्चायां नाधिकारो यतो राधार्चनं विना।
वैष्णवैः सकलैस्तस्मात्कर्तव्यं राधिकार्चनम् ॥१६॥
कृष्णप्राणाधिदेवी सा तदधीनो विभुर्यतः।
रासेश्वरी तस्य नित्यं तया हीनो न तिष्ठति ॥१७॥
राध्नोति सकलान्कामास्तस्माद्राधेति कीर्तिता।
आत्रोक्तानां यन्नां च ऋषिरस्म्यहमेव च ॥१८॥

—देवीभागवत नवम्स्कन्ध, अध्याय ५०

राधा सम्बन्धी एक अन्य वर्णन इस प्रकार है—

इयञ्च देवीगायत्री देवताऽत्र च राधिका।
तारो बीजं शक्तिवीजं शक्तिस्तु परिकीर्तिता ॥१९॥

---

१. ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्नित्यं सेवितो यः परात्परः।
श्री राधेति चतुर्थ्यंतं वह्नेर्जाया ततः परम् ॥१०॥
षडक्षरो महामन्त्रो धर्माद्यर्थप्रकाशकः।
मायाबीजादिकश्चायं वांछाचिंतामणिः स्मृतः ॥११॥

—देवीभागवत नवम्स्कन्ध, अध्याय ५०

मूलावृत्त्या षडंगानि कर्तव्यानीतरत्र च।
अथ ध्यायेन्महादेवीं राधिकां रास नायिकाम् ॥२०॥

—देवीभागवत नवमस्कन्ध, अध्याय ५०

पचासवें अध्याय में २१ वें श्लोक से २६ वें श्लोक तक राधा के स्वरूप का वर्णन है। ४३ वें श्लोक में राधा को वृषभानु नन्दिनी बताया है—

केनचित्कारणेनैव राधावृन्दावने वने।
वृषभानुसुता जाता गोलोकस्थायिनी सदा ॥४३॥

नारायण राधा स्तवन इस प्रकार करते हैं—

नमस्ते परमेशानि रासमण्डलवासिनि।
रासेश्वरि नमस्तेऽस्तु कृष्णप्राणाधिकप्रिये ॥
नमस्त्रैलोक्यजननि प्रसीद करुणार्णवे।
ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्देवैर्वन्द्यमानपदाम्बुजे ॥
नमः सरस्वती रूपे नमः सावित्रि शङ्करि।
गङ्गापद्मावती रूपे षष्ठि मङ्गलचण्डिके ॥
नमस्ते तुलसीरूपे नमो लक्ष्मीस्वरूपिणि।
नमो दुर्गे भगवति नमस्ते सर्वरूपिणि ॥
मूलप्रकृतिरूपां त्वां भजामः करुणार्णवाम्।
संसारसागरादस्मादुद्धराम्ब ! दयां कुरु ॥

—श्रीदेवी भागवत ९।५०।४६ से ५०

पं० बलदेव उपाध्याय का अभिमत है कि देवी भागवत के युग में राधा लक्ष्मी से प्रधान मानी जाने लगीं थीं और राधा की प्रतिष्ठा वैष्णव जगत में हो चुकी थी। वे लिखते हैं, "इसी पुराण के एक दूसरे स्थल पर कहा गया है कि मूल प्रकृति राधा के दक्षिण अङ्ग से राधा का प्राकट्य होता है और वाम अंग से लक्ष्मी का यह कथन उस युग का संकेत करता है, जब लक्ष्मी गौण हो चली थी और राधा की प्रमुखता वैष्णव धर्म में अपने उत्कर्ष पर थी। देवी भागवत वस्तुतः शक्ति की उपासना तथा महिमा बतलाने वाला पुराण है। यही कारण है कि वह अन्य शक्तियों का भी विपुल वर्णन उपस्थित करता है। श्रीकृष्ण की शक्तिरूपा चिन्मयी राधा की सत्ता, उनके मन्त्र का विधान, पूजा की विधि तथा राधा मन्त्र की महिमा इस तथ्य का द्योतक है कि इस युग में राधा की पूर्ण प्रतिष्ठा वैष्णव धार्मिक जगत् में सम्पन्न हो चुकी थी।[1]

---

१. भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा—पं० बलदेव उपाध्याय, पृ० १८

भविष्य पुराण—

भविष्य पुराण में राधिका को निराकार ब्रह्म की विलासिनी शक्ति कहा है। कृष्ण विलासी स्वरूप हैं और ये उनकी सहचरी शक्ति। भविष्य पुराण प्रतिसर्ग अध्याय २५ में आया है कि उस अव्यय सनातन पुरुष के शरीर से दो विभाग हुए जो राधाकृष्ण के नाम से कहलाये। एक सहस्र युगपर्यन्त जो घोर तप किया था उसी के कारण भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर से दो भाग राधा और कृष्ण पृथक-पृथक हुए।

तदव्ययात्समुद्भूतोराधाकृष्णः सनातनः।
एकीभूतं द्वयोरंगं राधाकृष्णो बुधैः स्मृतः ॥१५६॥
सहस्रयुगपर्यन्तं यत्तेपे परमं तपः ।
तदा स च द्विधाजातो राधाकृष्णः पृथक् पृथक् ॥१५७॥

इसी अध्याय में आगे आया है कि भगवान् के शरीर के तामस अंश से कंस और राक्षसों की उत्पत्ति हुई और राधा के अंग से तीन करोड़ गोपियों का उद्भव हुआ। राधा के सात्विक भाग से ललितादिक सखियाँ और राजस भाग से कुब्जा आदि सखियाँ एवं तामस भाग से पूतनादि राक्षसियों की उत्पत्ति हुई। फिर उन सबोंने मिलकर तप किया और उस तप से राधाकृष्ण नाम की दो अभिव्यक्तियाँ हुईं। वही भगवान् कृष्ण राधा और कृष्ण के दो रूपों में विभक्त हुआ, इसी को वेद भगवान् 'सहस्र शीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात' इस प्रकार स्तुति करता है। उनकी तपस्या से शरीर के पूर्वार्द्ध से राधादेवी और परार्द्ध से कृष्ण की उत्पत्ति हुई वे ही पुराणों के प्रकृति पुरुष हैं।

कंसाद्यास्तामसाजाता दिव्यलीलाप्रकारिणः।
राधांगादुद्भवा गोप्यस्तिस्रः कोट्यस्तथाक्रमात् ॥१६७॥
ललिताद्याः सात्विकाश्च कुब्जाद्या राजसास्तथा।
तामसाः पूतनाद्याश्च नानाहेलाचरित्रकाः ॥१६८॥
सहस्रयुगपर्य्यन्तं तेषां लीला वभूव ह।
ततस्तो तान्समाहृत्य तेपतुश्च पुनस्तपः ॥१६९॥
द्विधा जातः स वै कृष्णो राधादेवी तया द्विधा।
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात ॥१७०॥
पूर्वार्द्धात् सा तु वै जाता राधादेवी परार्द्धतः।
पुरुषः प्रकृतिश्चोभौ तेपतुः परमं तपः ॥१७२॥

अष्टम्यां भाद्रशुक्लस्य सा जाता रविवासरे ।
रात्रौ पराह्नसमये ज्येष्ठायाश्चान्तिमे पदे ॥९॥
किमहं वर्णये भाग्यं राधायाः परमाद्भुतम् ।
ब्रह्मादयोऽपि न विदुः परमानन्दमन्दिरम् ॥१०॥
ततो विवाहमकरोद्वृषभानुर्गुणोदयः ।
वैशाखे सितपक्षे तु तृतीया चाक्षयाह्वया ॥११॥
रोहिणी स्वर्क्ष सम्पूर्णा जाया लग्न शुभावहा ।
पारिबर्हादिकं दत्त्वा वक्रमन्नं समृद्धिमत् ॥१२॥

आदि पुराण, अध्याय १२

गर्ग संहिता—

गर्ग संहिता में गोलोक खण्ड अध्याय २१ श्लोक ५४,[1] अध्याय ३ के श्लोक १५,[2] श्लोक २१, तथा श्लोक ४०–४१[3] में राधा का उल्लेख हुआ है । इसके अतिरिक्त अन्य अनेक स्थानों पर राधा का वर्णन मिलता है ।[4] गर्ग संहिताकार ने राधा के नाम की व्याख्या करते हुए उसे परिपूर्ण कहा है—

रमया तुरकारः स्यादाकारस्त्वादिगोपिका ।
धकारोधरया ह्यास्यादापगा विरजा नदी ॥६८॥

---

१. श्री राधिकालंकृतवामबाहुंस्वच्छन्दवक्रीकृतदक्षिणांघ्रिम् ।
वंशीधरंसुन्दरमन्दहासं भ्रूमंडलामोहितकामराशि ॥
—अध्याय २, श्लोक ५४

२. कृष्णाय पूर्णपुरुषाय परात्पराय यज्ञेश्वराय परकारणकारणाय ।
राधावराय परिपूर्णतमाय साक्षाद् गोलोकधामधिषणाय नमः परस्मै ॥
—अध्याय ३, श्लोक १५

३. यो राधिकाहृदयसुन्दरचंद्रहारः श्रीगोपिकानयनजीवनमूलहारः ।
गोलोकधामधिषणध्वज आदिदेवः स त्वं विपत्सु विबुधान्परिपाहि पाहि ॥
—अध्याय ३, श्लोक २१

४. नंदो द्रोणो वसुः साक्षाद्यशोदासाधरास्मृता ।
वृषभानुः सुचन्द्रश्च तस्य भार्याकलावती ॥४०॥
भूमौ कीर्तिरितिख्याता तस्यां राधा भविष्यति ।
सदा रासं करिष्यामि गोपीभिर्व्रजमंडले ॥४१॥ —अध्याय ३

श्रीकृष्णस्य परस्यापि चतुर्धा तेजसोऽभवत् ।
लीलाभूः श्रीश्च विरजा चतस्रः पत्न्यःएव हि ॥६६॥
संप्रलीनाश्च ताः सर्वा राधायां कुंजमन्दिरे ।
परिपूर्णतमां राधां तस्मादाहुर्मनीषिणः ॥७०॥— अध्याय १५

गर्ग संहिता के अध्याय १५ में आया है कि जो कोई मनुष्य, देवता, ऋषि बार-बार राधाकृष्ण-राधाकृष्ण जपता है उसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये पदार्थ सहज ही प्राप्त हो जाते हैं। वृषभानु भी राधाकृष्ण के इस प्रभाव को जानकर प्रसन्न हुए—

राधाकृष्णेति हे गोप ये जपन्ति पुनः पुनः ।
चतुः पदार्थान्किन्तेषां साक्षात् कृष्णोऽपिलभ्यते ॥७१॥
तदातिविस्मितो राजन् वृषभानुः प्रियायुतः ।
राधाकृष्णप्रभावन्तं ज्ञात्वानन्दमयो ह्यभूत् ॥७२॥

राधा का जन्म भाद्र पद शुक्ला अष्टमी सोमवार के दिन दोपहर को, जब आकाश मेघों से आच्छादित था हुआ। जिस समय राधा का अवतार हुआ नदी निर्मल हो गई, दशों दिशाओं में प्रसन्नता छा गई और कमलों का सुशीतल, सुन्दर, शुद्ध अंगराग पान करके वायु प्रसरित हुई।[1]

राधा की माता कीर्ति राधा को देखने लगी। राधा शरद ऋतु की चन्द्रमा की कांति के समान उज्ज्वल थीं। जिस प्रकार चन्द्रमा अपनी कला के साथ बड़ा होता है और उसमें बहुत प्रकाश होता है वैसे ही राधा रूप की पुंज थी। जिन राधा के दर्शन देवताओं में श्रेष्ठ देवताओं को भी दुर्लभ हैं वे वृषभानु के प्रासाद में स्थित हैं।[2]

---

१ घनावृते व्योम्नि दिनस्यमध्ये भाद्रे सिते नागतिथौ च सोमे ।
अवाकिरन्देवगणाः स्फुरद्भिस्तन्मंदिरे नन्दनजैः प्रसूनैः ॥७॥
राधावतारेण तदा बभूवुर्नद्योमलाभाश्च दिशः प्रसेदुः ।
ववुश्च वाता अरविन्दरागैः सुशीतलाः सुन्दरमन्दपानैः ॥८॥
—गर्ग संहिता, गोलोकखण्ड, अध्याय ८

२. सेतां शरच्चंद्रशताभिरामां दृष्ट्वाथ कीर्तिर्मुदमाप गोपी ।
शुभंविधाया मुदो द्विजेभ्यो द्विलक्षमानदकरंगवाचा ॥९॥
प्रेंखे मणिद्रत्नमयूखपूर्णे सुवर्णयुक्ते कृतचन्दनांगे ।
आंदोलिता सा ववृधे सखीजनैर्दिनेदिने चन्द्रकलेव भाभिः ॥१०॥
यद्दर्शनं देववरैः सुदुर्लभं यज्ञैरवाप्तं जनजन्मकोटिभिः ।
सविग्रहां तां वृषभानुमंदिरे लक्षन्ति लोकाललना प्रलालनैः ॥११॥
—गर्गसंहिता, गोलोकखण्ड, अध्याय ८

गर्ग संहिता के वृन्दावन खण्ड द्वितीय अध्याय में आया है कि जब कृष्ण भूमि का भार उतारने के लिए आने लगे तो राधा से बोले कि हे प्रिये ! हे भीरु ! तुम भी पृथ्वी पर चलो ।[1]

गोलोकखण्ड अध्याय १५ में गर्गजी वृषभानु से राधा के विवाह के सम्बन्ध में कहते हैं कि हे वृषभानु इन राधाकृष्ण का विवाह हम नहीं करा सकते । इन दोनों का विवाह यमुना के तट पर भांडीर वन के पास होगा । वृन्दावन के समीप जहाँ कोई भी मनुष्य नहीं ऐसे सुन्दर स्थल में आकर ब्रह्माजी विवाह करावेंगे—

अहं न कारयिष्यामि विवाहमनयोर्नृप ।
तयोर्विवाहो भविता भांडीरे यमुनातटे ॥६०॥
वृन्दावनसमीपे च निर्जने सुन्दरस्थले ।
परमेष्ठी समागत्य विवाहं कारयिष्यति ॥६१॥ —अध्याय १५

गिरिराज खण्ड के अध्याय ६ में वर्णन है कि श्रीकृष्णचन्द्र के बाँये कंधे से लीला, श्री, भू, विरजा ये चार गौर तेज प्रकाशमान हरिप्रिया उत्पन्न हुईं । लीलावती कृष्ण की अतिप्रिया थीं, जिनको मुनि जन राधा कहते हैं । उन राधा की दोनों भुजाओं से विशाखा, ललिता सखी उत्पन्न हुईं ।[2]

३. तन्त्र शास्त्र में राधा—

तन्त्रों में अनेक स्थानों पर राधा का वर्णन आया है इसलिए राधा के स्वरूप के विवेचन के लिए तन्त्र शास्त्रों का अध्ययन भी अनिवार्य है । ज्ञानार्णव तन्त्र में आया है—

'वसन्तसहितं कामं कदम्बवनमध्यगम् ।
मन्त्रेणानेन तं कामं पूजयेत्सिद्धिहेतवे ॥

---

१. भुवोभारावताराय गच्छन्देवो जनार्दनः ॥
राधां प्राह प्रिये भीरो गच्छ त्वमपि भूतले ॥६॥
—वृन्दावनखण्ड, अध्याय २

२. तद्रःमांसात्समुद्भूतं गौरतेजः स्फुरत्प्रभम् ।
लीलाश्रीर्भूश्च विरजा तस्माज्जाता हरेः प्रियाः ॥२२॥
लीलावती प्रिया तस्य तां राधां तु विदुः परे ।
श्रीराधाया भुजाभ्यां तु विशाखाललिता सखी ॥२३॥
—गर्ग संहिता, गिरिराजखंड, अध्याय ६

इससे सम्भवतः ब्रजलीला पर प्रकाश पड़ता है। तन्त्रों के अनुसार राधा और कृष्ण में कोई अन्तर नहीं है। एक ज्योति ही राधा माधव रस से दो प्रकार की हो गई है। भगवान् सर्वेश्वर हैं, राधिका सर्वशक्ति लक्ष्मी-गोप रूप हैं। परात्पर ब्रह्म सनातन हैं। राधिका भगवान् के सत्व, तत्व, परत्व तीन गुणों वाली हैं। भगवान् कृष्ण के समान ही वह तीन गुणों से लोकों का पोषण करती हैं। व्रजेन्द्र को भी वह मोहित करने वाली है। अब हम आगे विभिन्न तन्त्रों में आए हुए राधा सम्बन्धी वर्णनों का विवेचन करेंगे।

संमोहन तन्त्र—जीव गोस्वामी ने 'ब्रह्म संहिता' की टीका में सम्मोहन तन्त्र से भी राधा के विषय में यह श्लोक उद्धृत किया है—

या नाम्ना नाम्नि दुर्गाहं गुणैर्गुणवती ह्यहम्।
यद् वैभवान्महालक्ष्मी राधा नित्या पराद्वया ॥

सम्मोहन तन्त्र का यह प्रख्यात कथन वैष्णवी साधना का आधारपीठ है। सम्मोहन तन्त्र के अनुसार कृष्ण और राधा में कोई अन्तर नहीं है। एक ज्योति ही राधा माधव से दो प्रकार की हो गई है। बिना श्रीराधा के अकेले श्रीकृष्ण के स्मरण अर्चन में अपराध बताया गया है। इसमें एक स्थान पर शिवजी कहते हैं कि जो श्याम और गौर तेज में भेद कर गौर तेज के बिना जो श्याम तेज का अर्चन और ध्यान करता है वह पातकी होता है। गौर तेज और श्याम तेज-राधा और कृष्ण अन्योन्य आलिङ्गित रूप में ही सदा रहते है। कभी कृष्ण के अङ्क में राधा छिपी हुई है, कभी राधा के अञ्चल में कृष्ण दुबक जाते हैं, इसी से दोनों एक रूप माने जाते हैं। एक ही ज्योति के दो विकास हैं—

"गौरतेजो विना यस्तु श्यामतेजः समर्चयेत्।
स भवेत्पातकी भद्रे सत्यं (एतत्) ब्रवीम्यहम् ॥
स ब्रह्महा सुरापी च स्वर्णस्तेयी च पञ्चमः।
एतैर्दोषैर्विलिप्येत तेजोभेदान्महेश्वरि ॥
यस्माज्ज्योतिरभूद्द्वेधा राधामाधवरूपधृक्।
तस्मादिदं महादेवि गोपालेनैव भाषितम् ॥"

गौतमीय तन्त्र—बृहद् गौतमीय तन्त्र में श्रीराधिका कृष्ण के समान वर्णन की गई है। वह सब लक्ष्मीमयी, स्वर्णकान्ति और पर सम्मोहिनी है—

देवीकृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता।
सर्वलक्ष्मीमयी सर्वकान्तिः सम्मोहिनी परा ॥

जिन तीन गुणों से युक्त भगवान् लोकों का पोषण करते हैं, राधा भी उन्हीं सत्व, तत्व, परत्व तीन तत्वों के रूप वाली हैं—

त्रितत्त्वरूपिणी सापि राधिका मम वल्लभा।

उनमें सत्व कार्य, तत्व कारण और परत्व उनसे भी पृथक है। रसमय श्री व्रजेन्द्रनन्दन जगन्मोहन हैं, फिर भी श्री वृषभानुजा उनको मोहित करती हैं इसलिए शास्त्रों में उनको सबसे परा कहा गया है। गौतमीय तन्त्र में क्लीं इस काम बीज की व्याख्या इस प्रकार की गई है—

"ककारः पुरुषः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
ईकारः प्रकृति राधा नित्यं वृन्दावनेश्वरी॥
लश्चानन्दात्मकः प्रेम सुखं च परिकीर्तितम्।
चुम्बनाश्लेषमाधुर्यं विन्दुनादमुदीरितम्॥"

ककार से पुरुष सच्चिदानन्द विग्रह कृष्ण हैं। ईकार, प्रकृति नित्य वृन्दावनेश्वरी राधिका हैं। लकार आनन्दात्मक प्रेम सुख कहा गया है। विन्दु और नाद ये दोनों चुम्बनालिंगन माधुर्य स्वरूप हैं।

उसमें आया है—

"तन्मध्ये मण्डलं सुष्ठु योजनत्रय वर्तुलम्।
तन्मध्ये षोडशदलं पद्मं तदुपरि स्थितम्॥
किशोरी गौरश्यामांगौ कोटिकन्दर्पमोहनौ।
राधाकृष्णावितिख्यातौ विष्णुना चिन्हितौ नमः॥
मुख्याष्टसखिभिर्युक्तौ गोपिकाशतयूथपौ।
राधाकृष्णावहं वन्दे रासमण्डलमध्यगौ॥"

उसके बीच में मनोहर तीन योजन विस्तीर्ण गोलाकार मण्डल है। उस मण्डल में षोडश दलवाला पद्म है। उस कमल के ऊपर किशोर अवस्था वाले गौर श्याम अंग वाले और करोड़ों कन्दर्पो को मोहित करने वाले तथा विष्णु परिलक्षित राधा कृष्ण इस नाम से विख्यात उन दोनों को हम नमस्कार करते है। ललिता आदि प्रधान अष्ट सखियों से युक्त, सैकड़ों गोपियों के यूथ से परिवेष्टित रास मण्डल में विराजमान राधाकृष्ण की हम वन्दना करते हैं।

रुद्रयामल तन्त्र—रुद्रयामल तन्त्र में गीता के समान योग का विस्तृत विवेचन है। इस ग्रन्थ के उत्तर तन्त्र में राधा का वर्णन इस प्रकार है—स्वाधिष्ठान नामक

जलतत्व प्रधान चक्र किंवा पद्म है। इसे षड्दलकमल कहते हैं। यह दीप्तिमान अरुण वर्ण और ब, भ, म, य, र, ल इन छः मातृका वर्णों से युक्त है। प्रत्येक दल की ६ वृत्तियां है—यथा अवज्ञा, मूर्छा, प्रश्रय, अविश्वास, सर्वनाश और क्रूरता। उसकी कर्णिका के अन्दर श्वेत वर्ण अर्धचन्द्राकार वरुण मण्डल है, जिसमें वरुण बीज 'व' है। इसमें श्वेत वर्ण द्विभुज वरुणदेव मकराधिष्ठित हैं। उनके अङ्क में राधा-कृष्ण का वर्णन है।

अड़तीसवें पटल में अनेक मन्त्रों का वर्णन है। अड़तीसवें पटल के ३५ वें श्लोक में आया है—

योगेश्वरं कृष्णमीशं राधिकाराकिणीश्वरम् ॥३५॥

उन्तालीसवें पटल के १४ वें श्लोक में लिखा है—

राकिराया: प्रेमसिद्धं नववयसि गतं गीतवाद्यानुरक्तम् ॥१४॥

चालीसवें पटल में योगी को दृढ़ता प्राप्त कराने के नियमों का वर्णन करते-करते ध्यान दृढ़ता का मार्ग बताते हुए आया है कि इस कारण से महाविद्या उत्तम शक्ति राकिणी राधा ध्यान करने योग्य है। फिर कुम्भकादि द्वारा वायु निर्मल करके साक्षात्कार के समय प्रत्यक्ष रूप से राधा का उल्लेख कर दिया है—

राधादिगोपीवृन्दैश्च गोपिकाभिः समन्ततः ॥१४॥

इस तन्त्र में आनन्द भैरवी भैरवजी से कहती है कि, "हे योगेन्द्र, परमानन्द सिद्ध, श्रीचन्द्रशेखर आप परमानंदवर्द्धन राकिणी स्तोत्र सुनिये। सब जगह सुख देने वाले स्तोत्र के पाठ से योगी-योगेन्द्र हो जाता है।

आनन्दसिन्धुजडिताखिलसार - पारा ।
बाला कुचाग्रनमिता दलषट्कुलस्था ॥
काली फलामलगुणा धनदा धनस्था ।
कृष्णेश्वरी समुदयं कुरु राकिणि मे ॥१९॥
या राकिणी त्रिजगतामुदयाय चेष्टा ।
संज्ञामयी कुलपरा कुलवल्लभस्था ।
विश्वेश्वरी स्वप्नहरप्रियकर्म्मनिष्ठा ।
कृष्णप्रिया मम मुखं परिपातु देवी ॥२०॥
षड्वर्गनायकर-पद्मनिषेविता या ।
रासेश्वरी प्रियकरी सुरसुन्दरी या ॥
भामाकुलेश जननी जगतां सदैव ।
विद्या परादि सुखदावतु मे शरीरम् ॥२१॥

राकां सुधां वरमयीं जगतां गुणस्थां ।
धर्मार्णवां रसदले परिपूजयामि ॥
कर्त्रीं परां सकरुणां रमणीं त्रिसर्गा—
माह्लादिनीमतिदयाममलार्थचिन्ताम् ॥२६॥
भ्रान्ति भ्रमाद्यपहरां स्मृतिमूलपूज्यां ।
भार्य्यां हरेरतिसुखां परिपूजयामि ॥
या कातरं निरवधि प्रलयेऽपि रक्षेत् ।
वागीश्वरी भगवती नतिकोटिनम्रम् ॥२७॥

× × ×

वायुस्थितां लयमयीस्थितिमार्गसञ्ज्ञां ।
मङ्गप्रिया सुवसना परिपातु राधा ॥
श्रीकृष्णचित्तहरणे कुशला रसज्ञा ।
रासेश्वरी शुभकरी जगदम्बिका सा ॥३०॥

× × ×

गण्डं चण्डसरस्वती श्रुतियुगं कैलासशृङ्गस्थिता ।
घाटं मे घटवासिनी शशिमुखी सूक्ष्मातिसूक्ष्माशया ॥३१॥
जिह्वाग्रं चिबुकं रदानधि महाकण्ठं गलं स्कन्धकं ।
स्कन्देशी दशनप्रभामलमतिर्वैकुण्ठधामेश्वरी ॥३२॥
कुलविन्याससमये कुलचक्रप्रवेशने ।
अवश्यं प्रपठेद्विद्वान् राकिणी राधिकास्तवम् ॥३७॥

× × ×

कुण्डली पृथिवी देवी राकिणी स्वर्धिदेवता ।
तद्देहगामिनी देवी राधिका चाद्यकामिनी ॥४४॥

तात्पर्य यह है कि राधा श्रीकृष्ण की प्रिया हैं। पूर्णमासी की सुधारूप ह के कारण इनका नाम राकिणी है। ये गुणों में स्थित हैं। सूक्ष्म से भी अति सू आशयवाली हैं। वैकुण्ठधाम की ये ईश्वरी हैं। ये फल-स्तुति के साथ-साथ मु साधक उपदेश प्रकट करती हैं। राधिका आदि कामिनी हैं।

इस कारण से महाविद्या, उत्तम शक्ति राकिणी राधिका ध्यान क योग्य है—

ततो ध्येया महाविद्या राकिणी शक्तिरुत्तमा ॥
चत्वारिंशे पटले, श्लोक १७ ।

विश्वव्यापिका संसार में व्याप्त होने वाली है—

विश्वव्यापिका जगन्मोहिनी । मूलात्प्रभृति - षडाधार मेदिनी ॥
द्विचत्वारिंश पटले ॥

माहेश्वर तन्त्र—माहेश्वर तन्त्र के एकादश पटल ज्ञानखण्ड में राधा का उल्लेख मिलता है।—

स्वामिनी वासना राधा स्वयं वृन्दावनेश्वरी ।
लवमात्रकालावच्छिन्नो विरहोऽभूद्रसात्मकः ॥३१॥
नलिनीपत्रसंहत्याः सूक्ष्मसूच्यभिवेधने ।
दलेदले च यः काल: स कालो लववाचकः ॥३२॥
अत्रापि संयोगवियोगभवैः क्रीडति वै हरिः ।
कृष्णो राधास्वरूपेण विरहाक्रान्तचेतनः ॥३३॥
इत्यावेदितहार्दास्ताः सख्यः प्राहुश्च राधिकाम् ।
राधे नन्दसुतः सोयं सुन्दरः प्रतिभाति मे ॥३६॥ एकादश पटल

इस प्रकार राधिका से कहती हुई सखी प्राणेश्वर श्रीकृष्ण के पास गई ।—

इत्येवं राधया प्रोक्ता सखी प्राणपतिं ययौ ॥४६॥ एकादश पटल

माहेश्वर तन्त्र में राधा सम्बन्धी और भी वर्णन उपलब्ध हैं ।—

त्वत्सङ्गविरहात्कृष्ण राधापि क्लिश्यतेतराम् ।
न निवृत्तिमवाप्नोति विना ते दर्शनं क्वचित् ॥४॥
इत्यादि मम वाक्यानि राधिकायै निवेदय ।
पुनर्याता सखी राधामुवाच सकलं हि तत् ॥१५॥
तत्कृते सदने रम्ये राधा सख्यावृता ययौ ।
तत्रासनगता राधा कांक्षती प्रियसङ्गमम् ॥१६॥
रेजे राधासनगता कथंचक्रे प्रियश्रया ।
कथं मात्रावधि प्रेयान् नागतः सखि तर्कय ॥२७॥
तदैव कृष्णः सङ्केतं प्राप्तः प्राण इव स्वयम् ।
स्वासनात्समुत्तस्थौ राधा कमललोचना ॥३२॥

× × ×

त्वदीयविरहे राघे प्रियमप्यास विप्रियम् ।
अमृतांशोरपिकराश्चण्डांशोरिव दारुणाः ॥३५॥
ध्यायामि त्वां दिवारात्रौ त्वत्प्राणस्त्वन्मनः प्रिये ।
राधिके राधिके चेति महामन्त्रजपेन च ॥३८॥ द्वादशपटलम्

कृष्णयामल तन्त्र—कृष्णयामल तन्त्र में आया है कि भगवान् सर्वेश्वर हैं और राधिका सर्वशक्ति से परिसेवित हैं।[1] कृष्ण के नाम की आराधना करने के कारण उनका नाम राधा पड़ा है।[2] उसमें आया है कि जिस मोर के पङ्ख में श्री राधिकाजी के नेत्रों की छटा देखने को मिल जाती है ऐसे श्री राधा के उस प्रिय मोर के चूड़ा समूह को श्री कृष्णचन्द्रजी अपने सिर के मुकुट पर धारण करते हैं अतः मोरमुकुट वाले कहे जाते हैं।[3] कृष्णयामल में आया है कि जिस शक्ति का सम्यक् वर्णन किया है वह गोपीस्वरूप होकर श्रीराधिका की सखी बनकर श्रीकृष्णचन्द्र की उपासना करती हैं।[4] इसमें कृष्ण एक स्थान पर कहते हैं कि हम अपने आत्मा के दो स्वरूप करेंगे धरा और लक्ष्मी। धरा गोलोक है और लक्ष्मी गोपरूप श्रीराधा है। हम गोप रूप रखकर गोविन्द नाम से विख्यात होंगे। ललितादिक सखी राधिकाजी की दासी होवेंगी। कृष्ण राधा से कहते हैं—

त्वया चाराध्यते यस्मादहं कुञ्जमहोत्सवे।
राधेतिनाम विख्याता रसलीलाधिनायिका।

अर्थात् तुम्हारे द्वारा मैं रास-कुंज-महोत्सव में आराधना किया गया हूँ जिससे तुम्हारा राधा नाम विख्यात है। वैसे तो शास्त्रों में अनेक प्रकार से श्रीराधा जी का आविर्भाव होना लिखा है परन्तु कृष्णयामल में लिखा है कि श्रीलक्ष्मी जी राधा हुई हैं।

कृष्णयामल तन्त्र में श्रीवृन्दावन विहारी की वृन्दावन क्रीड़ा को दो प्रकार की बताया है एक तो विहारात्मिका दूसरी लीलात्मिका। उसमें कहा है—

एकेन वपुषा गोपप्रेमबद्धो रसाम्बुधिः ।
अन्येन वपुषा वृन्दावने क्रीडति राधया ॥

---

१. अहं सर्वेश्वरो राधा सर्वशक्ति निषेविता ॥ कृष्णयामल तन्त्र, षोडश अध्याय
२. आराध्या यन्ननाम्नापि विज्ञेया तेन राधिका । कृष्णयामल तंत्र
३. राधाप्रियमयूरस्य यत्र राधेक्षणप्रभम् ।
विभर्ति शिरसा कृष्णस्तस्य चूडानिभं यतः ॥ कृष्णयामल तंत्र
४. याः शक्तयः समाख्याता गोपीरूपेण ताः पुनः ।
भूत्वा राधिकया कृष्णचन्द्रमुपासते ।

गोपवेशधरो गोपैर्गोपीभिःरसविग्रहः ।
शृङ्गारोचित वेशाढ्यः श्रीमान् गोपालनेरतः ।।
एवं प्रकाश द्वैविध्ये स्थिते नित्यविहारिणाम् ।
तया सह विहारोऽयं कृष्णस्य परमात्मनः ।।
स एवोपनिषद्भिस्तु नित्यानन्द इतीर्य्यते ।
राधामाधवयोरेव शृङ्गारः श्रुतिरोचकः ।।

मूर्द्धाम्नाय तन्त्र—मूर्द्धाम्नाय तन्त्र में श्रीराधिका के स्तवराज में वर्णन किय है कि कोई तुमको श्री कहता है, कोई गौरी कहता है और कवीन्द्रगण परेशी कहत हैं। तुम परात्पर ब्रह्म सनातन हो। तीन गुणों से लोकों का पोषण करती हो।—

केचिच्छ्रियं त्वां कतिचिच्च गौरी परे परेशी ब्रुवते कवीन्द्राः ।
परात्परब्रह्मसनातनं त्व गुणत्रयेणैवविभीष लोकम् ।।

हरि तन्त्र—हरितन्त्र में लिखा है कि चन्द्रकला नाम गन्धर्व कन्या नारद के उपदेश से नित्य सिद्धा श्रीराधा जी की उपासना करके ब्रज में भानु गोप की कन्या राधा नाम से प्रसिद्ध हुई और चन्द गोप से ब्याही गई। श्रीकृष्ण की कृपा से नित्य रास में प्रविष्ट हुई—

काचिच्चन्द्रकला नाम्नी गान्धर्वी नवयौवना ।
सुखरूपा महाबुद्धिरासीत्तिन्द्रप्रियानुगा ।
कस्यचिद्भानुगोपस्य पत्नी कृष्णस्य रासमण्डले ।
संतोष्य सापिराधाख्या लब्धवासोन्नित्यकेलिगा ।

अर्थात् चन्द्रकला नाम वाली गन्धर्व कन्या नवीन यौवनावस्थावाली सुन्दरी महाबुद्धिमती इन्द्रपत्नि सहचरी भानू नाम वाले किसी गोप के घर में जन्म लेकर राधा नाम से प्रसिद्ध हुई जो चन्द्रगोप की पत्नी और भगवान् कृष्ण की प्राणवल्लभा हुई। नित्य लीला विनोदी श्री राधारमण को रासमण्डल में आराधना करके भगवान् को सन्तुष्ट करके वह उपराधा नाम से प्रसिद्धा रसिकशेखर ब्रजचन्द के हल्लीस नृत्यसंजक महारास में प्राप्त हुई।

हरिलीलामृत तन्त्र—ब्रह्मवैवर्त पुराण के राधिकाजी के विवाह की भाँति ही हरिलीलामृत तन्त्र में भी राधिका का विवाह कराया गया है। शिवजी पार्वती से कहते हैं—

यत्र तत्र शुभे काले विप्रानाहूय सत्तवान् ।
वृषभानुर्महाभागः पप्रच्छोद्वाहवासरम् ।।

वहाँ पर विवाह के शुभ काल आने पर शुद्धवान महाभाग्यवान् वृषभानु महाराज ने विप्रों को बुलाकर विवाह का दिन पूछा।

व्रज की जनता के उल्लासवर्द्धक संस्कारार्थ श्री नन्दजी के घर पर वर के आगमन के समय अनेक मुक्तामणि प्रभृति वृषभानु नृप ने भेंट रूप में भेजे। बाद में वेदादि शास्त्ररीति तथा लोकरीति के अनुसार राजा वृषभानु गोप ने अपने घर पर आकर बड़े समारोह के साथ श्रीकृष्ण को राधा अर्पित की। विवाह के विस्तृत वर्णन सम्बन्धी कुछ अंश निम्न प्रकार हैं।—

सौवर्णानि च वासांसि नारिकेलियुतानि वै।
नाना-विधानि रत्नानि कृष्णप्रीत्यै समादिशत्।
अथोत्सवः प्रववृधे गोपयोरुभयोर्गृहे।
उद्वर्तनं दधुर्नार्यो द्वयोरंगे महात्मनोः॥
अथोद्वाहदिने रम्ये गोपा गोप्यः स्वलंकृताः।
उपायनान्युपादाय उभयोराययुर्गृहम्॥
इत्युक्त्वा प्रक्रमं चक्रे श्रीवृन्दावननायकः।
ततो महोत्सवो वृत्तः पश्यतां दम्पती मुदा॥
नराणामथ नारीणामतिविस्मयदायकः।
वृषभानुर्ददौ दानं विप्रेभ्यो बहुसंपदाम्॥
वधूवरौ रथे स्थाप्य प्रेषयामास सादरम्।
मासमेकं वासयित्वा पुनरानीय स्वे गृहे॥
दम्पती वासयामास बभूव परमोत्सवः।
वृषभानुपुरे रम्ये देवानामपि दुर्लभम्॥

मन्त्रमहोदधि तन्त्र—मन्त्रमहोदधि तन्त्र के द्वादश तरङ्ग में गोपाल सुन्दरी शब्द का प्रयोग हुआ है। वहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि यह गोपाल सुन्दरी राधा के लिये ही प्रयुक्त हुआ है। इसमें लिखा है—

गोपाल सुन्दरीं वक्ष्ये भोगमोक्ष-प्रदायिकाम्।
माया रमा चित्तजन्म कृष्णायेति पदं ततः॥१५५॥
पूज्यावह्वयादिकोणेषु शांतिः श्रीः सरस्वती।
रतिः पुर्नदिक्षुपूज्या रुक्मिणीसत्यभामिका॥१६६॥

द्वादशतरंग

भोग व मोक्ष की देने वाली गोपाल सुन्दरी को कहेंगे। इसके अनन्तर कृष्णाय यह पद है। उन्हें वैष्णव पीठ में स्थापित करके हवन करे। सुन्दरी व

गोपवेशधरो गोपैर्गोपीभिःरसविग्रहः ।
शृङ्गारोचित वेशाढ्यः श्रीमान् गोपालनेरतः ॥
एवं प्रकाश द्वैविध्ये स्थिते नित्यविहारिणाम् ।
तया सह विहारोऽयं कृष्णस्य परमात्मनः ॥
स एवोपनिषद्भिस्तु नित्यानन्द इतीर्य्यते ।
राधामाधवयोरेव शृङ्गारः श्रुतिरोचकः ॥

मूर्द्धाम्नाय तन्त्र—मूर्द्धाम्नाय तन्त्र में श्रीराधिका के स्तवराज में वर्णन किया है कि कोई तुमको श्री कहता है, कोई गौरी कहता है और कवीन्द्रगण परेशी कहते हैं। तुम परात्पर ब्रह्म सनातन हो। तीन गुणों से लोकों का पोषण करती हो।—

केचिच्छ्रियं त्वां कतिचिच्च गौरी परे परेशी ब्रुवते कवीन्द्राः ।
परात्परब्रह्मसनातनं त्वं गुणत्रयेणैवविभोष लोकम् ॥

हरि तन्त्र—हरितन्त्र में लिखा है कि चन्द्रकला नाम गन्धर्व कन्या नारद के उपदेश से नित्य सिद्धा श्रीराधा जी की उपासना करके ब्रज में भानु गोप की कन्या राधा नाम से प्रसिद्ध हुई और चन्द गोप से व्याही गई। श्रीकृष्ण की कृपा से नित्य रास में प्रविष्ट हुई—

काचिच्चन्द्रकला नाम्नी गान्धर्वी नवयौवना ।
सुखरूपा महाबुद्धिरासीत्तिन्द्रप्रियानुगा ।
कस्यचिद्भानुगोपस्य पत्नी कृष्णस्य रासमण्डले ।
संतोष्य सापिराधाख्या लब्धवासीन्नित्यकेलिगा ।

अर्थात् चन्द्रकला नाम वाली गन्धर्व कन्या नवीन यौवनावस्थावाली सुन्दरी महाबुद्धिमती इन्द्रपत्नि सहचरी भानु नाम वाले किसी गोप के घर में जन्म लेकर राधा नाम से प्रसिद्ध हुई जो चन्द्रगोप की पत्नी और भगवान् कृष्ण की प्राणवल्लभा हुई। नित्य लीला विनोदी श्री राधारमण को रासमण्डल में आराधना करके भगवान् को सन्तुष्ट करके वह उपराधा नाम से प्रसिद्धा रसिकशेखर ब्रजचन्द के हल्लीस नृत्यसंज्ञक महारास में प्राप्त हुई।

हरिलीलामृत तन्त्र—ब्रह्मवैवर्त पुराण के राधिकाजी के विवाह की भाँति ही हरिलीलामृत तन्त्र में भी राधिका का विवाह कराया गया है। शिवजी पार्वती से कहते हैं—

अत्र तत्र शुभे काले विप्रानाहूय सत्तवान् ।
वृषभानुर्महाभागः पप्रच्छोद्वाहयासरम् ॥

वहाँ पर विवाह के शुभ काल आने पर शुद्धवान महाभाग्यवान् वृषभानु महाराज ने विप्रों को बुलाकर विवाह का दिन पूछा।

व्रज की जनता के उल्लासवर्द्धक संस्कारार्थ श्री नन्दजी के घर पर वर के आगमन के समय अनेक मुक्तामणि प्रभृति वृषभानु नृप ने भेंट रूप में भेजे। बाद में वेदादि शास्त्ररीति तथा लोकरीति के अनुसार राजा वृषभानु गोप ने अपने घर पर आकर बड़े समारोह के साथ श्रीकृष्ण को राधा अर्पित की। विवाह के विस्तृत वर्णन सम्बन्धी कुछ अंश निम्न प्रकार हैं।—

सौवर्णानि च वासांसि नारिकेलियुतानि वै।
नाना-विधानि रत्नानि कृष्णप्रीत्यर्थं समादिशत्।
अथोत्सवः प्रववृधे गोपयोरुभयोर्गृहे।
उद्वर्तनं दधुर्नार्यो द्वयोरंगे महात्मनोः॥
अथोद्वाहदिने रम्ये गोपा गोप्यः स्वलंकृताः।
उपायनान्युपादाय उभयोरायधुर्गृहम्॥
इत्युक्त्वा प्रक्रमं चक्रे श्रीवृन्दावननायकः।
ततो महोत्सवो वृत्तः पश्चतां दम्पती मुदा॥
नराणामथ नारीणामतिविस्मयदायकः।
वृषभानुर्ददौ दानं विप्रेभ्यो वहुसंपदाम्॥
वधूवरौ रथे स्थाप्य प्रेषयामास सादरम्।
मासमेकं वासयित्वा पुनरानीय स्वे गृहे॥
दम्पती वासयामास वभूव परमोत्सवः।
वृषभानुपुरे रम्ये देवानामपि दुर्लभम्॥

मन्त्रमहोदधि तन्त्र—मन्त्रमहोदधि तन्त्र के द्वादश तरङ्ग में गोपाल सुन्दरी शब्द का प्रयोग हुआ है। वहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि यह गोपाल सुन्दरी राधा के लिये ही प्रयुक्त हुआ है। इसमें लिखा है—

गोपाल सुन्दरीं वक्ष्ये भोगमोक्ष-प्रदायिकाम्।
माया रमा चित्तजन्म कृष्णायेति पदं ततः॥१५५॥
पूज्यावह्वयादिकोणेषु शांतिः श्रीः सरस्वती।
रतिः पुनर्दिक्षुपूज्या रुक्मिणीसत्यभामिका॥१६६॥

द्वादशतरंग

भोग व मोक्ष की देने वाली गोपाल सुन्दरी को कहेंगे। इसके अनन्तर कृष्णाय यह पद है। उन्हें वैष्णव पीठ में स्थापित करके हवन करे। सुन्दरी व

हरि (कृष्ण) का पूजन करे। अग्नि इत्यादि सब कोणों में शान्ति, श्री, लक्ष्मी और सरस्वती जी का पूजन करना योग्य है। फिर पूर्वादि दिशाओं में रति, रुक्मिणी, सत्यभामा का पूजन करना योग्य है।

राधा तन्त्र—राधा तन्त्र में लिखा है-

चकार नाम तस्यास्तु भानुः कीर्त्तिदयान्वितः।
रक्तविद्युत्प्रभा देवी धत्ते यस्मात् शुचिस्मिते।
तस्मात्तु राधिका नाम सर्वलोकेषु गीयते॥

दयालु ने उनका नाम भानुकीर्ति रखा, इसलिये वह चमकने वाले रक्ताम्बर मालूम होते थे और उनकी मुस्कान भी बहुत ज्योतिष्मती थी, इसीलिए उनका नाम सब लोगों में राधिका प्रख्यात हुआ।

संस्कृत साहित्य में राधा—

नारद पाञ्चरात्र—अब हम प्राकृत ग्रन्थ, संस्कृत चम्पू तथा काव्य ग्रन्थ, ताम्रपत्र, शिलालेख आदि में किये गये राधा के चित्रण पर प्रकाश डालेंगे। वैष्णव तन्त्रों में राधा को आह्लादिनी शक्ति माना है अथवा उसमें शक्ति तत्त्व का समावेश किया है। नारद पाञ्चरात्र वैष्णव सम्प्रदाय का एक प्रख्यात ग्रन्थ है जिसमें पाञ्चरात्र के तत्वों का विवेचन किया गया है। इसके समय का निरूपण तो यथार्थतः नहीं किया जा सकता परन्तु यह अर्वाचीन भी नहीं है। इसमें राधा शब्द की उत्पत्ति के विषय में बताया है—

रा शब्दोच्चारणाद् भक्तो भवित मुक्तिञ्चराति सः।
धा शब्दोच्चारणेनैव धावत्येव हरेः पदम्॥ २-३-३८

अर्थात् 'रा' शब्द के उच्चारण से ही भक्त होता है और वह भक्ति और मुक्ति को प्राप्त होता है और 'धा' के उच्चारण के द्वारा हरि के पद की ओर धावित होता है।

इस ग्रन्थ के नमस्कार श्लोक में लिखा है—

लक्ष्मीः सरस्वती दुर्गा सावित्री राधिका परा॥ १-२।

इस ग्रन्थ में 'राधा' के आविर्भाव तथा स्वरूप के विषय में आया है—

अपूर्वं राधिकाख्यानं गोपनीयं सुदुर्लभम्।
सद्यो मुक्तिप्रदं शुद्धं वेदसारं सुपुण्यदम्॥

यथा ब्रह्मस्वरूपश्च श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः।
तथा ब्रह्मस्वरूपा च निर्लिप्ता प्रकृतेः परा ॥

× × ×

आविर्भाव तिरोभावस्तस्याः कालेन नारद।
न कृत्रिमा च सा नित्या सत्यरूपा यथा हरिः ॥
प्राणाधिष्ठानदेवी या राधारूपा च सा मुने।
रसनाधिष्ठात्री देवी स्वयमेव सरस्वती ॥
बुद्ध्यधिष्ठात्री च या देवी दुर्गा दुर्गतिनाशिनी।
अधुना या हिमगिरेः कन्या नाम्ना च पार्वती ॥

—नारद पाञ्चरात्र, ३/५०-५१- ३/५४-५६

भगवान् शङ्कर ने देवर्षि नारद से कहा—श्री राधा की कथा विलक्षण एवं नई रहस्यमयी, अत्यन्त दुर्लभ, अविलम्ब मुक्ति देने वाली, शुद्ध (पाप रहित), वेद की सार रूपा तथा बड़ी ही पुण्य दायिनी है।

जिस प्रकार श्रीकृष्ण साक्षात् ब्रह्म स्वरूप हैं, अतएव प्रकृति से परे हैं इसी प्रकार श्री राधिकाजी भी हैं। ये ब्रह्म स्वरूपा हैं, माया के सम्बन्ध से रहित हैं एवं प्रकृति से परे हैं।

राधा का न तो जन्म होता है, न मृत्यु होती है। किन्तु, श्रीकृष्ण की इच्छा से ही समय समय उनका आविर्भाव (प्राकट्य) तथा तिरोभाव होता है। वे कृत्रिम हैं, अर्थात् प्रकृति की कार्यरूपा नहीं हैं। हरि के समान ही वे सदा नित्य हैं तथा सत्य रूपा हैं।

हे मुनिवर्य, राधाजी श्रीकृष्ण के प्राणों की अधिष्ठात्री देवी हैं। वह उनकी जिह्वा की अधिष्ठात्री देवी स्यमेव सरस्वती हैं।

वह बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी हैं। वह भक्तों की दुर्गति (विपत्ति) को दूर करने वाली दुर्गा हैं। हिमालय की कन्या के रूप में अवतीर्ण होने वाली पार्वती भी वही हैं।

नारदपाञ्चराय में आया है कि—

ईकारः प्रकृती राधा वृन्दावनेश्वरी।

ईकार लक्ष्मी प्रकृति राधिकाजी हैं। नित्य सदा रहनेवाली वृन्दावन की ईश्वरी हैं।

गाथा सप्तशती—

चाहे नारद पाञ्चरात्र को अप्रामाणिक मान लिया जावे अथवा ब्रह्मवैवर्त्त जैसे राधा का विशद वर्णन करने वाले पुराण को बाद की रचना स्वीकार किया जावे परन्तु राधा की प्राचीनता में संदेह नहीं किया जा सकता, क्योंकि अब से लगभग दो सहस्र वर्ष पूर्व अर्थात् लगभग पहली शताब्दी में लिखी गई प्राकृत रचना 'गाथा सप्तशती' में राधा का उल्लेख मिलता है। शातवाहन नरपति हाल ने प्राकृत कवियों की चुनी हुई कमनीय कविताएँ इसमें प्रस्तुत की हैं। लोकसाहित्य का यह प्रतिनिधि काव्य है। सप्तशती शृङ्गारिक भावों को प्रकट करने में अद्वितीय है। राधा नाम अत्यन्त प्राचीन है और गाथा सप्तशती से प्रतीत होता है कि इसके रचना काल तक श्रीकृष्ण की प्रेयसी कल्पना जगत की सृष्टि न होकर मांसलरूप में अपना साहित्यिक आविर्भाव प्राप्त कर चुकी थी। गाथा सप्तशती में राधा कृष्ण के उसी रूप के दर्शन होते हैं जिसका आगे चलकर रीतिकालीन कवियों ने वर्णन किया है। गाथा सप्तशती की निम्नलिखित गाथाओं में से एक में राधाकृष्ण का तथा अन्य में कृष्ण के नाम का उल्लेख है—

मुहमारुएण तं कह्ण गोरअं राहिआएँ अवणेन्तो।
एताणँ वल्लवीणं अण्णाण वि गोरअं हरसि॥ १-८९॥

(हे कृष्ण ! तुम राधा के नेत्रों में लगी हुई रज को मुख की वायु से हरण करते हो [अर्थात् इसी छल से चुम्बन करते हो] इससे अन्यान्य गोपियों का गौरव हरण करते हो।)

अज्ज वि वालो दामोअरो त्ति इअ जम्पिए जसोआए।
कह्णमुहपेसिअच्छं णिहुअं हसिअं वअवहूहिं॥ २-१२॥

(दामोदर अभी भी बालक ही हैं, यशोदा ने इस प्रकार कहा, तब कृष्ण के मुख की ओर देखकर गोपियाँ छिपी हुई हँसी हँस रहीं थीं)

णच्चणसलाहणणिहेण पासपरिसंठिआ णिउणगोवी।
सरिसगोविआणँ चुम्बइ कवोलपडिमागअं कह्णम्॥ २-१४।

(कृष्ण अनुरक्तानिपुण गोपी नृत्य के प्रशंसार्थ समीप की समान गोपियों का चुम्बन कर लेती है अथवा उनके कपोलों पर कृष्ण-प्रतिबिम्ब देखकर चुम्बन कर लेती है।)

जइ भमसि भमसु एमेअ कह्ण सोहग्गगव्विरो गोट्ठे।
महिलाण दोसगुणे विआरअउं जइ खमो सि॥ ५-४७।

(हे कृष्ण ! यदि तुम अपने सौभाग्य पर गर्वित होकर गोष्ठ में भ्रमण करते हो तो भले ही करो परन्तु सच्चा गर्व तो तभी रहेगा जब तुम में उत्तम स्त्रियों के गुणागुण का विचार करने की क्षमता होगी ।)

अच्चासण्ण विवाहे समं जसोआइ तरुणगोवीहिं ।
वड्ढन्ते महुमहणे संबन्धा णिह्णुविज्जन्ति ।। ७-५५ ।।

(जिन तरुण गोपियों का विवाह अत्यन्त निकट आ गया है, वे मधुसूदन को बड़ा होते देखकर यशोदा के साथ के अपने सम्बन्ध को भी छिपाती हैं ।)

गाथा सप्तशती की रचना से प्रतीत होता है कि उसके रचयिता ने राधा-कृष्ण के नाम का आश्रय लेकर शृङ्गारिक काव्य की रचना की है । यह सम्भव है कि इस प्रकार की प्रेरणा उसे अपने पूर्ववर्ती कवियों की उन रचनाओं से मिली हो जो अब उपलब्ध नहीं हैं । आगे चलकर ब्रह्मवैवर्त्त और गाथा सप्तशती से संस्कृत तथा हिन्दी के कवि जयदेव, विद्यापति, चण्डीदास, सूर आदि को भी प्रेरणा मिली ।

पञ्चतंत्र—

ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा का अलौकिक, लौकिक, शृङ्गारी एवं प्रेमिका के रूप में जो स्वरूप दृष्टिगोचर होता है वही स्वरूप दूसरी शताब्दि से पाँचवी शताब्दि के बीच बने पंचतन्त्र (मित्र लाभ-प्रथमतन्त्र) की विष्णु रूपधारी रथकार की कथा के विवरण में दिखाई देता है । इसमें राधा का स्पष्ट उल्लेख है जिससे प्रकट होता है कि राधा का गोप दल में उत्पन्न होना तथा नारायण (श्रीकृष्ण) की भार्या होना लोक-प्रसिद्ध घटना थी । यह लोक प्रिय कथा इस युग से भी प्राचीन होनी चाहिए । इसमें कथा है कि, "किसी तन्तुवाय का पुत्र, जिसका नाम कृष्ण था, राजा की कन्या से प्रेम में आवद्ध हो जाता है । वह अन्तःपुर में गुप्त रूप से पहुँचना असम्भव समझ अपने रथकार मित्र से सहायता लेता है । उसका मित्र लकड़ी का गरुड़ यन्त्र बनाकर तैयार कर देता है, जिस पर चढ़कर वह राजा के अन्तःपुर में पहुंच जाता है । गरुड़ पर चढ़े चार भुजाओं तथा आयुधों से युक्त उस व्यक्ति को नारायण समझकर राजपुत्री कहती है–' कहाँ मैं अपवित्र मानुषी और कहाँ आप त्रैलोक्य पावन महाप्रभु !" इस पर वह कौलिक कहता है—

कौलिक आह ! सुभगे सत्यमिमहितं भवत्या परं किंतु राधा नाम मे
भार्या गोपकुलप्रसूता प्रथममासीत् । सा त्वमत्रावतीर्णा ।
तेनाहमायातः । इत्युक्ता सा प्राह । पञ्चतन्त्रम्, प्रथम तन्त्रम्-कथा ५

(सुभगे, तुम तो सच्ची बात कर रही हो। परन्तु तथ्य यह है कि राधा-नाम्नी मेरी गोप कुल में उत्पन्न भार्या पहले थी। वही तुम्हारे रूप में अवतीर्ण हुई है। इसलिए मेरा अनुराग तुम्हारे प्रति स्वाभाविक है।)

पहाड़पुर, धारा तथा मालवा के शिलालेख—पाँचवी, छठी शताब्दि के लगभग की प्राप्त मूर्तियों, लेखों और ताम्रपत्रों में भी राधा का स्वरूप देखने को मिलता है। पाँचवीं, छठी शताब्दि की देवगिरि और पहाड़पुर की मूर्तियों को पुरातत्त्व वेत्ताओं ने राधा और कृष्ण की प्रेम लीलाओं की मूर्ति बताया है।[1] धारा के अमोघ वर्ष के ६८० ई० के शिलालेख में राधा का उल्लेख कृष्ण की प्रिया के रूप में हुआ है।[2] मालवा के पृथ्वीवल्लभ मुंज के सन् ६७४ ई० तथा सन् ६७६ ई० के लेखों (ताम्रपत्रों) के मङ्गलाचरण में राधा विषयक दो श्लोक आये हैं।

धनंजय का दशरूपक—मुंज के दरबारी कवि धनंजय के दशरूपक के चतुर्थ प्रकाश में रुद्र कवि के दो श्लोकों में राधा का उल्लेख आया है—

'निर्मग्नेन मयाऽम्भसि स्मरभरादाली समालिङ्गिता
केनालीकमिदं तवाद्य कथितं राधे मुधा ताम्यसि।
इत्युत्स्वप्नपरम्परासु शयने श्रुत्वा वचः शार्ङ्गिणः
सव्याजं शिथिलीकृतः कमलया कण्ठग्रहः पातु वः ॥[3]

(पानी में डूबे हुए मैंने काम के बोझ के कारण किसी तरह उस सखी का आलिङ्गन कर लिया था, हे राधे, तुमसे यह झूठी बात कि मेरा प्रेम उस सखी से है, किसने कह दी, तुम बिना बात ही क्यों दुःखी हो रही हो। निद्रा के समय स्वप्न में कहे गये विष्णु (कृष्ण) के इन वचनों को सुनकर किसी न किसी बहाने से लक्ष्मी (रुक्मिणी) ने अपने हाथ को उनके कण्ठ से हटा लिया, कण्ठग्रह को शिथिल कर दिया। इस तरह से कमला के द्वारा शिथिल विष्णु का कण्ठग्रह तुम्हारी रक्षा करे।

आनन्दवर्द्धन का ध्वन्यालोक—काश्मीर के राजा अवंतिवर्मन (८५६ ई० ८८३ ई०) के समकालीन आनंद वर्द्धन ने अपने ग्रन्थ ध्वन्या लोक (८५० ई०) में राधा का उल्लेख करते हुए एक पुराना श्लोक उद्धृत किया है जिसमें श्रीकृष्ण उद्धव से राधा की कुशल पूछ रहे हैं—

१. गगा-पुरातत्वांक – पहाड़पुर की खुदाई –के० एन० दीक्षित
२. गुजरात और उनका साहित्य –पं० कन्हैयालाल माणकलाल मुंशी पृ. १२६-१२७
३. धनंजय—दशरूपक—व्याख्याकार –डॉ० भोलाशंकर व्यास, पृ. २६५-२६६

तेषां गोपवधूविलाससुहृदां राधारहः साक्षिणां
क्षेमं भद्रकलिन्दशैलतनयातीरे लतावेश्मनाम् ।
विच्छिन्ने स्मरतल्पकल्पनमृदुच्छेदोपयोगेऽधुना
ते जाने जरठी भवन्ति विगलन्नीलत्विषः पल्लवाः ॥[1]

हे भद्र ! गोप वधुओं के विलास सखा, राधा की एकान्त क्रीड़ाओं के साक्षी यमुना तट के लता कुञ्ज तो कुशल से हैं । अथवा (अब तो) मदन शय्या के निर्माण के लिए मृदु किसलयों के तोड़ने का प्रयोजन न रहने पर नील कान्ति को छिटकाते हुए वे पल्लव पुराने हो जाते होंगे ।

दूसरा पद्य ध्वनि के दृष्टान्त के प्रसङ्ग में दिया गया है—

दुराराधा राधा सुभगमदनेनापि मृजत
स्तवैतत् प्रायेणाजघनवसनेनाशु पतितम् ।
कठोरं स्त्रीचेतस्तदलमुपचारैर्विरमहे
क्रियात् कल्याणं वो हरिरनु नयेष्वेवमुदितः ॥[2]

भट्टनारायण का वेणीसंहार—वेणीसंहार की रचना पं० बलदेव उपाध्याय ७५० ई० के आसपास मानना उचित समझते हैं ।[3] इस प्रकार इसकी रचना ध्वन्यालोक से लगभग १०० वर्ष पूर्व की ठहरती है । इस नाटक में रास के समय नान्दीश्लोक में कालिन्दी के जल में केलिकुपिता अश्रु कलुषा राधिका और उनके लिये किये गये कृष्ण का इस प्रकार उल्लेख है—

कालिन्द्याः पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रसं
गच्छन्तीमनुगच्छतोऽश्रु कलुषां कंसद्विषो राधिकाम् ।
तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्योद्भूतरोमोद्गते
रक्षुण्णोऽनुनयः प्रसन्नदयिता दृष्टस्य पुष्णातु वः ॥२॥[4]

प्रथमो अङ्कः

(यमुना के किनारे रासक्रीड़ा में प्रेम तथा अनुराग छोड़कर कुपित होकर राधिका कहीं चली गई । भगवान् उसे खोजने के लिए इधर-उधर घूमने लगे ।

---

१. ध्वन्यालोक द्वितीय उद्योत, कारिका ५, आनन्दवर्धन पृ. १२९
२. ध्वन्यालोक उद्योत ३, का. ४१ पृ. २१४-२१५
३—भारतीय वाङ्मय में राधा —पं० बलदेव उपाध्याय,
४—वेणीसंहारम् —भट्टनारायण, पृ० २

राधा के पद चिह्नों पर अपना पैर रखते ही उन्हें रोमाञ्च हो गया। प्रेम की इस विभूति तथा अभिव्यक्ति को देखकर राधा प्रसन्न हो गई तथा कृष्ण के प्रेम की दृढ़ता देखकर कृष्ण को बड़े प्रेम से निरखने लगी।)

इससे विदित होता है कि अष्टम् शती से पूर्व ही राधा तथा रासलीला का वृत्तान्त साहित्य जगत् में यथेष्ठ प्रख्यात हो चुका था। आलंकारिक वामन के अलंकार ग्रन्थ में भट्टनारायण की कविता उद्धृत है, अतएव यह नाटक निस्सन्देह आठवीं शताब्दि से पूर्व की रचना है।[1]

भोज का सरस्वती कण्ठाभरण—मुंज के पश्चात् मालवा के राजा भोज ने अपने सरस्वती कंठाभरण में प्राचीन ग्रन्थों से राधा विषयक आठ श्लोक उद्धृत किये है—

(१)

कृष्णेनाम्ब गतेनरन्तुमसकृन् मृद्भक्षिता स्वेच्छया,
सत्य कृष्ण, क आह ऐपमुशली मिथ्याम्ब पश्याननं।
व्यादेहीति विदारिते ! (च) वदने दृष्ट्वा समस्तं जगत्,
माता यस्य जगाम विस्मयपदं पायात् स वः केशवः ॥

पृ० ५, २३

(२)

रातावचाधि राज्या विसररसविद् व्याजवाक्क्ष्मा प्रकारा।
राका पक्ष्मामशेषा मयनननयनस्वां (सां) खया स्तव्यमारा ॥
राभा व्यस्त स्थिरत्वा तुहिननहितुः श्रीकरक्षारधारा।
राधा रक्षास्तु मह्यं शिवममभव शिग्या व्याल विद्यावतारा ॥

पृ० २७५, २६४

(३)

गेहाद्याता सरितमुदकं हारिका ना जिहीपे।
मंध्यामीति श्रयसि यमुनातीर वीरुद् गृहाणि ॥
गोसंदायी विशसि विपिनान्येव गोवर्धनाद्रे।
नं त्वं राधे हृदि निपतिता देवकीनन्दनस्य ॥

पृ० ५११, १७७

---

[1] गीति काव्य का विकास—सत्तधर त्रिपाठी प्रयाती
"इनका समय सप्तम शती का पूर्वार्द्ध होगा", पृ० ८४

(४)

कुशलं राधे, सुखितोऽसि कंस कंसः क्व नु सा राधा।
इति पारी प्रतिवचनैर्विलक्षहासो हरिर्जयति॥ पृ० २६७, ३५१

(५)

कनककलशस्वच्छे राधापयोधरमंडले
नवजलधरश्यामामात्मद्युतिं प्रतिविम्बिताम्।
असित सिचयप्रान्तभ्रान्त्या मुहुर्मुहुरुत्क्षिपन्
जयति जनितव्रीड़ाहासः प्रियाहसितो हरिः॥ पृ० ३६४,११०

(६)

लीलाइआ णि असणे रक्खिसु तं राहिआइ थणवट्टे।
हरिणे पठमसभागमसज्झसव सरेहिं वेविरो हत्थो॥
पृ० ६३८, सं. २३५

(७)

प्रत्यग्रोज्झितगोकुलस्य शयनादुत्स्वप्नमूढस्य मे,
सा गोत्रस्खलनादयंतु च दिवा राधेति भीरोरिति।
रात्रावस्वपतो दिवा च विजने नामेति चाभ्यस्यता,
राधां प्रस्मरतः श्रियं रमयतः खेदे हरेः पातु वः॥
पृ० ७०२, सं० ४४८

(८)

हेलेदस्तमहीधरस्यतनुतामालोक्य दोषो हरे,
हस्तेनांसतटे ऽवलम्ब्य चरणावारोप्य तत्पादयोः।
शैलोद्धार सहायतां जिगिमिषोरस्पृष्टगोवर्धना,
राधायाः सुचिरं जयन्ति गगने वंध्याकरःभ्रान्तयः।
[काव्यमाला] पृ० ७२८, सं० ४६३

क्षेमेन्द्र का दशावतार—क्षेमेन्द्र के 'दशावतार चरित' का निर्माण अन्तरङ्ग उल्लेख से १०६६ ई० माना जा सकता है। ये काश्मीर के प्रख्यात प्रौढ़ कवि माने जाते हैं। 'दशावतार चरित' में भगवान् विष्णु के दसों अवतारों का बड़ा विशद विवरण है जिसमें कृष्णावतार का वर्णन चतुर्थांश से भी अधिक है। कृष्ण की वृन्दावन लीला के प्रसङ्ग में राधा का नाम निर्दिष्ट है। क्षेमेन्द्र ने राधा का कृष्ण की प्रधान प्रेयसी के रूप में उल्लेख किया है। दशावतार चरित में वचन-विदग्धा गोपी राधा ही

मालूम पड़ती है। कृष्ण को दूती के साथ रमण करने वाले शठ नायक का रूप भी प्रदान किया है। राधा को कृष्ण की अधिक वल्लभा कहा है—

प्रीत्यै बभूव कृष्णस्य श्यामानिचयचुम्बिनः।
जाती मधुकरस्येव राधैवाधिकवल्लभा ॥ ८३ ॥

(जैसे भौंरे को सभी फूलों में जाती फूल सबसे अधिक प्रिय होता है उसी प्रकार गोपाङ्गना-समूह में विचरने वाले कृष्ण को राधा ही सर्वाधिक प्रिया हुई।)

क्षेमेन्द्र ने राधा का नायिका के रूप में ग्रहण और संयोग तथा विप्रलम्भ की पृष्ठ भूमियों पर उनके विविध रूपों का रमणीय चित्रण प्रस्तुत किया है। इन्होंने राधा-कृष्ण-प्रेम को पूर्णता तथा दिव्यता प्रदान की। कृष्ण मथुरा जाते समय राधा की विरहावस्था में कितने दुःखी हो रहे रहे हैं देखिए—

यच्छन्गोकुलगूढ़कुञ्जगहनान्यालोकयन्केशवः
सोत्कण्ठं वलिताननो वनभुवा सख्येव रुद्धाञ्चलः।
राधाया न - न -नेति नीविहरणे वैक्लव्यलक्ष्याक्षराः
सस्मार स्मरसाध्वसाद्रु ततनो रावोक्ति (?) रिक्तागिरः ॥१७१॥

कृष्ण के वियोग में देखिये राधा किस प्रकार नई वर्षा ऋतु ही हो गई है—

राधा-माधव-विप्रयोग-विगलज्जीवोपमानैर्मुहु-
र्वार्ष्पै. पीनपयोधरांप्रगलितैः फुल्लत्कदम्बाकुला।
अच्छिन्न–श्वसनेन वेगगतिना व्याकीर्यमाणैः पुरः
सर्वाशा–प्रतिबद्ध–मोह–मसिना प्रावृट्नवेवाभवत् ॥१७६॥

रुद्रट का काव्यालंकार—रुद्रट के काव्यालंकार की टीका नमि साधु ने १०६८ ई० में की। उसमें राधा विषयक एक श्लोक है—

यो गोपी जनवल्लभः स्तनतटव्यासंगलब्धास्पदः।
किम् राधे मधुसूदनो नहि नहि प्राणाधिक श्चोलकः ॥

सान्द्रां मुदं यच्छतु नन्दको वः सोल्लासलक्ष्मीप्रतिबिम्बगर्भः ।
कुर्वन्नजस्रं यमुना - प्रवाह - सलीलराधास्मरणं मुरारेः ॥
सर्ग १ । ५ ।

("भगवान विष्णु के वक्ष पर शोभित वह कौस्तुभ मणि आप लोगों को आनन्द प्रदान करे, जिसमें प्रतिबिम्बित लक्ष्मी को देखकर विष्णु को यमुना की धारा में जल-क्रीड़ा करती हुई राधा का स्मरण हो आता है ।")

विक्रमांकदेव चरित में झूला प्रसंग में राधा का वर्णन इस प्रकार से मिलता है—

दोलालोलद्घनजघनया राधया यत्र भग्नाः
कृष्णक्रीडाङ्गणविटपिनो नाधुनाप्युच्छ्वसन्ति ।
जल्पक्रीड़ामथित मथुरा सूरि चक्रेण केचित्
तस्मिन्वृन्दावनपरिसरे वासरा येन नीताः ॥ १८ । २७

(जिस वृन्दावन में चंचल और घन जघन वाली राधा के झूला झूलने के कारण कृष्ण के विहार कुंज के वृक्ष टूटकर गिर पड़े हैं, जहाँ मथुरा नगरी के अनेक विद्वानों को मैं (विल्हण) ने शास्त्रार्थ में परास्त किया वहीं वृन्दावन की भूमि में कई दिन तक मैंने निवास किया ।)

वज्जालग्ग—गाथा छन्द में निबद्ध 'गाहा-सत्तसई' के उपरान्त महाराष्ट्री प्राकृत का संग्रह-ग्रन्थ 'वज्जालग्ग' है । इसके संकलयिता 'जयवल्लभ' श्वेताम्बर शाखा के जैन थे । इनके समय का ठीक-ठीक पता नहीं है । विषय का संकेत 'वज्जा' या पद्धति शब्द से किया गया है । इस काव्य की संस्कृतच्छाया रत्नदेव द्वारा सन् १३३६ में लिखी गई मिलती है । इस काव्य की एक 'वज्जा' (पद्धति) का नाम 'कराह वज्जा' है जिसमें सोलह गाथायें हैं । इनमें कृष्ण और गोपियों के प्रेम का, संयोग-परक और वियोग-परक, उभयपक्षीय रूप अंकित किया गया है । प्रारम्भ की तीन गाथाओं में गोपियों के और प्रमुखतया राधा के प्रेमी कृष्ण की वन्दना है । चौथी गाथा में प्रिय की महत्ता दिखाई गई है, और कृष्ण की दो प्रियाओं राधा और विशाखा का उल्लेख मिलता है । एक प्रार्थना परक गाथा देखिए—

कण्हो जयइ जुवाणो राहा उम्मत्तजोव्वणा जयइ ।
जउणा महुमहणंगा ते बिरहा तैत्तिय च्चेव ॥
तिहुयणणमिओ वि हरी णिवडइ गोवालियाए चलणेसु ।
सच्चं चिय णेहणिब्भरेहि दोसा न दीसन्ति ॥
वज्जा०, ५९०, ५९२, ५९३ ।

कृष्ण ने किसी गोपालिका को 'राधा' नाम से सम्बोधन करते हुए कहा, "कहो राधे ! कुशल से तो हो ? उसने कहा, हे कंस ! तुम सुखी तो हो। कृष्ण ने कहा, कंस यहाँ कहाँ है ? गोपी ने कहा, तो फिर राधा कहाँ है ? इस प्रकार बालिका द्वारा (कड़ा उत्तर पाने वाले) मुँह तोड़ जवाब पाने वाले परिहासशील कृष्ण की जय हो ! यमुना की तरङ्गों में विहार करने वाले परिहासशील कृष्ण की जय हो ! यमुना की तरङ्गों में विहार करने वाले कृष्ण और उन्मत्त यौवना राधा की जय हो। वे बीते हुए दिन अब कहाँ ? जिस हरि के चरणों में तीनों लोक सिर झुकाते हैं, वे ही गोपी के चरणों पर गिर रहे हैं, सचमुच ही प्रेमान्ध जनों को दोष दिखाई ही नहीं पड़ता।"

गति में वेग से संलग्न राधा के कपोलतल से विकीर्ण होती हुई चांदनी में कृष्ण इतने गोरे हो गए कि भ्रम से किसी गोपी ने उन्हें गले लगा लिया—

राहाए कवोलतलच्छलन्त जोराहानिवायधवलंगो ।
रइ रहसवावडाए धवलो आलिंगिओ करण्हो ॥ वही, ५६६

कराह वज्जा में रास और चीर-हरण का भी उल्लेख कवि ने किया है। इससे विदित होता है कि प्रकृत काव्य में राधा-कृष्ण लीला और गोपी-कृष्ण प्रेम की प्रतिष्ठा हो चुकी थी।

जैनाचार्य हेमचन्द्र—हेमचन्द्राचार्य के व्याकरण में जो अपभ्रंश के दोहे संगृहीत हैं वे उनके समय से पूर्व के हैं। कुछ दोहे ऐसे भी होंगे जिनको उन्होंने अथवा उनके सम सामयिक कवियों ने लिखा होगा। हेमचन्द्र का जीवन-काल सन् १०८८ तक है। उनमें राधा का प्रधान गोपी रूप में उल्लेख है। एक दोहे में राधा के वक्षःस्थल की महिमा इस प्रकार बताई गई है कि उसने आंगन में तो हरि को नचा ही दिया, लोगों को विस्मय के गर्त में गिरा ही दिया (इससे बड़ी सफलता इसकी क्या हो सकती है) सो अब इसका जो होना हो सो हो—

हरि णचाइय पंगणइ विम्हइ पाडिउ लोउ ।
एम्वहि राह पओहरहं जं भावइ तं होइ ॥

इनके 'काव्यानुशासन' में 'कार्यहेतुक प्रवास' के उदाहरण में जो कविता उद्धृत है, उसमें राधा का विरह इस प्रकार वर्णित है—

याते द्वारवतीं तदा मधुरिपौ तद्दत्तझम्पानतां ।
कालिन्दीतटरूढवञ्जुललतामालिङ्ग्य सोत्कण्ठया ॥
तद्गीतंगुरुबाष्पगद्गदगलत्तारस्वरं राधया ।
येनान्तर्जलचारिभिर्जलचरैरप्युत्कमुत्कूजितम् ॥
काव्यानुशासन—अध्याय २ ।

(कृष्ण के द्वारिकापुरी चले जाने पर राधा ने यमुना के तट पर उगी हुई बेतस् की उस लता को उत्कण्ठापूर्वक गले से लगा लिया, जिसे जलकेलि के लिए, यमुना में कूदते समय कृष्ण पकड़कर झुका दिया करते थे, और फिर अपने आँसुओं से रुँधे गले से उच्च स्वर में ऐसा करुण गीत गाया जिसे सुनकर जल के भीतर रहने वाले जीव भी व्याकुल होकर रो पड़े।)

यही कविता प्रथम और द्वितीय चरणों में थोड़े परिवर्तन के साथ आचार्य कुन्तक ने 'संवृत्ति वक्रता' के उदाहरण में दी है—

याते द्वारवतीं तदा मधुरिपौ तद्दत्तसम्पादनां।
कालिन्दी-जलकेलिवञ्जुललतामालिङ्ग्य सोत्कण्ठया॥
—वक्रोक्ति जीवित, उन्मेष २, कविता सं० ५६

इससे प्रतीत होता है कि नवीं दसवीं में राधा का नाम उत्तर भारत में परिचित हो चुका था।

हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र (११०८-११३५ ई०) ने गुणचन्द्र के सहयोग से 'नाट्य-दर्पण' नामक नाट्यशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ लिखा जिसमें भेज्जल कवि लिखित 'राधा-विप्रलम्भ' नामक नाटक का उल्लेख है।[1] शारदातनय के बारहवीं सदी में रचे हुये 'भाव प्रकाशन' में राधा सम्बन्धी 'रामाराधा' नाटक मिलता है। भाव प्रकाशन में उसके आधे श्लोक का उद्धरण मिलता है।[2] राधा सम्बन्धी 'कन्दर्प-मंजरी' नाटक का उद्धरण कवि कर्णपूर के 'अलंकार-कौस्तुभ' में मिलता है।

दसवीं शताब्दी में त्रिविक्रम भट्ट ने 'नल चम्पू' की रचना की, जिसके नलदमयन्ती के वर्णन के प्रसङ्ग में कई द्वय-अर्थक श्लोक मिलते हैं जिनमें कृष्ण और उनके जीवन के बारे में उल्लेख है। एक श्लोक का अर्थ इस प्रकार है, "कला कौशल में चतुर राधा परम पुरुष मायामय केशिहन्ता के प्रति अनुरक्त हैं।"[3] दसवीं

---

१. यदि यह भेज्जल कवि और अभिनव गुप्त द्वारा भरत के नाट्य शास्त्रकी टीका में उल्लिखित भेज्जल कवि एक है तो विप्रलंभ नाटक को दसवीं सदी के पहले की रचना मान सकते है।

२. किमेषा कौमुदी किंवा लावण्यसरसी सखे।
इत्यादि रामराधायां संशयः कृष्णभाषिते॥ वही.

३ शिक्षितवैदग्ध्यकलापराधात्मिका परपुरुषे।
मायाविनि कृतकेशिवधे रागं बध्नाति॥
प्राचीन ओ मध्ययुगे भारतीय साहित्ये श्रीराधार उल्लेख—
डा० नरेन्द्रनाथ लाहा, 'सुवर्ण वणिक-समाचार' वर्ष ३४, अंक ६।

देखा, कालिन्दी के कूल पर भी नहीं देखा, वेतसकुंज में भी नहीं देखा।"[1] एक अन्य श्लोक इस प्रकार है, "गाय के दूध का कलश लेकर गोपियो, घर जाओ जो गायें अभी भी दुही नहीं गई हैं उनके दुहे जाने पर यह राधा भी तुम लोगों के बाद जायगी। दूसरे अभिप्राय को हृदय में गुप्त रखकर जो इस प्रकार से व्रज को निर्जन कर रहे हैं, वही नन्दपुत्र के रूप में अवतीर्ण देव तुम्हारे सारे अमंगल को हरण करें।" एक अन्य पद में गोवर्धन गिरि को कराग्र से धारण करते हुए कृष्ण को देखकर राधा की दृष्टि प्रियगुण के कारण प्रीतिपूर्ण हो उठती है।[2]

ग्यारहवीं सदी के प्रथम भाग के लगभग बाकुराति की लिपि में एक कृष्ण सम्बन्धी श्लोक है जिसमें कृष्ण के प्रति राधा के प्रेम को श्रेष्ठ होने की व्यंजना है— "लक्ष्मी के वदनेन्दु द्वारा जिसे सुख नहीं प्राप्त था, जो शेषनाग के हजार फणों की मधुर साँस से भी आस्वादित नहीं हुआ, राधा-विरहातुर मुररिपु की ऐसी जो कम्पित देह है वह तुम्हारी रक्षा करे।"[3]

लालधर त्रिपाठी का कथन है, "इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि क्षेमेन्द्र से पहले मुक्त गीतियों में राधा को प्रधान नायिका के रूप में कवियों ने पूर्णतया प्रतिष्ठित कर दिया था। इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि काव्य में राधा और कृष्ण ही प्रेम गीतों के नायक नहीं थे, अपितु इन्हीं जैसे सामान्य युवक और युवतियाँ गृहीत होती थीं। तथा इनका उल्लेख बहुत कम कविताओं में हुआ है। आगे चलकर तो मुक्त प्रेम गीतों के ये ही एक मात्र नायक-नायिका मान लिए गए।"[4]

पिङ्गलाचार्य द्वारा रचित 'प्राकृत-पिङ्गल-सूत्र' नामक ग्रन्थ का रचना काल निश्चित नहीं है। इसकी टीका सं० १६५७ वि० की श्रावण शुक्ला पंचमी को

---

१. पर्यायन्विष्टो धूर्तः स सखि निखिलामेव रजनीम्
इह स्यादत्र स्यादिति निपुणमन्यामभिसृतः।
न दृष्टो भाण्डीरे तटभुवि न गोवर्धनगिरे
र्न कालिन्द्याः कूले न च निचुलकुञ्जे मुररिपुः॥ हरिब्रज्या, ३४।

२. वही, ४२ सोन्नोक विरचित; सदुक्तिकर्णामृत और पद्यावली में भी उद्धृत।

३. यल्लक्ष्मीवदनेन्दुना न सुखितं यन्नार्द्रितं वारिधे-
र्वारा यन्न निजेन नाभिसरसीपद्मेन शान्तिं गतम्।
यच्छेषाहिफणासहस्रमधुरश्वासैर्न चाश्वासितं
तद्राधाविरहातुरं मुररिपोर्वेल्लद्वपुः पातु वः॥
The Indian Antiquary, 1877, पृष्ठ ५१ द्रष्टव्य।

४. गीति काव्य का विकास —लालधर त्रिपाठी, प्रवासी, पृ. १०३

"राज्याभिषेक के जल से धुले हुए सिर वाले कृष्ण की चर्चा (गुणगान) सुनकर राधा गर्वित नेत्रों से अपने ही चरण-कमलों को देखने लगती है।"

भगवान् विष्णु राधा से इतना अधिक प्रेम करते हैं कि उनके कारण लक्ष्मी ईर्ष्या से व्याकुल और संतप्त हो उठती है—

लज्जयितुमखिलगोपीनिपीत-मनसं मधुद्विषं राधा ।
अज्ञेय पृच्छति कथां शम्भोर्दयितार्ध - तुष्टस्य ॥
लक्ष्मीनिःश्वासानलपिण्डीकृतदुग्धजलधिसारभुजः ।
क्षीरनीधितीरसुदृशो यशांसि गायन्ति राधायाः ॥

आर्या सप्तशती ५०८, ५०९ ।

"समग्र गोपियों के मन को हरण करने वाले कृष्ण को लज्जित करने के लिए राधा भोलेपन के साथ प्रिया के अर्धभाग से ही संतुष्ट शिवजी की कथा पूछती हैं। लक्ष्मी के उष्ण उच्छ्वासों से गाढ़े हुए क्षीरसागर के दूध का पान करने वाली सुन्दरियाँ राधा के यश का गान करती हैं।" 

चतुर्थ-अध्याय

भक्ति के विभिन्न संप्रदाय और उनमें राधा का स्वरूप



अधिकारी है। श्री लक्ष्मीनारायण रामानुज सम्प्रदाय में परम उपास्य हैं। ब्रह्म सगुण और सविशेष है। वह सर्व गुण सम्पन्न, अनुपम, अद्वितीय, सर्वोपरि, महान, सर्व फल प्रदाता, सर्वाधार, सबका स्वामी, विश्वात्म स्वरूप और पुरुषोत्तम है। ईश्वर के पाँच रूप माने हैं –परब्रह्म व्यूह, विभव, अर्चा या मूर्ति और अन्तर्यामि। पदार्थ के प्रमेय और प्रमाण दो भेद हैं। प्रमेय के द्रव्य और अद्रव्य ये दो भेद हैं। प्रमाण पदार्थ प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द तीन प्रकार का होता है। प्रकृति जीवों का उपादान और निमित्त कारण ब्रह्म है। जीव अणु स्वंडित, कार्य और दास है। जीव कर्त्ता, भोक्ता शरीरी और शरीर है। जीव के तीन भेद हैं—बद्ध, मुक्त और नित्य। बद्ध के दो वर्ग हैं–भोगेच्छु और मुमुक्षु पूजा के पाँच प्रकार हैं–अभिगन, उपादान, इज्या, स्वाध्याय और योग। सत्य, शौच, अहिंसा आदि नियमों के पालन के साथ ही उपवास, तीर्थ, दान, यज्ञादि निष्काम भाव से करने चाहिए। जीव अणीश, ससीम और अज्ञ है। ब्रह्म ईश, असीम और प्राज्ञ है। जीव को विभु और भूमा-नारायण के चरणों में आत्म समर्पण करने से शान्ति मिलती है। रामानुज मर्यादा के बड़े पक्षपाती थे।

जगत की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। वे ईश्वर के आश्रित हैं। कृष्ण के साथ राधा की महानता इस सम्प्रदाय की विशेषता है। राधा कृष्ण के साथ सब स्वर्गों से परे गोलोक में निवास करती हैं। कृष्ण परब्रह्म हैं उन्हीं से राधा और गोपिकाओं का आविर्भाव हुआ है। इस प्रकार राधा - कृष्ण की उपासना ही प्रधान है। परमात्मा अनन्त, सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्व नियन्ता, सर्व व्यापक, निर्गुण, सगुण अशरीर और सशरीर है। ब्रह्म निर्विकार है। कृष्ण ऐश्वर्य तथा माधुर्य के आश्रय हैं। उनके ऐश्वर्य रूप की अधिष्ठात्री 'रमा', 'लक्ष्मी', या 'भू' शक्ति है और प्रेम व माधुर्य रूप की अधिष्ठात्री गोपी और राधा है। ब्रह्म अंशी और ज्ञ है जीव अंश और अज्ञ है। दोनों भिन्न भी हैं, अभिन्न भी। ईश्वर सार्वभौम है जीव अणु और कर्त्ता है। जीव तीन प्रकार के हैं—१–बद्ध जीव २-मुक्त जीव ३–नित्य मुक्त जीव। मुक्ति के दो प्रकार हैं—क्रम मुक्ति तथा सद्योमुक्ति। अचित् तत्व के तीन भेद हैं—१–प्राकृत २–अप्राकृत और ३–काल। ब्रह्म के चार रूप हैं—पर अमूर्त, अपर अमूर्त, अपर मूर्त और पर मूर्त। भगवान् की प्राप्ति का भक्ति ही उत्तम उपाय है जो दो प्रकार की है; साधन रूपा और परारूपा। कृष्ण ही उपास्य देव हैं। राधा कृष्ण की ह्लादिनी तथा प्राणेश्वरी हैं जिनकी शक्ति से गोपियों, महिषियों, लक्ष्मी तथा हजारों सखियाँ उत्पन्न होकर उनकी सेवा करती हैं।

चैतन्य सम्प्रदाय—यह एक वृहद् वैष्णव सम्प्रदाय है। महात्मा श्री चैतन्य प्रभु ने इस सम्प्रदाय को चलाया। चैतन्य सम्प्रदाय ब्रह्म सम्प्रदाय से अत्यन्त निकट का सम्बन्ध रखता है। चैतन्य ने राधा को प्रमुख स्थान दिया। चैतन्य ने दास्य के अतिरिक्त शान्त, सख्य, वात्सल्य और मधुर भाव को भी स्थान दिया। चैतन्य की राधा कृष्ण की युगल भक्ति, नाम और लीला कीर्तन का उनके जीवन में ही प्रचार हो गया था। श्री चैतन्य महाप्रभु के बाद श्री रूप गोस्वामी ने भक्ति शास्त्र एवं रस शास्त्र सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ लिखे, जिनमें तीन प्रमुख हैं—१–भक्ति-रसामृत-सिन्धु २–उज्ज्वल-नीलमणि ३–लघुभागवतामृत। रूप गोस्वामी के बड़े भाई श्री सनातन गोस्वामी ने दो प्रमुख ग्रन्थ लिखे—श्रीमद्भागवत् दशम स्कन्ध की टीका तथा वृहद् भागवतामृत। चैतन्य सम्प्रदाय अचिन्त्य भेदाभेद वादी सम्प्रदाय कहलाता है। इसके अनुसार परम तत्व एक ही है जो सच्चिदानन्द स्वरूप अनन्त शक्ति से सम्पन्न तथा अनादि है और उपासना भेद से अलग-अलग प्रकार से अनुभूत होता है। परमतत्व की अनन्त शक्ति अचिन्त्य होने के कारण वह एकत्व पृथकत्व और अंशत्व धारण कर सकता है। श्रीकृष्ण में अनन्त गुण हैं। वे असंख्य अप्राकृत, गुणशाली अपरिमित शक्ति से विशिष्ट हैं और पूर्णानन्द घन उनका विग्रह है। परब्रह्म के तीन रूप माने हैं—स्वयं रूप, तदेकात्मक रूप और आवेश रूप। परब्रह्म स्वयं रूप

श्रीकृष्ण हैं जिनका रूप किसी की अपेक्षा करके प्रकट नहीं होता। वे सर्व कारणों के कारण और स्वतः सिद्धि हैं। श्रीकृष्ण का पहला द्वारिका रूप है जो पूर्ण है, दूसरा मथुरा रूप है जो पूर्णतर है और तीसरा वृन्दावन-ब्रजलीला-रूप है जो पूर्णतम है। भगवान् के तीन प्रकार के अवतार—पुरुषावतार, गुणावतार, और लीलावतार हैं। परब्रह्म श्रीकृष्ण का आदि अवतार पुरुष है जो वासुदेव भी कहलाता है। श्री बलदेव ने पाँच तत्व माने हैं—ईश्वर, जीव, प्रकृति, काल तथा कर्म। अनन्त शक्ति सम्पन्न श्रीकृष्ण की तीन प्रकार की शक्तियाँ हैं। अन्तरंगा शक्ति उनकी स्वरूप शक्ति है, बहिरंगा शक्ति माया या जड़ शक्ति है और तटस्थ शक्ति जीव शक्ति है। जीव अणु, चैतन्य और नित्य है। ईश्वर गुणी और देही है, जीव गुण और देह है। सत, रज और तमोगुण की साम्यावस्था ही प्रकृति है। काल नित्य और ईश्वर के आधीन है। कर्म अनादि और विनश्वर जड़ पदार्थ है। ज्ञान और वैराग्य सहकारी साधन तथा भक्ति ही मुख्य साधन है। भक्ति मार्ग की तीन अवस्थाएँ हैं—साधन, भाव और प्रेम। भक्ति दो प्रकार की है–वैधी और रागानुगा। गोपियाँ प्रेम और आनन्द की शक्ति स्वरूपा हैं और राधा 'महाभाव' स्वरूपा है।

हरिदासी सम्प्रदाय—स्वामी हरिदास जी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक थे। यह सम्प्रदाय वेदान्त के किसी वाद अथवा किसी दार्शनिक सिद्धान्त का प्रचारक न होकर भक्ति का एक साधन मार्ग है। हरिदासी सम्प्रदाय सखी सम्प्रदाय भी कहा जाता है। हरिदासी सम्प्रदाय के स्वतन्त्र सिद्धान्त हैं परन्तु वह निम्बार्क सम्प्रदाय में ही समाविष्ट होता है। स्वामीजी जीव की कृतार्थता भगवान् के ऊपर सम्पूर्ण रूप से निर्भर रहने में ही मानते हैं। यह सम्प्रदाय वास्तव में दार्शनिक गूढ़ता से दूर है और इसमें रसोपासना को प्रधानता दी गई है। श्यामा श्याम के प्रेम में एकरसता और नित्य नवीनता है। स्वामी बिहारीदेवजी को हरिदासी उपासना सूत्रों का भाष्यकार कहा जा सकता है। स्वयं अंशकला अवतारी श्रीकृष्ण को भी नित्य विहार दुर्लभ है। विहारिणीजी का नित्य वृन्दावन अद्भुत और अलौकिक है बिहारी विहारिणीजी का विहार निरंतर चलता रहता है। इस सम्प्रदाय का स्वामी हरिदासजी के समय का ही बना हुआ बिहारीजी का मन्दिर बहुत प्रसिद्ध है वृन्दावन में आज भी टट्टी संस्थान में इस सम्प्रदाय की गद्दी वर्तमान है।

राधावल्लभ सम्प्रदाय—अष्टछाप कवियों के समय में ही युगल उपासना का राधावल्लभ सम्प्रदाय प्रचलित था, जिसके प्रवर्त्तक स्वामी हितहरिवंश थे। हित हरिवंश के यहाँ राधा कृष्ण केलि की खवासी अथवा परिचर्या करने का ही आदेश था। उन्होंने अपने सम्प्रदाय में दूषित मानसिक वृत्तियों के परिष्कार का ही योग बताया है। इस सम्प्रदाय में राधा कृष्ण की कुंज लीला के मनन के आनंद

को 'परम रस माधुरी भाव' कहा है और श्रीकृष्ण की अपेक्षा राधा की भक्ति को विशेष महत्व दिया है। राधा वल्लभ सम्प्रदाय का मूलाधार 'राधा-प्रेम' है। इस सम्प्रदाय में रसोपासना का विधान है। इसमें राधा की आराधना के बिना कृष्ण की आराधना का निषेध है। राधा स्वयं सर्वतंत्र अधिष्ठातृ देवी है। उनकी सत्ता स्वकीया परकीया के रूप में न होकर स्वतंत्र रूप में है। लौकिक रूप में राधा स्वकीया होने पर भी राधा कृष्ण के नित्य विहार स्थिति में स्वकीया परकीया भाव निर्विशेष माने हैं। इस सम्प्रदाय में राधा ही सब कुछ हैं। राधा ही इष्ट देवी, आराध्य देवी या उपास्य हैं। कृष्ण राधा के अनुसंग से, राधा के कृपा कटाक्ष से अपने को सफल मनोरथ करते हैं। सहचरी या सखी शब्द जीव के निज रूप की परमार्थिक स्थिति का नाम है। श्रीकृष्ण के परिवेश और परिकर स्व और पर के भेद से रहते हैं। वे सदा एक रस हो नित्य विहारलीला में मग्न रहते हैं। वृन्दावन कल्पना द्वारा चित्रित सूक्ष्म वृन्दावन न होकर भौतिक वृन्दावन है। इस सम्प्रदाय में राधा की मूर्ति स्थापित न होकर गद्दी सेवा है।

वल्लभ सम्प्रदाय में राधा का स्वरूप—

शुद्धाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार परब्रह्म पुरुषोत्तम में अनंत शक्तियों की निरंतर स्थिति रहती है। ये समस्त शक्तियाँ पुरुषोत्तम के सदा अधीन होती हैं। पुरुषोत्तम के बाह्य रूप लीला करने पर उनकी शक्तियों की भी बहिः स्थिति होती है। वे विविध रूप, गुण और नामों से उनसे विलास करती हैं और उनमें श्रिया, तुष्टि गिरा तथा कान्ता मुख्य हैं। ये ही श्री स्वामिनी, चंद्रावली, राधा और यमुना आदि आधिदैविक रूप और नामधारण कर नित्य-स्थिति करती हैं। इन द्वादश शक्तियों में से पुनः अनंत भाव प्रकट होते हैं जो अनेक सखी-सहचरी रूप में उनके साथ रहते हैं।

वल्लभाचार्य जी ने विशुद्ध प्रेम को शुद्ध पुष्टि कहा है।[1] गोपियाँ विशुद्ध प्रेम का उदाहरण हैं। उनके प्रेमात्मक साधनों को ही पुष्टि भक्ति के मुख्य साधन माना है।[2] वे देवादि विषयक रति-प्रेम को भाव कहते हैं।[3] आचार्यजी के अनुसार इस भाव को सिद्ध करने का साधन उसकी भावना-सस्नेह क्रियात्मक चिन्तन

---

१. पुष्ट्या विमिश्राः सर्वज्ञाः प्रवाहेण क्रियारता ।
   मर्यादया गुणज्ञास्ते शुद्धाः प्रेम्णाति दुर्लभाः ॥ पुष्टि प्रवाह मर्यादा

२. ....गोपिकाः प्रोक्ता गुरवः साधनं च तत् । सन्यास निर्णय

३. रतिर्देवादि विषया भाव इत्यभिधीयते ।

है ।[1] आचार्यजी ने श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिये गोपीजनों की प्रेम भावना-सेवा का उल्लेख दिया है। गोपियों के विभेद करते हुए उन्होंने प्रेमात्मक भक्ति साधन रूप भावनाओं का इस प्रकार उल्लेख किया है –

"गोपांगना सु पुष्टिः। गोपीषु मर्यादा। व्रजांगना सु प्रवाहः।....गोपांगनास्तु मुक्त मुक्ताः मुक्त गृहे सुखं मुक्त यामिस्तः किंवा ना ज्ञातो लोकवेदमयमुक्तो यामिस्ता मुक्ता कुटुम्ब मायापत्यवैभव गेहाधिपति धन वपुः पत्यादिक सकल मर्यादार्था मुक्ता यामिस्ता सर्वाम् धर्म्मान्नि कृत्यकेवलं श्रीपुरुषोत्तममेव भजंति। तस्मात्तासां पुष्टित्वम्।

अथ गोपीनां व्रजकुमारिणां गोपीजनवल्लभ भजनेतर भजनं जातम्। किं च तदजनोपायेऽपि कात्यायनी भजनं कृतम्।........अतएव तासां मर्यादा भक्तिः।

तथा व्रजांगनानां मातृभावेनैव संग्रहः। तासाम् ईश्वरे पुत्र भावो वर्तते। तस्मात्तासां प्रवाहत्वम्। इति त्रिविधा गोप्यः। (भगवत्गीठिका)

अभिप्राय यह है कि व्रज में तीन प्रकार की गोपियाँ हैं पहली गोपांगनाएँ दूसरी 'गोपी' अर्थात् "कुमारिकाएँ", तीसरी "व्रजांगनाएँ"। गोपांगनाएँ लोक वेद भय से मुक्त हो, सब धर्मों को त्याग शुद्ध प्रेम से केवल पुरुषोत्तम का ही 'साक्षात' भजन करने के कारण 'पुष्टि-पुष्ट' रूप हैं। ऐसे भजन में परकीया भावना वाले उत्कृष्ट प्रेम व्यसन की स्थिति रहती है। गोपी अथवा कुमारिकाएँ कात्यायनी व्रत आदि से पुरुषोत्तम का परोक्ष भजन करने के कारण पुष्टि मर्यादा रूप हैं। ऐसे भजन में माहात्म्य ज्ञान पूर्वक सुदृढ़ स्नेह-स्वकीय स्त्री भावना वाली आसक्ति की स्थिति रहती है। 'व्रजांगनाएँ' पुरुषोत्तम का लोकवत् बाल भाव से भजन करने के कारण "पुष्टि प्रवाह" रूप हैं। ऐसे भजन में केवल वात्सल्य भावना की स्थिति रहती है। आचार्यजी के अनुसार तीनों भावनाएँ पुष्टि भक्ति का मुख्य साधन हैं।

वल्लभ सम्प्रदाय में वात्सल्य भक्ति ही ग्राह्य न होकर सख्य, कान्ता स्वकीय और परकीय तथा ब्रह्म भाव की भक्ति भी ग्राह्य है। श्रीवल्लभाचार्य ने 'मधुराष्टक', 'परिवृढ़ाष्टक' और 'सुबोधिनी' में जो माधुर्य भक्ति का प्रवाह बहाया है उससे इस बात की पुष्टि होती है कि पुष्टि भक्तों में बाल, दाम्पत्य और परकीया कांताभाव की तीनों भावनाओं का भजन ग्राह्य है।

पुष्टि मार्ग के अनुसार शक्ति शक्तिवान् के आधीन ही मानी गई है। श्रीराधा और श्रीकृष्ण पुष्टि मार्ग के अनुसार अभिन्न और एक ही रूप हैं। कृष्ण और गोपियाँ भी अभिन्न हैं। राधा भगवान् की आह्लादिनी शक्ति और गोपियाँ भग-

---

[1] भावो भावनया सिद्धः साधनं नान्यदिष्यते। सन्यास निर्णय

की आनन्द रूपिणी शक्तियाँ हैं। वल्लभ सम्प्रदाय में गोपिकायें रसात्मकता सिद्ध करने वाली शक्तियों की प्रतीक और राधा रसात्मक सिद्धि की प्रतीक मानी हैं।

पुष्टिमार्गीय हिन्दी के वैष्णव कवियों ने मुख्यतः भागवत् का ही अनुसरण किया। भागवत् का आश्रम लेने के कारण लीला वैचित्र्य बहुत कम है यहाँ तक कि अनेक स्थानों पर भागवत् की भाषा का ही रूपान्तर मिलता है।

सुबोधिनी में आचार्यजी ने माधुर्य भक्ति का स्वरूप बताते हुए रतिशास्त्र सम्बन्धी उल्लेख किए हैं।[१] इनसे विदित होता है कि वल्लभाचार्यजी ने माधुर्य-भक्ति को महत्वपूर्ण स्थान दिया। यद्यपि उन्होंने अपनी धर्म साधना में गोपाल-कृष्ण की उपासना को ग्रहण किया था और श्रीकृष्ण के बाल रूप पर प्रकाश डाला था। कृष्ण की पुष्टि भक्ति को हम यदि रूपक के रूप में ग्रहण करें, तो कृष्ण परब्रह्म हैं। राधा उन्हीं की शक्ति या प्रकृति हैं। गोपियाँ जीवात्मा हैं। मुरली योगमाया है या भगवान् की 'पुष्टि' है जो भगवान् को जागरूक बना संसार से [illegible] छुड़ा ब्रह्म की ओर ले जाती हैं। रास जीवात्मा का परमात्मा के साथ आनन्दमग्न मग्न होना है। श्री राधिका माधुर्य भक्ति की मुख्य पात्र हैं जिन्हें वल्लभ सम्प्रदाय में स्वकीया माना है। पुष्टि सम्प्रदाय में परकीय भाव की पात्र श्रुतिरूपा गोपांगना श्री चन्द्रावली हैं। कांता भक्ति का आधार कुमारिकाओं और गोपांगनाओं को बताया, परन्तु बाद में इसकी प्रधान पात्र राधा मानीं।

आचार्यजी ने अपने इष्टदेव के स्वरूप का वर्णन करते हुए अपने मधुराष्टक में अपने इष्ट को 'मधुराधिपति' कहकर उनके समग्र अंग चेष्टा आदि को भी मधुर बतलाया है—

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयन मधुरं हसितं मधुरम्।
हृदयं मधुरम् गमनं मधुरम् मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥

श्री वल्लभाचार्य भक्तिमार्गीय सन्यास का पर्यवसान रासलीला में ही मानने के कारण पुष्टि-पुष्टि स्वरूप श्रुतिरूपा गोपांगनाओं को इसका अधिकारी बताते हैं। (गायत्री भाष्य) में उन्होंने लिखा है—

"भक्ति मार्गीय सन्यासस्तु साक्षात् [illegible] मंडनानाम्। स्वयमेवोक्त संत्यज्य सर्व [illegible] ध्याये तः प्रति भगवता।"

---

१. "अनेन विपरीत रस उच्यते, [illegible]।" १०-३१-७
"अनेन सर्व एव सुरतबन्धा [illegible]।" [illegible]
अग्रे मर्यादा भंगो [illegible]। [illegible] रसानराः। रतिचक्रे प्रवृत्तं तु नैव [illegible]॥ १०-३२-२५

होते हैं। पृथ्वी और गन्ध, जल और शैत्य, तेज और प्रकाश आकाश और व्याप्ति के समान इनका स्वाभाविक संयोग है। धर्म-धर्मी की सतत संयुक्त आत्मा के समान 'स्वकीय' और 'परकीय' दोनों शब्दों में अन्तरङ्गता नहीं। "इसीलिये पुष्टि सम्प्रदाय में श्री राधिका को न तो 'स्वकीयात्वेन' और न 'परकीयात्वेन' निर्दिष्ट किया गया है; यहाँ तो वे सर्वत्र सच्चिदानन्दरसमय पूर्ण पुरुषोत्तम की मुख्य शक्ति स्वामिनी के रूप में आलेखित हुई हैं।" श्री राधिका के स्वरूप में आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक– सभी स्वरूपों की उदात्त आकृति साकार हो उठती है।"[1]

श्रीवल्लभाचार्य ने अपनी धर्म साधना में गोपाल कृष्ण की उपासना को ग्रहण किया। वल्लभाचार्य के स्वयं बालकृष्ण की उपासना का प्रचार करने के कारण अष्टछाप के साहित्य में वात्सल्य रस की समृद्धि मिलती है। अष्टछाप के कवियों के सम्बन्ध में शशिभूषणदास का कथन है, "उन्होंने भी अपने को गोपी भाव से भावित कर 'प्रेमरसैकमीम' कृष्ण के विरह से व्याकुलता और उनके मिलने की आकांक्षा लेकर पद लिखे हैं। इसके साथ ही हम देखते हैं कि गौड़ीय वैष्णव कवियों की तरह उन्होंने भी युगल-लीला का जयगान करके उस अप्राकृत वृन्दावन में दूर से सखी या दूसरे परिकरों की भाँति नित्य युगल लीला का आस्वादन करने की चेष्टा की है।"[2]

वल्लभाचार्य ने 'परिवृढाष्टक' ग्रन्थ में गूढ़ शैली में 'पशुपजारहस्येकां' की चर्चा निम्न प्रकार से की है—

कलिन्दोद्भूतायास्तटमनुचरंतीं पशुपजां।
रहस्येकां दृष्ट्वा नवतुभगवक्षोजयुगलाम्।
दृढं नीवीग्रथि श्लथयति मृगाक्ष्या दृढतरं।
रतिप्रादुर्भावो भवतु सततं श्रीपरिवृढे।

इसमें आचार्यजी ने कामना की है कि श्रीराधा के साथ रहस्यलीला करने वाले परब्रह्म में उनकी सतत रति प्रादुर्भूत हो। परिवृढाष्टक की यह 'पशुपजा' वृषभानु गोप की कन्या श्री राधिका ही है। श्री राधिका, श्रीकृष्ण की प्रथम स्वामिनी है। स्वामी श्रीकृष्ण हैं। यदि परिवृढाष्टक की इस 'एकान्त पशुपजा' को राधा न भी मानें तो भी ग्रन्थ प्रमाण उपलब्ध होते हैं। आचार्य ने श्रीकृष्ण प्रेमामृत में राधा का स्पष्ट उल्लेख किया है—

---

१. श्रीराधा गुणगान—गोरखपुर, पृ० ८१।
२. राधा का क्रम विकास—शशिभूषणदास गुप्त, पृ० २८७

वल्लभ सम्प्रदायों में भी राधा को विशिष्ट स्थान मिला। विष्णु स्वामी से प्रभावित होकर वल्लभाचार्य ने राधा की उपासना की....।"[1] डा० गोवर्द्धन नाथ शुक्ल का अभिमत है कि, "महाप्रभु वल्लभाचार्य ने भागवत के आधार पर जो स्तोत्र, नामावली अथवा अष्टक आदि लिखे हैं उनमें भी गोपी, गोप, रुक्मिणी आदि के साथ राधा का नाम आता है। अतः 'राधातत्त्व' को भागवत के उपरान्त का नहीं अनुमान किया जाना चाहिए। महाप्रभु के राधातत्त्व को माधुर्य भाव के पूर्ण परिपाक के लिए सांकेतिक रूप से भागवत से और स्पष्ट रूप से अन्य स्रोतों से ग्रहण किया है और परिपुष्ट कान्ताभाव के आदर्श के ही लिए उसका उपयोग किया है।"[2]

आचार्य श्री के अनन्तर उनके आत्मज श्रीविट्ठलेश्वर के साहित्य में राधा-रहस्य का और अधिक उद्घाटन मिलता है। उन्होंने 'भुजंगप्रयाताष्टक' नामक स्तोत्र में 'सदाऽऽराधिका-राधिका-साधकार्थ-प्रताप-प्रसाद प्रभो कृष्णदेव !' द्वारा भगवत्प्रसाद प्राप्ति की कामना की है। उन्होंने 'राधा प्रार्थना-चतुः श्लोकी' में माधुर्य भावना का सुन्दर ढङ्ग से अभिलेखन करते हुए राधा की महिमा का वर्णन इस प्रकार किया है—

कृपयति यदि राधा बाधिता शेषबाधा
किमपरमवशिष्टं पुष्टिमर्यादयोर्मे,
यदि वदति च किंचित् स्मेरहंसोदित श्री-
द्विजवरमणि-पङ्क्त्या मुक्ति-शुक्त्या तदा किम् ? ॥१॥

श्याम सुन्दर ! शिखण्डशेखर ! स्मेरहास्य ! मुरली मनोहर ।
राधिकारसिक ! मां कृपानिधे ! स्वप्रियाचरणकिंकरीं कुरु ॥ २ ॥
प्राणनाथ ! वृषभानु-नन्दिनी-श्रीमुखाब्जरसलोलषट्पद !
राधिकापदतले कृतस्थितिस्त्वां भजामि रसिकेन्द्रशेखर ! ॥ ३ ॥
संविधाय दशने तृणं विभो ! प्रार्थये व्रजमहेन्द्र-नन्दन !
अस्तु मोहन ! तवातिवल्लभा जन्मजन्मनि मदीश्वरी प्रिया ॥ ४ ॥

अर्थात् "यदि राधा, कृपा कर दें तो मेरी सम्पूर्ण बाधा नष्ट हो जाती है और पुष्टि तथा मर्यादा में फिर मेरे लिए क्या अवशिष्ट रह जाता है। और यदि वे अपनी सुन्दर मन्दमुस्कान से जिसमें स्वच्छ मणि-पंक्ति के समान दन्तावली सुशोभित हो रही हो, कुछ आदेश दे दें तो मुक्ति रूपी सीप से मुझे क्या प्रयोजन है।

---

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा, पृ. ५००
२. कविवर परमानन्ददास और वल्लभ सम्प्रदाय—डा० गोवर्धननाथ शुक्ल, पृ. २०८

'हे मयूरपिच्छधारी श्याम सुन्दर !', हे मन्द मुसकान-मुरली मनोहर !, हे राधिका रसिक ! मुझे अपनी प्रिया के चरणों की सेविका (सेवक) बनादो।"

"हे प्राणधन ! हे श्री राधिका के मुख कमल के भ्रमर ! हे रसिकेन्द्र शेखर ! श्री राधिका के पद तलों में मेरी स्थिति कर दीजिये।"

"हे प्रभो ! हे व्रजनन्दन ! मैं अपने मुख में तृण दबाकर (अतिशय दीनता पूर्वक) प्रार्थना करता हूँ कि आपकी प्राणाधिका राधा मेरी स्वामिनी हों।"

श्री विट्ठलेश्वर प्रभुचरण स्नानादिक की आवश्यक मर्यादा की आध्यात्मिकता पर बल देते हुए श्री राधिकाजी से निवेदन करते हैं—

श्री राधे ! प्रियतमदृक्संगमसंजातहासदृक् सलिलैः।
भवदीयैः स्नानं मे भूयात् सततं न पाथोभिः॥ स्वा. प्रा. १

वे कहते हैं कि मुझे स्नान के लिए किसी जल की आवश्यकता नहीं है। हे राधे ! अपने प्रियतम व्रजेन्द्र नन्दन के नेत्रों से कटाक्ष रूपी बाणों की वर्षा होने पर तुम्हारे ओठों में से जो मधुर हास्य की उज्ज्वल धारा प्रस्फुटित होती है और तुम्हारे नेत्रों से जो अश्रु प्रवाह होता है उसी में, मैं सदा गोता लगाता रहूँ, स्नान किया करूँ।

मेरा अन्न पान भी आप पर ही अवलम्बित है। जब-जब मुझे भूख लगे, तुम्हारे मुँह से उगले हुए पान के बीड़े का ही मैं भोजन कर लिया करूँ; अन्य किसी आहार की मुझे आवश्यकता न हो। जब जब मुझे प्यास लगे, आपकी करुणा व्यंजक मधुर मुस्कान तथा चितवन-रूपी अमृत का पान करके मैं तृप्त हो जाऊँ—साधारण जल की आवश्यकता ही न हो।[1] अत्यन्त दीन भाव से तीनों समय आपके चरणों में प्रणाम ही मेरी त्रिकाल सन्ध्या हो। विरह-जनित-ताप एवं क्लेश में गहरे डूबकर आपके नामों का उच्च स्वर से उच्चारण ही जप हो।[2] अस्त होते हुए सूर्य रूपी प्रचण्ड अग्नि में दिन-भर के वियोग-जनित दुःख का मैं हवन किया करूँ और तुम्हारे पूछने पर प्रियतम श्री श्यामसुन्दर की बात कहना ही मेरे लिए अध्ययन-वेदों का स्वाध्याय हो।[3] प्रियतम के समागम होने पर आपके मन

---

१. भूयान्मेऽभ्यवहार स्तावकताम्बूलचर्वितेनैव।
पानं करुणा कूलस्मितावलोकामृतेनैव॥ स्वा. प्रा. २

२. त्रिषवणमिह भवदङ्घ्रिप्रणतिः संध्या प्रकृष्टदैन्येन।
जापस्तु तापक्लेशैर्विगाढभावेन कीर्तनं नाम्नाम्॥ स्वा. प्रा. ३

३. अस्तं गच्छत्सूर्याशुशुक्षणौ दिवस दुःखहोमोऽस्तु।
त्वत्पृष्टप्रियवार्ता कथनं मे ब्रह्मयज्ञोऽस्तु॥ स्वा. प्रा. ४

में जो अति उल्लास उत्पन्न होता है उसके देखने से ही मेरे मन की कामना पूर्ण हो जाती है-मैं कृतार्थ हो जाता हूँ। उस समय मेरी सम्पूर्ण इन्द्रियों की तृप्ति हो मेरा तर्पण हो।[1] इस प्रकार मेरी जीवन यात्रा चलती रहे और एक क्षण के लिये भी तुम्हारे चरणों से पृथक होते ही मेरी मृत्यु हो जावे। इस प्रकार श्री राधिके तुम मेरे लिए तथा मेरे जीवन के लिए शरण बनिए।[2]

श्री विट्ठलनाथ ने 'श्री स्वामिन्यष्टक' नामक द्वितीय स्तोत्र में राधा के प्रति अपनी उदात्त प्रेम भावना का परिचय इस प्रकार दिया है—

रहस्यं श्री राधेत्यखिलनिगमानामिव धन
निगूढं मद्वाणी जपतु सततं जातु न परम्।
प्रदोषे हङ्मोषे पुलिनगमनायाति मधुरं
चलत्तस्याश्चञ्चच्चरणयुगमास्तां मनसि मे ॥ १ ॥

"श्री राधा'—यह नाम समस्त वेदों का मानों छिपा हुआ धन है। मेरी वाणी इस मन्त्र को चुपचाप जपती रहे, किसी दूसरे मन्त्र का जाप न करे। जब प्रदोष में अन्धकार दृष्टि को चुरा लेता है, तब यमुना के पुलिन की ओर जाने के लिये उद्यत श्री राधा के चरण-युगल मेरे मानस में निवास करें।" वे श्रीराधा के चरणामृत और राधा की पदतल धूलि के समक्ष मोक्ष, स्वर्ग, योग, ज्ञान तथा विषय सुख सबको तिलांजलि देते हैं—

न मे भूयान्मोक्षो न नरमराधीश-सदनं
न योगो न ज्ञानं न विषय सुखं दुःखकदनम्।
त्वदुच्छिष्टं भोज्यं तव पद-जलं पेयमपि तद्-
रजो मूर्ध्नि स्वामिन्यनुसवनमस्तु प्रतिभवम् ॥८॥

श्री विट्ठलेश्वर ने 'श्रीस्वामिनी स्तोत्र' नामक एक अन्य स्तोत्र में श्रीकीर्तिजा-कुमारी की निकुंज-सेवा में दासी भाव से उपस्थित होने और तत्कालोचित यत्किञ्चित् सेवा प्रदान करने के लिए विनम्र प्रार्थना इस प्रकार की है—

गेहे निकुञ्जं निशि संगतायाः प्रियेण तल्पे विनिवेशितायाः।
स्वकेशवृन्दैस्तवपादपङ्कजं सम्मार्जयिष्यामि मुदा कदापि ॥१२॥

---

१. भवतीनां प्रिय-संगम-संजात-मनोमहोत्सवेक्षणतः।
तर्पणमिह सर्वेन्द्रिय - तृप्तिर्भवतान्मनोरथाप्त्या मे ॥ स्वा. प्रा. ५

२. इत्थं जीवनमस्तु क्षणमपि भवदङ्घ्रि विप्रयोगे तु-
मरणं भवतादेवंभावे शरणं त्वमेव मे भूयाः। स्वा. प्रा. ६

चरण पंकज में रज का संसर्ग होना स्वाभाविक है। कमल में धूलि का सान्निध्य नैसर्गिक ही होता है। उस रज को मैं अपने केश-पुंजों से झाड़कर साफ कर दूँ, यही विट्ठलेश्वर की सर्वोच्च अभिलाषा है।

इस प्रकार हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि श्री वल्लभाचार्य ने तो श्रीराधा की चर्चा की ही है परन्तु विट्ठलनाथ ने 'स्वामिन्याष्टक' और 'स्वामिनी स्तोत्र' राधा सम्बन्धी स्तोत्र लिखकर राधावाद को अपने धर्ममत में विशेष रूप से ग्रहण किया। डा० दीनदयालु गुप्त का अभिमत है कि, "इस प्रकार हम देखते हैं कि मधुर भाव की भक्ति का समावेश लेखक के विचार से आचार्यजी ने भागवत के अतिरिक्त चैतन्य महाप्रभु से भी लिया। हाँ, राधा की उपासना का समावेश इस सम्प्रदाय में विट्ठलनाथजी के समय में हुआ क्यों कि हम देखते हैं कि श्री विट्ठलनाथजी ने राधा की स्तुति में 'स्वामिन्याष्टक' तथा 'स्वामिनी स्तोत्र' दो ग्रन्थ लिखे हैं और श्री वल्लभाचार्य के किसी भी ग्रन्थ में इस प्रकार राधा का वर्णन नहीं है। उन्होंने अनेक स्थलों पर अपने ग्रन्थों में गोपी भाव से मधुर भक्ति का उपदेश अवश्य दिया है। इससे ज्ञात होता है कि सब भावों से कृष्ण की उपासना का समावेश तो उन्होंने अपने सम्प्रदाय में स्वयं कर लिया था, परन्तु राधा की अथवा युगल रूप की उपासना का समावेश गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने ही किया।"[1] शशिभूषणदास गुप्त राधावाद का प्रचलन विट्ठलनाथ के समय में मान उस पर चैतन्य और वृन्दावन के गोस्वामियों के प्रभाव होने की सम्भावना मानते हैं, "विट्ठलनाथ ने किसी विशेष भक्ति-सिद्धान्त को स्वीकार कर राधावाद का अपने धर्ममत में ग्रहण किया था कि नहीं इसमें सन्देह है, पर उन्हीं के समय में पुष्टि मार्ग में राधावाद का प्रचलन हुआ था इसमें सन्देह नहीं। वल्लभ सम्प्रदाय के मत में तथा साहित्य में राधावाद के प्रचलन के अन्दर चैतन्य और उनके भक्त वृन्दावन के गोस्वामियों का प्रभाव होने की सम्भावना है।"[2]

पुष्टि मार्ग के प्रख्यात आचार्य हरिराय ने कृष्ण के चिन्तन के लिए राधा का चिन्तन माध्यम बताया है। उन्होंने "श्रीमत्प्रभोश्चिन्तनप्रकार:" नामक ग्रन्थ में राधा का चित्रण सुन्दर ढंग से किया है। उनके अनुसार भक्तों को श्री हरि की श्री स्वामिनीजी की इस प्रकार नित्य भावना करनी चाहिए—

भावनीया नित्यमेवंभूता मत्स्वामिनी हरेः।
तदेकहृदय-स्थायी तद्भावः कृष्ण एव हि।।१०।।

---

१. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—डा० दीनदयालु गुप्त, पृ. ५२७-५२८

२. राधा का क्रम विकास—शशिभूषणदास गुप्त, पृ. २८४-२८५

लीला-सहचरवलितः मानसी-महिमान्विता
भावनीयः सदानन्दः सदा नन्दादिवन्दितः ॥१३॥

श्री स्वामिनीजी जगत् में सर्वाधिक कृष्णपरायण हैं। उनका प्रत्येक क्षण श्रीकृष्ण के चिन्तन, ध्यान व अनुसंधान में व्यतीत होता है। कृष्ण के विरह में कभी वह संतप्त हो उठती है तो कभी उनके साक्षात्कार से आह्लादित होने लगती है। इस प्रकार श्री स्वामिनी का ही चिन्तन कर भगवान् श्रीकृष्ण का चिन्तन कर सकते हैं। श्री हरिरायजी का आग्रह है कि पहले राधा का ही चिन्तन करना चाहिए तभी कृष्ण का साक्षात्कार हो सकता है। श्री हरिरायजी ने राधा विषयक अनेक स्तुतियाँ लिखी हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उक्त स्तोत्रों में युगल स्वरूपों के प्रति जो परमाराध्यता प्रकट की गई है उसमें श्री स्वामिनी श्री राधिकाजी और श्रीकृष्ण के साथ ऐकान्तिक अभेद है। पुष्टि मार्ग की सेव्यभावना वास्तव में युगलस्वरूप की ही आराधना है। सर्वोच्च रस-शृङ्गार के संयोग-वियोग दोनों विभेदों का समन्वय और परमानन्द-रसका पूर्ण परिपाक ही श्री राधा कृष्ण-तत्त्व है, इसमें लीला-भावना के अतिरिक्त कोई स्वरूपात्मक भेद प्रतीत नहीं होता। दोनों ही एक रस हैं, एक स्वरूप हैं तथा एक आत्मा हैं। यहाँ धर्म धर्मी का विश्लेषण किसी प्रकार नहीं हो सकता। श्री विट्ठलनाथ के अनुसार प्रभु का चिन्तन जो उनके स्मरण में लीन हो उसी माध्यम से हो सकता है। जगत् में सतत भगवद्ध्यान-परायण श्री स्वामिनीजी ही है। वे संयोग अवस्था में भगवद्रस का आस्वादन अविरल गति से करती हैं और वियोगावस्था में निरन्तर, चिन्तन में तल्लीन रहती हैं। श्री विट्ठलनाथ ने 'दान-लीलाष्टक', 'रस सर्वस्व', 'शृङ्गार रस', 'स्वप्न-दर्शन', 'शृङ्गार रस मण्डन' ग्रन्थों में श्री राधिका का स्वरूप-निरूपण अत्यंत विलक्षण भावना सहित किया है।

सूर के काव्य में राधा-कृष्ण के प्रेम का विशद चित्रण है। सूर ने आध्यात्मिक रूप से भी राधा का वर्णन किया है और राधा को प्रकृति और कृष्ण को पुरुष मानकर अभेद की भी स्थापना की है।[1] राधा का जगत्-नायिका शक्ति के नाम से भी वर्णन है। अष्टछाप के कवियों ने राधा को परम स्वकीया के रूप में ग्रहण किया है। सूर ने राधा का कृष्ण के साथ स्पष्ट विवाह-वर्णन भी किया है।[2]

---

१. सूरसागर-दशम स्कन्ध, ना. प्र. सभा पद सं. १६८८
२. सूरसागर-दशम स्कन्ध, ना. प्र. सभा पद सं. १६८९

निम्बार्क सम्प्रदाय में राधा का स्वरूप—

निम्बार्क ने उत्तरी भारत में राधा-कृष्ण का शास्त्रीय ढङ्ग से प्रतिपादन किया। इन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण को ही परब्रह्म माना और अपने ब्रह्मसूत्र के भाष्य 'वेदान्त-पारिजात-सौरभ' में परब्रह्म श्रीकृष्ण की विविध शक्तियों के विषय में लिखा। निम्बार्क सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण भगवान् को 'रमापति', 'श्रीपति', 'रमा मानस हंस' आदि रूपों से विशेषित किया है। श्रीकृष्ण ही परमेश्वर के रूप हैं और उनकी वन्दना ब्रह्मा, शिव, आदि समस्त देवता करते हैं। परमतत्त्व भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्मादि से चिन्तनीय न होने पर भी भक्तों के वश हो उन्हीं की इच्छा से चिन्तन-योग्य सुचित्य विग्रह धारण करते हैं।[1] उनकी शक्तियाँ अचिंतनीय हैं जिनके बल पर वे भक्तों का क्लेश दूर कर देते हैं। कृष्ण परम उपास्य देवता हैं—

> नान्या गतिः कृष्णपदारविन्दात्
> संदृश्यते ब्रह्मशिवादिवंदितात्।
> भक्तेच्छयोपात्त-सुचिन्त्य-विग्रहा-
> दचिन्त्य शक्तेरविचिन्त्यसाशयात्॥[2]

भक्ति से कृष्ण की प्राप्ति होती है। वह भक्ति शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा उज्ज्वल पाँच भावों से पूर्ण है। गोपी तथा राधा उज्ज्वल रस के भक्त हैं। इस सम्प्रदाय में वल्लभ तथा चैतन्य सम्प्रदाय के अनुसार उज्ज्वल अथवा मधुर भाव को उत्कृष्टता दी गई है। वे दाक्षिणात्य ब्राह्मण होते हुए भी वृन्दावन में रहने के कारण कृष्ण शक्ति के रूप में लक्ष्मी श्री, नीला आदि के स्थान पर गोपिनी राधा को ही प्रधानता देते थे।

श्री निम्बार्क कृत 'वेदान्त-पारिजात-सौरभ' (ब्रह्मसूत्र-वृत्ति) में उपास्य, उपासक और उपासना—इन तीनों तत्त्वों की विवेचना की गई है। इन तीनों तत्त्वों का ब्रह्म, जीव, प्रकृति—इन नामों से भी उल्लेख है। उन्होंने उपास्य तत्त्व का प्रतिपादन ब्रह्म, परमात्मा, पुरुषोत्तम, रमाकान्त, सर्वेश्वर, रस आदि शब्दों से किया है। उन्होंने भूमा पुरुष को पुरुषोत्तम कहा है। यह निरतिशय सुख एवं अमृत स्वरूप, अपनी महिमा में प्रतिष्ठित रहने वाला ऐश्वर्य, माधुर्य, सौशील्य कारुण्यादि गुणों का समुद्र है। उनके अनुसार निर्गुण-शब्द का तात्पर्य सर्वथा गुणाभाव 'नहीं' है। उन्होंने अपने मत को प्रकाशित करने लिए 'वेदांत-कामधेनु' (दश श्लोकी) की रचना की। उसमें उन्होंने ब्रह्मतत्त्व पर इस प्रकार प्रकाश डाला है—

---

१. वेदान्त कामधेनु—८

२. दशश्लोकी, श्लोक ८

"प्राकृतिक गुण-दोषों से निर्लिप्त, कल्याणकारी समस्त सद्गुणों के समुद्र, व्यूहों के अंगी, कमल के समान प्रफुल्लित नेत्रों वाले श्रीकृष्ण परमब्रह्म का हम ध्यान करते हैं।"[1] "प्रफुल्लित एक रस अनन्त सखियों द्वारा संसेवित, श्यामसुन्दर के समान ही सौन्दर्य-माधुर्य-ऐश्वर्य-लावण्य आदि गुणों वाली, अतएव भक्तों के समस्त अभीष्टों को पूर्ण करने वाली उन वृषभानुजा देवी का हम निरन्तर स्मरण करते हैं, जो सदा श्रीकृष्ण के वाम अङ्ग में विराजमान रहती हैं।"[2]

इन दो श्लोकों के द्वारा ब्रह्म-स्वरूप का विवेचन करने के उपरान्त उन्होंने श्रीराधा-कृष्ण की उपासना करने का आदेश किया। उनका कथन है, "अज्ञान-अन्धकार (अविद्या) की अनुवृत्ति रोकने (जन्म-मरण रूपी संसृतिचक्र से छुटकारा पाने) के लिये इसी राधाकृष्ण युगलात्मक परब्रह्म की उपासना करनी चाहिये यही उपासना-पद्धति सनकादिक मुनियों ने समस्त तत्त्वों के ज्ञाता श्री नारदजी क बतलायी थी।[3]

सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाली श्रीकृष्ण के वामाङ्ग विराजित तथा सहस्रों सखियों से सेवित इन श्री राधादेवी की स्तुति कृष्ण के साथ करने से ज्ञात होता है कि श्री निम्बार्काचार्य ने युगल उपासना के साथ भगवान् की माधुर्य तथा प्रेम शक्ति-रूपा राधा की उपासना पर विशेष बल दिया क्यों कि ये राधा ही सकल कामनाओं को पूर्ण करने वाली हैं। पुरुषोत्तमाचार्य ने (दश श्लोकी) के 'वेदान्त रत्न मंजूषा' नामक भाष्य में वृषभानुसुता राधिका के 'अनुरूप सौभगा', 'देवी', 'सकलेष्ट कामदा', आदि विशेषणों की व्याख्या श्रुति पुराणादिक का उल्लेख करते हुए की है। जिस प्रकार पंचरात्र या पुराणादि में विष्णु की 'अन पायिनी' शक्ति का वर्णन है उसी प्रकार यहाँ वृषभानु नन्दिनी हैं। राधा-कृष्ण की युगलमूर्ति जिन सहस्रों सखियों के द्वारा सदा परिसेवित होती है वे परिचारिका सखियाँ भक्त स्थानीय हैं।

---

१. स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोषमशेष कल्याण गुणैकराशिम्।
व्यूहाङ्गिनं ब्रह्म परं वरेण्यं ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम्॥
वेदान्तकामधेनु श्लोक ४

२. अङ्गे तु वामे वृषभानुजां मुदा विराजमानामनुरूपसौभगाम्।
सखी सहस्रैः परिसेवितां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्॥
वेदान्त कामधेनु श्लोक ५.

३. उपासनीयं नितरां जनैः सदा प्रहाणयेऽज्ञानतमोऽनुवृत्तेः।
सनन्दनाद्यैर्मुनिभिस्तथोक्तं श्री नारदायाखिलतत्त्वसाक्षिणे॥
वेदान्त कामधेनु श्लोक ६.

ये भक्तगण इस युगल की–'सकलेष्ट काम' की पूर्ति के लिये सदा सेवा करते हैं। राधिका श्रीकृष्ण से अभिन्न और उनके ही समान सौन्दर्य सम्पन्न एवं हर्ष से सुशोभित हैं। एक ही रस-सागर के दो विग्रह के समान वे सौन्दर्य में भिन्न नहीं हैं। राधा कृष्ण की प्राणेश्वरी हैं। डा० राधाकृष्णनन् निम्बार्क सम्प्रदाय के सम्बन्ध में लिखते हैं, "In Nimbarka Krishna and Radha take the place of Narayan and his consort, Bhakti is not moditation (upasana) but love and devotion."[१]

इस सम्प्रदाय को राधाकृष्ण की युगल मूर्ति की उपासना इष्ट है। इस सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण के साथ राधिका का साहचर्य मान्य है। श्री निम्बार्काचार्य के पट्ट शिष्य श्री श्रीनिवासाचार्य ने स्वरचित 'वेदान्तकौस्तुभ भाष्य' में ब्रह्मरमापति, माधव आदि प्रयोगों द्वारा ब्रह्म का निर्वचन किया है। उन्होंने वेदान्त-कामधेनु (दशश्लोकी) के वाक्यों का उद्धरण भी दिया है। आचार्य श्री निम्बार्क के अन्यतम पट्ट शिष्य श्री औदुम्बराचार्य ने अपने ग्रन्थ "औदुम्बर संहिता" में राधाकृष्ण के युग्मतत्त्व का विशेष स्पष्टीकरण किया है। उनका कथन है कि राधाकृष्ण का यह युग्म सदा-सर्वदा विद्यमान रहता है, यह नित्य वृन्दावन में नित्य विहार करता है। यह युग्म सच्चिदानन्द रूप है और सामान्यतया अगम्य होने के कारण विरले ही सज्जन इस तत्त्व को समझते हैं। राधा और मुकुन्द सम भावेन अवस्थित रहते हैं। दो दृष्टिगोचर होने पर भी वास्तव में दोनों एक रूप ही हैं। इनकी आकृतियाँ आपस में एक दूसरे से नितान्त सपृक्त हैं। जिस प्रकार सरिता के वक्षःस्थल पर प्रवाहित होने वाले दो कल्लोल (लहर) पृथक् पृथक् दिखाई देते हैं परन्तु दोनों मिल-कर इस प्रकार एक रूप हो जाते हैं कि उनका विश्लेषण किसी प्रकार भी नहीं किया जा सकता—

जयति सततमाद्यं राधिकाकृष्णयुग्मं, व्रतयुक्तनिदानं यत्सदैतिह्यमूलम् ।
विरलसुजनगम्यं सच्चिदानन्दरूपं, व्रजवलयविहारं नित्यवृन्दावनस्थम् ॥
(औदुम्बर संहिता, युग्माराध-नव्रत)

कल्लोलकौ वस्तुत एकरूपकौ, राधामुकुन्दौ सममावभावितौ ।
यद्वत् सुसम्पृक्त निजाकृतिद्वयावाधाराधयामौ व्रजवासिनौ सदा ॥

श्री औदुम्बराचार्य ने श्रीराधा-नाम के स्पष्ट उच्चारण एवं जप-संकीर्तन पर बल दिया है और श्रीराधा की प्रतिमा प्रतिष्ठित कराने पर भी आग्रह किया है। उनका कथन है कि कृष्ण के साथ हरिप्रिया राधा की भी प्रतिमा प्रतिष्ठापित की

---

१. Indian Philosophy—Dr. Radha Krishnan, P. 755

जानी चाहिये क्योंकि दोनों के ही पूजन से परम गति प्राप्त होती है।[१] श्री औदुम्बाराचार्य ने श्रीराधा और कृष्ण में न्यूनाधिक भाव का निषेध किया है। उनका स्पष्ट कथन है कि, "श्रीराधा और श्रीकृष्ण में यत्किंचित भी न्यूनाधिक-भावना करना महान् अपराध है—

संसेवितुं तत्र न भेदमाचरेत् श्रीराधिकाकृष्णयुगार्चन व्रती।
दोषाकरत्वाद्धि भिदानुवर्तिनां, सत्कर्मणामिवसमेव्यभेदिनाम् ॥

औ० स० युग्माराधन व्रत

शास्त्रीय वाक्यों के अनुसार श्रीराधा को श्रीकृष्ण की आह्लादिनीशक्ति बताया जाता है। अंग और अंगी तथा शक्ति और शक्तिमान् में स्व स्वामित्वरूप भेद सम्बन्ध है ही नहीं। निम्बार्क सम्प्रदाय में कृष्ण के साथ राधा को भी अभिन्न भाव से उपास्य के रूप में स्वीकृत किया और युगल रूप की उपासना की गई। परन्तु युगल उपासना के साथ भगवान् की माधुर्य तथा प्रेम शक्ति रूपा राधा की उपासना पर अधिक जोर दिया गया। राधा को कृष्ण की प्रकृति तथा आह्लादिनी शक्ति कहा गया है। निम्बार्काचार्य ने राधा को 'अनुरूप सौभगा' माना है अर्थात् उनका स्वरूप कृष्ण के अनुरूप ही है। जिस प्रकार कृष्ण सर्वेश्वर हैं उसी प्रकार राधिकाजी भी सर्वेश्वरी हैं। राधा, कृष्ण के साथ है और उनका अपृथक सम्बन्ध है। महावाणी की भूमिका में श्री सर्वेश्वर और राधा के सम्बन्ध में लिखा है, "इसी श्री वृन्दावन धाम में सच्चिदानंद अखिल ब्रह्माण्डेश्वर, अव्यय पुरुष, अचिन्त्येश्वर, परमाधार, धामाधिपति पुरुष कल्पवृक्ष ब्रह्म के भी ब्रह्म श्री सर्वेश्वर अपनी आह्लादिनी शक्ति श्री राधिकाजी के सह अहर्निश सुशोभित हैं। यही श्रीराधा अंतर्भूता हैं, स्वयं श्रीकृष्ण इनकी आराधना करते हैं इसलिये ये राधा कहलाती हैं। इन श्री राधिकाजी के अंश से ही गोपियाँ, श्रीकृष्ण की महिषियाँ लक्ष्मीजी आदि उत्पन्न हुई हैं। ये श्रीराधा और श्रीकृष्ण सनातन रूप एक ही शरीर से क्रीड़ा के लिये दो हो गए हैं। ये श्री राधिकाजी श्रीकृष्ण की सम्पूर्ण सनातनी विद्या और प्राणों की अधिष्ठात्री देवी हैं। दिव्य नित्य श्री नित्य वृन्दावन धाम में इन्हीं अपनी आह्लादिनी शक्ति श्री राधिकाजी के सह श्रीकृष्ण के अहर्निश विहार का नाम नित्य विहार रस है। इसलिये श्रीकृष्ण को नित्य विहारी है।[२]

ये भक्तगण इस युगल की–'सकलेष्ट काम' की पूर्ति के लिये सदा सेवा करते हैं। राधिका श्रीकृष्ण से अभिन्न और उनके ही समान सौन्दर्य सम्पन्न एवं हर्ष से सुशोभित हैं। एक ही रस-सागर के दो विग्रह के समान वे सौन्दर्य में भिन्न नहीं हैं। राधा कृष्ण की प्राणेश्वरी हैं। डा० राधाकृष्णनन् निम्बार्क सम्प्रदाय के सम्बन्ध में लिखते हैं, "In Nimbarka Krishna and Radha take the place of Narayan and his consort. Bhakti is not moditation (upasana) but love and devotion."[1]

इस सम्प्रदाय को राधाकृष्ण की युगल मूर्ति की उपासना इष्ट है। इस सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण के साथ राधिका का साहचर्य मान्य है। श्री निम्बार्काचार्य के पट्ट शिष्य श्री श्रीनिवासाचार्य ने स्वरचित 'वेदान्तकौस्तुभ भाष्य' में ब्रह्मरमापति, माधव आदि प्रयोगों द्वारा ब्रह्म का निर्वचन किया है। उन्होंने वेदान्त-कामधेनु (दशश्लोकी) के वाक्यों का उद्धरण भी दिया है। आचार्य श्री निम्बार्क के अन्यतम पट्ट शिष्य श्री औदुम्बराचार्य ने अपने ग्रन्थ "औदुम्बर संहिता" में राधाकृष्ण के युग्मतत्त्व का विशेष स्पष्टीकरण किया है। उनका कथन है कि राधाकृष्ण का यह युग्म सदा-सर्वदा विद्यमान रहता है, यह नित्य वृन्दावन में नित्य विहार करता है। यह युग्म सच्चिदानन्द रूप है और सामान्यतया अगम्य होने के कारण विरले ही सज्जन इस तत्त्व को समझते हैं। राधा और मुकुन्द सम भावेन अवस्थित रहते हैं। दो दृष्टिगोचर होने पर भी वास्तव में दोनों एक रूप ही हैं। इनकी आकृतियाँ आपस में एक दूसरे से नितान्त संपृक्त हैं। जिस प्रकार सरिता के वक्षःस्थल पर प्रवाहित होने वाले दो कल्लोल (लहर) पृथक् पृथक् दिखाई देते हैं परन्तु दोनों मिलकर इस प्रकार एक रूप हो जाते हैं कि उनका विश्लेषण किसी प्रकार भी नहीं किया जा सकता—

जयति सततमाद्यं राधिकाकृष्णयुग्मं, व्रतसुकृतनिदानं यत्सदैतिह्यमूलम् ।
विरलसुजनगम्यं सच्चिदानन्दरूपं, व्रजवलयविहारं नित्यवृन्दावनस्थम् ॥
(औदुम्बर संहिता, युग्माराधन-व्रत)

कल्लोलकौ वस्तुत एकरूपकौ, राधामुकुन्दौ सममावभावितौ ।
यद्वत् सुसम्पृक्त निजाकृतिद्वयं,वाधाराधयामो व्रजवासिनौ सदा ॥

श्री औदुम्बराचार्य ने श्रीराधा–नाम के स्पष्ट उच्चारण एवं जप-संकीर्तन पर बल दिया है और श्रीराधा की प्रतिमा प्रतिष्ठित कराने पर भी आग्रह किया है। उनका कथन है कि कृष्ण के साथ हरिप्रिया राधा की भी प्रतिमा प्रतिष्ठापित की

1. Indian Philosophy—Dr. Radha Krishnan, P. 755

नैयायिकों के अनुसार जिस प्रकार परमाणु का विभाग नहीं हो सकता उसी प्रकार यह युगल तत्त्व सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। इसलिये इसमें कभी भी विभेद नहीं हो सकता। श्री भट्टाचार्य ने युगलकिशोर को ही अपना उपास्य (सेव्य) माना है तथा उसी युगल जोड़ी का अपने को जन्म-जन्म का चाकर बतलाया है। उनकी यह अभिलाषा है कि श्री श्यामा-श्याम की सेवा में ही निरन्तर मन उलझा रहे। जहाँ मङ्गलमयी जोड़ी निरन्तर लीला विलास करती है उसी वृन्दावन में निवास कर मैं उनके लीला विलास का अनुभव करूँ—

जहां जुगल मङ्गलमयी करत निरन्तर वास।
सेऊँ सो सुख रूप श्री वृन्दाविपिन विलास॥ जु. से. सु. १०

रसिक भक्त सदा सर्वदा एक रस विहार करने वाली नित्य किशोर किशोरी की सनातन जुगल जोड़ी को अपने हृदय में धारण करते हैं—

राधा माधव अद्भुत जोरी।
सदा सनातन इकरस विहरत अविचल नवलकिशोर किसोरी।
नखसिख सब सुषमा रतनागर भरत रसिकवर हृदय-सरो री।
जै श्री भट्ट कटककट कुंडल गन्डवलय मिलि लसत हिलोरी।
जु. सहज सु. ५६

श्रीराधा का विग्रह श्याम सुन्दर है तो श्याम सुन्दर श्रीराधा की ही मूर्ति हैं। जिस प्रकार कोई दर्पण हाथ में लेकर अपना मुख देखता है तो उसे दर्पण में मुखमण्डल दिखाई देता है। दर्पणस्थ मुखमण्डल की नेत्र-कनीनिका में दर्पण और नेत्र सहित दर्पण देखने वाला दिखाई देता है उसी प्रकार ये दोनों परस्पर प्रतिबिम्बित होते हैं। इनका पार्थक्य एक क्षण को भी नहीं होता—

दर्पन में प्रतिबिंब ज्यों नैन जु नयननि माँहि।
यों प्यारी पिय पलकहूँ न्यारे नहिं दरसाँहि॥

प्यारी तन स्याम, स्यामा तन प्यारी।
प्रतिबिंबित तन अरसि परसि दोऊ, एक पलक दिखियत नहिं न्यारी॥
ज्यों दर्पन में नैन, नैन में नैन सहित दर्पन दिखवारी।
श्रीभट जोट कि अति छवि ऊपर तन मन धन न्योछावर डारी॥
जु. स. सु. ६.

श्री हरिव्यास देवाचार्य ने महावाणी ग्रन्थ में श्री राधातत्त्व का विशद वर्णन किया है। श्रीराधा कृष्ण के गूढ़ भाव से सम्बन्ध रखने वाला सहज सुख का पहला पद इस प्रकार है—

सहज सुख रङ्ग की रुचिर जोरी।
अतिहि अद्भुत, कहूँ नाहिं देखी सुनी, सकल गुन कला कौसल किसोरी ॥
एक ही द्वै जु द्वै एक ही दिपहिं दिन किहिं साँचे निपुनई करि सुढोरी।
श्री हरि प्रिया दरस हित दोय तन दर्सत एक तन एक मन दो री ॥

वास्तव में यह सहज सुख की एक अद्भुत जोड़ी है। ऐसी जोड़ी कहीं देखी सुनी नहीं। सम्पूर्ण गुण, कला और कौशल की राशि है। एक ही ज्योति दम्पति रूप से दो रूप में है इसलिये दोनों एक ही हैं। उनके तन, मन और इच्छा आदि एक ही हैं। श्याम सुन्दर आनन्द स्वरूप हैं तथा श्रीराधा उस आनन्द का आह्लाद हैं। श्यामसुन्दर उस आह्लाद का आनन्द रूप हैं। इसप्रकार बीज-वृक्ष की भाँति इन दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। यह युगल तभी नित्य है—

एक स्वरूप सदा द्वै नाम।
आनन्द के अह्लादिनि स्यामा, अह्लादिनि के आनन्द स्याम ॥
सदा सर्वदा जुगल एक तन एक जुगल तन बिलसत धाम।
श्री हरि प्रिया निरन्तर नित प्रति काम रूप अद्भुत अभिराम ॥

महावाणी, सिद्धान्त सुख २६

श्री राधा की अंशकला रूप लक्ष्मी-रुक्मिणी आदि हैं। श्रीराधा, श्रीकृष्ण की साक्षात् आत्मा हैं। श्री हरिव्यास देवाचार्य ने अपने महावाणी के प्रारम्भ में ही अपने मूल सिद्धान्त को प्रकट किया है—

राधां कृष्णस्वरूपां वै कृष्णं राधा स्वरूपिणम्।
कलात्मानं निकुञ्जस्थं गुरुरूपं सदाऽऽश्रये ॥

अग के पाँचों प्रकरणों (सुखों) में इसी का विशद रूप से समर्थन हुआ है। श्रीराधा और श्रीकृष्ण में पूर्ण रूपेण साम्य है। इस युगल जोड़ी के तो 'एक तन एक मन एक दोरी', 'एक प्राण द्वै गात', तथा 'एक स्वरूप सदा द्वै नाम' हैं। जिस प्रकार एक मन दो पदार्थों में रहने वाला 'द्वित्व' सम्बन्ध भेद से प्रत्येक में रहता है किन्तु उसकी पूर्ति दो में ही होती है। वह दो पदार्थों का युगल द्वित्वावच्छिन्न रूप से एकता में भी परिणित हो जाता है। इसी प्रकार श्रीराधा-कृष्ण युगल में सर्वेश्वरत्व, परमात्मत्व, ब्रह्मत्व और भगवत्त्व की पूर्त्ति होती है। जिस प्रकार शक्ति के बिना शक्तिमान्, अंगों के बिना अंगी और आत्मा के बिना कायव्यूह का अस्तित्व असम्भव है उसी प्रकार श्रीराधा के बिना श्रीकृष्ण की स्थिति असम्भव है।

चैतन्य सम्प्रदाय में राधा का स्वरूप—

श्री रूप गोस्वामी ने प्रेम की बड़ी मनोवैज्ञानिक व्याख्या की है। उनका कथन है कि प्रेम विभिन्न क्रमों में होता हुआ विशुद्ध रूप में आविर्भूत होता है। इन भावनाओं की क्रमबद्ध शृंखला इस प्रकार हैं—स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव तथा महाभाव।

१—स्नेह—जब प्रेम घनीभूत दशा में पहुँच प्रभावशाली हो जाता है और हृदय पिघलने लगता है तो उसे स्नेह कहते हैं।

२—मान—इसमें प्रेम परिवर्द्धन एवं विकास को प्राप्त होता है। जब स्नेह विकास की ऊर्ध्वगामी दिशा में उपभोग के माधुर्य को बढ़ाने और पुष्ट करने के लिये औदासीन्य की भावना को प्राप्त होता है तब मान कहाता है। यह मान क्रोध न होकर क्रोध के समान प्रतीयमान होता है।

३—प्रणय—जब प्रेमी प्रेमिका के साथ तादात्म्य अनुभव करता है तब प्रणय होता है। इसमें एक दूसरे के साथ पूर्ण ऐक्य स्थापित हो जाता है।

४—राग—जब प्रेमी के हृदय में प्रेमपात्र के लिए नाना यातनाएँ सहने पर भी आनन्द की उपलब्धि होती है, उसे न खेद होता है न स्नेह, तब वह स्नेह राग कहलाता है।

५—अनुराग—राग के पश्चात् होने वाली मानस वृत्ति को अनुराग कहते हैं। इस दशा में प्रेमी प्रेमपात्र के रूप में, व्यवहार, और आचरण में नवीन माधुर्य प्राप्त करता है।

६—भाव—भाव का विकास प्रेम कहलाता है। भाव-साधना करते हुए स्वतः ही प्रेम का आविर्भाव होता है। प्रेम के बिना भगवान् का अपरोक्ष दर्शन नहीं होता। प्रेम के दो तत्त्व है—आश्रय तथा विषय। साधक या भक्त आश्रय है और विषय स्वयं भगवान् हैं। भाव के उदय के साथ ही आश्रय तत्त्व की अभिव्यक्ति होती है। प्रेम के उदयके अभाव में विषयतत्त्व की अभिव्यक्ति नहीं होती। भाव और प्रेम में विशेष अन्तर नहीं है। अपक्व दशा में भाव और पक्व दशा में प्रेम होता है।

७—महाभाव—यही भाव घनीभूत, प्रबुद्ध तथा परिपक्व होने पर प्रेमा कहलाता है जिसे महाभाव भी कहते हैं।

कृष्णप्रेम के उत्पन्न होने के साधन इस प्रकार है १—श्रद्धा २—साधु सङ्ग ३—भजन क्रिया ४—अनर्थ निवृत्ति ५—निष्ठा ६—रुचि ७—आसक्ति ८—भाव ९—प्रेमा। सर्व प्रथम श्रद्धा उत्पन्न होती है। फिर साधु का समागम होता है। फिर भजन

की क्रिया आरम्भ होती है जिससे भक्तों के अनर्थ का निवारण हो जाता है। फिर निष्ठा उत्पन्न होती है जिसमें अत्यन्त उत्साह के साथ भजन का सन्तत सेवन और अनुष्ठान होता है जिसे रुचि कहते हैं। फिर दृढ़ गम्भीर स्नेह उत्पन्न होता है जिसे आसक्ति कहते हैं। तब शुद्ध सत्व का रूप धारण करने वाला मानस भाव उत्पन्न होता है। तदुपरान्त प्रेमा का उदय होता है जिसकी समता सूर्य से दी जाती है। इस महाभाव के चित्त में उत्पन्न होने पर साधक का चित्त आह्लाद से प्रफुल्लित हो उठता है। प्रेमा के 'महाभाव' कहने का तात्पर्य यह है कि सांसारिक रति तो भावरूपा होती है परन्तु श्रीकृष्णविषया रति महान भाव (या स्थायी भाव) बनने की अधिकारिणी है।

जिस साधक के हृदय में भाव अंकुरित होते हैं उसके कुछ बाह्य चिह्न (अर्थात अनुभाव) दिखाई देते हैं जो उसके हृदय की स्थिति के परिचायक हैं। ये चिह्न इस प्रकार हैं—१–चित्त की शान्ति दशा २–श्रीकृष्ण को छोड़कर अन्य विषय में समय न बिताना ३–सांसारिक विषयों के प्रति वैराग्य ४-अभिमान से विरहित होना ५–श्रीकृष्ण की कृपा पाने की आशा ६–तीव्र अभिलाषा ७–भगवान् के कीर्तन में सदा अभिरुचि रखना ८–श्रीकृष्ण के गुणों के कीर्तन में आसक्ति ९–श्रीकृष्ण के निवास वाले स्थानों में प्रेम रखना। भाव के अंकुरित होने पर इसी प्रकार अन्य चिह्न साधक में दृष्टिगोचर होते हैं।[1] महाभाव के भीतर भी अनेक स्तर हैं जिनमें दो प्रमुख हैं। एक भाव है–हे श्रीकृष्ण ! तुम मेरे ही हो। तुम्हारी चाह मुझे छोड़कर अन्य किसी के लिए नहीं है। दूसरा भाव है—हे कृष्ण तेरा ही मैं हूं। तुझे छोड़कर मेरा कोई भी नहीं है। इसमें प्रथम ललिता भाव है और दूसरा राधा भाव है। महाभाव की चरम दशा ही राधा है। राधा श्रीकृष्ण के सौख्य के लिये अपना सर्वस्व-समर्पण करने वाली विशुद्ध प्रेम-मूर्ति है।

श्रीकृष्ण की तीन मुख्य शक्तियां—भगवान् अचिन्त्याकार अनन्त शक्तियों से युक्त हैं। इन शक्तियों का पूर्णतम विकास तथा अभिव्यक्ति जिस मूलतत्व में होती है, वह 'भगवान्' नाम से अभिहित होता है। श्रीकृष्ण की उनमें से तीन शक्तियाँ प्रधान हैं—चित्शक्ति, जीवशक्ति और मायाशक्ति जिनको अन्तरङ्गा, तटस्था और बहिरङ्गा भी कहते हैं। चैतन्य चरितामृत में आया है—

---

१. क्षान्तिरव्यर्थकालत्वं विरक्तिमनिशून्यता ।
आशाबन्धः समुत्कण्ठा नामगाने सदा रुचिः ॥
आसक्तिस्तद्‌गुणाख्याने प्रीतिस्तद् वसति स्थले ।
इत्यादयोऽनुभावाः स्युर्जातभावाङ्कुरे जने ॥ –भक्ति रसामृत सिन्धु

कृष्णेर अनन्त शक्ति ताते तिन, प्रधान।
चिच्छक्ति, माया शक्ति, जीव शक्ति नाम।
अन्तरंगा, बहिरंगा तटस्था कहि जारे।
अन्तरंगा स्वरूपशक्ति-सभार उपरे।[1]

श्रीकृष्ण चित् स्वरूप हैं। उनकी चित्-स्वरूप चिच्छक्ति सदा श्रीकृष्ण स्वरूप में ही बसी होने के कारण स्वरूप शक्ति भी कही जाती है। इसी शक्ति के सहारे लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण अन्तरङ्ग लीला करते हैं इसलिए वह अन्तरङ्गा भी कहलाती है। श्रीकृष्ण की जीव शक्ति के अनन्त जीव अंश हैं। जीवशक्ति अन्तरङ्गा चिच्छक्ति और बहिरङ्गा माया शक्ति किसी के अन्तर्गत न होकर दोनों से भिन्न होने के कारण तटस्था कहलाती है। यह भगवान् तथा माया के बीच में वर्तमान होती है। दोनों शक्तियों से पृथक् होने पर भी उसे दोनों में ही प्रवेश का अधिकार है। जीव को जगत् से बाँधने वाली शक्ति माया-शक्ति कहलाती है। जीव माया के द्वारा नियम्य होता है तथा उसके द्वारा मोहित होता है। माया के द्वारा अविद्यमान भी संसार सत् की भाँति प्रतीत होता है। प्राकृत ब्रह्माण्ड और जड़ जगत की उत्पत्ति माया शक्ति से हुई है। श्रीकृष्ण की शक्ति होने पर भी अचिन्त्य शक्ति के प्रभाव के कारण माया उनके पास पहुँच नहीं सकती। श्रीकृष्ण तथा उनके धाम परिकरादि से दूर बसी रहने के कारण माया शक्ति बहिरङ्गा शक्ति कहलाती है।

स्वरूप शक्ति के तीन प्रकार—अन्तरङ्ग शक्ति भगवद्रूपिणी है। भगवान् श्रीकृष्ण सत्, चित् तथा आनन्द स्वरूप हैं तदनुसार उनकी स्वरूप शक्ति की तीन प्रधान वृत्तियाँ हैं—सन्धिनी, सम्वित तथा ह्लादिनी।[2]

१—संधिनी—सतअंश की शक्ति संधिनी आधार शक्ति है। इसके बल पर भगवान् स्वयं सत्ता धारण करते, दूसरों को सत्ता प्रदान करते और समस्त देशकाल तथा द्रव्यों में व्याप्त रहते हैं।[3]

---

१. चैतन्य चरितामृत, २-८-११६-११७

२. सच्चित् आनन्दमय कृष्णेर स्वरूप। अतएव स्वरूप शक्ति हयतिन रूप॥
आनन्दांशे ह्लादिनी, सदंशे सन्धिनी। चिदंशे संवित् जारे ज्ञान करिमानि॥
चैतन्य चरितामृत २-८-११८-११९

३. सदात्मापि य यासत्तां धत्ते ददाति च सा सर्वदेशकालद्रव्यव्याप्ति-हेतुः संधिनी शक्तिः—बलदेव विद्याभूषण—सिद्धान्तरत्न, पृ. ३९

२—संवित्—भगवान् स्वयं चिदात्मा हैं। चित् अंश की शक्ति संवित् ज्ञान शक्ति है। इसी शक्ति के आधार पर वह स्वयं अपने को जानते और दूसरों को ज्ञान प्रदान करते हैं।

३—ह्लादिनी—भगवान् आनन्द रूप हैं। आनन्दांश की शक्ति ह्लादिनी आनन्द शक्ति है। इसके कारण भगवान् स्वयं आनन्द का अनुभव करते हैं तथा दूसरों को आनन्द प्रदान करते हैं।

भक्ति ग्रन्थों में वैदूर्य मणि का दृष्टान्त इस सम्बन्ध में दिया जाता है। जिस प्रकार एक ही वैदूर्य मणि भिन्न भिन्न समयों में नील पीत आदि त्रिविध रूप धारण करती है उसी प्रकार त्रिविध रूपों में विभक्त होकर एक विद्या पराशक्ति-त्रिविध रूपों में विभक्त होकर तीन रूपों को धारण करती है।

रति के भेद—श्रीकृष्ण के प्रति हृदय में उल्लास के मात्राधिक्य को व्यंजित करने वाली 'प्रीति' ही रति कहलाती है। भक्त आश्रय है और भगवान् विषय है। भक्त भगवान् के सान्निध्य में आकर अपनी इच्छा की पूर्ति चाहता है। वह अपने हृदय में उल्लास तथा आनन्द चाहता है। वह अपना सुख तथा स्वार्थ चाहता है। इस स्वार्थयुक्त रति को साधारणी रति कहते हैं। कुब्जा इसका दृष्टान्त है। दूसरे प्रकार की रति में भक्त न अपनी इच्छा की पूर्ति चाहता है और न भगवान् की इच्छा का। वह कर्त्तव्य की भावना से प्रेरित होकर भगवान् के प्रेम में आसक्त होता है। वह उस साध्वी पतिव्रता के समान है जो पति कर्त्तव्य बुद्धि से अथवा धर्म बुद्धि से अपने पति की सेवा में लगी रहती है। इस रति को सामञ्जसा रति कहते हैं और इसके दृष्टान्त हैं रुक्मिणी, सत्यभामा आदि महिषीगण! तीसरे प्रकार की रति में भक्त अपने को पूर्णरूपेण समर्पित कर देता है। उसकी अपनी कोई इच्छा नहीं होती। वह भगवान् की इच्छा पूर्ति का सतत प्रयत्न करता है। उसका प्रत्येक कार्य भगवत्प्रसाद के लिये होता है। वह भगवान् को प्रसन्न करना, आह्लादित करना और उनके चित्त में आनन्द का संचार करना चाहता है। इसे समर्था रति कहते हैं और व्रज गोपिकायें इसकी उदाहरण हैं। साधारणी रति मणि के तुल्य, सामञ्जसा रति चिन्तामणि के समान और समर्था रति कौस्तुभ मणि के तुल्य है। व्रजगोपिकाओं की प्रीति उदात्ततम है क्योंकि एक तो वे श्रीकृष्ण के चरणारविन्द में अपने समग्र आचार व्यवहार का तथा धर्म-कर्म का पूर्ण समर्पण कर देती हैं और दूसरे उनके विरह में परम व्याकुलता है। भगवान् के भक्तों से उद्धव का दर्जा बहुत श्रेष्ठ है क्योंकि वे ज्ञानी भक्त के आदर्श हैं। किसी विशिष्ट वस्तु के लिए स्पृहा,

तदनुगत विषय की स्पृहा से संवलित ज्ञान विशेष को प्रीति कहते हैं। प्रीति का व्यवहार दो प्रकार से होता है—गौण वृत्ति से तथा मुख्य वृत्ति से।

श्रीराधा का स्वरूप—राधा का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है—आराधना करने वाली। ह्लादिनी का सार है प्रेम। प्रेम क्रमशः फलीभूत होते होते स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग भाव तथा महाभाव नाम को प्राप्त होता है। महाभाव मोदन और मादन भेद से दो प्रकार का है। महाभाव की चरमतम अपूर्व अवस्था का नाम है—'मादनाख्य' महाभाव अर्थात् प्रेम का परम सार मादनाख्य महाभाव है। इस मादनाख्य महाभाव की साक्षात् मूर्ति श्रीराधा जी है अर्थात् श्रीराधा जी मादनाख्य महाभाव की मूर्ति विग्रह हैं।[1] यह मादन महाभाव एक मात्र श्रीराधा में ही अभिव्यक्त है यहाँ तक कि स्वयं भगवान् कृष्ण में भी इसका प्रकाश नहीं है—

ह्लादिनी कराय कृष्णेर आनन्दास्वादन
ह्लादिनी द्वारा करे भक्तेर पोषण।
ह्लादिनी सार प्रेम प्रेम सार भाव
भावेर परमकाष्ठा नाम महाभाव।
महाभावरूपा श्री राधा ठकुरानी
सर्व गुण खानि कृष्णकान्ता शिरोमणि।

मध्यलीला के अष्टम अध्याय में है—

सेइ महाभाव हय चिन्तामणि सार।
कृष्ण वाञ्छा पूर्ण करे एइ कार्य तारे॥
महाभाव चिन्तामणि राधार स्वरूप।
ललितादि सखी तारे काय व्यूह॥

राधा विशुद्ध प्रेम की कल्पलतिका हैं। उनका प्रेम ऐसा है कि वह अपने प्रियतम के चरणों में अपने-आपको निछावर कर देता है। इसलिए राधा कृष्णमयी हैं उनके भीतर तथा बाहर सब जगह कृष्ण ही कृष्ण विराजमान है। उनकी अद्वैत भावना इतनी प्रौढ़ है कि जहाँ-जहाँ उनकी दृष्टि पड़ती है वहाँ वहाँ कृष्ण ही स्फुरित

---

१. कृष्ण के आह्लादे ताते नाम ह्लादिनी। सेइ शक्ति द्वारे सुख आस्वादे आपनी॥
सुख रूप कृष्ण करे सुख आस्वादन। भक्त गणे सुख दिते ह्लादिनी कारन॥
ह्लादिनी सार अंश तार प्रेम नाम। आनन्द चिन्मय रस प्रेमेर आख्यान॥
प्रेमेर परम सार महाभाव जानी। सेइ महाभाव रूप राधा ठकुरानी॥
महाभाव चिन्तामणि राधा स्वरूप। ललितादिक सखी तार काय व्यूह रूप॥
चैतन्य चरितामृत २-८-१२०-१२४

होते हैं। श्रीराधा ही प्रेम की अधिष्ठात्री देवी नित्य नव किशोरी हैं। वे श्रीकृष्ण की प्रेम सेवा में रत रहती हैं। श्रीकृष्ण के मन में जब जैसी भावना जगती है तब ही राधा उसको पूर्ण करती हैं।[1] श्रीराधा गोविन्द के सर्वविध आनन्द को सम्पादित करती हैं। श्रीराधा अपने रूप-गुण से, सौन्दर्य माधुर्य से तथा विलास वैदग्ध्यादि से श्रीगोविन्द को सब प्रकार मोहित करती हैं श्रीराधा गोविन्द की सर्वस्व हैं। वे श्रीकृष्ण की कान्ताओं में सर्वश्रेष्ठ हैं।[2] श्रीकृष्ण की वाञ्छाओं को पूर्ण करना ही इनकी आराधना है अतएव पुराणों में इनका नाम 'राधिका' कहा गया है—

कृष्ण वाञ्छा-पूर्ति करे आराधने।
अतएव राधिका नाम पुराणे व्याख्याने ॥[3]

आनन्द घन श्रीकृष्ण की भाँति ही राधिका महाभाव घनस्वरूपा हैं। उनकी देहेन्द्रियादि सब कुछ घनीभूत महाभाव द्वारा गठित है।

श्रीराधा जी सर्वशक्ति गरीयसी एवं पूर्णशक्ति हैं—श्रीकृष्ण पूर्ण शक्तिमान है और श्री राधा पूर्ण शक्ति हैं। शक्ति एवं शक्तिमान में भेद भी हैं और अभेद भी। श्रीराधा जी और श्रीकृष्ण अभेद रूप से दोनों एक ही स्वरूप हैं लीला-रसास्वादन के लिये वे केवल दो स्वरूपों में अनादिकाल से विराजमान हैं। श्रीराधा जी ह्लादिनी के मूर्त्त विग्रह रूप से पृथक् स्वरूप में लीला रसास्वादन कराती हैं।

कृष्ण राधा के वशवर्ती—श्री राधिकाजी ने जगमोहन कृष्ण को मोह रखा है इसलिए वे सर्वेश्वरी हैं।[4] यह प्रेम एकांगी नहीं है। राधा-प्रेम के वश में होकर समस्त शक्ति-ऐश्वर्य माधुर्य के आधार पूर्णतम तत्त्व श्रीकृष्ण नाच रहे हैं—

पूर्णानन्दमय आमि, चिन्मय पूर्ण तत्त्व।
राधिकार प्रेमे आमाय कराय उन्मत्त ॥
ना जानि राधार प्रेमे आछे कतबल।
जो बले आमारे करे सर्वदा विह्वल ॥

---

१. कृष्ण के कराय श्याम रस-मधुपान।
निरन्तर पूर्ण करे कृष्णेर सर्वकाम ॥ चैतन्य चरितामृत, २-२-१४१

२. गोविन्द नन्दिनी राधा गोविन्द मोहिनी।
गोविन्द सर्वस्व सर्वकान्ता-शिरोमणि ॥ चैतन्य चरितामृत १-४-६१

३. चैतन्य चरितामृत १-४-७५

४. जगतमोहन कृष्ण-तोहार मोहिनी।
अतएव समस्तेर परा ठकुराणी ॥ चैतन्य चरितामृत १-४-८२

राधिकार प्रेम-गुरु, आमि शिष्य-नट ।
सदा आमा नाना सत्ये, नाचाय उद्भट् ।।[1]

श्रीराधा कृष्ण-गत जीवना हैं—भगवत् प्रेयसी गण का कभी भगवान् से व्यवधान नहीं होता क्योंकि वे महाशक्ति रूपा हैं और वे भगवद्धाम में अवस्थान करती हैं। भगवान् जब जैसी लीला करते हैं वैसी ही लीला का विस्तार अपने स्वामी की अनुगामिनी होकर करती हैं। वे श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी का अनुसंधान नहीं करतीं। इनके मुख में श्रीकृष्ण कथा, नेत्रों में श्रीकृष्ण छवि, नासिका में श्री कृष्णाङ्ग सुगन्ध तथा श्रवणों में श्रीकृष्ण की मधुरवंशी ध्वनि ही सर्वदा स्फुरित होती है।[2]

श्रीराधा मूल कान्ता शक्ति हैं—श्री राधिका और कृष्ण स्वरूपतः एक हैं परन्तु लीला रस पुष्टि के लिए श्रीराधा में प्रेम का सर्वातिशायी विकास है। श्रीकृष्ण जैसे अखण्ड रस रूप हैं श्री राधा वैसे ही अखण्ड रस वल्लभा हैं। जिस प्रकार श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं उसी प्रकार श्रीराधा स्वयं शक्ति स्वरूपा हैं एवं मूल कान्ता शक्ति हैं। वैकुण्ठ की लक्ष्मीगण, द्वारिका की महिषीगण और भगवत् स्वरूपों की कान्तागण श्रीराधा जी की अंश स्वरूपा हैं। जिस प्रकार श्रीकृष्ण की अनन्त रस वैचित्री एवं भाव वैचित्री की अनन्त भगवत् स्वरूपों की कान्ताएँ मूर्त्त रूपा हैं एवं सर्व शक्तियों की अधिष्ठात्री हैं। वे समस्त सौन्दर्य माधुर्य-कान्ति की मूल आधार हैं।[3] श्रीराधा को जीव गोस्वामी ने भी श्रीकृष्ण की स्वरूप शक्ति की

---

१. चैतन्य चरितामृत १-४-१०६-१०८।

२. कृष्ण-नाम-गुण-यश अवतंस काने ।
कृष्ण-नाम-गुण-यश प्रवाह वचने ।।
कृष्ण के कराय श्याम रस-मधुपान ।
निरन्तर पूर्ण करे कृष्णेर सर्वकाम ।।
कृष्णेर विशुद्ध प्रेम-रत्नेर-आकर ।
अनुपम गुण-गण पूर्ण कलेवर ।।
कृष्णमयी कृष्ण यार भीतरे वाहिरे।
यांता यांता नेत्र पड़े तांता कृष्ण स्फुरे ।। चैतन्य चरितामृत १-४-७३

३. ....कृष्णेर षड्विध ऐश्वर्य ।
तार अधिष्ठात्री शक्ति - सर्व्वशक्तिवर्य्य ।
सर्व्व - सौन्दर्य - कान्ति वैषये जाहाते ।
सर्व्व लक्ष्मी गणेर शोभा हय जांहा हैते ।। चैतन्य चरितामृत १-४-७८—७९

मूर्ति विग्रह और समस्त गुणों तथा सम्प्रदायों की अधिष्ठात्री माना है।[1] दूसरी कान्ताओं का विस्तार इसी कृष्ण-कान्ता-शिरोमणि राधिका से हुआ है। कृष्ण-कान्ताएँ तीन प्रकार की हैं—लक्ष्मीगण, महिषीगण तथा ललितादि व्रजंगनागण। उनके स्वरूप का विवरण इस प्रकार है—

लक्ष्मीगण तोर वैभव विलासांश रूप।
महिषीगण वैभव प्रकाश स्वरूप।
आकार-स्वभाव भेदे व्रज देवीगण।
काय व्यूह रूप तोर रसेर कारण॥[2]

रस का उल्लास बहुकान्ता में होता है इसलिए राधिका कृष्ण को अनन्त विचित्रलीला रसस्वादन तीन प्रकार के बहुकान्ता के रूप में कराती है।

श्रीराधा कृष्ण से अभिन्न हैं—श्री राधा कृष्ण अभेद रूप से एक ही स्वरूप एक ही आत्मा हैं केवल लीला रस के आस्वादन के लिये दो रूप धारण करते हैं। रमण के लिये दो की अपेक्षा रहती है इसलिये भगवान् ने अपने दो रूप धारण कर लिये श्रीकृष्ण तथा राधा, राधा पूर्ण शक्ति है और कृष्ण पूर्ण शक्तिमान् हैं। दोनों में किसी प्रकार का भेद नहीं है। जिस प्रकार कस्तूरी और उसकी गन्ध में तथा अग्नि और उसकी ज्वाला में किसी प्रकार का भेद नहीं है उसी प्रकार राधा और कृष्ण का सम्बन्ध अविच्छेद्य है—

राधा पूर्ण शक्ति कृष्ण पूर्ण शक्तिमान्।
दुइ वस्तु भेद नाहि शास्त्र परमाण॥
मृगमद, तार गन्ध-जैछे अविच्छेद।
अग्नि-ज्वालाते जैछे नाहि कभु भेद॥
राधा कृष्ण ऐछे सदा एकइ स्वरूप।
लीला रस आस्वादिते धरे दुइ रूप॥[3]

श्रीराधा में चरम प्रेम की अभिव्यक्ति भी लीला रस की पुष्टि के लिए ही है। कृष्णमयी राधा में आत्म सुख की इच्छा नहीं, प्राण प्रिय श्रीकृष्ण को सुखी करने के लिए ही वे प्रेम क्रीडा में विभोर हैं।

---

१. परमानन्द रूपे तस्मिन् गुणादिसम्पल्लक्षणानन्त-शक्ति वृत्तिका स्वरूप शक्तिः द्विधा विराजते तदनन्तरे ऽनभिव्यक्त निजूर्मतित्वेन तद्बहिरप्यभिव्यक्त लक्ष्म्याख्यमूर्तित्वेन। इयं च मूर्त्तिमती सती सर्व्वगुण सम्पदधिष्ठात्री भवति। प्रीति सन्दर्भः १२०.

२. चैतन्य चरितामृत

३. चैतन्य चरितामृत १-४-८४-८५

प्रेम का स्वरूप—श्रीकृष्ण और राधा दोनों के शरीर और आत्मा की जब अभिन्नता का ज्ञान होता है तभी प्रकृत प्रेम उत्पन्न होता है और ऐसी दशा महाभाव में ही हो सकती है। श्रीराधा स्वयं महाभाव स्वरूपा हैं इसलिए उनके और श्रीकृष्ण के विलास में पुरुष स्त्री भेद का ज्ञान ही नहीं रहता। दोनों एक रूप हो जाते हैं।

राधा कृष्ण की युगल उपासना—श्रीकृष्ण परम-स्वतन्त्र पुरुष हैं परन्तु वे प्रेम के वशीभूत हैं। जिस भक्त में प्रेम का जितना विकास होता है श्रीकृष्ण उनके उतने ही वश में होते हैं। श्रीराधा में प्रेम का सर्वाधिक विकास होने के कारण श्रीकृष्ण उनके सर्वाधिक वश्य हैं। राधिकादि गोपियाँ जाति-कुल-शील-स्वजन-परिजन सबको तिलांजलि दे श्रीकृष्ण सेवा में रत रहती हैं। ऐसे निष्काम प्रेम का प्रतिदान श्रीकृष्ण भी नहीं दे सकते इसलिए वे उनके चिर ऋणी हैं।[1] श्रीराधा सर्वगोपी श्रेष्ठा हैं और उनका प्रेम भी सर्वाधिक है। राधा के प्रेम से श्रीकृष्ण के माधुर्य का विकास होने के कारण महाभाव स्वरूपा श्री राधा जब उनके साथ रहती हैं तो श्रीकृष्ण में माधुर्य का इतना अधिक प्रकाश होता है कि मदन तक मोहित हो जाता है। वैष्णव आचार्यों ने इसलिये राधा कृष्ण की युगल उपासना को ही परम साध्यवस्तु और श्रीराधा कृष्ण तत्त्व को ही समस्त तत्त्वों का सार माना है।

चैतन्य सम्प्रदाय में राधा और कृष्ण को अभिन्न एक स्वरूप कहा गया है। राधा का प्रेम 'साध्य-शिरोमणि' कहा गया है परन्तु उसका पाना जीव के लिये कठिन है। राधा का यह प्रेम किसी साधन का फल न होकर 'सर्व साध्य शिरोमणि' है। यह नित्य लीला है। गौड़ीय वैष्णव भक्त कवियों ने सखी भाव से ही इस नित्य-लीला का आस्वादन किया है—

सखीर स्वभाव एक अकथ्य कथन।
कृष्ण सह निज लीलाय नाह सखीर मन।
कृष्ण सह राधिकार जे लीला कराय।
निज केलि हैते ताहे कोटि सुख पाय।[2]

चैतन्य महाप्रभु में राधा भाव की भक्ति देखने को मिलती है उन्होंने स्वयं राधा-भाव से भक्ति की थी। उनका हृदय अपने प्रियतम कृष्ण से मिलन के लिये आतुर रहता था। श्रीकृष्ण प्रेम लीला के विषय स्वरूप हैं और श्री राधिका आश्रय

---

1. एइ प्रेमेर अनुरूप ना पारे भजिते।
अतएव ऋणी हय-कहे भागवते॥ चैतन्य चरितामृत २-८-७०-७१
2. चैतन्य चरितामृत, २-८-१६७-१६८.

स्वरूपा हैं। इन विषयाश्रय के अवलम्बन से गोलोक-वृन्दावन में होने वाली नित्य लीला में राधा के परिमण्डल में ही सखियाँ आवृत्ता सी दिखाई देती हैं। चैतन्य सम्प्रदाय में परकीया भाव की प्रधानता है। राधा सर्वशक्ति गरीयसी हैं। उनका श्रीकृष्ण प्रेम सर्वातिशायी होने के कारण भगवान् श्रीकृष्ण भी उनके पराधीन हैं।

राधा का परकीया भाव—चैतन्य सम्प्रदाय में राधा को परकीया के रूप में स्वीकार किया गया है। जीव गोस्वामी ने अपने षट्सन्दर्भ में इस मत की मीमांसा की है। इससे प्रतीत होता है कि तब तक राधा का परकीयावाद सर्वथा प्रतिष्ठित नहीं हो पाया था। वे राधा को स्वकीया मानने के पक्ष में थे। श्रीकृष्ण के प्रति उनके हृदय में स्वाभाविक आसक्ति थी। विशुद्ध प्रेम की इस प्रतिभा को स्वकीया मानना चाहिये परन्तु परकीया-भाव का अभिप्राय लीलावाद से है। राधा अप्रकट लीला में श्री व्रजनन्दन की परम स्वकीया है।[1] वही वन-वृन्दावन की प्रकट लीला में विलास की विचित्रता के लिए, विहार में नूतनता लाने के लिए अनेक कारणों से परकीया के रूप में वर्णित हुई है। जीवगोस्वामी का यह मत उभय पक्ष स्वकीयावाद तथा परकीयावाद में एक सतुलन है। परन्तु यह निर्विवाद है कि बाद में राधा परकीया के रूप में प्रतिष्ठित हुई। उनके मतानुसार गोपाल लीला में स्वकीया ही परम सत्य है। परकीया मायिक है जिसे कृष्ण की योगमाया प्रकट वृन्दावन लीला में इस परकीया-भाव का विस्तार करती है। जीवगोस्वामी ने इस मायिक परकीयावाद को भी एक गौरव की वस्तु माना है। लौकिक नायक और अलौकिक नायिका भेद तात्विक है। परकीया सामाजिक आदर्श से हीन होने के कारण लोक में गर्हित मानी जाती है परन्तु श्रीकृष्ण के प्रति यह भाव गर्हित एवं निन्दनीय नहीं है। गोपियों के पति का सद्भाव व्यावहारिक दृष्टि से है पारमार्थिक दृष्टि से तथा तथा तथ्य-दृष्टि से गोपियाँ श्रीकृष्ण की स्वरूप शक्तियाँ थीं। इसलिये शक्तिमान कृष्ण ही उनके पति थे। चैतन्य चरितामृत के लेखक कृष्णदास कविराज का नाम राधा को विशुद्ध परकीया मानने वालों में सर्वप्रथम आता है। कृष्णदास जीवगोस्वामी के समकालीन थे। पण्डित विश्वनाथ ने दार्शनिक दृष्टि से प्रकट तथा अप्रकट उभय लीलाओं में राधा के परकीया-भाव को सिद्ध करने की चेष्टा की है। यदुनन्दनदास ने यह दिखलाने की चेष्टा की है कि जीव गोस्वामी का भी परकीयावाद मुख्य तात्पर्य था। कुछ भी हो बाद में यह भाव इतना प्रतिष्ठित हो गया कि चैतन्य-सम्प्रदाय में राधा का यही परकीया-भाव सर्वतोभावेन मान्य तथा

1. अथ वस्तुतः परमस्वीया अपि प्रकटलीलायां परकीयमाणाः व्रजदेव्यः। या एव अस्मोर्ध्वं स्तुताः। —प्रीतिसन्दर्भ, पृ० ८४१

प्रामाणिक हो गया। कृष्णदास कविराज ने चैतन्य चरितामृत में कान्ता प्रेम के उत्कृष्ट तम रूप *परकीया रति को स्थिर किया है। व्रज की गोपवधुओं में परकीया* भाव निरन्तर विद्यमान है और राधा-भाव में इसकी परमावधि है —

परकीया भावे अति रसेर उल्लास।
व्रज विना इहार अन्यत्र नाहि वास ॥
व्रजवधू गणेर एइ भाव निरवधि।
तार मध्ये श्रीराधार भावेर अवधि ॥

आदि लीला, चतुर्थ परिच्छेद

परकीया भाव की भक्ति को चैतन्य महाप्रभु ने इसलिये स्वीकार किया कि इसमें रस का सर्वाधिक उल्लास है।

हरिदासी सम्प्रदाय में राधा का स्वरूप—

स्वामी हरिदासजी ने राधा कृष्ण की युगल उपासना का सखी भाव से प्रचार किया। स्वामी हरिदासजी ने निकुंज विहारी विहारिणी को ही अपना आराध्य माना है। उनकी 'केलि माल' क्रीड़ा की माला है। हरिदासजी के स्वामी श्री वृन्दावन नव निकुंज मन्दिर में निरन्तर नित्य विहार करने वाली श्री श्यामा हैं। इससे प्रतीत होता है कि आपकी केलिमाल की लीला में व्रज की लीलाओं से भिन्न सभी निकुंज लीलायें हैं। प्रेम में यहाँ सखियों का प्रेम युगल सरकार के प्रेम से भी ऊँचा है। उनके राधिका और कृष्ण व्रज विहारी नहीं निकुंज विहारी हैं। उनका प्रेम विशुद्ध और उज्ज्वल है जिसमें न काम है, न मल है और न मैथुन है—

"नित्य दिव्य देह विहरत बन माँहीं।
इनके मन मैथुन कुछ नांहीं ॥"[1]

कोटि कोटि मन्मथ जिनके स्वरूप को देखकर मूर्छित हो जाते हैं वे श्रीकृष्ण काम के वश नहीं अपितु उज्ज्वल प्रेम के वशीभूत है। रसिकों का जीवन युगल किशोर की लीला ही है।[2]

स्वामी हरिदासजी रसिक शिरोमणि कहे जाते हैं। स्वामीजी के रस सिद्धान्त अथवा रसोपासना के भाष्यकार श्री स्वामी विहारिनदेवजी हुए जो कि स्वामी विट्ठल विपुलदेव जी के शिष्य थे। उनका कथन है कि श्रीराधाजी का न तो जन्म होता है और न अन्तर्धान ही—

---

१. स्वामी विहारिनदेव जी प्रथम चौबोला
२. रस रसिकन को रजपान है रसहि भोजन भोग। —श्री ललित किशोरीदेव जी

जामें मरै न वीछरै रूठै नहिं कहुँ जाइ ।
विहारिदास भयो लाडिलो ता लाड़िलीहि लड़ाइ ॥

अर्थात् जिस रसदेश में न स्वामिनीजी का प्राकट्य होता है, न अन्तर्हित लीला होती है न रूठना है, न वृन्दावन निकुंज लीलाओं के अतिरिक्त अन्य लीलाओं में जिनका गमन है ऐसी हमारी स्वामिनी है। उनके लाड़ लड़ाई के मैं भी लाड़ला हो रहा हूँ।

स्वामी विहारिनदेव जी ने श्री स्वामिनीजी के स्वरूप के सम्बन्ध में लिखा है—

कोऊ साधारण कोऊ व्यभिचारी।
कोऊ अनन्य धरे व्रत भारी।

अर्थात् प्रथम साधारण स्वकीया है द्वितीय व्यभिचारी परकीया है और तृतीय वे हैं जिनका अनन्य व्रत है; जो स्वकीया, परकीया दोनों से भिन्न निकुंज विहारिणी है। विहारिनदेव जी उनको ही अपना उपास्य आराध्य मानते हैं। उन्होंने अपने उपास्य की ओर स्पष्ट रूप से निर्देश करते हुए लिखा है—

जैसे दारु द्रव करिआरी। खंड खंड पाखंड विदारी॥
राजवंस रस राज सभारी। सुष वरजत श्री हरिदास दुलारी॥
वृन्दावन रस सिन्धु अपारी। सकल धाम धामी अवतारी॥
विपुल विनोदनि पर वलिहारी। श्रीविहारी विहारिनदास तुम्हारी॥[1]

हरिदासी सम्प्रदाय में स्वकीया और परकीया से रहित श्री वृन्दावन नित्य निकुंजेश्वरी श्रीराधा को आराध्य माना है। वे नित्य निकुंज में सतत विराज रही हैं। भगवत रसिकजी ने इस भावना का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है—

कोउ स्वकीया कोउ परकीया, कल्प कियो मतवादि।
जोरी भगवत रसिक की, नित्य अनन्त अनादि॥
नित्य अनन्त अनादि लोक ते रीति विलक्षण।
श्रुति स्मृति विलगाय देख अनुभव के लक्षण॥
सहज प्रेम माधुर्य रहत अनुरागे दोऊ।
ललिता सखी प्रसाद विना तहाँ जात न कोऊ॥

वे इतनी सुकुमार है कि उनके लिए बोलना भी भार स्वरूप है—

कोऊ गोवर थापनो कोऊ धोवै पाय।
कोऊ सुहागिल लाड़िली वोलत हू अलसाय॥

---

१. श्री विशेश्वर शरणजी, विहारीजी का वगीचा, वृन्दावन के संग्रहालय की सं. १८१८ की प्रति से उद्धृत, चौ. १४, १५।

वे नित्य विहारिणी हैं। श्री वृन्दावन में वे सदा विहार करती हैं। वे जन्म नहीं लेती। हरिदासी सम्प्रदाय में श्रीराधा और श्रीकृष्ण जी को समान ही बताया है। दोनों ही एक प्रेम के दो स्वरूप हैं—

मेरे नित्य किसोर अजन्माँ। विहरत एक प्रान द्वै तनमाँ।।
कुंज कुटी क्रीड़त छिन छिन मां। संतत बसत वन घन मां।।[1]

हरिदासी सम्प्रदाय की राधा की कोई बराबरी नहीं कर सकता। बिहारिनदेव जी का कथन है—

को सरि करै हमारी राधा।
जदपि नाम महातम सेवत और वैस या रस मैं बाधा।।[2]

श्रीस्वामी हरिदासजी की इष्ट देवी श्रीराधा न स्वकीया है और न परकीया। उनके राधा कृष्ण दोनों एक ही तत्त्व हैं। भिन्नत्व होते हुए भी दोनों में समत्व है। एक होते हुए भी दोनों युग्म हैं और युग्म होते हुए भी दोनों एक हैं। दोनों में समान सौन्दर्य, समान चातुर्य, समान गुण गरिमा, समान ऐश्वर्य, समान वयस तथा समान ही क्रिया कलाप हैं। इस अनन्य रसात्मक प्रेमासक्ति के आश्रय श्यामा-श्याम की निकुंज क्रीड़ा सर्वदा से चलती आई है और चलती रहेगी। वे दोनों स्वयं सहज रूप हैं। श्रीराधा और कृष्ण की जोड़ी पहले भी थी अब भी है और भविष्य में भी रहेगी। दोनों की किशोर वयस है। दोनों का सौन्दर्य घन-दामिनी के समान हैं। स्वामी हरिदासजी केलिमाल में लिखते हैं—

माई री सहज जोरी प्रगट भई रंग की गोर श्याम घन दामिनी जैसे।
प्रथम हूँ हुती आज हू आगे हूँ रहिहैं न टरिहैं तैसें।
अङ्ग अङ्ग की उजराई सुघराई चतुराई सुन्दरता ऐसें।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा, कुन्ज विहारी सम वैस वैसे।[3]

श्रीराधा और कृष्ण का नित्य समान स्वरूप है। किशोर किशोरी का प्रेम नित्य एक रस और सहज है। प्रिया के समस्त लीला विलास प्रियतम के हेतु हैं प्रियतम भी वही करता है जिसमें प्रिया को सुख प्राप्त हो।

श्रीराधा का स्वरूप परमोज्ज्वल है। उनमें असीम गुणों का विकास है। उनकी सभी विलक्षणता, सुलक्षणता है। श्रीराधा जी के स्वरूप को देखकर देवाङ्ग-नाएं तक मोहित हो जाती हैं। श्रीराधा का ऐश्वर्य महान् है। उनका सौन्दर्य

१. विश्वेश्वर शरणजी के संग्रहालय की प्रति से, पृ. ३३, चौबोला ४४।
२. वही पृ. १२३ पद ३८।
३. केलि माल—स्वामी हरिदास

महान् है।[१] श्रीराधा की शोभा अगाध है। करोड़ों ब्रह्माण्ड भी राधिका की यश श्री से परिपूर्ण है। स्वामी हरिदासजी की राधा उपासना; सम्प्रदायवाद से परे की वस्तु है। हरिदासजी ने राधा की उपासना को अलौकिकता से भी उठाकर अगम्य गति तक पहुंचा दिया है। यहाँ पर अपूर्व तन्मयता, एक रूपता और समानता है इसलिये इस तत्त्व को समझना कठिन है। श्रीस्वामी जी की परमोज्ज्वल भावना, लोक-परलोक की गति और कमनीय कामना यह है कि, "वह अखिल ब्रह्माण्ड में न किसी अन्य को देखें, न अन्य को जानें, न किसी को स्नेह करें। उनका बस प्यारे की भावनी श्रीराधा और भावती के प्यारे श्रीकुंज विहारी से ही घनिष्ट सम्बंध हो। वे क्षण भर को भी इधर उधर न होवें, उनके नेत्र निशिवासर सर्वदा इसी युगल छवि पर लगे रहें। उनका मन एक रस होकर भी श्यामा कुंज विहारी की नित्य निकुंज केलि क्रीड़ा में लगा रहे।"[२]

इस सम्प्रदाय की राधा न ब्रज में रहती है, न कृष्ण के मुरली बजाने पर उनके साथ रहती है यह निकुंज में नित्य विहार करने वाली राधा है जिन्हें स्वामी हरिदास सहचरी रूप से दुलराते हैं। इनका न जन्म होता है, न आयु में परिवर्तन अपितु ये सदा एक रस ही विहार करती हैं—

एक राधा ब्रज में बसै एक राधा रास विलास।
तीजी राधा कुंज में दुलरावै हरिदास।।
राधा नाम विभाग करि समुझो रसिक सुजान।
जनम कर्म जाको नहीं इक रस वैस समान।।
भावै तो राधा कहो भावे कुंज विहारिनि नाम।
नाम वस्तु अभेद हैं लीला भेद परिणाम।।[३]

---

१. सूनीं सब देखि देखि।
जच्छ किन्नर नाग लोग, देवस्त्रि रहीं भुवि लेखि लेखि।
कहत परस्पर नारि नारि सों, यह सौन्दर्यता अवरेखि रेखि।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा, कैसेहुँ चितवै ये परेखि परेखि।
—केलिमाल, स्वामी हरिदास

२. ऐसे ही देखत रहौं जनम सुफल करि मानौं।
प्यारे की भांवती के प्यारे, जुगल किशोरहि जानौं।
छिन न टरौं पल होंउ न इत उत, रहौं एक ही तानौं।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा, श्री कुंज विहारी मन रानौं।
—केलिमाल, स्वामी हरिदास

३. स्वामी ललित किशोरीदेव, सिद्धान्त की साखी।

श्रीराधा सब सुख की सार एवं अतुलित रूप गुणवती हैं। स्वामिनी के सम्मुख कृष्ण सदा आधीन रहते हैं—

सुप कौं सार समूह किशोरी।
रूपनिधान रङ्ग कौ सागर परम विचित्र महा मति भोरी।
छिन छिन लाल करत आधीनी सदाई प्रसन्न रहौ तुम गोरी।
श्रीकुंज विहरिनि ललित लाड़िली तुम बिन और कहाँ मेरें कोरी।[1]

जिन लाड़िलीजी की कृपा स्वयं लाल चाहते हैं उनका क्या कहना। वे उनके रूप-सागर में मग्न है—

विहारिनि संग निरन्तर मेरें।
जाकी कृपा लाल रहैं वंछित जीवत याही हेरें।
निकसि न सकत रूप-सागर तें परे प्रेम रस फेरें।
ऐसी ललित किशोरी प्रीतम कहा जगत के डेरें॥[2]

लाल सदा लाड़िली का रुख देखते रहते हैं और लाड़िली उन्हें स्नेह से पोषित करती रहती हैं—

कुंज विहारिनि लाड़िली छिन छिन पोषत भाव।
लियें सुभाव सदा रहै रसिक सिरोमनि राव॥ २८६॥
कुंज विहारिनि लाड़िली परम उदार कृपाल।
पोषत तोषत लाल कौं रसिक सिरोमनि बाल॥ १५२॥[3]

परम सुकुमार किशोर याचक हैं और विहारिणि उन्हें कृपा पूर्वक रति का दान देती है। वे लालन को लाड़ लड़ाती हैं।[4] प्रीति का सागर अथाह है। अतः परम चतुर विदग्ध प्रिया कृष्ण को समय समय पर उचित परिमाण में ही रस-पान कराती हैं। इन दोनों की प्रकृति से सहचरी भी पूर्ण परिचित हैं। वे सदा लाड़िली से प्रार्थना करती हैं कि आप लाल पर कृपा करें क्यों कि वे तुम्हारे प्रेम के बिना क्षणभर भी नहीं रह सकते —

श्री हरिदास के लाड़िले नित कुंज विहारी।
रंग केलि विहरत रहैं हित आनन्दकारी॥

---

१. स्वामी ललित किशोरीदेव, रस के पद २०।
२. स्वामी ललित किशोरीदेव, सिद्धान्त के पद ३५।
३. स्वामी ललित किशोरीदेव, सिद्धान्त के दोहा।
४. स्वामी विहारिणि दास, सिद्धान्त के सवैया।

कृपा कीजिए लाल पै हे प्रान पियारी।
दासि विहारिनि सुख लहै यह प्रीति तिहारी ॥ ५ ॥[1]

नित्य विहारिणी ही इस रस में प्रधान हैं। वे आलम्बन हैं और कृष्ण की आश्रय—

भोगी स्याम भोग है प्यारी। पोषत प्राण लाल हितकारी।
स्वामिनि सब सुख पूरण दानि। पियकी जीवन रसिक निधानि ॥[2]

स्वयं कृष्ण भी सदा उनके ध्यान में मग्न रहते हैं। जब भी क्षण भर को भी उनका साहचर्य सुख प्राप्त नहीं होता वे अति व्याकुल हो जाते हैं। जैसे ही वे फिर कृपा कर सम्मुख आती हैं तो ये हर्षित हो जाते हैं। वे सदा प्रिया की मनुहार करते हैं—

नील लाल गौर के ध्यान बैठे कुंज विहारी।
ज्यों ज्यों सुख पावत नांहि, त्यों त्यों दुख भयौ भारी।
अरबराए प्रगट भई जू सुख भयौ बहुत हियारी।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंज विहारी करि मनुहारी ॥२८॥[3]

श्रीकृष्ण में यह सुघराई उनकी शरण में आने के कारण आई है। प्रियाजी के सम्मुख उनका बड़प्पन तुच्छ ठहराता है इसलिये वे प्रीति पूर्वक सदैव राधा के मुख की ओर ही निहारते हैं—

सुघर भये विहारी याही छांह ते।
जे जे गही सुघर वर जानपने की ते ते याही बांह ते।
हुते तो बड़े अधिक सब ही ते पै इनकी करु न खटात याह ते।
श्री हरिदास के स्वामी श्यामा कुंज विहारी जकि रहे चाहते ॥२४॥[4]

स्वामिनी ही सबकी उपास्य हैं। सब के ठाकुर श्रीकृष्ण हैं परन्तु उनकी भी ठाकुर है ठकुरायन श्रीराधा। श्रीकृष्ण भी जिन राधा के चरणों पर गिरकर अपने को धन्य मानते हैं वे श्री राधिका ही वास्तव में उपास्य है—

मान दान दे प्रान प्रिया पति रति जाचत पर ताप दुरावत।
निजु रस रीति प्रतीति प्रगट करि धन्य जन्म मानत पर पावन ॥
कर कंकन दर्पन देखहु न श्री विहारीदास लहै मन भावन।
सब ठाकुर को ठाकुर हरि ता ठाकुर को ठाकुर ठकुरायन ॥११६॥[5]

---

१. स्वामी ललित किशोरीदेव, रस के पद।
२. केलिमाल २८ —स्वामी हरिदास
३. केलिमाल २४ —स्वामी हरिदास
४. केलिमाल—स्वामी हरिदास
५. ,, ,,

हरिदास का कथन है कि कुंज विहारिन रानी का स्थान ब्रजराज से भी ऊपर है। रस की घनघोर घटा के बरसने पर रस की बाढ़ में एक लाड़ली ही सावधान रहती है इसलिये वे सर्वोपरि हैं—

अंबर संभर वासव सैं घुमड़ी घन घोर घटा घहरानी।
जद्यपि कूलकरारनि ढाहत आनि बहै पुतुही तर पानीं।
श्री विहारिनिदास उपासत यौं निनैं करि हरिदास बषानी।
सबं परजा बृजराज हू लौं सर्वोपरि कुंज विहारिनि रानी ॥११०॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि लाड़िलीजी प्रधान उपास्य हैं। डा० गोपालदत्त शर्मा का कथन है "इस प्रकार नवल लाड़ली श्रीराधा ही भक्तों की उपास्य हैं। वही विहारीजी की रति की आलम्बन हैं। वे निकुंज मन्दिर की स्वामिनी हैं। नित्य विहार में सुख की दाता हैं तथा लाल एवं सखियों का स्नेह के रस से पोषण करने वाली हैं। स्वामी हरिदासजी से लेकर आज पर्यन्त सभी महानुभावों की वाणियों में यही तथ्य बार बार प्रकट किया गया है। यों श्यामा-श्याम दोनों ही भक्तों के उपास्य हैं किन्तु रस के क्षेत्र में प्रधान उपास्य निकुंज विहारिणि श्रीराधा ही हैं।"[1]

राधावल्लभ सम्प्रदाय में राधा का स्वरूप—

राधावल्लभ सम्प्रदाय विशुद्ध रस मार्गी सिद्धान्त है, जिसमें विशुद्ध प्रेम ही परमतत्व के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। यह प्रेम तत्त्व ही अनेक रूपों में विद्यमान है। वही जीव रूप है वही विभु रूप है। इस परमतत्त्व का अभिधान 'हित' है। यह हित ही परमात्मा है और प्रेम ही परमात्मा है। नित्य विहार केलि में व्यापक प्रेम ही चार रूपों में व्याप्त है—युगल रूप राधा और कृष्ण, श्री वृन्दावन और सहचरीगण। विशुद्ध प्रेम को ही हित कहते हैं। श्री राधावल्लभ लाल के नित्य मिलन में वियोग की कल्पना तक नहीं है और न इसमें प्रेम की क्षीणता है। हितहरिवंशजी ने अपने ग्रन्थों में जो राधा के स्वरूप का निर्धारण किया है उसे ,सार रूप' कहा है। जिस दिव्य वस्तु को 'नेति नेति' कहा जाता है और अनिर्वचनीय स्थिर किया गया है उसे ही हरिवंशजी ने 'राधा' तत्त्व कहा है। राधावल्लभ सम्प्रदाय में युगल उपासना का महत्त्व है। इसमें कृष्ण की अपेक्षा राधा की भक्ति को ही ग्रहण किया है। कृष्ण की अपेक्षा श्रीराधा रानी की पूजा तथा भक्ति को इन्होंने अधिक महत्व शालिनी तथा शीघ्र फल दायिनी बताया है। इस मार्ग में

---

१. स्वामी हरिदासजी का सम्प्रदाय और उसका वाणी साहित्य.
—डा० गोपालदत्त शर्मा, पृ.३०७

कृष्ण की अपेक्षा राधा का ही गौरव सम्मान तथा भजन अधिक है। इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक श्रीहरिवंश जी नित्य विहारिणी श्रीराधा को ही अपना इष्ट मानते हैं। इनका कथन है—

प्रेम्णः सन्मधुरोज्ज्वलस्य हृदयं शृङ्गार लीलाकला-
वैचित्री-परमावधिर्भगवतः पूज्यैव कापीशता।
ईशानी च शची महासुख तनुः शक्तिः स्वतन्त्रा परा।
श्री वृन्दावननाथ-पट्टमहिषी राधैव सेव्या मम ॥[1]

अर्थात् जो मधुर और उज्ज्वल प्रेम की प्राण स्वरूपा, शृङ्गार लीला की विचित्र कलाओं की परम अवधि, भगवान् श्रीकृष्ण की आराधनीया कोई अनिर्वचनीया शासन-कर्त्री हैं। जो ईश्वर रूप श्रीकृष्ण की शची हैं तथा परम सुखमय वपु-धारिणी परा और स्वतन्त्रा शक्ति हैं। वे वृन्दावननाथ श्रीलाल जी की पट्टरानी श्री राधा ही मेरी सेव्या-आराधनीया हैं।

अन्य वैष्णव सम्प्रदायों में कृष्ण ही परमतत्त्व हैं और राधा उनकी स्वरूप अथवा आह्लादिनी शक्ति हैं परन्तु राधावल्लभ-सम्प्रदाय में राधा को परमतत्त्व माना गया है। कृष्ण की अपेक्षा राधा का पद नितान्त श्रेष्ठ है श्रीकृष्ण भी राधा की चरण सेवा को अपने जीवन का प्रधान लक्ष्य मानते हैं।

राधा-दास्यमपास्य यः प्रयतते गोविन्दसङ्गाशया
सो य पूर्णसुधारुचेः परिचयं राकां विना कांक्षति।
किञ्च श्याम रति-प्रवाह लहरी बीजं न ये तां विदु-
स्ते प्राप्यापि महामृताम्बुधिमहो बिन्दुं परं प्राप्नुयुः ॥[2]

आशय है कि जो लोग राधाजी के चरणों का सेवन छोड़कर गोविन्द के संग लाभ की चेष्टा करते हैं, वे तो मानों पूर्णिमा तिथि के बिना ही पूर्ण चन्द्रमा का परिचय प्राप्त करना चाहते हैं। वे यह नहीं जानते कि श्यामसुन्दर के रति प्रवाह की लहरियों का बीज यही श्री राधाजी हैं। आश्चर्य है कि ऐसा न जानने से ही वे अमृत का महान् समुद्र पाकर भी उनमें से केवल एक बूंद मात्र ही ग्रहण कर पाते हैं। अभिप्राय यह है कि राधाचरण की सेवा कृष्ण की प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है। राधा का गौरव कृष्ण से अधिक है।

श्रीमद्राधा सुधानिधि के 'रसकुल्या' टीकाकार श्रीहरिलाल व्यासजी श्रीराधा का स्वरूप बताते हुए श्री हितार्चायपाद की वन्दना करते हुए लिखते हैं—

---

१. राधा सुधानिधि हितहरिवंश, श्लोक ७८
२. राधा सुधानिधि हितहरिवंश, श्लोक ७९

"राधैवेष्टं सम्प्रदायैक कर्ताऽऽचार्यो राधा मन्त्रदः सद्गुरुश्च ।
मन्त्रो राधा यस्य सर्वात्मनैवं वन्दे राधापाद पद्म प्रधानम् ॥"

श्रीराधिका जी इस सम्प्रदाय में इष्ट हैं, सम्प्रदाय की आदिकर्त्री हैं, आचार्या हैं, मन्त्रदात्री गुरु हैं तथा वे ही मन्त्र हैं। राधा का यही रूप राधावल्लभ-सम्प्रदाय में सर्वदा अभीष्ट है।

राधा सम्बन्धी यह मान्यता राधावल्लभ सम्प्रदाय की अपनी देन है। राधा के इस स्वरूप की उपासना को 'रसोपासना' शब्द से व्यवहृत किया गया है। राधा वल्लभ सम्प्रदाय में आलम्बन श्री कृष्ण न होकर श्री राधा हैं। राधा का उपासना करने वाला ही सच्चा रसिक है। यह रसिक समाज स्वसुख से सर्वदा रहित होता है। रसिक वर्ग जिस भाव का चिन्तन अपने मन में करता है वही उपास्य तत्त्व कहा जाता है। प्रिया-प्रियतम की रति क्रीड़ा को सम्पन्न कराने में योग देना, निकुंज रन्ध्रों में से दर्शन करके तृप्त होना और उसका निरन्तर चिन्तन करना ही उपास्य भाव है जो सहचरी को ही सुलभ होता है। राधा की समस्त चेष्टायें माधव को रिझाने और प्रसन्न करने में हैं तथा माधव राधा के प्रमोद और आनन्द की चेष्टा करते हैं। इस मत का प्रेम सम्बन्धी सिद्धान्त है कि आत्म विसर्जन के बाद ही दूसरे की तुष्टी संभव है। श्री हितहरिवंश जी ने 'हित चौरासी' के प्रथम पद में इस सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए बताया है कि राधा कृष्ण एक ही प्रेम तत्त्व के विग्रह हैं। क्रीड़ा या विलास के लिये दो रूप धारण कर लेते हैं। जब यथार्थ में राधा कृष्ण एक ही तत्त्व के दो दृश्यमान रूप हैं तो एक दूसरे को प्रसन्न प्रमुदित करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

जो सखी अनदिन राधा उच्चारण करती है उसके चरणों में कोटि २ सिद्धियाँ लोटती रहती हैं —

अनुल्लिख्यानन्तानपि सदयराधान्मधुपति-
र्महाप्रेमाविष्टस्तव परमदेयं विमृशति।
नवैकं श्रीराधे गृणत इह नामामृत रसं
महिम्नः कः सीमां स्पृशति तव दास्यैक मनसाम् ॥[1]

राधा नाम का सकीर्तन पर-विद्या की कोटि में परिगणित किया जाता है। कालिन्दी तट के निभृत निकुंज मन्दिर में विराजमान होकर भगवान् कृष्ण स्वयं योगीन्द्रों के समान राधा की चरण ज्योति के ध्यान में लीन हो राधा नाम का जप करते हैं। भक्त, देवता और साधक राधा नाम के जप से सब प्रकार के बन्धनों से

१. श्रीराधा सुधा निधि—हितहरिवंश, १५४

छूटकर मुक्ति सुख प्राप्त करते हैं। राधा का नाम कोटि-कोटि मोक्ष-सुखों से बढ़कर आनन्द सुख की वर्षा करने वाला है।[1]

श्री हरिवंशजी ने राधा स्मरण के आगे श्रुति कथा को भी तुच्छ ठहराया है। उन्हें कैवल्य में भी भ्रम प्रतीत होता है। उनका कथन है कि यदि परम पुरुष भगवान् के भजन में उन्मत्त यदि कोई शुक आदि हैं तो रहने दो उनसे क्या प्रयोजन हमारा मन तो केवल श्रीराधा के पद-रस में ही डूबा रहे, यह अभिलाषा है। श्री हितहरिवंश जी नित्य विहार में लीन श्रीराधा का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

प्रेमानन्द-रसैक-वारिधि महा कल्लोलमालाकुला।
व्यालोलारुण लोचनाञ्चल चमत्कारेण सचिन्वती॥
किञ्चित् केलिकला महोत्सव महो वृन्दाटवी मन्दिरे।
नन्दत्यद्भुत काम वैभवमयी राधा जगन्मोहिनी॥[2]
वृन्दारण्य निकुञ्ज सीमनि नव प्रेमानुभाव भ्रम-
द्भ्रूभङ्गी लव मोहित व्रज मणिर्भक्तैक चिन्तामणिः।
सान्द्रानन्द रसामृत स्रवमणिः प्रोद्दाम विद्युल्लता
कोटि-ज्योतिरुदेति कापि रमणी चूडामणि र्मोहिनी॥[3]

राधावल्लभ सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण भी दिव्य किशोरी राधा के चरणों में विलुंठित होकर कृतकृत्य मानते हैं इसलिए अनिर्वचनीय इष्ट या साध्य तत्त्व की स्थिति श्रीकृष्ण में न होकर राधा में है। श्री हितप्रभु की श्रीराधा संपूर्णतया भाव-स्वरूपा है किन्तु यह भाव नित्य प्रगट है। राधा-सुधा-निधि में श्रीराधा को 'परम रहस्य', 'पुंजीभूत रसामृत', 'प्रेमानन्द-घनाकृति', 'निखिल निगमागम अगोचर' आदि कहा है। श्रीराधा में 'प्रेमोल्लास की सीमा', परम-रस चमत्कार-वैचित्र्य की सीमा, सौन्दर्य की सीमा, नवीन रूप लावण्य की सीमा, लीला-माधुर्य की सीमा, वात्सल्य की सीमा और रतिकला-केलि माधुर्य की सीमायें आकर मिली हैं।[4] इनके स्वरूप का निर्माण 'लावण्य के सार', सुख के सार, कारुण्य के सार, मधुर छवि-रूप के सार, चातुर्य के सार, रति-केलि-विलास के सार और सम्पूर्ण सारों के सार से हुआ है।[5] श्री हित हरिवंश सच्चे युगल उपासक हैं और युगल में समान रस की

१. श्रीराधा सुधा निधि —हितहरिवंश, ६४-६६
२. ,, ,, —हितहरिवंश, ६६
३. ,, ,, —हितहरिवंश, ७०
४. ,, ,, —हितहरिवंश, १३०
५. ,, ,, —हितहरिवंश, २५

स्थिति मानते हैं। उनके अनुसार श्रीराधा की प्रधानता का अर्थ श्रीकृष्ण की गौणता नहीं है। राधा सुधा-निधि में श्रीकृष्ण से वे उनकी प्रियतमा के चरणों में स्थिति मांगते हैं और श्रीराधा से उनके प्राणनाथ में रति की भावना करते हैं।[1]

पुराणादि ग्रन्थों तथा अन्य साम्प्रदायिक वाणियों में राधा को कृष्ण की आराधिका बताया गया है। राधा का जैसा महत्व, स्वरूप, स्थान और पद राधा-वल्लभ सम्प्रदाय में स्थापित किया गया है वैसा अन्यत्र कहीं नहीं हुआ। यहाँ राधा कृष्णाराध्या हैं। श्रीराधा श्याम सुन्दर के रति प्रवाह की लहरियों की बीज हैं। इस सम्प्रदाय में राधा रानी ही महाशक्ति और स्वामिनी हैं। भगवान् कृष्ण उनके आज्ञानुवर्ती हैं। श्री हितहरिवंश जी ने राधा को ही प्रधान मानने और कृष्ण का ध्यान उनके बाद में करने की बात कही है—

श्री हित जू की रति कोऊ लाखनि में एक जाने।
राधहि प्रधान माने पाछे कृष्ण ध्याइये॥

श्रीराधिका जी ही वृन्दावन के अनन्त प्रेम की विचित्र लीला में प्रवेश करने का एक मात्र उपाय है। इनकी कृपा के विना सारा प्रेम रहस्य अगम्य है। राधा वल्लभगण के लिये तरणी के समान हैं। इस सम्प्रदाय में राधा का प्राधान्य रूप स्वीकार किया गया है। इस सम्प्रदाय में राधिका को आनन्द का सिन्धु कहा है—

हित समुद्र हरिवंश जू चित-समुद्र घनश्याम।
आनन्द सिन्धु श्री राधिका भाव सु सेवक नाम॥[2]

डा० विजयेन्द्र स्नातक का राधा के सम्बन्ध में कथन है, "आस्तिक दर्शनों में जिस प्रकार भगवान् को सच्चिदानन्द-स्वरूप मानकर उसकी शक्ति का वर्णन किया जाता है और कतिपय वैष्णव सम्प्रदायों में उसी सच्चिदानन्द ब्रह्म की 'ह्लादिनी शक्ति' का राधा नाम से व्यवहार किया जाता है, वैसा 'शक्ति' और शक्तिमान् का भेद इस सम्प्रदाय में नहीं है। यहाँ तो राधा स्वयं आनन्द स्वरूप है। निरतिशय आनन्द का नाम ही राधा है। राधा नित्य भाव है। उनका विहार भी नित्य है, रास भी नित्य है। यह भाव किसी बाह्य लौकिक कर्म, ज्ञानादि से अवगत नहीं होता; अतः इसे ज्ञानकर्मादि स्पर्श शून्य कहते हैं। केवल प्रेम भाव, हितभाव ही राधा के स्वरूप-ज्ञान का मार्ग है, वह स्वयं राधा-भाव का ही नाम है। वह श्रीकृष्ण की उपासिका आराधिका नहीं, वरन् श्रीकृष्ण की उपास्या हैं। वैसे दोनों क्रीड़ा के लिए प्रिया-प्रियतम रूप हैं, श्रीकृष्ण की एक राधा है और राधा के एक कृष्ण।

१. श्रीराधा सुधा निधि—हितहरिवंश, १११
२. सिद्धान्त मुक्तावली, दोहा ५५

यहाँ न कोई साधक है न कोई साधना और न कोई साध्य है। दोनों ही 'श्रीतत्त्व' के रूप हैं। दोनों एक हैं और एक होकर ही दो बने हुए हैं। परस्पर तत्सुखिभाव से रसास्वादन के लिए नित्य प्रेम लीला करते हैं, विहार करते हैं और उसी में लीन हैं। उनका साम्राज्य ही विचित्र है। कामना-वासना-विहीन नित्य विहार में लीन रहने वाली राधा इस सम्प्रदाय में सर्वोपरि विराजमान हैं।"[1]

राधावल्लभ सम्प्रदाय की इष्ट-आराध्या हरि आराधनीया राधा ही हैं सहचरी रूप जीवात्मा की प्रबल कामना उसी के रूप दर्शन की कामना है। इस सम्प्रदाय में कृष्ण को 'परतत्त्व' न मानकर राधा को परतत्त्व रूप में माना गया है इसलिये राधा की तुलना में कृष्ण का स्थान कम महत्त्वपूर्ण है। श्रीकृष्ण राधा की चाटुकारी और स्तुति करते हैं। इस सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण को परतत्त्व न मानकर राधा को ही परात्पर तत्व माना है।

राधावल्लभ सम्प्रदाय में लौकिक दृष्टि से राधा स्वकीया हैं परन्तु राधा-कृष्ण के नित्य विहार स्थिति में स्वकीया परकीया भाव निर्विशेष है। परकीया भाव तो वहाँ एक पल भी नहीं ठहरता। स्वकीया भाव के सम्बन्ध में भी इनकी मान्यता विलक्षण है। राधा सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र अधिष्ठातृ देवी है। उनकी सत्ता स्वकीया-परकीया से परे स्वतन्त्र रूप में है। डा० विजयेन्द्र स्नातक का राधा के सम्बन्ध में अभिमत है, "संक्षेप में हितहरिवंश जी की आराध्या इष्टदेवी राधा परात्पर तत्व श्रीकृष्ण की भी आराध्या हैं तथा अन्य आचार्यों द्वारा वर्णित राधा से भिन्न एवं स्वतन्त्र है। वह एक साधारण गोपी नहीं वरन् रस की अधिष्ठात्री एवं प्रेम मूर्ति है। वह वृषभानु के घर में कृपा परवश प्रकट होती तो है। किन्तु उनकी चरणरज ब्रह्मेश्वरादि दुर्लभ तथा सर्वार्थ सार सिद्धिदायी है। इनके अंग अंग से उज्ज्वल प्रेम रस का तथा लावण्य कृपापूर्ण वात्सल्य सार का अम्बुधि प्रवाहित होता रहता है। ये माधुर्य साम्राज्य की एक मात्र भूमि और रसकी एक मात्र सीमा है। ये राधा वेदों से भी परम गुप्त अनुपम निधि है। इनके पदनख की छटा की एक किरण से घनीभूत प्रेमामृत समुद्र की अजस्र धारा प्रवाहित होती रहती है। इनकी चरण-कृपा से मुक्ति तुच्छ हो जाती है और समस्त विभव प्राकृत से हो जाते हैं।"[2]

श्री हितहरिवंश ने हित-चौरासी में राधा का वर्णन विभिन्न स्थितियों के आधार पर किया है। 'हित चौरासी' और स्फुट वाणी के भी अधिकांश पद राधा-वर्णन से सम्बन्ध रखते हैं जिनको डा० विजयेन्द्र स्नातक ने तीन भागों में विभक्त किया

---

१. राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य—डा. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. २१०-२११
२.   ,,   ,,   ,,   —डा. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. २१६

है।[1] प्रथम भाग में वे पद आते हैं जिनका सम्बन्ध राधा के नेत्र, वदन, कपोल, वक्षस्थल, अधर, नाभि, चरण आदि विभिन्न अंगों की रूप छवि से है। दूसरे भाग में वे पद आते हैं जिनमें राधा की मनः स्थिति का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक शैली पर वर्णन हुआ है; तीसरे भाग में वे पद आते हैं जिनका सम्बन्ध नित्य विहार और रासलीला से है। हित चौरासी में राधा की रूप छवि का वर्णन करने वाले पद राधा के स्वरूप को प्रतिपादित करते हैं। कवि ने वाह्यरूप का आभास दिया है। राधा को सौन्दर्य की सीमा बताया है और उसके रूप की समता देवलोक भूलोक और रसातल में भी नहीं हो सकती।[2] वाह्य प्रसाधन एवं षोडश शृङ्गार से युक्त राधिका मदन को भी अपने भृकुटि विलास से जीतने वाली है।[3] राधा के नेत्रों की ज्योति और सौन्दर्य सामान्य न होकर असाधारण तेज दीप्ति और कान्ति से पूर्ण है। हित चौरासी में राधा की मनः स्थिति का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण एवं लौकिक शैली से राधा की मन:स्थिति का वर्णन हुआ है तथा प्रियतम के प्रति अमृत रस की वर्षा करने वाले भाव भी प्रकट हुए हैं।

राधावल्लभ सम्प्रदाय में श्रीराधा परमाराध्या इष्ट हैं और श्रीराधा चरणरति की प्रधानता होने से नाभादास ने भक्तमाल के छप्पय में श्री हिताचार्य महाप्रभु को 'राधाचरण प्रधान हृदय अति सुदृढ़ उपासी' कहा है। इस सम्प्रदाय के अनुसार श्रीराधा विषय और श्रीकृष्ण आश्रय हैं अर्थात् श्रीराधा श्रीकृष्ण की आराधिका न होकर परमाराध्या हैं। श्रीराधा और श्रीकृष्ण एक हित के दो स्वरूप हैं। उनमें पारस्परिक कोई भेद नहीं है। वृन्दावन में नित्य निभृत-निकुंज विहार में उन्मत्त रहने वाले प्रेम रस समुद्र के जल-तरङ्ग के समान दोनों एक हैं। चतुरासी जी में लिखा है—'जय श्री हित हरिवंश हंस हंसिनी सांवल गौर कहौ कौन करै जल तरङ्गनि न्यारे।' श्री ध्रुवदास ने कृष्ण व राधा को एक रस व हित की दो देह बताया है—

एक रङ्ग रुचि एक वय एकै भांति सनेह।
एकै सील सुभाव मृदु रस के हित दो देह॥ —रतिमंजरी

हितस्वरूपा जैसे श्रीराधा हैं उसी प्रकार श्रीकृष्ण भी हितस्वरूप हैं। हित के दोनों स्वरूप श्रीराधा-कृष्ण देखने में पृथक् हैं परन्तु वास्तव में एक रस हैं। इन दोनों में एक क्षण भी अन्तर नहीं दिखाई देता। इनके प्राण एक हैं और देह दो।

---

१. राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य—डा. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. २११
२. हित चौरासी, पद संख्या ५२
३. हित चौरासी, पद संख्या ६७

राधा के संग के बिना श्याम कभी नहीं रहते और श्याम के बिना राधा का नाम उच्चारण नहीं होता। श्री हरिवंश उनकी शृङ्गार-रति का गान इस प्रकार करते हैं—

श्री हरिवंश सुरीति सुनाऊ, श्यामाश्याम एक संग गाऊँ।
छिन इक कबहुँ न अंतर होई, प्राण सु एक देह हैं दोई॥
राधा सङ्ग बिना नहिं श्याम, श्याम बिना नहिं राधानाम।
छिन-छिन प्रति आराधत रहहीं, राधानाम श्याम तब कहहीं॥
ललितादिकनि संग सचु पावें, श्री हरिवंश सुरत-रति गावें।[1]

वे अति प्रेमासक्त होने के कारण कभी पृथक् और कभी एक हो जाते हैं। हित का यह स्वरूप ही है कि हित (प्रेम) अकेले नहीं हो सकता इस हेतु हित के ये दो रूप श्रीराधा तथा कृष्ण हैं। वे अति प्रेमाधिक्य के कारण पृथक् हो भी नहीं सकते। वे दोनों परस्पर कभी प्रिया-प्रियतम और प्रियतम प्रिय बनते रहते हैं—

प्रेम रासि दोऊ रसिक बर, एक बैस रस एक।
निमिष न छूटत अंग अंग यहै दुहुँन कैं टेक॥
अद्भुत रुचि सखि प्रेम की सहज परस्पर होइ।
जैसे एक हि रँग सौं भरिये सीसी दोइ॥
स्याम रँग स्यामा रँगी स्यामा के रँग स्याम।
एक प्रान तन मन सहज कहिवे कौं दोउ नाम॥
कबहुँ लाड़िली होत प्रिय, लाल प्रिया ह्वै जात।
नहिं जानत यह प्रेम रस निसि दिन कहाँ बिहात॥

ध्रुवदास—रंगविहार

तथा—

एकै प्रेमी एक रस राधा वल्लभ आहि।
भूलि कहै कोउ और ठौं झूठौ जानौ ताहि॥ —श्रीध्रुवदास

ध्रुवदास ने दोनों की अभिन्नता के लिए बड़ा ही सुन्दर दृष्टान्त प्रस्तुत किया है—जैसे 'एक ही रङ्ग सों भरिए सीसी दोय' अर्थात् दो सीसियों में एक ही रङ्ग होने पर दोनों एक ही रूप की तथा एक ही रङ्ग की प्रतीत होती हैं उनमें किसी भी प्रकार का अन्तर अथवा वैभिन्न दृष्टि गोचर नहीं होता। राधा-कृष्ण भी इसी प्रकार से अभिन्न हैं। नागरीदास जी ने इसी तथ्य का विशद चित्रण इस प्रकार किया है—

१. श्री सेवकवाणी ४-७

गौर स्याम सीसीन में भरयौ नेह रस सार।
पिवत पिवावत परसपर कोउ न मानत हार।। —सुधर्म बोधिनी

श्रीराधा दास्य को ही सर्वस्व मान गोस्वामी श्री कृष्णचन्द्र ने उपसुधानिधि में श्रीराधा चरणारविन्द के प्रति अपनी अनन्य निष्ठा इस प्रकार दिखाई है—

सर्वे धर्मागमाधर्माः सर्वसाधुमसाधु मे।
न यत्र लभ्यते राधे त्वत्पदाम्बुज-माधुरी ।।[1]

इस सम्प्रदाय में श्रीराधा रानी ने श्री हिताचार्य को राधावल्लभीय सम्प्रदाय का मन्त्र दिया। इसी से वे उनकी गुरुरूपा एवं सम्प्रदाय की आचार्या हैं। श्रीहिताचार्य ने श्री राधावल्लभजी के स्वरूप के साथ श्रीराधा की प्रतिमा को स्थान न देकर उनकी गादी स्थापित की और गादी सेवा का विधान किया। श्री हितप्रभु ने श्रीराधा के अनिर्वचनीय स्वरूप को और श्रीराधा ने श्रीहित के दिव्य स्वरूप का प्राकट्य किया।

गौड़ीय सम्प्रदाय और पुष्टि सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण के चरणों में प्रधान रति रखकर राधा माधव की प्रेम लीला का आस्वादन किया जाता है फिर भी श्रीराधा का बड़ा उज्ज्वल स्वरूप प्रदर्शित हुआ है। राधावल्लभीय सम्प्रदाय में प्रधान रति श्री चरणों में की जाती है इसलिये श्रीराधा का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप इस सम्प्रदाय में प्रकाशित होता है। श्री हितहरिवंश के जीवन का लक्ष्य श्रीराधा के असाधारण—साधारण से भिन्न स्वरूप की प्रतिष्ठा करना था। उनकी राधा अपने अद्भुत प्रेम-रूप और गुणों के कारण श्रीकृष्णाराध्या और गुरु-रूपा है। वे सहज सुन्दरी हैं, उनका सर्वाङ्ग सहज शोभा से मन्डित है तथा उनका रूप भी सहज है। वे सहज आनन्द का वर्षण करने वाली मेघमाला हैं तथा सहज-रूप वृन्दावन की नित्य उदित चन्द्रिका हैं। उनकी नित्य नवल-केलि एवं प्रीति सहज है और सुख चैन भी सहज है उनके प्रत्येक अंग में सहज माधुर्य भरा है जो अवर्णनीय हैं—

सुभग सुन्दरी, सहज सिङ्गार शोभा सर्वाङ्ग प्रति, सहजरूप वृषभानु नंदिनी।
सहजानन्द कादंबिनी, सहज विपिन वर उदित चन्दनी।।
सहज केलि नित-नित नवल, सहज रंग सुख चैन।
सहज माधुरी अङ्ग प्रति सु मोपै कहत बनै न।।[2]

ललिताचरण गोस्वामी का कथन है कि नित्य प्रेम-विहार में राधा प्रेम-पात्र है, "हित प्रभु ने अपने प्रेम-सिद्धान्त की रचना इस प्रकार की है कि श्रीराधा के

---

१. श्रीराधा उपसुधा निधि, श्लोक ३६
२. सेवक वाणी ७–६

करने लगती हैं, दूसरे ही क्षण अत्यन्त कम्पित होने लगती हैं, और तीसरे क्षण हे श्याम, हे श्याम ऐसा प्रलाप करने लगती हैं और पुलकायमान होने लगती हैं। राधा के हृदय की दशा का मार्मिक अभिव्यंजन देखिये—

क्षणं सीत्कुर्वन्ती क्षणमथ महावेपथुमतीं,
क्षणं श्याम श्यामेत्यमुमभिलपयन्ती पुलकिता।
महाप्रेमा कापि प्रमदमदनोद्दाम-रसदा,
सदानन्दा मूर्तिजयति वृषभानोः कुलमणिः ॥[1]

साधक चाहता है कि वह रसकेलिनिमग्ना राधा की चरण सेवा में रत रहे। हितहरिवंश की साधना राधाचरण-प्रधान थी। उनका जीवन ही राधामय था। राधा के चरणारविन्दों में ही उनकी भक्ति विराजमान थी। इस सम्प्रदाय में राधा ही परात्पर तत्त्व है। हितहरिवंश की आराध्या इष्ट देवी राधा ही श्रीकृष्ण की भी आराध्या हैं। राधा वृन्दानिवासिनी एक साधारण गोपी न होकर प्रेम का एक अनुपम परिपूर्णतम सागर हैं। उनके अंग प्रत्यंग से नित्य प्रति उज्ज्वल अमृतरस टपकता है। वे प्रेम की एक पूर्ण महार्णव हैं। वे लावण्य का अनुपम समुद्र हैं तथा रस की एक मात्र अवधि हैं।[2] इस सम्प्रदाय के समस्त सिद्धान्त ग्रन्थ एक दो को छोड़कर हिन्दी में हैं।

इस सम्प्रदाय के अनुसार राधा की अनुकम्पा से ही कृष्ण की कृपा मिलने के कारण राधा की भक्ति का उच्चतम विधान है। कृष्ण की कृपा प्राप्त करने के लिये राधिकाजी का अनुग्रह अनिवार्य है। राधिका जी सम्पूर्ण तत्त्वों का सार हैं। कृष्ण ने भी राधा नाम की महिमा का पार पाने के लिये अनेक लीलायें की। गौड़ीय सम्प्रदाय में राधा का परकीया रूप से अनुमोदन हुआ है परन्तु राधावल्लभ सम्प्रदाय में राधा का स्वकीया रूप से अनुमोदन हुआ है। राधा वृन्दावन की रानी और कृष्ण उनके आज्ञानुवर्ती हैं उनका कभी वियोग नहीं होता। राधिका का स्वकीया रूप देखिए—

राधिका मोहन की प्यारी।
नख सिख रूप-अनूप गुन-सीमा, नागरी श्री वृषभानु दुलारी ॥
वृन्दाविपिन निकुंज भवन, तन, कोटि चन्द उजियारी।
नव-नव प्रीति प्रतीति रीति-रस-बस किये कुंज बिहारी ॥
सुभग सुहाग प्रेम रंग राचो, अंग-अंग स्याम सिंगारी।
'व्यास' स्वामिनी के पद नख पर, बलि-बलि जात रसिक नर-नारी ॥[3]

---

१. राधा सुधानिधि, श्लोक २०३।
२. राधा सुधानिधि, श्लोक १३५।
३. भक्त कवि व्यासजी—प्रभुदयाल मीतल, पद ३७१।

परन्तु हरिवंश महाप्रभु का कथन है कि परकीया तथा स्वकीया दोनों भाव अपूर्ण हैं। स्वकीया में मिलन है पर विरह नहीं। इसलिये स्वकीया-परकीया की भावना केवल एक देशीय तथा एकांगी है। वह प्रेम की पूर्णता वहाँ मानते हैं जहाँ स्वकीया तथा परकीया दोनों का बोध न होकर नित्य मिलन में भी विरह का सुख नित्य स्थित रहता हो। उनकी सम्मति में जिस प्रकार जल से तरङ्ग का पृथक् करण असम्भव है उसी प्रकार राधा से कृष्ण का।

आराधना के क्षेत्र में 'राधा-कृष्ण' का संयुक्त स्वरूप बहुत पहले से प्रचलित था परन्तु हितहरिवंश ने राधा को इष्टदेवी आराध्या देवी तथा उपास्य बना दिया। इस सम्प्रदाय में राधा ही उपास्य है। कृष्ण राधा के अनुषंग से, राधा के कृपा कटाक्ष से अपने को सफल मनोरथ बनाते हैं। कृष्ण भी राधा की पूजा करते हैं।

व्यासजी के निम्नलिखित पद में देखिये श्रीकृष्ण राधा की आराधना करते हुए किस प्रकार अधीन रहकर सुखानुभव करते हैं—

चाँपत चरन मोहनलाल।
पर्जक पौढ़ीं कुँवरि राधा नागरी नव बाल॥
लेत कर धरि परसि नैननि, हरषि लावत माल।
लाइ राखत हृदै सों, तब गनत भाग बिसाल॥
देख पिय की आधीनता भई, कृपासिंधु दयाल।
'व्यास' स्वामिनि लिए भुज भरि अति प्रवीन कृपाल॥[1]

भक्त की भावना में राधा पूज्य रहती है जो राधावल्लभ सम्प्रदाय की अपनी देन है।

वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय में राधा का स्वरूप—

ईसा की आठवीं शताब्दी में जिस समय बौद्ध धर्म का ह्रास हो रहा था, बौद्ध विहार राजनीति के अखाड़े बन गये थे, भिक्षु और भिक्षुणियों में व्यभिचार फैल गया था, तांत्रिक लोग शक्ति को अपना इष्ट मान शाक्त धर्म का प्रचार कर रहे थे, उसी समय सिद्धाचार्य लुइपाद ने सहजिया सम्प्रदाय की नींव डाली। पालवंश के समय में बौद्धमत के नष्ट होने के उपरान्त 'सेनवंश' में वैष्णव सहजिया मत प्रचलित हुआ। मुकन्ददास ने इसको नव रसिक-धर्म माना है। 'सहज' का अर्थ है सह (साथ-साथ) ज (उत्पन्न होने वाला धर्म) अर्थात् वह धर्म तथा गुण जो मनुष्य के जन्म के साथ ही उसके संग में उत्पन्न होता है। मनुष्य परमात्मा का ही रूप है तथा प्रेम ही आत्मा का सहज रूप है। परिणामतः साधक के हाथ में प्रेम ही वह महा महिमा-

---

१. भक्त कवि व्यासजी—प्रभुदयाल मीतल, पद ४१६।

शाली शक्ति है जो उसके व्यक्तित्व का विस्तार कर विश्व के प्राणिमात्र में उसका सामञ्जस्य स्थापित करती है। वही शक्ति भगवान् के साथ भी उस साधक की पूर्ण एकता स्थापित करती है। साधक के आध्यात्मिक जीवन में प्रेम ही सार है और यही प्रेम सहजतत्त्व है और इसे गौरव प्रदान करने वाला मत सहजिया नाम से अभिहित हुआ। सहजिया वैष्णव वैधी भक्ति के अनुयायी न होकर रागानुगा प्रेमा भक्ति के उपासक हैं। प्रेम को ही वे मानव-जीवन का सार्वभौम धर्म मानते हैं। वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय का आधार बौद्ध सहजयान की यौगिक क्रियायें थीं जो बौद्ध महायान के सिद्धान्तों अथवा हिन्दुओं के दर्शन पर अवलम्बित थीं। सहजिया मत में मनुष्य का समधिक महत्त्व है। मनुष्य के भीतर ही वह ज्योति जिसे हम कृष्ण कहते हैं सदा अपनी लीला दिखाती रहती है। शुद्ध सत्त्व में प्रतिष्ठित मानव ही सहजिया-मत में आदर्श मानव माना जाता है।

सहजवस्था का नाम 'महासुख' या सुखराज है जिसमें ज्ञाता, ज्ञेय तथा ज्ञान अथवा ग्राहक, ग्राह्य अथवा ग्रहण इस लोक प्रसिद्ध त्रिपुटी का सर्वथा अभाव हो जाता है। इस दशा में मन तथा प्राण का संचार नहीं होता क्योंकि वहाँ सूर्य तथा चन्द्र प्रवेश नहीं पा सकते। सूर्य तथा चन्द्र इडा पिंगलोगम आवर्त्तन शील कार्य चक्र का ही नामान्तार है। सहजावस्था में इन दोनों काल-नियामकों के प्रवेशाधिकार के निषेध का अभिप्राय है कि वह पद या अवस्थाकाल-जन्य आवर्त्तन के बाहर होने से नित्य है। इस दशा में आनन्द का उत्स प्रवाहित होने के कारण इसे 'सुखराज' अथवा महासुख कहते हैं। इस दशा को 'सहज कहते हैं। जिसकी प्राप्ति की सहजयानी कामना करता है। सहज मार्ग वैराग्य मार्ग न होकर राग मार्ग है जिससे मुक्ति की सिद्धि होती है।

सहज ज्ञान गुरु द्वारा प्राप्त होता है। इसके अनुसार इन्द्रियों का निरोध करना व्यर्थ, कठोर व्रत धारण करना अनावश्यक तथा पाप परिहार की चेष्टा व्यर्थ है। शरीर के सुख में मूर्छित होने पर, इन्द्रियों के शान्त होने पर, मन के भीतर प्रवेश करने पर और शरीर की सम्पूर्ण चेष्टायें निष्काम होने पर वह सच्चा सिद्धि प्राप्त सहजिया कहलाता है। उनके अनुसार काम-क्रोध, मद और लोभ भगवान् के चरणों में समर्पण कर देने पर शुभ फल प्रदाता हो जाते हैं। मनुष्य अपने हृदय में अवस्थित स्त्री की चाह और वासना के अवरोधन में असमर्थ होने पर उसका सदुपयोग कर सकता है। सिद्धावस्था प्राप्त करने के हेतु सहजिया को चार मास स्त्री के चरणों में पड़े रहकर उसका स्पर्श न करना चाहिये। कामवासना को मन में न रख कर चार महीने उसके बिस्तर पर सोना चाहिये जिससे उसके हृदय में रति, प्रेम, स्नेह, प्रणय, राग, अनुराग तथा महाभाव उत्पन्न होता है।

नरनारी के परस्पर मिलन भाव की एक धर्म साधना भारतवर्ष में बहुत पहले से ही प्रचलित थी, जिससे प्रभावित होकर ही वामाचारी तान्त्रिक साधना, बौद्ध तांत्रिक साधना तथा बौद्ध सहजिया साधना आदि का उद्भव हुआ। विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों के मूल में चरम सत्य एक अद्वय परमानन्द स्वरूप आनन्द-तत्त्व की प्राप्ति होती है। यह अद्वय तत्त्व ही मिथुन तत्त्व, यामल तत्त्व या युगल तत्व है जिसमें दोनों धारायें मिली हुई हैं। इसी को बौद्धों में युगवद्ध तत्त्व और तांत्रिकों में केवला: नन्द तत्त्व कहा है। इस अद्वय तत्त्व की शिव और शक्ति दो धारायें हैं। तांत्रिक इस शिव-शक्ति के मिलन-जनित केवलानन्द को ही परम साध्य मानते हैं। साधक शिव-शक्ति के तत्त्व को अपनी देह के अन्दर ही जाग्रत कर सामञ्जस्य-सुख या केवलानन्द का अनुभव करता है। इस शिव-शक्ति के तत्त्वों में एक नर-नारी की मिलन साधना भी है जिसके अनुसार शिव-शक्ति के नित्य तत्त्व ने स्थूल रूप से नर-नारियों का रूप पाया है और पुरुष शिव तत्त्व तथा नारी शक्ति तत्त्व है। पुरुष के प्रतितत्त्व में शिव का और नारी के प्रतितत्त्व में शक्ति का सूक्ष्म रूप से ही नहीं स्थूल रूप से भी विकास होता है। पुरुष जब अपने अन्दर के शिव तत्त्व को जाग्रत कर अपने को शिव के रूप में उपलब्ध कर नारी को शक्ति तत्त्व के रूप में अनुभव करता है और जब नारी अपने अन्दर के शक्ति तत्त्व को विकसित कर अपने को शक्ति रूप में और पुरुष को शिव के रूप में अनुभव करती है तो दोनों की स्थूल देह के प्रतितत्त्व में शिव-शक्ति के जागरण से जो मिलन होता है वह साधक-साधिका को पूर्ण-सामरस्य में पहुंचा देता है। इसी पूर्ण सामरस्य जनित असीम आनन्दानुभूति को तांत्रिक सामरस्य सुख, बौद्ध महासुख और वैष्णव महाभाव स्वरूप कहते हैं। बौद्ध तान्त्रिक और सहजिया साधना में शिव शक्ति के स्थान पर शून्यता करुणा-तत्त्व की मूर्ति भगवती-भगवान् या ब्रजेश्वरी-ब्रजेश्वर या 'प्रज्ञा और उपाय' को देखते हैं। उनका चरम लक्ष्य महासुख रूप प्रज्ञा या सहजानन्द की प्राप्ति है।

बौद्ध सहजिया सम्प्रदाय की इस योग साधना ने वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय के अन्दर प्रेम-साधना का रूप धारण किया। राधा-कृष्ण का अवलम्बन करने वाला वैष्णव धर्म वास्तव में प्रेम-धर्म है। शिव-शक्ति तथा प्रज्ञा-उपाय के स्थान पर वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय में राधा-कृष्ण को स्थान मिला। बौद्धों के जिस शिव-शक्ति मिलन जनित सामरस्य आनन्द स्वरूप को महासुख-स्वरूप कहा गया है वैष्णव सहजिया लोग उसे ही राधा-कृष्ण का प्रेम कहते हैं जिसकी चरमावस्था आनन्द में हैं और यह चरमावस्था प्राप्त करने [illegible] मार्ग प्रेम-मार्ग है।

होता है, सब कुछ लय होता है और सब कुछ स्थित होता है। यही सहज 'नित्य देश की वस्तु' और विश्व ब्रह्माण्ड का चरम सत्य है। यह 'वृन्दावन' और 'मनो-वृन्दावन' को पार कर 'नित्य वृन्दावन' की वस्तु है जो कि सहजिया लोगों का 'गुप्त चन्द्रपुर' है। इस गुप्त चन्द्रपुर में राधा-कृष्ण का नित्य विहार चलता है जिसके अन्दर से सहज रस की नित्य धारा प्रवाहित होती है और संसार के नर नारियों में प्रवाहित प्रेम रस-धारा के अन्दर भी उसी की अभिव्यंजना है। जीव नर-नारी को सांसारिक प्रेम तथा स्थूल दैहिक संयोग के अन्दर भी सहज-रस की धारा का उपभोग करते हैं। गुप्त चन्द्रपुर में होने वाली राधा-कृष्ण की नित्य-सहज लीला ही स्वरूप लीला है और स्त्री पुरुष के रूप में होने वाली जीव की लीला ही 'श्रीरूप' लीला है। प्राकृत जगत की श्रीरूप लीला अप्राकृत वृन्दावन की स्वरूप लीला का ही परिणत रूप है। राधा कृष्ण परमतत्त्व का आस्वादन वृन्दावन के गोपी-गोप के रूप में ही नहीं करते अपितु मनुष्य के अन्दर नर-नारी के रूप में भी कौतुक विहार करते हैं।[1]

मनुष्य के भीतर दो वस्तु विद्यमान रहती है—रूप तथा स्वरूप। प्रत्येक मनुष्य के भीतर का वास्तविक तत्त्व कृष्ण है। यही उसका स्वरूप है उसका बहिर्मुख जीवन तथा उसके शारीरिक स्थूल कार्य-कलाप उसके 'रूप' हैं। 'स्वरूप' आध्यात्मिक दिव्य तत्त्व है और 'रूप' भौतिक निम्नतर तत्त्व। इस प्रकार प्रत्येक स्त्री वास्तव में राधा है जो उसका भीतरी 'स्वरूप' है और बाहरी कार्य-कलाप का निर्वाह करने वाला 'तत्त्व' उसका बाहरी रूप है। रूप के अन्तर्गत ही स्वरूप रहता है। प्रत्येक पुरुष के रूप में कृष्ण का और प्रत्येक नारी के रूप में राधा का ही विलास सर्वत्र अपनी लीला का विस्तार करता है। रूप में स्थिति बन्धन का कारण है और स्वरूप में स्थिति मोक्ष का कारण, इस प्रकार रूप से स्वरूप में अवस्थान करना ही साधना का क्रम है। जीव का वास्तविक तत्त्व 'स्वरूप लीला' है जहाँ से हटने पर प्राणी सांसारिक हो मूल लीला से बहिष्कृत होकर 'रूप लीला' में निवास करता है। सहजिया-मत में राधाकृष्ण प्रकृति-पुरुष-तत्त्व के द्योतक हैं। सहज महाभाव स्वरूप होता है जिसकी दो धारायें हैं—एक में आस्वादक तत्व है और दूसरे में आस्वाद्य तत्त्व। ये ही दोनों धाराएँ नित्य वृन्दावन में राधा कृष्ण के रूप में प्रतिष्ठित होती है। श्रीकृष्ण आस्वादक तत्त्व हैं और श्रीराधा आस्वाद्य तत्व है। आस्वादक तत्व जब तक आस्वाद्य के साथ तन्मय होकर एक रूप नहीं हो जाता जब तक पूर्ण नहीं समझा जाता।

---

१. मनुष्य स्वरूपे करे कौतुक विहार।
चम्पक-कलिका, बंगीय-साहित्य-परिषद् पत्रिका, १३०७ सन्, प्रथम संख्या।

नर-नारी के परस्पर मिलन भाव की एक धर्म साधना भारतवर्ष में बहुत पहले से ही प्रचलित थी, जिससे प्रभावित होकर ही वामाचारी तान्त्रिक साधना, बौद्ध तांत्रिक साधना तथा बौद्ध सहजिया साधना आदि का उद्भव हुआ। विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों के मूल में चरम सत्य एक अद्वय परमानन्द स्वरूप आनन्द-तत्त्व की प्राप्ति होती है। यह अद्वय तत्त्व ही मिथुन तत्त्व, यामल तत्त्व या युगल तत्त्व है जिसमें दोनों धारायें मिली हुई हैं। इसी को बौद्धों में युगवद्ध तत्त्व और तांत्रिकों में केवलानन्द तत्त्व कहा है। इस अद्वय तत्त्व की शिव और शक्ति दो धारायें हैं। तांत्रिक इस शिव-शक्ति के मिलन-जनित केवलानन्द को ही परम साध्य मानते हैं। साधक शिव-शक्ति के तत्त्व को अपनी देह के अन्दर ही जाग्रत कर सामञ्जस्य-सुख या केवलानन्द का अनुभव करता है। इस शिव-शक्ति के तत्त्वों में एक नर-नारी की मिलन साधना भी है जिसके अनुसार शिव-शक्ति के नित्य तत्त्व ने स्थूल रूप से नर-नारियों का रूप पाया है और पुरुष शिव तत्त्व तथा नारी शक्ति तत्त्व है। पुरुष के प्रतितत्त्व में शिव का और नारी के प्रतितत्त्व में शक्ति का सूक्ष्म रूप से ही नहीं स्थूल रूप से भी विकास होता है। पुरुष जब अपने अन्दर के शिव तत्त्व को जाग्रत कर अपने को शिव के रूप में उपलब्ध कर नारी को शक्ति तत्त्व के रूप में अनुभव करता है और जब नारी अपने अन्दर के शक्ति तत्त्व को विकसित कर अपने को शक्ति रूप में और पुरुष को शिव के रूप में अनुभव करती है तो दोनों की स्थूल देह के प्रतितत्त्व में शिव-शक्ति के जागरण से जो मिलन होता है वह साधक-साधिका को पूर्ण-सामरस्य में पहुंचा देता है। इसी पूर्ण सामरस्य जनित असीम आनन्दानुभूति को तांत्रिक सामरस्य सुख, बौद्ध महासुख और वैष्णव महाभाव स्वरूप कहते हैं। बौद्ध तांत्रिक और सहजिया साधना में शिव शक्ति के स्थान पर शून्यता करुणा-तत्त्व की मूर्ति भगवती-भगवान् या वज्रेश्वरी-वज्रेश्वर या 'प्रज्ञा और उपाय' को देखते हैं। उनका चरम लक्ष्य महासुख रूप प्रज्ञा या सहजानन्द की प्राप्ति है।

बौद्ध सहजिया सम्प्रदाय की इस योग साधना ने वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय के अन्दर प्रेम-साधना का रूप धारण किया। राधा-कृष्ण का अवलम्बन करने वाला वैष्णव धर्म वास्तव में प्रेम-धर्म है। शिव-शक्ति तथा प्रज्ञा-उपाय के स्थान पर वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय में राधा-कृष्ण को स्थान मिला। बौद्धों के जिस शिव-शक्ति मिलन जनित सामरस्य आनन्द स्वरूप को महासुख-स्वरूप कहा गया है वैष्णव सहजिया लोग उसे ही राधा-कृष्ण का प्रेम कहते हैं जिसकी चरमावस्था आनन्द में है और यह चरमावस्था प्राप्त करने का मार्ग प्रेम-मार्ग है।

सहजिया मत में युगल-तत्त्व ही परम तत्व है जिसमें महाभाव रूप 'सहज' की स्थिति है जो प्रेम की पराकाष्ठा अवस्था है। इस सहज से जगत्-प्रपंच उत्पन्न

होता है, सब कुछ लय होता है और सब कुछ स्थित होता है। यही सहज 'नित्य देश की वस्तु' और विश्व ब्रह्माण्ड का चरम सत्य है। यह 'वृन्दावन' और 'मनो-वृन्दावन' को पार कर 'नित्य वृन्दावन' की वस्तु है जो कि सहजिया लोगों का 'गुप्त चन्द्रपुर' है। इस गुप्त चन्द्रपुर में राधा-कृष्ण का नित्य विहार चलता है जिसके अन्दर से सहज रस की नित्य धारा प्रवाहित होती है और संसार के नर नारियों में प्रवाहित प्रेम रस-धारा के अन्दर भी उसी की अभिव्यंजना है। जीव नर-नारी को सांसारिक प्रेम तथा स्थूल दैहिक संयोग के अन्दर भी सहज-रस की धारा का उपभोग करते हैं। गुप्त चन्द्रपुर में होने वाली राधा-कृष्ण की नित्य-सहज लीला ही स्वरूप लीला है और स्त्री पुरुष के रूप में होने वाली जीव की लीला ही 'श्रीरूप' लीला है। प्राकृत जगत की श्रीरूप लीला अप्राकृत वृन्दावन की स्वरूप लीला का ही परिणत रूप है। राधा कृष्ण परमतत्त्व का आस्वादन वृन्दावन के गोपी-गोप के रूप में ही नहीं करते अपितु मनुष्य के अन्दर नर-नारी के रूप में भी कौतुक विहार करते हैं।[1]

मनुष्य के भीतर दो वस्तु विद्यमान रहती है—रूप तथा स्वरूप। प्रत्येक मनुष्य के भीतर का वास्तविक तत्त्व कृष्ण है। यही उसका स्वरूप है उसका बहिर्मुख जीवन तथा उसके शारीरिक स्थूल कार्य-कलाप उसके 'रूप' हैं। 'स्वरूप' आध्यात्मिक दिव्य तत्त्व है और 'रूप' भौतिक निम्नतर तत्त्व। इस प्रकार प्रत्येक स्त्री वास्तव में राधा है जो उसका भीतरी 'स्वरूप' है और बाहरी कार्य-कलाप का निर्वाह करने वाला 'तत्त्व' उसका बाहरी रूप है। रूप के अंतर्गत ही स्वरूप रहता है। प्रत्येक पुरुष के रूप में कृष्ण का और प्रत्येक नारी के रूप में राधा का ही विलास सर्वत्र अपनी लीला का विस्तार करता है। रूप में स्थिति बन्धन का कारण है और स्वरूप में स्थिति मोक्ष का कारण, इस प्रकार रूप से स्वरूप में अवस्थान करना ही साधना का क्रम है। जीव का वास्तविक तत्त्व 'स्वरूप लीला' है जहाँ से हटने पर प्राणी सांसारिक हो मूल लीला से बहिष्कृत होकर 'रूप लीला' में निवास करता है। सहजिया-मत में राधाकृष्ण प्रकृति-पुरुष-तत्त्व के द्योतक हैं। सहज महाभाव स्वरूप होता है जिसकी दो धारायें हैं—एक में आस्वादक तत्व है और दूसरे में आस्वाद्य तत्त्व। ये ही दोनों धाराएँ नित्य वृन्दावन में राधा कृष्ण के रूप में प्रतिष्ठित होती हैं। श्रीकृष्ण आस्वादक तत्त्व हैं और श्रीराधा आस्वाद्य तत्व हैं। आस्वादक तत्व जब तक आस्वाद्य के साथ तन्मय होकर एक रूप नहीं हो जाता जब तक पूर्ण नहीं समझा जाता।

१. मनुष्य स्वरूपे करे कौतुक विहार।
चम्पक-कलिका, बंगीय-साहित्य-परिषद् पत्रिका, १३०७ सन्, प्रथम संख्या।

जिस प्रकार तन्त्र-मत में प्रत्येक पुरुष शिव विग्रह और प्रत्येक नारी शक्ति विग्रह है उसी प्रकार सहजिया मत में प्रत्येक पुरुष कृष्ण विग्रह और प्रत्येक नारी राधा-विग्रह है जिस प्रकार तन्त्र मतावलम्बियों के अनुसार प्रत्येक जीव के अनुसार अर्धनारीश्वर तत्त्व है और देह का दक्षिण भाग शिव या ईश्वर तथा वाम भाग नारी या शक्ति है उसी प्रकार सहजिया लोग दाहिने नेत्र में कृष्ण का निवास मानते हैं जो साधक का श्याम कुंड है और बाँये नेत्र में राधिका का निवास मानते हैं जो साधक का राधाकुंड है।[१] इस प्राकृत जगत् में प्रत्येक पुरुष का बाहरी रूप पुरुष रूप है और इसके अन्दर इस रूप का आश्रय लेकर कृष्ण स्वरूप अवस्थान कर रहा है और इस प्रकार प्रत्येक नारी का बाहरी रूप नारी रूप है और इसके अन्दर उसका 'राधा स्वरूप' अवस्थान कर रहा है। स्वरूप में स्थिति प्राप्त करने के लिये नरनारी का मिलन ही प्रेम लीला कहलाती है जिसके अन्तर्गत ही सहज रस का आस्वादन होता है। साधक के लिये 'श्रीरूप' केवल अवलम्बन मात्र है परन्तु उसकी वास्तविक स्थिति स्वरूप में है। विषय से उठाकर अध्यात्म की ओर ले जाने पर ही विशुद्ध प्रेम-रस का आस्वादन होता है जिसे वृन्दावन रस कहते हैं।

सहजिया लोगों की पहली-साधना को विशुद्ध साधना कहते हैं। स्वर्ण को गला गलाकर निर्मल करने की भाँति ही मर्त्य के प्राकृत देह-मन को जलाकर शुद्ध किया जाता है। विशुद्ध स्वर्ण की भाँति ही देह-मन का प्रेम हो जाता है जो सम-रस और व्रज का महाभाव स्वरूप होता है। सहजिया मत में मर्त्य और वृन्दावन तथा प्राकृत और अप्राकृत के अन्तर को साधना द्वारा दूर करके प्राकृत को अप्राकृत में रूपान्तरित कर दिया जाता है तथा रूप के अन्दर ही स्वरूप की प्रतिष्ठा हो जाती है। इस देश और उस देश का सहज मिलन हो जाता है।

महाभाव स्वरूप 'सहज' की दो धाराओं में से एक धारा में आस्वाद्य-तत्त्व और दूसरी धारा में आस्वादक तत्त्व है। नित्य वृन्दावन में राधा और कृष्ण ही दोनों तत्त्वों की मूर्ति हैं। सहजिया लोगों ने इन तत्त्वों को पुरुष-प्रकृति तत्त्व कहा है। रत्नसार में लिखा है—

---

१. वामे राधा दाहिने कृष्ण देखे रसिक जन।
.... दुइ नेत्रे विराजमान॥
राधा कुण्ड श्याम कुण्ड दुइ नेत्रे हय।
सजल नयन द्वारे भावे प्रेम आस्वादय॥
—राधावल्लभ दास का सहज तत्त्व, बंग साहित्य परिचय, द्वितीय खण्ड।

परमात्मार दुइ नाम धरे दुइ रूप ।
एइ मते एक हय्या धरये स्वरूप ।।
ताहे दुइ भेद हय पुरुष-प्रकृति ।
सकलेर मूल हय सेइ रस-मूरति ।।
× × ×
परमात्मा पुरुष प्रकृति दुइ रूप ।
सहस्रार-दले करे रसेर स्वरूप ।।[1]

एक से दो और दो से एक होकर वृन्दावन में स्वरूप लीला नित्य विराजमान है।[2] जिसका कोई पारावार नहीं है और जो गंगा की धारा की भाँति निरन्तर प्रवाहित होती रहती है।[3] मनुष्य के समक्ष अप्राकृत प्रेम-रूप सहज-वस्तु मानुषी रूप में राधाकृष्ण के गोप-गोपी के रूप में वृन्दावन में प्रकट की जाती है। नित्य लीला तत्त्व की एक अभिव्यंजना मर्त्य वृन्दावन में मिलती है। जब नर नारी के प्रेम के प्राकृत गुण को साधना के द्वारा दूर कर दिया जाता है तो वह व्रज की वस्तु हो जाता है। मर्त्य के नर-नारी के अन्दर राधा-कृष्ण के अन्दर से प्रवाहित हुई परम 'एक' की दो धारायें चल रही हैं। यदि उन दोनों प्रेम की धाराओं को निर्मलतम करके एक कर दिया जावे तो युगल-प्रेम का आस्वादन कर सकते हैं।

सहजिया मत में 'नायिका-भजन' की बात कही गई है जिसका अभिप्राय 'राधा-भजन' से है। यदि नायक-नायिका साधक बनना चाहते हैं तो उन्हें अपने प्राकृत रूप के अन्दर कृष्ण-राधा के स्वरूप की उपलब्धि के लिये 'आरोप' साधना करनी चाहिये; जिसका अर्थ है रूप के अन्दर स्वरूप की उपलब्धि तक स्वरूप को रूप के अन्दर 'आरोप' करना। जिस साधना से चित्त उदात्त हो जाता है उसे आरोप कहते हैं। प्रत्येक पुरुष को कृष्ण के रूप में और प्रत्येक स्त्री को राधा के रूप में

---

१. रत्नसार, कलकत्ता विश्वविद्यालय की हस्तलिखित पोथी।

२. राधाकृष्ण रस-प्रेम एकुइ से हय।
नित्य नित्य ध्वंस नाइ नित्य विराजय ।।
सहज-उपासना-तत्त्व, तरणीरमण कृत, वंगीय
साहित्य-परिषद् पत्रिका ४, खण्ड १, सं० १

३. नित्य लीला कृष्णेर नाहिक पारावार।
अविश्राम वहे लीला येन गङ्गाधार ।।
—सहज-उपासना-तत्त्व, मुकुन्ददास प्रणीत (मणीन्द्र कुमार नन्दी, प्रकाशित)
पृ. ५८, पृ. ५८-६४ देखिये।

भावना करना या अनुभव करना ही आरोप साधना है। इस आरोप साधना का अर्थ है रूप के अन्दर स्वरूप की उपलब्धि तक स्वरूप को रूप के अन्दर 'आरोप' करना। नायक-नायिका को एक दूसरे के अन्दर कृष्ण-राधा का आरोप कर तब तक साधना करनी चाहिये जब तक कि वे अपने को सम्पूर्ण रूप से कृष्ण-राधा की उपलब्धि न करले। आरोप साधना का उद्देश्य इस प्रकार है—

रूपे ते स्वरूपे दुइ एकु करि, मिशाल कोरिया थुवे।
सेइ से रति ते एकान्त करिले, तवे से श्रीमती पावे ॥

चण्डीदास ने रजकिनी रामी में राधिका का आरोप कर साधना करना प्रारम्भ किया परन्तु जब सिद्धि लाभ हो गई तो रजकिनी रामी पूर्ण राधिका का विग्रह बन गई। उनका कथन है—

स्वरूपे आरोप जार रसिक नागर तार
प्राप्ति हवे मदन मोहन।
× × ×
से देशेर रजकिनी हम रसरे अधिकारी
राधिका स्वरूप तार प्राण ॥
तुमितो रसमोर गुरु सेह रसेर कल्पतरु
तार सरे दास अभिमान ॥

पुरुष-प्रकृति या कृष्ण-राधा इन दोनों धाराओं के प्रतीक हैं जिनको सहजिया मत में 'रस' और 'रति' कहा जाता है। 'रस' शब्द से आस्वादक रूप रस-स्वरूप का तात्पर्य है और रति से रस के विषय से तात्पर्य है। कृष्ण और राधा को पारिभाषिक रूप से सहजिया लोग 'काम' और 'मदन' भी कहते हैं। प्रेम के आस्पद को अपनी ओर आकर्षित करने वाले 'काम' शब्द का अर्थ प्रेम स्वरूप है और 'मदन' प्रेमोद्रेक का कारण स्वरूप है। 'रस' या काम को ही साधना के क्षेत्र में नायक माना गया है और 'रति' को नायिका माना गया है। यही 'रस-रति' अथवा 'काम-मदन' अखिल नायिका-नायक का रूप धर कर नित्य काल विलास कर रहे हैं।[1]

---

१. जय जय सर्वादि वस्तु रस राज काम। जय जय सर्व्वश्रेष्ठ रस नित्य धाम ॥
प्राकृत अप्राकृत आर महा अप्राकृते। विहार करिछ तुम निज स्वेच्छामते ॥
स्वयं—काम नित्य-वस्तु रस-रतिमय। प्राकृत अप्राकृत आदि तुमि महाश्रय ॥
एक वस्तु पुरुप प्रकृति रूप हइया। विलासह बहुरूप धरि दुइ काया ॥
—सहज-उपासना-तत्त्व. तरणीरमण कृत, वंगीय-साहित्य परिषद्—पत्रिका
१३३५ संख्या

रूप में स्वरूप का आरोप करके रूप-स्वरूप को कभी भिन्न नहीं मानना चाहिये—

आरोपिया रूप हइया स्वरूप
कभु ना वासिओ भिन्न।

सच्ची राधा की प्राप्ति भिन्न बोध के मिट जाने पर आरोप के अन्दर से स्वरूप का भजन कर पाने पर होती है। यह रूप के अन्दर से स्वरूप की अथवा नायिका के अन्दर से राधा की उपलब्धि सरल नहीं है। जिस प्रकार कमल के प्रत्येक अणु-परमाणु में सुगन्धि का समावेश अभिन्न भाव से रहता है उसी प्रकार नायिका के प्रत्येक अणु परमाणु के अन्दर उसका स्वरूप मिला रहता है। रूप के अन्दर स्वरूप की उपलब्धि मुक्ति है और स्वरूप को छोड़कर केवल रूपाश्रय होना ही बन्धन है—

स्वरूप स्वरूप अनेके कय। जीव लोक कभु स्वरूप नय॥

× × × ×

पद्म गंध हय ताहार गति। ताहारे चिनिते कार शकति॥

× × × ×

स्वरूप बुझिले मानुष पावे। आरोप छाड़िले नरके जावे॥

सहजिया मत में जहाँ तक कि सहज साधन का सम्बन्ध है मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया है। शशि भूषणदास के शब्दों में, "मनुष्य को छोड़कर कोई भी ब्रज-तत्त्व नहीं है—सौन्दर्य, माधुर्य की प्रतिमा, मूर्तिमती, प्रेम रूपिणी नारी के अन्दर से ही राधा तत्त्व का आस्वादन करने के सिवा दूसरा रास्ता नहीं है।[1]

चंडीदास ने रूप और रस से परिपूर्ण प्रेम की मूर्ति रजकिनी रानी ने कहा था—

एक निवेदन करि पुनः पुनः, शुन रजकिनी रानी।
युगल चरण शीतल देखिया, शरण लइलाम आमि॥
रजकिनी रूप किशोर-स्वरूप, काम गंध नहि ताय।
ना देखिले मन करे उचाटन, देखिले पराण जुड़ाय॥
तुम रजकिनी आमार रमणी, तुमि हओ मातृ पितृ।
त्रिसंध्या याजन तोमारि भजन, तुमि वेद माता गायत्री॥
तुमि वाग्वादिनी हरेर घरणी, तुमि से गलार हारा।
तुमि स्वर्ग मर्त्य पाताल पर्वत, तुमि से नमानेर तारा॥

---

१. राधा का क्रम-विकास—शशिभूषणदास गुप्त, पृ. २६२।

इस रजकिनी रानी के अन्दर से ही राधा तत्व आस्वाद्य होता है और यही राधा तत्व का मूर्त प्रतीक है जिस प्रकार पुराण-युग में शिव-शक्ति, पुरुष-प्रकृति, विष्णु-लक्ष्मी मिलकर एक हो गये, उसी प्रकार सहजिया लोगों में राधा-कृष्ण, शक्ति-शिव, प्रकृति-पुरुष एक हो गये। सहजिया सम्प्रदाय के कृष्णतत्व एवं राधातत्व सांख्य दर्शन के पुरुष एवं प्रकृति अथवा आधुनिक विज्ञान के भौतिक तत्व एवं शक्ति (Matter and Energy) का ही प्रतिनिधित्व करते हैं और जिस सृष्टि क्रम के सौन्दर्य का हम नित्य अनुभव करते हैं वह उनकी नित्य लीला का अनवरत स्फुरण है। सहजिया लोगों के अनुसार क्षीर सागर शायी विष्णु तक इन साधारण मानवों से बढ़कर नहीं जो निरन्तर जन्म लेते और मरते रहते हैं। उनकी दृष्टि में देवों की भी विश्व के व्यापक नियम के कारण ऐसी ही गति होती है। चंडीदास ने लिखा है—

संस्कार देई ब्रह्मांडे ते सेई, सामान्य ताहार नाम।
मरणे जीवने करे गतागति, क्षीरोद सायरे धाम ॥[1]

परशुराम चतुर्वेदी का वैष्णव सहजिया लोगों के सम्बन्ध में कथन है, "वैष्णव सहजिया लोगों के सिद्धान्तानुसार श्रीकृष्ण परमतत्व रूप हैं तथा राधा उनके नैसर्गिक प्रेम की अमित शक्ति स्वरूपिणी हैं वे भगवान् श्री कृष्ण के उस विशिष्ट गुण का प्रतिनिधित्व करती हैं जिसे 'ह्लादिनी' शक्ति की भी संज्ञा दी जाती है और इस प्रकार राधा के उनमें स्वभावतः निहित रहने के कारण दोनों में किसी अन्तर का होना असंभव समझा जा सकता है। राधा एवं कृष्ण के बीच जो वियोग की कल्पना की जाती है वह केवल इसीलिये कि भगवान् अपनी लीला के लिये ऐसी व्यवस्था स्वयं किया करते हैं। वे स्वयं एक ओर उपयोग्य वस्तु बनते हैं और दूसरी ओर उसके उपभोक्ता के रूप में भी प्रस्तुत रहा करते हैं।"[2]

सहजिया लोगों में परकीया-भाव की उपासना का ही साधना में विशेष महत्व है। वे श्री ब्रजनन्दन के प्रेम को प्राप्त करने का मुख्य साधन परकीया-रति को ही मानते हैं। परकीया का समाज पक्ष गर्हणीय और त्याज्य होने पर भी आत्म साधना की दृष्टि से वह एकान्त स्पृहणीय तथा उपादेय है कामवृत्ति को दूर करने के लिए अध्यात्म-मार्ग में दो उपाय बताये हैं। निवृत्ति-मार्ग के आचार्य कामवृत्ति के दमन की शिक्षा देते हैं और सहजिया लोग काम के परिशोधन को श्रेयस्कर मानते हैं। यह परिशोधन परकीया के साथ ही विशेष रूप से सिद्ध हो सकता है। साधक का प्रथम कर्तव्य स्त्रियों के संग रति की साधना है जिससे उसके विकार स्वतः दूर हो

---

१. चण्डीदास पदावली, पृ. ३४८।

२. मध्यकालीन धर्मसाधना—परशुराम चतुर्वेदी, पृ. २८-२९।

जाते हैं। उसकी उच्छृंखल वासनाएँ विघटित हो जाती हैं और विशुद्ध प्रेम-रति का उदय होता है। सहजिया सम्प्रदाय के अनुसार साधक को स्वयं स्त्री भाव से ही भगवान् की आराधना करनी चाहिए। साधक को परकीया की संगति नितान्त उपयुक्त सिद्ध होती है। शास्त्रों द्वारा मर्यादित स्वकीया प्रेम से सहजिया सम्प्रदाय में परकीया प्रेम को उत्तम माना है। इधर उधर हटने का स्थान न होने के कारण स्वकीया प्रेम में शिथिलता आ जाती है और परकीया प्रेम में नित्य नया उत्साह और अपूर्व आनन्द बना रहता है। मधुर, दास्य, सख्य और वात्सल्य भाव का अनुभव स्वकीया और परकीया दोनों में होने पर भी स्वकीया की अपेक्षा परकीया में वियोग का दुःख अधिक होता है। चित्तवृत्तिका परिशोधन करने के हेतु संयोग पक्ष की अपेक्षा वियोग पक्ष अधिक समर्थ एवं प्रबल होता है। वियोग में वासनाओं का कालुष्य जलकर प्रेम निकपित हेम के समान हो जाता है। सहजिया ग्रन्थ 'विवर्त्त-विलास' में इसीलिये रास में श्रीकृष्ण के अन्तर्धान को गोपियों की प्रेम वृद्धि के लिये उपादेय बताया है। विरही वियोग में ही प्रेमाद्वैत का अनुभव करता है। स्वकीया स्त्रियाँ फल, यश और संसार के भय से ही सतीत्व पर स्थित रहती हैं मर्यादा के उल्लंघन करने की उनमें शक्ति ही नहीं होती। परन्तु परकीया अपने प्रेमी के प्रेम में संसार को भूल अपने सगे सम्बन्धी और प्रत्येक वस्तु को भी त्याग देती है। वह लोगों की बुराई से नहीं डरती, संसार की यातनाओं से विचलित नहीं होती। स्वकीया की अपेक्षा प्रेम परकीया में अधिक होता है। इसलिये सहजिया लोगों ने रति की उदात्तता, प्रेम की पूर्णता, और विरह की सम्पन्नता के कारण परकीया का ग्रहण ही श्रेयस्कर समझा। परकीया भी दो प्रकार की मानी जाती है बाह्य परकीया, मर्म परकीया। सहजिया लोगों की प्रौढ़ मान्यता के कारण राधातत्व परकीया तत्व के रूप में लोकप्रिय बन गया। राधा ने उसी परकीया प्रेम का अनुसरण किया। परकीया प्रेम करने वाली गोपिकाओं में राधा का प्रेम सर्व श्रेष्ठ है। उनका प्रेम लौकिक न होकर आध्यात्मिक है। वे गोलोक निवासिनी हैं। 'सुख अनुभव हेतु द्विमार्ग' होकर ही ब्रह्म ने राधा कृष्ण का रूप धारण किया।



इस रजकिनी रानी के अन्दर से ही राधा तत्व आस्वाद्य होता है और यही राधा तत्व का मूर्त प्रतीक है जिस प्रकार पुराण-युग में शिव-शक्ति, पुरुष-प्रकृति, विष्णु-लक्ष्मी मिलकर एक हो गये, उसी प्रकार सहजिया लोगों में राधा-कृष्ण, शक्ति-शिव, प्रकृति-पुरुष एक हो गये। सहजिया सम्प्रदाय के कृष्णतत्व एवं राधातत्व सांख्य दर्शन के पुरुष एवं प्रकृति अथवा आधुनिक विज्ञान के भौतिक तत्व एवं शक्ति (Matter and Energy) का ही प्रतिनिधित्व करते हैं और जिस सृष्टि क्रम के सौन्दर्य का हम नित्य अनुभव करते हैं वह उनकी नित्य लीला का अनवरत स्फुरण है। सहजिया लोगों के अनुसार क्षीर सागर शायी विष्णु तक इन साधारण मानवों से बढ़कर नहीं जो निरन्तर जन्म लेते और मरते रहते हैं। उनकी दृष्टि में देवों की भी विश्व के व्यापक नियम के कारण ऐसी ही गति होती है। चंडीदास ने लिखा है—

संस्कार देई ब्रह्मांडे ते सेई, सामान्य ताहार नाम।
मरणे जीवने करे गतागति, क्षीरोद सायरे धाम॥[१]

परशुराम चतुर्वेदी का वैष्णव सहजिया लोगों के सम्बन्ध में कथन है, "वैष्णव सहजिया लोगों के सिद्धान्तानुसार श्रीकृष्ण परमतत्व रूप हैं तथा राधा उनके नैसर्गिक प्रेम की अमित शक्ति स्वरूपिणी हैं वे भगवान् श्री कृष्ण के उस विशिष्ट गुण का प्रतिनिधित्व करती है जिसे 'ह्लादिनी' शक्ति की भी संज्ञा दी जाती है और इस प्रकार राधा के उनमें स्वभावत: निहित रहने के कारण दोनों में किसी अन्तर का होना असंभव समझा जा सकता है। राधा एवं कृष्ण के बीच जो वियोग की कल्पना की जाती है वह केवल इसीलिये कि भगवान् अपनी लीला के लिये ऐसी व्यवस्था स्वय किया करते हैं। वे स्वयं एक ओर उपयोग्य वस्तु बनते हैं और दूसरी ओर उसके उपभोक्ता के रूप में भी प्रस्तुत रहा करते हैं।"[२]

सहजिया लोगों में परकीया-भाव की उपासना का ही साधना में विशेष महत्व है। वे श्री व्रजनन्दन के प्रेम को प्राप्त करने का मुख्य साधन परकीया-रति को ही मानते हैं। परकीया का समाज पक्ष गर्हणीय और त्याज्य होने पर भी आत्म साधना की दृष्टि से वह एकान्त स्पृहणीय तथा उपादेय है कामवृत्ति को दूर करने के लिए अध्यात्म-मार्ग में दो उपाय बताये हैं। निवृत्ति-मार्ग के आचार्य कामवृत्ति के दमन की शिक्षा देते हैं और सहजिया लोग काम के परिशोधन को श्रेयस्कर मानते हैं। यह परिशोधन परकीया के साथ ही विशेष रूप से सिद्ध हो सकता है। साधक का प्रथम कर्तव्य स्त्रियों के संग रति की साधना है जिससे उसके विकार स्वत: दूर हो

१, चण्डीदास पदावली, पृ. ३४८।

२. मध्यकालीन धर्मसाधना—परशुराम चतुर्वेदी, पृ. २८-२६।

पंचम अध्याय

जयदेव विद्यापति और चंडीदास की राधा का स्वरूप

जयदेव की राधा—

इस अध्याय में हम जयदेव, विद्यापति और चंडीदास की राधा का विवेचन करेंगे। इन तीनों ने ही राधा-कृष्ण के प्रेम सम्बन्धी काव्य की रचना की और मधुर रस को अपनाया। इन तीनों ने ही परकीया भाव से राधा का वर्णन किया और राधा से अबाध प्रेम होने के कारण लोक-लाज का कोई स्थान नहीं है।

जयदेव ने गीतगोविन्द की रचना कर साहित्य में सर्वप्रथम राधा का मधुर और प्रेम पूर्ण रूप प्रस्तुत किया। गीत गोविन्द में श्रीकृष्ण और राधा के प्रेम का कोमल और विलासमय वर्णन मिलता है। जयदेव का स्थिति काल बारहवीं शताब्दी का अन्त अथवा तेरहवीं शताब्दी का प्रारम्भ है इसलिए हम कह सकते हैं कि तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक वैष्णव धर्म में राधा की भावना का पूर्ण विकास हो चुका था। इनसे जयदेव के राधा-कृष्ण मानवीयकोटि तक आ गये हैं। जयदेव ने गेय पदों में परकीया नायिका के रूप में राधा का चित्रण सर्व प्रथम किया। गीतगोविन्द की राधिका में लोक लाज और कानि को कोई स्थान नहीं है। जयदेव ने अपने साहित्य में क्षेमेन्द्र के दशावतार की परिपाटी का भी अनुगमन किया है। लालधर त्रिपाठी प्रवासी का तो यहाँ तक कथन है, 'जयदेव पर वात्स्यायन के काम सूत्र का पूर्ण-रूपेण प्रभाव पड़ा है और उन्होंने रति का वर्णन काम सूत्र के नियमों के अनुकूल किया है।"[1]

की भूमि भी श्याम तमाल वृक्षों से श्याम वर्ण हो गई है इसलिये कृष्ण को घर पहुँचा आओ। इस प्रकार नन्दजी की आज्ञा पाकर कृष्ण और राधा चले और उन्होंने मार्ग में एकान्त क्रीड़ायें कीं।

संस्कृत साहित्य, धर्म भावना और दार्शनिक चिन्तन में राधा का जो स्वरूप जहाँ-तहाँ दिखाई देता था जयदेव ने उसे एक प्राणवान व्यक्तित्व प्रदान किया। गीतगोविन्द में राधा सर्व प्रथम अपने परमोज्ज्वल यौवन, अनुपम माधुर्य एवं मांसल विलास आकांक्षा के साथ आती है इससे पूर्व राधा इतने पूर्ण रूप में नहीं मिलती। राधा कभी मानिनी, कभी वासक सज्जा, कभी विप्रलब्धा, कभी खण्डिता और कभी अभिसारिका के रूप में दृष्टि गोचर होती है। गीतगोविन्द में राधा का विलास-आकुल काम-कातर विरह-जर्जरित और मिलनोत्कंठित रूप दिखाई देता है। राधा के इस माधुर्य भाव का प्रभाव बंगाल के भावुक भक्तों पर विशेष रूप से पड़ा।

गीतगोविन्द में राधा कृष्ण के मुख का चुम्बन करती हुई दृष्टि गोचर होती है। रास क्रीड़ा के आनन्द से विभ्रमयुक्त गोपियों के सम्मुख ही प्रेम विह्वला राधा ने श्रीकृष्ण के मुख को अमृतमय बनाते हुए उनका मुख दृढ़ता के साथ चूम लिया। जब श्रीकृष्ण सभी गोपिकाओं के साथ एकसा प्रेम करते हुए वृन्दावन में रासलीला करते थे उस समय राधा ईर्ष्या के कारण एक लता कुञ्ज में जा छिपी, वहीं पर वृक्षों की शाखाओं पर तथा लतावल्लियों पर मधुपावली गुञ्जायमान हो रही थी। करुणार्द्र चित्त से एकान्त में उसने अपनी प्रिय सखी से कहा कि श्रीकृष्ण को मेरा हृदय चाहता है—

संचरदधरसुधामधुरध्वनिमुखरितमोहनवंशम्।
चलितदृगञ्चल चञ्चल मौलिक पोलविलोलवतंसम्॥
रासे हरिमिह विहितविलासम्।
स्मरति मनो मम कृत परिहासम्॥[1]

द्वितीय सर्ग में राधिका कृष्ण के साथ संयोग की घटनाओं का स्मरण करती है। उसमें राधिका के काम-केलि, रति का नग्न श्रृङ्गारिक वर्णन कवि ने किया है। राधिका कृष्ण का ध्यान करती है। मिलने के लिये उत्सुक है और कृष्ण को उसका मन चाहता है। कृष्ण समागम की लालसा के कारण उसमें एक कातरता है और प्रेम की अनन्यता के कारण उसमें एक दुर्बलता है। राधिका निकुञ्ज में आकर बार-बार देखती है और सखी से कृष्ण के मिलाने के लिए कहती है—

प्रथमसमागमलज्जितया पटुचाटुशतैरनुकूलम्।
मृदुमधुरस्मितभाषितया शिथिलीकृतजघनदुकूलम्॥[2]

---

१. गीतगोविन्द काव्यम्, द्वितीय सर्ग २—जयदेव।
२. गीतगोविन्द, द्वितीय सर्ग ३—जयदेव।

वह रति जनित आनन्द से उत्पन्न आलस्य से नेत्रों को भींचने वाली, रति के परिश्रम से निकले हुए पसीने से भीगी देह वाली, रति के समय कोयल की वाणी के समान शब्द करने वाली, रति परिश्रम में ढीली ढाली, फूलों से गूंथी हुई अलकावली वाली, रति के समय पैरों में पड़े आभूषणों में जड़े हुए घुंघरुओं को झंकारने वाली, करधनी के घुंघरु आदि को बजाने वाली, रति के समय आलसिन, अशक्ता तथा मुर्झायी हुई देह रूपी लता वाली है। उनके हृदय की दुर्बलता और कातरता के कारण ही उनका प्रेम वेगवान हो गया है। गोपिकाओं से कटाक्ष किये गये और परिवेष्टित होने पर भी गीले-गीले कपोलों वाली लज्जा युक्त हँसी हँसने वाले श्रीकृष्ण को देखकर राधिका आनन्दित होती है।[1]

है ।[1] कभी इधर-उधर भ्रमण करती हुई वह राधा बार-बार कहती है, 'हे माधव ! मैं आपके पैरों पड़ती हूँ । आपके वियोग से अमृत निधि चन्द्र भी मुझे दाह देता है ।[2] राधिका की सखी कृष्ण से राधिका के विरहोन्माद का वर्णन इस प्रकार करती है, वह कृश शरीर धारणी राधा, आपके वियोग से अपने उरोजों पर पहिरे हुए हार को भी अत्यन्त भार स्वरूप मानती हैं ।[3] वह राधा आपकी वियोग रूपी व्यथा से सरस तथा चिकने चन्दन को भी विष के समान मानती है, तथा सशंक अपने शरीर का अवलोकन करती है ।[4] वह राधा आपके वियोग में दीर्घ निश्वासों को गर्म कामाग्नि के समान धारण करती है ।[5] राधा प्रत्येक दिशा में अश्रुपात करती है, जैसे जल बिन्दुओं से परिपूर्ण कमलदण्ड से जल गिरता है ।[6] आपके वियोग में राधा नेत्रों के सम्मुख बिछी हुई किसलयों की शैया को अग्नि शैय्या समझती है ।[7] सन्ध्या-समय राधा आपके विरह में कपोलों पर हथेली रखे हुए निश्चल बालचन्द्र के समान दीखती है ।[8] आपके वियोग से राधा मृत्यु तुल्य प्राणी के समान 'हरिः हरिः' जपती है ।[9] राधिका का प्रेमोन्माद बड़ा करुणाजनक है । वह तुम्हारे बिना मर जायगी । राधा का रोग केवल आपके आलिङ्गन रूपी अमृत से ही अच्छा हो सकता है । अतः यदि आप राधा को रोग वियुक्त न करेंगे तो हे उपेन्द्र ! आप वज्र से भी अधिक कठोर हैं ।[10] हे स्वर्ग के वैद्य तुल्य कृष्ण ! वह राधा रोमाञ्चित होती है, सी-सी करती है, बिलखती है, कांपती है, गिरती है, ध्यान करती है, मूर्छित होती है और खड़ी होती है—

सा रोमाञ्चति सीत्करोति विलपत्युत्कम्पते ताम्यति ।
ध्यायत्युद्भ्रमति प्रमीलति पतत्युद्याति मूर्च्छत्यपि ।[11]

श्री कृष्ण की दशा भी वैसी ही थी । कृष्ण विरह वेदना से क्लान्त हो उठे परन्तु राधिका में इतनी शक्ति नहीं कि वे प्रिय को प्रसन्न करने के लिए जा सकें । विरह के कारण राधिका इतनी अशक्त हो गई कि उनका प्रिय के पास जाना भी असंभव था ।

पञ्चम सर्ग में सखी गोविन्द से राधिका की विरह दशा का वर्णन इस प्रकार करती है, "हे नाथ ! आपके अधर रूपी मधुर मधु को पीती हुई एकान्त में बैठी हुई

---

१. गीतगोविन्द, चतुर्थ सर्ग ५
२. " " ६
३. " " प्रबन्ध ६, १
४. " " " ६, २
५. " " " ६, ३
६. " " " ६, ४
७. गीतगोविन्द, चतुर्थ सर्ग प्रबंध ६, ५
८. " " " ६, ६
९. " " " ६, ७
१०. " " " ६, १०
११. " " " ६, ६

राधा प्रत्येक दिशा को देख रही है[१] राधा ज्योंही वेग से आपके समीप आने लगती है त्योंही दो चार कदम चलकर गिर पड़ती है।[२] कमल नाल तथा नवीन पल्लव के कड़े पहिरने वाली वह राधा आपकी रति के लालच से जीवित है।[३] एकान्त में वह राधा पुनः पुनः अपने आभूषणों की शोभा निहारती है तथा "मैं ही कृष्ण हूं। इस प्रकार की भावना करती है।[४]" वह राधा अपनी सखी से कहती है, "हरि अभिसार (सङ्केत स्थान) में शीघ्र क्यों नहीं आये।"[५] वह राधा मेघ के समान प्रगाढ़ अन्धकार को देखकर आपको आया हुआ समझकर आलिङ्गन तथा चुम्बन करती हैं।[६] आपके विलम्ब करने से वासक सज्जा की भाँति निर्लज्ज होकर रोती तथा बिलखती है।[७] पत्रों तक की खड़खड़ाहट सुनकर वह राधा अपने अङ्गों पर आभूषण धारण करने लगती है। ऐसा समझकर कि आप आ रहे हैं, वह शैया को सजाने लगती है एवं ध्यान मग्न होकर अनेक विचारों में मग्न हो जाती है परन्तु बिना आपके उसकी रात नहीं कटती।[८]

सप्तम सर्ग में चन्द्र के देदीप्यमान होने पर जब श्रीकृष्ण के आने में देर होती है तो विरहिणी राधा अनेक प्रकार से विलाप करने लगती है, कथित समय पर भी श्रीकृष्ण वन में नहीं आये। यह रमण योग्य मेरा यौवन भी वृथा है। जब सखियों से ही मैं ठगी गई तो अब किसकी शरण में रहूँ—

> कथितसमयेऽपि हरिरहह न ययौ वनं
> मम विफलमिदममलरूपमपि यौवनम्।
> यामि हे कमिह शरणं सखीजनवचनवञ्चिता।[९]

जिन श्रीकृष्ण के लिए मैंने रात्रि में गहनवन में वास किया, उन्हीं कृष्ण ने मेरे हृदय में कामदेव के असह्य बाणों को बेध दिया।[१०] इस अरण्य में अब मैं विरह की अग्नि कैसे सह सकती हूं तथा यह ज्ञान शून्य शरीर भी वृथा है, इससे मृत्यु कहीं उत्तम है।[११] अत्यन्त खेद है कि वसन्त की यह मनोहर रात्रियाँ मुझे कंपित कर रही हैं तथा ये ही रात्रियाँ अन्य गोपाङ्गनाओं को जो पुण्यात्मा हैं तथा

---

१. गीतगोविन्द—षष्ठम सर्ग प्रबंध १२, १
२. ,, ,, ,, १२, २
३. ,, ,, ,, १२, ३
४. ,, ,, ,, १२, ४
५. ,, ,, ,, १२, ५
६. ,, ,, ,, १२, ६
७. गीतगोविन्द—षष्ठम सर्ग प्रबंध १२, ७
८. ,, ,, ,, अन्त २,
९. ,, सप्तम सर्ग ,, १३, १
१०. ,, ,, ,, १३, २
११. ,, ,, ,, १३, ३

श्रीकृष्ण के साथ हैं आनन्दित कर रही हैं।[1] श्रीकृष्ण के बिना रत्न जटित कङ्कण आदि दूषण तुल्य हैं।[2] कामदेव के बाणों की लीला से पुष्पों के सदृश मृदु गात्र वाली मुझे स्वभाव से ही यह मृदु पुष्प माला कण्टकाकीर्ण लगती है।[3] मैं तो प्रिय कृष्ण के लिए इस अरण्य में वेतस कुंजों में निवास करती हूँ किन्तु मधुसूदन मुझे हृदय से भी स्मरण नहीं करते।[4] सुन्दर वेतस लता के कुंज में (सङ्केत स्थान पर) कृष्ण के न आने पर राधा सोचने लगीं, "क्या प्रियतम! अन्य कामिनी के पास चले गए? क्या मित्रों के हास परिहास में फंस गए अथवा इस अरण्य में अन्धकार के कारण इतस्ततः भूलकर घूम रहे हैं अथवा मेरी भाँति वियोगी होकर गमन करने में असमर्थ हो गए।"[5]

गीतगोविन्द के अष्टम सर्ग में काम बाणों से पीड़ित होने पर भी राधिका कृष्ण से कहती है कि आप उसी नायिका के पास जाइए जो आपके कष्टों को दूर करती है।[6] आपका शरीर काले रङ्ग का है वैसा ही अन्तःकरण भी है। कामपीड़िता मुझे क्यों छलते हो? आप वहीं जाइए।[7]

नवम् सर्ग में कामपीड़िता, रतिसुख रहिता, अत्यन्त दुःखिता, हरि चरितस्मरण कर्त्री, कलहांतरिता राधा से एक सखी एकान्त में कहती हैं,[8] "हे प्रिये! अब आप क्यों पश्चाताप करती हैं। क्यों रोती तथा व्याकुल होती हैं? यह देखिए आप पर युवतियाँ हंसती हैं।[9] हे राधे! आप प्रेम करने वाले श्रीकृष्ण से तीक्ष्ण वार्ता करती हैं, नम्रता से विनय करने वाले कृष्ण से स्तब्ध रहती हैं, अनुरागी कृष्ण से विराग करती हैं, अभिमुखी कृष्ण से विमुखी होती हैं, उसी का कुपरिणाम है कि आपको श्रीखण्ड की चर्चा विषवत्, चन्द्र सूर्यवत्, हिम अग्निवत् तथा क्रीड़ासुख वेदनावत् विपरीत लग रहा है।"[10]

दशम सर्ग में सन्ध्याकाल में अत्यन्त रोषवती, अधिक श्वासों के छोड़ने से म्लान-मुखवाली, लज्जा पूर्वक सखी के मुख को देखने वाली सुमुखी राधा के समीप आकर कृष्ण ने आनन्द से कहा[11] कि मेरे ऊपर कृपा करके मान का परित्याग कीजिए।[12] हे श्रीराधा! दुपहरिया के पुष्प के सदृश यह आपका अधर, महुए के

---

१. गीतगोविन्द, सप्तम सर्ग प्रबंध १३, ४
२. ,, ,, ,, १३, ५
३. ,, ,, ,, १३, ६
४. ,, ,, ,, १३, ७
५. ,, ,, ,, अन्त १
६. ,, अष्टम सर्ग १
७. गीतगोविन्द, अष्टम सर्ग ६
८. ,, नवम् सर्ग १
९. ,, ,, ४
१०. ,, ,, अ-२
११. ,, ,, १
१२. ,, ,, अ-१

फूल की प्रभा के समान ये आपके स्निग्ध कपोल, नील कमलों की कान्ति को चुराने वाले ये आपके नेत्र, तिल के पुष्प के सदृश आपकी यह नासिका शोभा दे रही है। हे कुन्ददन्ते ! कामदेव आपके मुख की सेना ही विश्व विजय करता है।[1] हे मुग्धे ! आपके नयन मद से भरे हुए हैं, आपका मुख चन्द्र के समान है, आपका गमन मनोरम है, आपकी जाँघें केले के खम्भों को जीतने वाली हैं, आपकी रतिकेलि कला पूर्ण है, आपकी भौहें सुन्दर चित्ररेखावत् हैं। तन्वि: ! आश्चर्य है कि पृथिवी पर रहने पर भी आप में सुराङ्गनाओं के गुण विद्यमान हैं।[2]

एकादश सर्ग में एक सखी ने कठोर जाँघों तथा उन्नत उरोजों वाली राधिका ने धीरे-धीरे पैरों को पृथिवी पर रखकर मणियों जड़े नूपुर आदि पैरों के आभूषणों को बजाते हुए हंस-गति से श्रीकृष्ण के समीप चलने को कहा।[3] सखी ने सम्भोग की क्रीड़ा की उमङ्ग से उत्कंठित राधिका से रम्यतर लता भवन के क्रीड़ा गृह में जा माधव के साथ रमण करने के लिए कहा।[4] जब राधा तथा कृष्ण की परम प्रिय रति क्रीड़ा प्रारम्भ हुई उस समय प्रगाढ़ आलिंगन करते हुए रोमाञ्च बुरे लगते थे, क्रीड़ा के अभिप्राय से अवलोकन (पलक गिरना) भी विघ्नभूत लगता था, केलि-कथा, भी अधर पान करते हुए कष्ट-दायिका प्रतीत होती थी, अनेक प्रकार की केलि-कलापूर्ण क्रीड़ा से उत्पन्न आनन्द उस समय सुरत रूपी समर में बुरा लगता था।[4] जयदेव ने रतिक्रीड़ा के उपरान्त राधिका का नग्न शृङ्गारिक वर्णन इस प्रकार किया है—

> **व्याकोशः[5] केशपाशस्तरलितमलकैः स्वेदमोक्षौ[7] कपोलौ**
> **क्लिष्टा बिम्बाधर श्रीः[8] कुचकलशरुचा हारिता हारयष्टिः।**
> **काञ्चीकान्तिर्हताशा स्तनजघनपदं पाणिनाच्छाद्य सद्यः**
> **पश्यन्ती सत्रपा सा तदपि विलुलिता[9] मुग्धकान्तिर्धिनोति ॥**

अर्थात् जिनका जूड़ा बिखर गया है, लटें चञ्चल हो गई हैं पसीने की बूँदों ने कपोल भीगे हुए हैं, चुम्बित ओष्ठ कान्ति स्पष्ट रूपेण विदित हो रही है; घड़े के समान स्तनों की शोभा से मुक्तावली तिरस्कृत हो रही है करधनी सिकुड़ी हुई एक ओर पड़ी है, प्रातः ऐसी दशा पर राधा ने अपने हाथों से कुचों तथा जघन को ढककर

---

१. गीतगोविन्द, दशम सर्ग ६
२. ,, ,, ७
३. ,, एकादश सर्ग २
४. ,, ,, अ-१-२
५. ,, द्वादश सर्ग अ-१
६. पाठ व्यालोल
७. पाठ स्वेदलोलौ
८. पाठ-क्लिष्टा दष्टाधर श्रीः, स्पष्टा दष्टाधर श्रीः
९. पाठ विलुलितस्रग्धरेयं

अपने रूप को देखती हुई सूखे हुए फूलों की माला को धारण करती हुई भी श्रीकृष्ण को आनन्द कारिणी मालूम पड़ी।

अन्त में स्वाधीन भर्तृका राधा मैथुन के परिश्रम से परिश्रान्त कृष्ण से अपना शृङ्गार करने के लिए कहती है और कृष्ण हर्षान्वित हो राधा का शृङ्गार करते हैं।

जयदेव की राधा प्रारम्भ में कृष्ण से प्रौढ़ है और उन्हें अन्धकार में छोड़ने जाती है। जयदेव ने गीतगोविन्द में राधा के संयोग और वियोग अवस्था के चरम सीमा के दर्शन कराये हैं। प्रारम्भ में राधा-कृष्ण के प्रेम के हेतु व्याकुल है फिर बाद में कृष्ण के साथ रमण भी करती है। वह सखि द्वारा कृष्ण को अन्य के साथ रमण करता हुआ सुन पश्चाताप और कृष्ण से मान करती है। जब कृष्ण मनाकर शयन गृह में चले जाते हैं तब सखि द्वारा प्रेरणा पाकर कृष्ण के पास जा काम केलि में पूर्ण रत हो पूर्ण सुख प्राप्त करती है। वह कृष्ण द्वारा ही वस्त्राभूषणों को धारण कराती है। इस प्रकार राधा में काम-ज्वर से उत्पन्न चिन्ता है, कृष्ण के साथ आनन्द लूटने वाली गोपिका के प्रति ईर्ष्या है, कृष्ण से मिलने की चाह है, वियोग में अतीव वेदना है, और अन्धकार के कारण लज्जायुक्त भय है। राधा को रति के लालच से जीने की चाह है, अभिसार के लिए शीघ्रता है, कृष्ण बिना शृङ्गार के लिये उपेक्षा भाव है, कृष्ण के प्रति मान है, कृष्ण के मनाये जाने पर रति केलि आनन्द और कृष्ण द्वारा शृङ्गार धारण कराये जाने पर गर्व है।

गीतगोविन्द में राधा के संयोग और वियोगावस्था के विभिन्न रूप हमें देखने को मिलते हैं। वह संयोगिनी, विरहिणी, मानिनी, परकीया आदि सभी रूपों में हमारे सम्मुख आती है। कहीं पर वासक सज्जा की भाँति निर्लज्ज होकर रोती और बिलखती है, कहीं बिना कृष्ण स्वकीया की भाँति शृङ्गार वृथा समझती है, कहीं शृङ्गार वञ्चित खण्डिता नायिका की भाँति विलाप करती है और कहीं कलहान्तरिता की भाँति कृष्ण का अपमान और पश्चाताप करती है। कवि ने संयोग और वियोग दोनों रूपों का निर्लज्ज और नग्न चित्रण प्रस्तुत किये हैं। "आशा-निराशा, उत्कण्ठा, प्रणय जन्य-ईर्ष्या, कोप, मानापमोदन और मिलन-प्रेम की विविध दशाओं का राधा और कृष्ण के प्रणय में हृदय ग्राही निरूपण हुआ है।" डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का राधा रानी के अतुलनीय प्रेममय हृदय के चित्रण के सम्बन्ध में अभिमत है, "राधिका के पूर्व राग और भाव के समय जो प्रेम दिखाई देता है वह कोई बाधा नहीं मान सकता। शुरू में ही देखते हैं, वसन्त में वासन्ती कुसुमों के समान सुकुमार अवयवों में उपलक्षिता राधा गहन वन में बारम्बार श्रीकृष्ण का अन्वेषण करके थक-सी गई है फिर भी विराम नहीं; खोज जारी है। कन्दर्प

ज्वर-उत्कट प्रेम पीड़ा की चिन्ता से वे अत्यधिक कातर हो उठी है।[१]
स्थल पर डा० द्विवेदी ने लिखा है, "जयदेव की राधा शुरू में ही प्रग
पड़ती है। वह जानती है कि श्रीकृष्ण बहुवल्लभ हैं, स्वच्छन्द भाव से
सुन्दरियों के साथ रमण कर रहे हैं, तथापि उन्हें श्रीकृष्ण चाहिए ही,
के जीना असम्भव है। उस "प्रचुर-पुरन्दर-धनुरञ्जित-मेदुर-मदिर-भुवेशम्"
विश्व-ब्रह्माण्ड फीका है, भले ही वह शठ हों, भले हो वह "गोप-कदम्बनितं
चुम्बन हों पर वह मिलें जरूर।"[२]

परन्तु कुछ विद्वान जयदेव के गीतगोविन्द के कृष्ण और राधा को
के आलम्बन नायक और नायिका न मान उन पर भक्ति का आरोप क
गीतगोविन्द की व्याख्या करते हुए रूपगोस्वामी ने बताया है कि कृष्ण जीव है
राधा आत्म तत्त्व है। गोपियों को छोड़कर कृष्ण का राधा में आकृष्ट हो
जीव का पंच इन्द्रिय के क्षेत्र से ऊपर उठ जाता है और वह तब परमात्मा में
निष्ठ हो जाता है।[३] चन्द्रशेखर पांडेय गीतगोविन्द के इस शृङ्गार वर्णन में म
रस की अभिव्यक्ति पाते हैं। कुछ आलोचकों की धारणा है कि जो राधा और कृ
हमारी भक्ति के आलम्बन थे, वे जयदेव के गीतगोविन्द के प्रभाव से शृङ्गार
आलम्बन नायक और नायिका के पर्याय बन गए। किन्तु माधुर्य रस के भक्त क
जयदेव पर यह लांछन लगाना अन्याय होगा। दाम्पत्य प्रणय में तन्मयता
तल्लीनता का जो चरम उत्कर्ष देख पड़ता है, 'भेद में अभेद' की कल्पना का जो
चूड़ान्त निदर्शन पाया जाता है, उसी की अभिव्यक्ति भक्ति के क्षेत्र में माधुर्य भाव
की सृष्टि करती है।"[४]

डा० हरवंशलाल शर्मा जयदेव के गीतगोविन्द की राधिका का विवेचन करते हुए निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।

(१) राधा कृष्ण के प्रेम में पागल और विह्वल है और यह जानते हुए भी कि कृष्ण बहुनायक हैं वह उनसे मिलना चाहती है।

(२) जयदेव के राधिका के प्रेम में लोक लाज का कोई स्थान नहीं है और वह प्रारम्भ से ही प्रगल्भ दिखाई गई है।

---

१. मध्यकालीन धर्म साधना—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ. १४६
२. सूरसाहित्य—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ, ६३
३. मैथिल कोकिल विद्यापति—शम्भुप्रसाद बहुगुना, पृ. ३०
४. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा—चन्द्रशेखर पांडेय,

(३) कृष्ण और राधा का वर्णन बड़ा शृङ्गारिक है जिसमें नायक और नायिकाओं की सभी चेष्टाओं का वर्णन है जिसमें मान तथा अनुनय विनय भी सम्मिलित है।

(४) राधा का कोई क्रमिक वर्णन गीतगोविन्द में नहीं है केवल राधा-कृष्ण विहार के संयोग-वियोग चित्र मिलते हैं।"[१]

जयदेव के गीतगोविन्द की राधा को हम विलासिनी, प्रेम विह्वल और यौवन प्राप्त कह सकते हैं। वह जानती है कि कृष्ण बहुवल्लभ हैं। कृष्ण के सौन्दर्य के कारण वह उन पर मुग्ध है। कृष्ण को प्राप्त करने की कामना रखने के कारण उसमें उद्दाम वेग पाया जाता है। राधा प्रगल्भा है परन्तु प्रेमाधिक्य होने के कारण उसकी लज्जा और संकोच का बंधन टूट जाता है। वह कृष्ण की खोज में व्यग्र और इधर उधर दौड़ लगाती है। जयदेव की राधा उपासना की देवी न होकर पृथ्वी की रानी है इसलिये उसमें मानसिक पक्ष की अपेक्षा शारीरिक पक्ष प्रबल है। जयदेव ने राधा को परकीया रूप में अपनाया और उनके अनुगामियों में भी यही परम्परा चलती रही। राधा और कृष्ण के रूप में देश के युवक और युवतियों के प्रेममय जीवन की एक झलक उनके काव्य में विद्यमान है। जयदेव के गीतगोविन्द में राधा का जो केलि-विलासमय चित्र उपस्थित हुआ है उससे यह निश्चित है कि जयदेव के युग में राधा की प्रतिष्ठा परम शक्ति के रूप में हो चुकी थी।

विद्यापति की राधा—

विद्यापति मिथिला के निवासी थे और मैथिली में उन्होंने अपनी कविता लिखी। वह दरभंगा जिले के बिसपी गाँव के रहने वाले थे। नाभादास ने अपनी भक्तमाल में विद्यापति का निर्देश मात्र किया है।[२] उनके संस्कृत और अवहट्ट के ग्रन्थों के अतिरिक्त मैथिली में लिखी 'पदावली' में बाल्यावस्था से वृद्धावस्था तक के भिन्न भिन्न अवसरों पर लिखे गए पदों का संग्रह है।

---

१. श्री मद्भागवत और सूरदास—डा० हरवंशलाल शर्मा, पृ. ११५, ११६

२. विद्यापति ब्रह्मदास बहोरन चतुर बिहारी।
गोविन्द गङ्गा रामलाल बरसानियां मङ्गलकारी ॥
प्रिय दयाल परसराम भक्त भाई खारी को।
नन्द सुवन की छाप कवित्त केसो को नीको ॥
आस करन पूरन नृपति भीषम जन दयाल गुननहि न पार।
हरि सुजस प्रचुर कर जगत में ये कवि जन अतिसय उदार ॥
—भक्तमाल नाभादास

विद्यापति ने राधा का चित्रण जन परम्परा में प्रचलित कथाओं और गीतों के आधार पर ही किया है। उनकी राधा अनेक रूपा है। उनकी पदावली में गाथासप्तशती, अमरूक शतक, शृङ्गार शतक और शृङ्गार तिलक के बहुत से चित्र मिलते हैं। उनकी पदावली की रचना संस्कृत और प्राकृत की शृङ्गारिक रचनाओं के आधार पर हुई है और उसमें उन्होंने शृङ्गार की अविरल धारा बहाई है। उन्होंने संयोग और वियोग की सभी परिस्थितियों और उन परिस्थितियों में प्रेम विभोर युवक-युवतियों के सभी भावों का संश्लिष्ट वर्णन किया है। विद्यापति ने नायिका को परकीया माना है। उन्होंने नायिका के आन्तरिक भावों के साथ बाह्य चेष्टाओं का भी बड़ा सुन्दर वर्णन किया है और अन्तर्जगत के सौन्दर्य की अपेक्षा बाह्य सौन्दर्य का ही विशेष वर्णन किया है। उनकी वृत्ति वियोग की अपेक्षा संयोग में ही अधिक रमी है। उनकी राधा में हाव तथा अनुभावों की प्रधानता है, वयसंधि, अभिसार और सद्यः स्नाता के सजीव चित्र हैं तथा अभिसारिका के मार्ग में कठिनाइयों के अत्यन्त भय प्रद रूप हैं।

भक्ति के उन्मेष में उन्होंने शिव की स्तुति की भाँति शक्ति और विष्णु के अवतार, राधा उनके प्रियतम कृष्ण की भी स्तुति की है। राधा की वन्दना करते हुए उन्होंने लिखा है कि राधा के रूप को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रह्मा ने पृथ्वी तल पर अपूर्व लावण्य का सार ही ला मिलाया है। करोड़ों कामदेवों को मथन करने वाले श्रीकृष्ण भी उसे देखकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं—

देख देख राधा रूप अपार।
अपुरुप के बिहि आनि मिलाओल खिति-तल लावनि-सार ॥२॥
अग अंग अनंग मुरछायत हरेए पड़ए अधीर।
मन मथ कोटि-मथन करु जो जन से हेरि महि-मधि गीर ॥४॥
कत कत लखिमी चरन-तल ने ओछए रंगिनि हेरि विभोरि।
करु अभिलाख मनहि पद पङ्कज अहोनिसि कोर अगोरि ॥६॥[1]

राधा के लोकातीत रूप का वर्णन करने के लिए विद्यापति ने सामान्य जनातीत पद्धति को अपनाया। राधा अद्वितीय रूप-यौवन सौन्दर्य सम्पन्न रमणी है। आते जाते माधव की रूप लिप्सा उसमें जाग उठी। वह बड़ी भावुक है और मुग्धमति है। दूती के मुख से उसने माधव के रूप गुण की प्रशंसा सुनी। उसमें पूर्वानुराग जागता है। वह माधव को पाने के लिए आकुल होती है उसकी आकुलता

१. विद्यापति की पदावली—रामवृक्ष बेनीपुरी १

काम पीड़ा की दशा तक पहुँचती है। वह भी ऐसी सुन्दर है कि कृष्ण भी उनके लिए काम-प्रेरित पूर्वानुराग की दशा में छटपटाने लगे।

विद्यापति अपनी राधा को वयः संधि की अवस्था में उपस्थित करते हैं। वयः सन्धि में राधा भोली किशोरी है। उनकी राधा की वह अवस्था है जब शैशव उनको छोड़ यौवन अठखेलियाँ करना प्रारम्भ कर रहा है। वह अज्ञात यौवना है। उसके दोनों नेत्र श्रवणों तक फैलने लगे हैं और चरणों की चपलता नेत्रों में दिखाई देने लगी है। ऐसा प्रतीत होता है मानों कामदेव के नींद त्यागने पर भी नेत्र बन्द हैं—

चंचल चरन, चित चंचल भान।
जागल मनसिज मुदित नयान।

विद्यापति ने माधव को राधा की वयः सन्धि का परिचय इस प्रकार दिया है—

सुन इत रस-कथा थापये चीत
जैसे कुरंगिनी सुनए सङ्गीत।
सैसव जौवन उपजल बाद
केओ न मानए ज अवसाद॥

माधव के प्रथम दर्शन में ही राधा चकित होकर मुख नीचा कर लेती है। माधव अनुनय विनय करते हैं। नवीन रमणी रस नहीं जानती। नागर हरि को पुलक होता है, शरीर कांपने लगता है, पसीना छूटने लगता है। माधव राधा का हाथ पकड़ लेते हैं। राधा हाथ में हाथ लेकर सिर पर रख शपथ दिलाती है और छोड़ने को कहती है—

पहिलहि राधा माधव भेट। चकितहि चाहि वयन कर हेट॥
अनुनय काकु करतहि कान्ह। नवीन रमनि धनि रस नहि जान॥
हरि हरि नागर पुलक भेल। काँपि उठु तनु, सेद वहि गेल॥
अथिर माधव धए राहिक हाथ। करे कर बाधि धर धनि माथ॥
भनइ विद्यापति नहि मन आन। राजा सिव सिंघ लखिमा रमान॥[1]

राधा का प्रियतम कृष्ण के साथ अनेक स्थलों पर बड़ा ही सात्विक और रसपूर्ण सम्मिलन प्रदर्शित किया है। उनकी राधा स्त्री होने के कारण कृष्ण को इसलिए प्रेम करती है कि कृष्ण सुन्दर हैं सुन्दरता से प्रेम होना स्वाभाविक है। वह सदाचार जानती ही नहीं। विद्यापति के राधा कृष्ण के चित्र में वासना का रङ्ग भी प्रस्फुटित हो उठा है।

राधिका बड़ी कुशल हैं उसने एक कटाक्ष से ही कृष्ण को खरीद लिया है—

बड़ कौसलि तुम राधे।
किनख कन्हाई लोचन आधे ॥[1]

दूती के मुख से श्रीराधा का नवीन प्रेम कृष्ण सुन उल्लसित होने लगते हैं। वह सोचते हैं कि न जाने कितने जन्मों के पुण्य फल से वह गुणमयी राधिका मिलेगी—

राइ को नविन प्रेम सुनि दुति मुखे मन उलसित कान।
मनोरथ कतहि हृदय परिपूरल आनन्दे हरल गेआन ॥

सजन विहि कि पुरा एव साधा।
कत कत जनमक पुन फले मिलव से हेन गुणवती राधा ॥[2]

राधा की अपेक्षा कोई भी नागरी रूप, यौवन और कला नैपुण्य में श्रेष्ठतर नहीं है। जिस मन्दिर में राधा थीं उसका कपाट माधव खोलते हैं। राधा आलस्य प्रगट करके कोप से हँसकर उनकी ओर देखती हैं मानो अर्ध चन्द्र उदित हुआ हो—

माधवे आए कबाल उवेलल्हि जाहि मन्दिर छलि राधा।
आलस कोपे अति हसि हेरलन्हि चन्द उगल जनि आधा ॥
माधव विलखि वचन बोल राधा ही
जौवन रूप कलागुन आगरि
के नागरि हम चाहि।[3]

कृष्ण से राधिका के न बोलने पर कृष्ण कारण पूछते समय उनको गुणवती बताते हैं—

सुन सुन गुनवति राधे।
परिचय परिहर को अपराधे ॥[4]

१. विद्यापति की पदावली—रामवृक्ष बेनीपुरी १०४
२. विद्यापति—खगेन्द्रनाथ मित्र, ७०९
३. विद्यापति—खगेन्द्रनाथ मित्र, नेपाली पोथी का पाठ ४७७
४. विद्यापति—खगेन्द्रनाथ मित्र, ६५२

दूती भूल से राधा और कृष्ण दोनों को भिन्न-भिन्न समय का निर्देश कर देती है, इसलिये मनोरथ में बाधा होती है और साध पूरी नहीं होती। अभिसार के सफल न होने के कारण राधा के नेत्र बादल की भाँति बरसने लगते हैं। मदन से पराजित हो राधा अत्यन्त व्याकुल होती है—

दुहुक अभिमत एकन मिलने दूती के अपराधे।
आन आन घने संकेत भुलाएल दुहुक मनोरथ बाधे।
तरुनी कहओ कहा सकल मेने अभिसार।
राधा नयन जरद जओ वरिसए कन्हाई रहल न जाइ।
दूती अवन चतुरपन खाएल चारिम कहहि न जाइ।
दुओ परम वे आकुल मानल जस राधा तसु कान्ह।
एक मनोभव परिभव दाता दुअहु समहि समधान।
भनइ विद्यापति एहु रस जानए रायनि मह रसमन्ता।
सिवसिंह राजा रूप नाराएन लखिमा देवी कन्ता।[1]

राधा की माधव के साथ प्रथम मिलन क्रीड़ा में काम की आकांक्षा पूरी नहीं होती। कवि का विश्वास है कि दिन-दिन व्यतीत होने पर वह प्रीति को समझने लगेगी—

वामा नयन वह नोर। काप कुरंगिनि केसरि कोर॥
एके गह चिकुर दोसरे पह गीम। तेसरे चिबुक च उठे कुच-सीम॥
निबिबन्ध एक नहि अवकास। पानि पचमके बाढ़लि आस॥
राधा माधव प्रथमक मेलि। न पुरल काम मनोरथ केलि॥
भनइ विद्यापति प्रथमक रीति। दिने दिने बाला बुझति पिरीति॥[2]

विद्यापति ने सुरभिपूर्ण निकुंज में राधा के विवाह की कल्पना की है। विवाह की विविध वस्तुओं का रूप उनके शरीर के अंगों ने ही धारण कर रखा है। राधा का प्रेम रस मय रीति से युक्त है—

सुरभ निकुंज वेदि भलि भेलि, जनम गेठि दुहु मानस मेलि।
कामदेव करु कने आदान, विधि मधुपरक अधर मधु पान।
मन भेलि राधे मेन्न निरवाह, पानि-गहन-विधि बिआह।
उजर रुपन मुकुता हार, नयने निवेदल वन्दने वार।

---

[1] विद्यापति—खगेन्द्रनाथ मित्र, १०६
[2] विद्यापति—खगेन्द्रनाथ मित्र, २८६

पीन पयोधर पुरहर भेल, करस झापस नव पल्लव देल।
भनइ विद्यापति रसमय रीति, राधा माधव उचित विरीति।[1]

विद्यापति ने राधा के कृष्ण के साथ परस्पर क्रीड़ा के भी चित्र उपस्थित किये हैं। वह कपट कोप भी कर सकती है और उसे गुप्त न रख हरि को चुम्बन भी दे सकती है। कृष्ण राधा का अधर-मधु-पान ही नहीं करते, राधा के मस्तक से आलिङ्गन के कारण पुष्प भी झड़ने लगते हैं—

हरि धरि हार चँओकि परु राधा। आध माधव कर गिम रहु आधा॥
कपट कोप धनि दिठि धरु फेरी। हरि हँसि रहल वदन विधु हेरी॥
मधुरिम हास गुपुत नहि भेला। तखने समुखि-मुख चुम्बन देला॥
कर धरु कुच, आकुल भेल नारी। निरखि अधर मधु पिवए मुरारी॥
चिबुक चमर झरु कुसुमक धारा। पिविझहु तम जनि वम नव तारा॥
विद्यापति कवि कह सुन्दरि वानी। हरि हसि मिललि राधिका रानी॥[2]

राधिका के कृष्ण के साथ वन विहार के भी वर्णन विद्यापति ने किये हैं।[3] कृष्ण उसे गाढ़ आलिङ्गन में ही नहीं दबाते उससे सारी रात केलि भी चाहते हैं और उसका अधार पान भी करते हैं। कवि मधुसूदन और राधा के वन विहार का प्रस्ताव करता है—

तरु अर वलि धर डारे जाँति। राखि गाढ़ आलिङ्गन तेहि भाँति॥
मजे नीन्दे निन्दारथि फर जो काहु। सगरि रतनि कान्हु केलि चाहु॥
मालति रस विलसए भमर जान। तेहि भाँति कर अधर पान॥
कानन फुलि गेल कुन्द फुल। मालति मधु मधुकर पए भूल॥
परिठवइ सरस कवि कण्ठहार। मधुसूदन राधा वन विहार॥[4]

राधा निष्काम आत्म समर्पण करती है। उसका रोम-रोम कृष्णार्पण है। अपने जीवन, जोवन और बुद्धि वैभव सबसे वह कृष्ण को सुख देना चाहती है। "की मोरा जीवन, की मोरा जोवन, की मोरा चतुरपने।" यदि वह कृष्ण को आकर्षित न कर सका। यदि वह कृष्ण को सुखी न कर सका, तो उसका होना व्यर्थ है। राधा कृष्ण का मिलन होता है। मुग्ध और भोली-भाली राधा अब प्रेम

---

१. विद्यापति—खगेन्द्रनाथ मित्र, ३०१
२. विद्यापति—खगेन्द्रनाथ मित्र, ३०१
३. भनइ सरस कवि-कण्ठ हार। मधुसुदन राधा वन विहार॥
विद्यापति—खगेन्द्रनाथ मित्र, ४७८
४. विद्यापति—खगेन्द्रनाथ मित्र, ४८२

होने पर कृष्ण के हृदय को पंच सर से वेध, उन्हें पयोधर के दर्शन करा, उनके मन को चंचल बनाने में ही निपुण नहीं है अपितु उनमें कौतुक बढ़ा सुयोग जानकर मान भी करती है —

राधा माधव रतनहि मन्दिरे, निवसइ सयनक सुखे।
रसे रसे दारुन दन्द उपजायल, कान्त चलल तहि रोखे ॥
नागर-अञ्चल करे धरि नागरि, हसि मिती करु आधा।
नागर हृदये पाँच-सर हानल, उरजि दरसि मन बाधा ॥
देख सखि झुटक मान।
कारन किछुओ बुझइ नाहि पारिये, तब काहे रोखल कान ॥
रोख समापि पुन रहसि पसारल, ताहि मधय पँचबान।
अवसर जानि मानवति राधा कवि विद्यापति भान ॥[1]

तदुपरान्त राधा-कृष्ण का मिलन होता है। कृष्ण राधा से अनुनय विनय करते हैं, अभिसार चलता है। राधा और कृष्ण कुँजों में मिलते हैं परन्तु राधा को पुरजनों और परिजनों का डर है। एक दिन कृष्ण राधा से कहते हैं कि वह मथुरा जा रहे हैं। राधा क्रोध में चुप रहती है। कृष्ण के चले जाने पर राधा विरहिणी हो जाती है। सखियाँ नाना प्रकार से समझाती हैं और उसका सन्देश कृष्ण के पास मथुरा ले जाती हैं। वह भी कहते हैं कि राधा का स्मरण मुझे भूल नहीं पाता।

प्रेमासक्ता राधा कृष्ण विरह में निशदिन रो पड़ती है और रात दिन जागकर कृष्ण का नाम जपती है—

सुनु मन मोहन कि कहब तोय।
मुगुधिनि रमनी तुअ लागि रोय ॥ २ ॥
निसि-दिन जागि जपय तुअ नाम।
थर-थर काँपि पड़ए सोइ ठाम ॥ ४ ॥
जामिनि आध अधिक जब होइ।
विगलित लाज उठए तब रोइ ॥ ६ ॥
सखिगन परबोधय जाय।
तापिनि ताप ततहि तत जाय ॥ ८ ॥
कह कवि सेखर ताक उपाय।
रचइत तर्वाह रजनि बहि जाय ॥ १० ॥[2]

1. विद्यापति—नगेन्द्रनाथ मित्र, ६४५
2. विद्यापति की पदावली—रामवृक्ष बेनीपुरी, ५२

राधा को किस प्रकार समझाया जाय वह वार वार हा हरि, हा हरि कहती है और अपने जीवन को समाप्त करने की वांछा करती है।

माधव, कत परबोधव राधा।
हा हरि, हा हरि कहतहि वेरि वेरि अब जिउ करब समाधा॥
धरनी धरिया धनि जतनहि वैठत पुनहि उठइ नाहि पारा।
सहजहि विरहिणि जग माहा तापिनि वैरि मदन-सर-धारा॥
अरुन नयन लोरे तीतल कलेवर विलुलित दीघल केसा।
मन्दिर बाहिर करइते संसय सहचरि गनतहि सेसा॥
आनि नलिन केओ धनिक सुताओलि केओ देइ मुख पर नीरे।
निसबद हेरि कोइ शास नेहारत केइ देइ मन्द समीरे॥
कि कहब खेद भेद जनु अन्तर घन घन उतपत श्वास।
भनइ विद्यापति सोइ कलावति जिवन-बन्धन आश-पाश॥[1]

राधा इतनी प्रेम परायणा है कि प्रियतम का क्षणिक वियोग भी उन्हें सह्य नहीं है। परन्तु वह इतनी आत्मावलंबिनी है कि वियोगावस्था में वे विश्वमात्र में अपने आराध्य देव की विभूतियों का अवलोकन करती हैं। उसकी वियोग वेदनायें पत्थर को भी द्रवीभूत करने वाली हैं। प्रेम-तल्लीन राधा विरहवश अपने को ही कृष्ण समझ लेती है और राधा-राधा पुकारने लगती है, पुनः जब चेत होता है तो कृष्ण के लिए व्याकुल हो उठती है। यह प्रेम की पराकाष्ठा है। दोनों अवस्थाओं में उसकी मर्म व्यथा देखिए—

अनुखन माधव माधव सोङरिते सुन्दरि भेल मधाई।
ओ निज भाव सुभावहि विसरल आपन गुन लुबुधाई॥

माधव, अपरूप तोहारि सिनेह।
अपने विरह अपन तनु जर जर जिवइते भेल सन्देह॥
भोरहि सहचरि कातर दिठि हेरि छल छल लोचन पानि।
अनुखन राधा राधा रटइत आधा आधा कहु बानि॥
राधा सयँ जब पुनतहि माधव, माधव सयँ जब राधा।
दारुन प्रेम तबहि नहि टूटत बाढ़त विरहक बाधा॥
दुहु दिसे दारु दहने जैसे दगधइ आकुल कीट परान।
ऐसन वल्लभ हेरि सुधा मुखि कवि विद्यापति भान॥[2]

---

१. विद्यापति—नगेन्द्रनाथ मित्र, ७४८
२. विद्यापति—नगेन्द्रनाथ मित्र, ७५७

राधा ही नहीं कृष्ण भी दुःखी हैं। उनको राधा के बिना सब बाधा लगती है और नेत्रों में अश्रु प्रवाहित होते हैं।[1] विद्यापति का विरह उभय पक्षीय है। जिस प्रकार राधिका कृष्ण के वियोग में विह्वल है उसी प्रकार कृष्ण भी राधिका के वियोग में विह्वल हैं। तदनन्तर राधाकृष्ण का मिलन होता है जिसे कवि ने कहीं दैहिक और कहीं स्वप्न मात्र दिखाया है। उसे अब न लाज है न मान।

ब्रह्मवैवर्तकार के समान राधा और कृष्ण के रति-सम्बन्ध का वर्णन करते हुए विद्यापति ने राधा कृष्ण का विवाह कराया है। सुगन्धित निकुंज वेदी बनी, हृदय की एक रूपता गठबन्धन हुई और कामदेव ने कन्यादान दिया—

सुरभ निकुंज वेदि भलि मेलि। जनम गेंठि दुहु मानस मेलि॥
कामदेव कए काने आदान। विधि मधुपरक अधर मधुपान॥
सब भेल राधे भेल निरबाह। पानि गहन विधि बाँध विआह॥[2]

राधा निष्काम आत्म समर्पण की मूर्ति है। वह अपने जीवन, जोबन और बुद्धि से कृष्ण को सुख देती है। उसका रोम-रोम कृष्णार्पण है। राधा अपनी साधना, आत्म समर्पण, रूप-सुषमा, विनय-कातरता एवं आराधना से कृष्ण को पा जाती है।

की भाँति हमारे सामने आते हैं। कवि के इस वर्णन में हमें जरा भी ध्यान नहीं आता कि यही राधा कृष्ण हमारे आराध्य हैं। उनके प्रति भक्ति भाव की जरा सी सुगन्ध नहीं है। कृष्ण और राधा साधारण पुरुष स्त्री हैं। राधा तो उस सरित के समान है जिसमें भावनायें तरंगों का रूप लेकर उठा करती हैं। राधा स्त्री है, केवल स्त्री है, और उसका अस्तित्व भौतिक संसार में है। उसका वाह्यरूप जितना आकर्षक है उतना आंतरिक नहीं।"[1]

इस प्रकार के मतावलम्बी विद्वानों के अनुसार विद्यापति की राधिका भक्तों को विभोर नहीं करती। वह विलासी और शृङ्गारप्रिय लोगों को आनन्दित करती है और प्रेम विह्वला सामान्य नायिका है उसके यौवन रूप की छटा देखकर सहस्रों मनुष्यों के हृदय वश में हो जाते हैं। उसके रूप में भक्ति, उपासना, आराधना और और धार्मिकता नहीं आसक्ति और वासना है। मिलन, सखी, सम्भाषण, कौतुक, अभिसार, छलना, मान, विदग्ध-विलास, विरह, भावोल्लास आदि के प्रसङ्ग में जो राधा का रूप चित्रित किया गया है वह रीतिकालीन कवियों की शृङ्गारिकता और अश्लीलता को भी पीछे छोड़ देता है। कवि उसकी वयः सन्धि की अवस्था और अङ्ग प्रत्यङ्ग की शोभा को देखकर विभोर हो जाता है और उसके नग्न रूप को देखने का इच्छुक है। जब एक दिन मनोकामना पूर्ण हो जाती है तो वह जीवन को सार्थक समझता है। काम कला के जितने ढङ्ग और तरीके हैं उन सभी का चित्रण राधा मे मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने अपने आश्रय दाताओं के कुत्सित विचारों को सन्तुष्ट करने के लिये ही राधा के इस शृङ्गारिक रूप का चित्रण किया है।

विद्यापति की राधिका के रूप पर कृष्ण मुग्ध हैं और वह नवीन प्रेमोल्लास से विह्वल है। विद्यापति ने राधा-कृष्ण के संयोग के चित्र तो सुन्दर चित्रित किये ही हैं परन्तु विरह के चित्र भी हृदय स्पर्शी और अपूर्व बन पड़े हैं। वह आरम्भ में किशोरी, यौवन में मुग्धा एवं विलास प्रिय और अन्त में कृष्णमय हो गई है। वास्तव में प्रेम के प्रतीक के रूप में अंकित की गई है। उनकी राधा एक अपूर्व सृष्टि है।

कुमार स्वामी ने विद्यापति के पदों को लेकर यह सिद्ध करना चाहा है कि विद्यापति की कविता ईश्वरोन्मुख है और उसमें रहस्यवाद की अनुपम छटा है। पदावली में मधुर भक्ति ध्वनित होती है और राधा-कृष्ण की भावना को जीवात्मा-परमात्मा का रूपक माना जा सकता है। डा० जी. ए. ग्रियर्सन के अनुसार भी मैथिली भाषा में अमूल्य पदावली रचना के लिये ही उनका श्रेष्ठ गौरव है आगे

1. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा, पृ. ५०६

समस्त पदों में उन्होंने श्रीमती राधिका का प्रेम भगवान् कृष्णचन्द्र के प्रति वर्णन किया है। इस रूप के द्वारा उन्होंने विज्ञापित किया है कि किस प्रकार आत्मा का परमात्मा के प्रति प्रेम-सम्बन्ध है। सुभद्रा झा का कथन है—

It is not a fact that Radha and Krishna of Vidya Pati were nothing but imaginary heroine and hero adopted by the poet for the purpose of composing the erotic Songs, devoid of any devotional Sentiment. We have clear indications available in the poems of this poet that Krishna and Radha were a god and a goddess."[1]

हिन्दी विद्वानों की आलोचना करते हुए डा० ग्रियर्सन के पटना विश्वविद्यालय में दिए गए विद्यापति के ऊपर भाषण का अभिप्राय निम्न प्रकार है, "Contrary to the view summarized above the scholars like Grierson, Nagandra Nath Gupta and Janardan Misra think that Radha and Krishna are Symbolic personalities. Radha Symbolized the individual soul, 'Jivatma' and Krishna, the Supreme Being, Paramatma'. The individual soul is extremely eager to face Supreme being, the former has its glance and mind perpetually directed to-wards the latter. It continues to remain in this condition till it attains what it desires is united with the Supreme Being. But the search for the supreme Soul on its own initiative. It is prompted to do so by the teacher who is Symbolized as duti, the female messenger whose business is to help a girl in finding her lover and vice-versa. He is constant contact with the individual that are guided by her at every step till her efforts come to a successful end. The love affairs described in those songs thus Symbolize the cravings of the individual soul."[2]

अनेक विद्वान विद्यापति के राधा-कृष्ण सम्बन्धी पदों में भक्तिपरी भावना का समन्वय बताते हैं और उसकी पुष्टि के कारण भी उपस्थित करते हैं। उनका कथन है कि राधा और कृष्ण असाधारण स्त्री पुरुष हैं। दोनों का व्यक्तित्व अलौकिक है। दोनों भगवान हैं। यही कारण है कि उनके प्रेम सम्भाषण में भी अलौकिक भावनाओं का उन्मेष है।

जगन्नाथ नलिन ने विद्यापति की राधा को ह्लादिनी शक्ति और आनन्द की ज्योति पिंड के रूप में स्वीकृत किया है, "ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा को सर्वेश्वरी

1. The songs of Vidyapati by Subhadra jha — P. 72
2. Grierson Meithili chestomathy—P. 36 and 38
Gupta lectures delivered in the Patna University in 1935 on Vidyapati.

कहा गया है। विद्यापति की राधा भी रासप्रेरिका और रास मध्यस्था है। जमुना-पुलिन पर राधा के साथ कृष्ण रास रचते हैं और बाँसुरी-वादन से जड़-जङ्गम को मोहित कर लेते हैं। सैकड़ों व्रज बालाएँ रास में सम्मिलित होती हैं। कंकण-किंकिणी की रुन झुन से वातावरण सङ्गीत और नृत्य में डूब जाता है। यहाँ राधा एक मानवी से कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति के रूप में विकसित हो जाती है। वह आनन्द की ज्योतिपिंड है और अन्य गोपियाँ उस आनन्द ज्योति को विकीर्ण करने वाली किरणें।"[1]

राधा-कृष्ण की अतिभावना और हिन्दू-हृदय की दैवी-भावना के कारण जिनमें सदियों से राधा-कृष्ण के लिए आदर का स्थान रहा है विद्यापति की शृङ्गार भावना कुछ असाधारण है यद्यपि उसमें केलि आदि का वर्णन हुआ है। उसमें यह विशेषता है कि हमारे हृदय की कुत्सित भावनाओं से उसका सम्बन्ध नहीं है। विद्यापति का शृङ्गार आध्यात्मिकता की पुनीत अन्तर्धारा से परिव्याप्त है। उसमें कृष्ण के शैशव और राधा के यौवन का विषय व्याघातमक समन्वय है जो सामान्य शृङ्गारिक भावना में संभव नहीं है।

चंडीदास की राधा—

चंडीदास ने राधा-कृष्ण विषयक पदावली की रचना की। उनके निवास स्थान और जीवन के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। व्रजभाषा के दूसरे वैष्णव काव्य 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' के रचयिता भी चण्डीदास बताये जाते हैं। परन्तु श्रीकृष्ण कीर्तन की प्राचीनता और प्रामाणिकता में विद्वानों को सन्देह है। 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' और पदावली में भाव तथा भाषागत पार्थक्य होने के कारण दोनों के रचयिताओं के एक होने में भी सन्देह है। अभी पुष्ट प्रमाणों के अभाव के कारण इस सन्देह की निवृत्ति नहीं हो सकी है। परन्तु चण्डीदास का 'श्रीकृष्ण कीर्तन' और चण्डीदास की की पदावली दोनों को ही विद्वानों ने प्राक् चैतन्यकालीन वैष्णव साहित्य के अन्तर्गत माना है। इन दोनों के रचयिता एक ही चण्डीदास हैं इसमें सन्देह होने के कारण यहाँ पर हम केवल पदावली का ही विवेचन करेंगे।

चण्डीदास के पदों में राधिका के अत्यन्त कोमल और सुकुमार हृदय का परिचय मिलता है। उनकी राधिका परकीया नायिका है जिसका मिलन क्षणिक और उत्कंठा पूर्ण होता है। चण्डीदास ने राधा कृष्ण के पूर्व राग का वर्णन किया है। उसे अपने शरीर की सुधि नहीं श्याम का ही ध्यान है। उनकी राधा 'श्याम-नाम' श्रवण से ही पागल हो जाती है—

---

1. विद्यापति—जयनाथ नलिन, पृ. ८६

सइ केवा शुनाइल श्याम नाम ।
काणेर भितर दिया, मरमे पशिल गो, आकुल करिल मोर-प्राण ॥
ना जानि कतेक मधु श्याम नामे आछेगो, वदन छाड़िते नाहि पारे ।
जपिते जपिते नाम अवश करिल गो, केमने पाइव सइ तारे ॥
नाम परतापे जार ऐछन करिल गो, अगेर परशे किवा हय ।
जेखाने वसति तार नयने देखिया गो, जुवती धरम कैछे रय ॥
पासरिते करि मने पासरा न जाए गो, कि करिव कि-हवे उपाय ।
कहे द्विज चण्डीदासे कुलवती कुल नाशे, आप नार जौवन जांचाय ॥[1]

चण्डीदास की राधा के प्रेम में हृदय पक्ष प्रधान है। उनकी राधा अत्यधिक गम्भीर, तन्मय और मर्मस्पर्शिनी है। राधा जिस ओर दृष्टि डालती है प्रेमाधिक्य के कारण सब कुछ श्याममय ही दिखाई देता है। वह अपनी मर्मव्यथा को बड़े सुन्दर ढङ्ग से इस प्रकार व्यक्त करती है—

काहारे कहिब्र मनेर मरम केवा जावे परतीत ।
हियार माझारे मरम वेदना सदाई चमके चीत ॥
गुरुजन आगे दांडाइते नारि सदा छल'छल आंखि ।
पुलके आकुल दिक नेहारिते सब श्याम मय देखि ॥
सखीर सहिते जलेरे जाइते से कथा कहिवार नय ।
जमुनार जल करे झलमल ताहे कि पराणरय ॥
कुलेर धरम राखिते नारिनु कहिलाय सवार आगे ।
कही चण्डीदासे श्याम सुनागर सदाई हियाय जागे ॥[2]

अर्थात् मन के मर्म को किससे कहूं, कौन विश्वास करेगा। (मेरे) हृदय में मर्म वेदना है (जिससे) चित सदा ही चौंकता रहता है। गुरुजनों के आगे खड़ी नहीं हो पाती, (क्योंकि) आंखें सर्वदा छलछलायी रहती हैं। पुलक से आकुल जिधर देखती हूं सब श्याम मय ही दीखता है। सखी के साथ जल भरने को जाते हुए की बात कहने की नहीं, जमुना का जल झलमलाता है उसमें क्या प्राण (स्थिर) रह सकते हैं। (मैं) कुल-धर्म न रख सकी, (इससे) तुम्हारे सामने कहा। चण्डीदास कहते हैं कि श्याम सुनागर सदा ही हृदय में विराजित है।

कृष्ण ध्यान-रता राधिका की भाव मग्न दशा का अपूर्व चित्रण देखिए—

राधार कि हलो अन्तेरव्यथा ।
वसिया विरले थाकये एकले, नाशुने काहार कथा ।

---

१. चण्डीदास पदावली—नायिका पूर्वराग, १
२. चण्डीदास पदावली—अनुराग अपनंप्रति, १३६

सदाई धेयाने चाहे मेघ पाने, ना चले नयनेर तारा।
विरति आहारे गङ्गा वास परे, जे मन जो गिनी पारा।
एलाइया वेणी फुलेर गांथनि, देखये खसाये चुलि।
हसित वयाने चाहे मेघ पाने, कि कहे दुहात तुलि।
एक दिठि करि मयूर मयूरी, कण्ठ करे निरीक्षणे।
चण्डीदास कय, नव परिचय, कालिया वंधुर सने।[१]

अर्थात् राधा के अन्तर में कौन सी व्यथा हुई। वह एकान्त में अकेली बैठी रहती है, किसी की बात नहीं सुनती, सदा ध्यान मग्न रहती है, मेघों की ओर देखती रहती है, नयनों के तारे नहीं चलते (पुतली स्थिर रहती है) आहार में विरक्ति है, लाल (गेरुआ) वस्त्र पहनती है, योगिनी के जैसी (बनी हुई) है। वेणी को शिथिलकर, फूलों की गांथनि (ग्रन्थि) को खोलकर केशों को देखती है। स्मित मुख से मेघ की ओर ताकती है (और) दोनों हाथों को ऊपर उठाकर (न जाने) क्या कहती है। एक टक मोर मोरनी के कण्ठ (नीले रङ्ग) का निरीक्षण करती रहती है। चण्डीदास कहते हैं कि काले बन्धु (प्रियतम कृष्ण) के साथ नया परिचय (हुआ) है।

राधा का मन ही नहीं समस्त इन्द्रियाँ कृष्णमय हो गई हैं। वह लाख प्रयत्न करने पर भी इन्द्रियों को कृष्ण-विमुख करने में असमर्थ है—

जत निवारिये ताय निवार ना जाय रे।
आन पथे जाइ से कानु पथे धाय रे॥
ए छार रसना मोर हइल कि वाम रे।
जार नाम नाहि लइ लय तार नाम रे॥
ए छार नासिका मुइ कत करु बन्ध।
तबतु दारुण नासा पाय तार गन्ध॥
से ना कथा ना शुनिब करि अनुमान।
परसंगे शुनिते आपनि जाय कारण॥
धिक रहुँ ए द्वार इन्द्रिय मोर सब।
सदा से कालिया कानु हय अनुभव॥[२]

अर्थात् जितना भी उसे रोकती है, वह रोका नहीं जाता। दूसरे मार्ग पर चलते हुए ये (चरण) कानु पथ पर ही दौड़ पड़ते हैं। मेरी यह अभागी जीभ (मेरे

१. चण्डीदास पदावली—नायिका का पूर्व राग ६
२. चण्डीदास पदावली—अनुराग आत्म प्रति १४२

लिए) कैसी विपरीत हो गई, जिसका नाम (मैं) नहीं लेती यह (जीभ) उसी का नाम लेती है। इस अभागी नाक को मैं कितना ही बन्द करती हूँ, फिर भी (यह) नाक श्याम की तीव्र गन्ध पाती ही है। जिस बात को न सुनने का निश्चय किया है, (उसका) प्रसङ्ग सुनने पर कान अपने आप इधर चले जाते हैं। (इन्हें) धिक्कार है, मेरी सभी इन्द्रियाँ अभागी हैं, इन्हें सदा काले कानु का ही अनुभव होता रहता है।

प्रेम का ऐसा मृदुल रूप अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। राधा-कृष्ण की अन्तःसगिनी होने की अकांक्षा रखते हुए भी विलास की सहचरी नहीं होना चाहती। वह कृष्ण को आने का संकेत करती है। कृष्ण ऐसे समय में भी संकेत स्थल पर मिलने आते हैं जब मूसलाधार वृष्टि हो रही है और चारों ओर घोर अन्धकार छा रहा है। परन्तु राधा स्वाधीन नहीं है। आँगन में खड़े कृष्ण भीग रहे हैं। घर में रहने वाले गुरुजन, सास और ननद, राधा और कृष्ण के मिलन में बाधक हैं। अतः राधा किस प्रकार निकले। एक ओर वह अपनी विवशता और दूसरी ओर प्रीति को देखती है। दोनों को देखकर उसके मन में एक झंझावात उठ रहा है कि वह कलंक की टोकरी अपने सिर पर रखकर घर में आग लगा दे। उसका प्रेमी अपने दुख को सुख समझ रहा है केवल उसके दुख से दुखी है—

"सइ, कि आर बलिब तोरे।
अनेक पुन्य फले, से हेन बंधुया, आसिया मिलल भोरे।
ए घोर रजनी, मेघ घटा बंधू केमने आइल बाटे।
आंगिनार माझे, वंधुया तितिछे, देखिया परान घाटे।
घरे गुरुजन ननदी दारुन, बिलम्बे बाहिर होइनु,
आहा मरि, मरि, संकेत करि, कतना यातना दिनु।
बंधूर पिरीति आरति देखिया मोर मन हे न करे,
कलंकेर डालि माथाय करिया, आनल भेजाई घरे।
आपनार दुख सुख करिमाने आमार दुखे ते दुखी,
चण्डीदास कहे, कानुर पिरीति शुनिया जगत सुखी।

इस प्रकार वह गुरुजन बाधा, कलङ्क भय, मिलन भय, स्वभाव जन्य आकांक्षाओं एवं भावी मिलन से प्रसूत आनन्द का आश्रय ग्रहण करती है। राधा के लिए—

श्याम सुन्दर शरन आमार श्याम श्याम सदा सार।
श्याम से जीवन श्याम प्रान मन श्याम से गलार हार।
श्याम धन-जन, श्याम जातिकुल, श्याम से सुखेर निधि।
श्याम हेन धन अमूल्य रतन, भाग्ये मिलाइल विधि।

राधा का प्राण कृष्ण के प्राणमें अन्तर्निहित है—

तुम मोर पति तुम मोर गति मन नहिं आन भय।
कल की बलिया डाके सब लोके तहासे नाहिक दुःख।
वो मार लागिया कलङ्कर हार, गलाय परिते सुख।

राधा ही नहीं कृष्ण भी प्रेम की मूर्ति हैं। उस प्रेममयी के सामने भयानक काल रात्रि और निविड़ मेघ वर्णन तो कुछ है ही नहीं, अपितु उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि विधाता ने अमृत का खजाना एकत्रित करके चन्द्रमुखी राधा का निर्माण किया है। उसकी मधुर वाणी सुनते ही वह शिथिल हो जाते है और मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं—

"भरि कौन विधि, आनि सुधानिधि थुईल राधिका नामे।
सुनिते से वाणी अवशि तखनि मुरछि पड़िल हामे।"

वह स्थिर विजली के समान गौरवर्णवाली राधिका को पनघट पर देखते है जिसकी वेणी कन्नड़ स्त्रियों की वेणी के समान गुँथी हुई है और जिसके जूड़े में नव मल्लिका का सुन्दर फूल सुशोभित है—

"थिर बिजुरी वदन गोरि देख लूँ घाटेर कले।
कानड़ छाँदे कवरि बाँधे नर मल्लिकार फूले।"

कृष्ण के लिए संसार राधामय है। घर में, वन में, शयन में, भोजन में जहां देखो वहां राधा ही राधा है—

गृह माझे राधा, कानने ते राधा, सकले राधारे देखि।
शयने भोजने गमने राधिका, राधिका सदाइ मति।

चण्डीदास ने संयोग शृंगार के अन्तर्गत राधा के मान का भी वर्णन किया है। वास्तव में अपूर्वतन्मयता होने के कारण उनकी राधा में मान करने की क्षमता ही नहीं है। उनकी दसों इन्द्रियां तो मुग्ध हैं उसका मन मान करे किस प्रकार। अन्यत्र विहार करके आने पर श्रीकृष्ण की भेंट राधा से हो जाती है। राधा उनकी उनींदी एवं अलसाई हुई आंखें तथा शरीर पर रति के विविध चिह्नों से जान लेती है कि प्रियतम किसी अन्य स्त्री से प्रेम करने लगे हैं। इसलिये वह मान कर उलाहने देती है—

"छुँओना छुँओना बंधू ऐखाने थाको।
मुकुर लइया चाँद मुखखानि देखो।
नयनेर काजल बयाने लेगेछे कालेर उपर काल।
प्रभाते उठिया ओ मुख देखिलाम दिन जाबे आज भाल।

अधरेर ताम्बुल वयाने लगेछे घूमे ढुलु-ढुलु आँखि।
कुटिल नयने कहिछे, सुन्दरी अधिक करिया तोड़ा।
कहे चण्डीदास आपन स्वभाव छाड़िते न पारे चोरा।"

स्वजन, परिजन, अड़ोसी, पड़ोसी राधा के पर पुरुष के प्रति प्रेमासक्ति के कारण उसकी घोर निन्दा कर रहे हैं। पर कृष्ण-प्रेम दीवानी राधा को अपवाद के लिये रंचमात्र भी ग्लानि अथवा क्लेश नहीं क्योंकि—

तोमारइ गरबे गरबिनी हाम, रूपसी तोमार रूपे।

राधा के भाग्य से ही कृष्ण मिले हैं। मान करने के उपरान्त कृष्ण के चले जाने पर वह इस प्रकार पश्चाताप भी करती है—

आपन शिर हम आपन हाते काटि नू काहे करिनू हेन मान।
श्याम सुनागर नटवर शेखर काहाँ करल पयान।
तप वरत कत करि दिन यामिनी जो कानु को नहीं पाय।
हेन अमूल्य धन मझू पदे गड़ायल कोपे मुजि ठेलिनु पाय।

राधा की प्रीति का न आदि है और न अन्त; वह अपरिमेय है—

श्रीकृष्ण के मथुरा जाने का समाचार ललिता सखी आकर राधा को सुनाती है। परन्तु राधा को विश्वास ही नहीं होता कि उसका प्रेम पाश तोड़कर कृष्ण कहीं अन्य भी जा सकते हैं—

"ललितार कथा सुनि हाँसि हाँसि विनोदिनी कहिते लागिल धनी राई।
आमारे छाड़िया श्याम मधुपुरे जाइबेन एकथा तो कभु शुनि नाई॥
तोमरा जे बल श्याम मधुपुरे जाइबेन कोन पथे बंधू पलाइबे।
एवक चिरिया जने बाहिर करिया दिन तने तो श्याम मधुपुरे जावे॥"

दुःख और क्रोध से सन्तप्त राधा अभिशाप देती है—जिसने इस प्रचण्ड यातना की अग्नि में मुझे तिल-तिलकर जलाया है, भगवान् उसे भी यही गति दे—

आमार पराण जे मति करिछे से मति हउक से।

इस असह्य पीड़ा से मुक्ति पाने के लिये राधा कामना करती है—

विधि जदि शुनित मरण हइत घुचित सकल दुख।

अर्थात् विधि यदि सुनता और मरण होता तो सब दुःखों से पीछा छूटता।

इस अपार दुःख से मरकर मुक्ति तो अवश्य मिल जावेगी परन्तु प्रिय को भी तो एक बार इस दुःख की अनुभूति होनी चाहिए जिससे वह समझ सकें कि राधा ने किस प्रकार असह्य वेदना के कारण प्राण त्यागे—

वंधु कि आर बलिब तोरे।
आपना खाइया पिरीति करिनु रहिते नारिनु घरे॥
कामन करिया सागरे मरिब साधिब मनेर साधा।
मरिया हइब श्री नन्देर नन्दन तोमारे करिब राधा॥
पीरित करिया छाड़िया जाइब रहिब कदम्ब तले।
त्रिभंग हइया मुरली पूरिब जखन जाइबे जले॥
मुरली शुनिया मुरछा हइबे सहजे कुलेर बाला।
चण्डीदास कये तबे से जानिबे पीरित केमन ज्वाला॥[1]

कृष्ण मथुरा चले गए हैं और वहाँ से पुनः लौटकर नहीं आते, परन्तु राधा एक क्षण के लिए भी उन्हें भूल नहीं पाती। वह ध्यान में इतनी तन्मय हो जाती है कि स्वप्न में ही प्रिय को प्रत्यक्ष पा सुख प्राप्ति से उसका मन उल्लास से नाच उठता है—

---

१. चण्डीदास पदावली ३७, बङ्गीय साहित्य परिषद् से प्रकाशित।
यह पदावली में ज्ञानदास की छाप से मिलता है।

बहु दिन परे बंधुया एले। देखा ना हइत पराण गेले ॥
एतेक सहिल अबला बले। घाटिया जाइत पाषाण हले ॥
दुखि नीर दिन दुखेते गेल। मथुरा नगरे छिले त भाल ॥
ए सब दुख किछु ना गणि। तोमार कुशले कुशल मानि ॥
सब दुख आजि गेल हे दूरे। हारान रतन पाइलाम कोरे ॥
(एखन) कोकिल आसिया करुक गान। भ्रमरा करुक ताहार तान ॥
मलय पवन बहुक मन्द। गगने उदय हउक चन्द ॥
वाशुली-आदेशे कहे चण्डीदासे। दुख दूरे गेल सुख-विलासे ॥[1]

राधिका कृष्ण-विरह के कारण योगिनी हो जाती है। व्यथा के कारण एकान्त में बैठी किसी की बात नहीं सुनती। खाना पीना छोड़ मेघों की ओर टक-टकी लगाये रहती है। उसकी अपूर्व तन्मयता देखिए—

आलो राधार कि हलो अन्तरे व्यथा।
बसिया विरले थाकइ एकले ना शुने काहारो कथा ॥
सदाइ ध्याने चाहे मेघ पाने न चले नयनेर तारा ॥
विरति आहारे रांगावास परे येन योगिनीर पारा ॥

राधिका की एक ही कामना और साध है कि जन्म हो या मरण उसके बन्धु ही जन्म-जन्म में उसके प्राणनाथ हों क्योंकि उनके चरणों ने राधिका के प्राणों में प्रेम की फाँस बाँध दी है। वह सब समर्पण कर एक चित्त हो कृष्ण की दासी हो गई है—

बंधू कि आर बलिब आमि।
मरणे-जीवने, जनमे-जनमे, प्राणनाथ हइओ तुमि ॥
तोमार चरणे आमार पराणे बांधिल प्रेमेर फांसि।
सब समर्पिया एक मन हइया निश्चय हइलाम दासी ॥

वह कहती है, तुम मेरे पति, तुम मेरे गति हो, मन को और दूसरा नहीं भाता। सब लोग कलंकी कहते हैं उसका दुःख मुझे नहीं। तुम्हारे लिए कलंक का हार पहनने में भी सुख है। तुम्हारे चरणों में पाप पुण्य सभी बराबर है—

बंधु तुमि हे आमार प्रान।
देह, मन आदि, तोहारे सँपेछि, कुलशील जाति मान ॥
अखिलेर नाथ तुमि हे कालिया, जोगीर आराध्य धन।
गोप गोयालिनी हाम अति हीना, ना जानि भजन पूजन ॥

१. वैष्णव पदावली ३१, मधुर मिलन और भाव सम्मेलन।

नहीं है।[1] वह सामान्य नारी से बहुत श्रेष्ठ है और अपने बन्धु से अपने कुवचनों के लिये क्षमा भी मांग लेती है।[2] उसकी प्रीति का संयोग पक्ष संतोष प्रद और वियोग पक्ष शान्त प्रद है। उसे बन्धु बड़े पुण्य फलों से मिला है।[3] वह अपना सर्वस्व अपने अन्तःकरण के देवता के चरणों में अर्पित कर देती है और अपने आपको प्रीति की ज्वाला में गलाती है। प्रेमोन्मादिनी राधा नाना विघ्न बाधाओं में चमक उठती है। वह विलास की प्रतिमा न होकर भक्ति की मूर्ति है। वह न जयदेव की राधा की भाँति प्रगल्भा और विलासवती है, न विद्यापति की राधा की भाँति रूप मधुरा किशोरी है वरन विशुद्ध प्रेम की मूर्ति है। उसका प्रेम अनुपम और स्वर्गीय है।

चण्डीदास और विद्यापति की राधा का तुलनात्मक चित्रण—

विद्यापति और चण्डीदास दोनों ही ने अपने साहित्य में श्याम की अपेक्षा राधा की भावनाओं का अधिक चित्रण किया है। विद्यापति की राधा में करुणा कम और सुख अधिक है, वियोग कम और विलास अधिक है। चण्डीदास की राधा में स्वाभाविकता, गम्भीर बनाने वाली वेदना और समाज की मर्यादा को तोड़ने वाला प्रेम है। विद्यापति की राधा मुग्धा नायिका है। वह श्याम के रूप पर आकृष्ट हो सखी की बातों में आ श्याम से गुप्त प्रेम करती है। परन्तु नायक 'पिशुन' होने के कारण उस स्नेह का निर्वाह नहीं कर सकता इस हेतु राधा को अपनी भूल पर जीवन भर पछताना पड़ता है। चण्डीदास की राधा किसीके द्वारा लिया हुआ श्याम का नाम सुनकर सोचती है कि जिसके नाम में इतना मधु है उसका रूप कितना आकर्षक होगा। इस प्रकार उसका आकर्षित होना पूर्व संस्कारों के कारण ही प्रतीत होता है। उसे ऐसा भी आभास होता है कि इस सामान्य घटना का परिणाम दाहक हो सकता है। विद्यापति की राधा का प्रेम श्याम के नाम श्रवण से प्रारम्भ न होकर रूप दर्शन से प्रारम्भ होता है। विद्यापति की राधा भावी कलंक की कल्पना न कर विचार करती है कि क्षणभर की परवशता दोनों को स्थायी स्नेह सूत्र में बांध सकती है। विद्यापति की राधा केलि-कलावती तथा विलास विदग्धा है,

---

१. चण्डीदास बले केन कहू हेन कथा ।
शरीर छाड़िले प्रीति रहिबेक कोथा ॥

२. अबला जनेर दोष ना लइबे, सिबे कत हुबे दोष ।
तुमि दया करि, कृपा ना छाड़िह, मोरे ना करिह रोष ॥

३. सइ कि, आर बलिब तोरे ।
अनेक पुण्य फले से हेन बंधुया, आनिया मिलल मोरे ।

वह अनेक प्रकार से नायक से मिलती है और नायक भी संकेत स्थल पर पहुँच जाता है। मन की वासनायें रात भर विलास मग्न रहने पर भी तृप्त नहीं होती—

पहिलुक परिचय प्रेमक संचय, रजनी आध समाजे।
सकलि कला रस सँभरि न भेले, वैरिनि भेलि मोर लाजे॥

विलास के जितने सुन्दर चित्र विद्यापति में मिलते हैं उनके शतांश भी चण्डीदास में नहीं। विद्यापति की राधा विलास कलामयी, ईषदभिन्न यौवना रूप लावण्यमयी और किशोरी है। विद्यापति की राधिका में प्रेमवेदना की अपेक्षा विलास है, धैर्य का अभाव है और नवानुराग से उद्भ्रान्त लीलाओं में चाञ्चल्य है।

विद्यापति की राधा भोली भाली सरला है। चण्डीदास की राधा संसार को देखकर जानती है कि प्रीति में कितनी बाधा हो सकती है। उसका निर्वाह कितना कठिन और अन्त कितना करुण होता है। आन्तरिक प्रेरणा के कारण सब कुछ देखते हुए भी राधा अपना जीवन प्रेम बलि वेदी पर अर्पण कर देती है। वह चेतना के साथ करुणासागर में हँस-हँसकर गोता लगाती है—

सइ केवले पीरित भाल।
हासिते हासिते पीरिति करिया, काँदिते जनम गेल॥

चण्डीदास की राधा का प्रिय अपने दुःख को तो सुख मानता है और राधा के दुख से दुखी है, ऐसी प्रीति सचमुच बड़े सौभाग्य का फल है—

अपनार दुख, सख धरि माने, आमार दुःखेर दुःखी।
चण्डीदास कय, बँधूर पीरित, शुनिया जगत सुखी॥

राधा कभी-कभी अन्तरङ्ग सखी से अपनी वेदना को इस आशा से कह देती है कि वह उसे प्रोत्साहित ही करेगी—

सुखेर लागिया पीरित करिलु, श्याम बन्धुयार सने।
परिणामें एत दुख हवे वले, कोन अभागिनी जाने॥
सइ, पीरित विषम मानि।
एत सुखे, एत दुख हवे बले, स्वपने नाहिक जानि॥

चण्डीदास की सखी कितना प्रोत्साहित करती है—

भरम न जाने, धरम वाखाने, एमन आछये जारा।
काज नाइ सखि, तादेर कथाय वाहिरे रहुन तारा॥
पीरित लागिया, अपना भुलिया, परेते मिशिते पारे।
परके आपन करिते परिले, पिरिति मिलये तारे॥

से अश्रु प्रवाहित करते हैं। चण्डीदास का प्रेम अपूर्व और अद्वितीय है। इस प्रेम में दो प्राणों का अटूट बन्धन है। यहाँ भावी विच्छेद की आशङ्का के ही कारण उपलब्ध संयोग का उपभोग वर्जित है—

एमन पीरित कमु नाहि देख शुनि।
पराणे पराण बाँधा अपना-आपनि।
दुहुँ कोड़े दुहुँ काँदे विच्छेद भाविया।
आध तिल ना देखिले जाय भे भरिया।
जल बिनु मीन जेन कबहूँ न जीये।
मानुषे एमन प्रेम कोथा ना शुनिया।
× × ×
चातक जलद कहि-से नेह तुलना।
समय नहिले से नाय देय एक कणा।
कुसुमे मधुप कहि-सहो नहे तूल।
ना आइले भ्रमर आपनि ना जाय फूल।
कि छार चकोर चाँद-दुहुँ सने नहे।
त्रिभुवने हेन नाहि चडीदास कहे।

विद्यापति की राधा नवीना है; नवस्फुटा है। उसमें कुछ व्याकुलता भी है, आशा निराशा का आन्दोलन भी है। चण्डीदास की राधा में कुछ तरल भाव है, विद्यापति की राधा में कुछ उतावलापन जिस प्रकार नवीना के नये प्रेम में विचित्र कौतुक और कौतूहल भरा होता है वैसा विद्यापति की राधा में है। चण्डीदास गम्भीर और व्याकुल है विद्यापति नवीन और मधुर।



षष्ठ-अध्याय

विभिन्न सम्प्रदायों के कवियों का राधा का स्वरूप



षष्ठ अध्याय

विभिन्न सम्प्रदायों के कवियों का राधा का स्वरूप

वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों का राधा का स्वरूप

सूर की राधा

पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का रस-रूप उनकी रसात्मक शक्तियों के बिना अपूर्ण है। भगवान अपनी ही शक्तियों का प्रसार रस-शक्तियों के रूप में करके अपने में ही रमते हैं। गोपिकाएँ और राधा कृष्ण की अंशस्वरूपा शक्ति और उससे अभिन्न हैं। पूर्ण रस-शक्ति स्वरूपा राधा के वश में भगवान् रहते हैं जो रस शक्तियों के बीच में स्थित हैं। भगवान् की आदि शक्ति राधा हैं। राधा और कृष्ण का सम्बन्ध चन्द्रमा और चन्द्रिका सदृश है और गोपिकायें रश्मियाँ हैं। राधा रसात्मक सिद्धि की प्रतीक है। गोपी आत्मा और कृष्ण परमात्मा हैं। गोपियों का कुञ्ज में कृष्ण मिलन ही आत्मा का भगवान से मिलन है।

एकतान्त अथवा प्रेम लक्षणा भक्ति किंवा रागानुगा भक्ति का अंतिम परिपाक कान्ताभाव अथवा स्वकीया भाव में ही है। इसलिये वल्लभाचार्य को 'राधा भाव' के लिये भागवतातिरिक्त अन्य स्रोतों का ऋण भी ग्रहण करना पड़ा। इसीलिये उनके परिवृढाष्टक में भी भागवत की गूढ़ शैली की भाँति एक 'गोप कन्या' की चर्चा आई है।[1] परिवृढाष्टक की यह पशुभजा अन्य कोई नहीं वृषभान गोप की कन्या श्रीराधिका ही है। परिवृढ शब्द ही प्रभुवाची है। श्रीराधिका, श्रीकृष्ण की प्रथम स्वामिनी हैं और उनके नायक हैं श्रीकृष्ण ! इसी अष्टक में आचार्यजी ने राधा के दर्शन से कृष्ण के हृदय में रति का प्रादुर्भाव माना है अपने ही 'कृष्ण प्रेमामृत' ग्रन्थ में आचार्यजी ने स्पष्ट लिखा है—

> यमुन्नानाविको गोपी परावार कृतोद्यमः।
> राधा वरुंधनरतः कदंब वन मंदिरः॥ श्लोक २४।

आगे चलकर वे लिखते हैं—

> गोपिका कुच कस्तूरी पंकिलः कोकिला लसः।
> अलक्षित कुटीरस्थो राधा सर्वस्व संपुटः॥२६॥ '

---

१. कलिंदो वनूतायास्तट मनुचरंती पशुपंजा।
रति प्रादुर्भावो भवतु सतत श्री परिवृढे ॥१॥
—आचार्य कृत परिवृढाष्टक, श्लोक १

एक अन्य स्थान पर लिखा है—

रासोल्लास मदोन्मत्तो राधिका रति लंपटः ॥३२॥

महाप्रभु वल्लभाचार्य कृष्णाष्टक में लिखते हैं—

श्री गोप गोकुल विवर्धन नन्द सूनो।
राधामते व्रजजनार्ति हरावतार ।
मित्रात्मजा तट विहारण दीनवंधो।
दामोदराच्युत विभोपम देहि दास्यम् ॥१०॥

वे आगे लिखते हैं—

श्री राधिका रमण माधव गोकुलेंद ।
सूनो पदुत्तम रभ मचित पाद पद्म ॥२॥

डा० गोवर्द्धन नाथ शुक्ल भी इस बात को मानते हैं कि, "जो भी हो महाप्रभु ने राधातत्त्व को माधुर्य भाव के पूर्ण परिपाक के लिए अन्य स्रोतों से ग्रहण किया और उसको परिपुष्ट कान्ताभाव के आदर्श के लिये उपयोग भी किया।"[1]

गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने राधा की स्तुति में 'स्वामिन्याष्टक' और 'स्वामिनी स्तोत्र' दो ग्रन्थ लिखे। शक्ति स्वरूपा गोपियों में राधा स्वामिनी हैं। राधा के रस-रूप ईश्वर की आदि रस-शक्ति और भक्ति में सिद्ध-भक्ता ये दो रूप हैं। कृष्ण राधा के साथ क्रीड़ा कर आत्मानन्द में मग्न और उसके वश में रहते हैं। कृष्ण परब्रह्म और राधा उन्हीं की शक्ति या प्रकृति हैं। गोपियाँ जीवात्माएँ और मुरली योगमाया है। जीवात्मा का परमात्मा के साथ आनन्दमय लय होना ही रास है। श्रीकृष्ण ब्रह्म के, राधिका उनकी आह्लादिनी शक्ति की और गोपियाँ भक्त आत्माओं की प्रतीक हैं। इस प्रकार विश्व में जीवात्मा परमात्मा और प्रकृति का जो शाश्वत रास चल रहा है सूर का रास वर्णन उसी का प्रतीक है।

सूर ने 'सूरसागर' के दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध में माया के दूसरे स्वरूप का चित्र खींचा है। इस स्कन्ध में राधा ही माया का दूसरा स्वरूप है। महाप्रभुजी ने भी माया के इस दूसरे स्वरूप को माना है परन्तु उसे राधा के रूप में प्रकट करना सूरदास की मौलिकता है। दर्शन शास्त्रों में शक्ति, श्री और सीता को जो मान्यता मिली है वही उन्होंने राधा को प्रदान की है। कृष्ण पुरुष है और राधा प्रकृति। सूर के शृंगार की पृष्ठ-भूमि यद्यपि आध्यात्मिक है, और वे राधा-कृष्ण को प्राकृतिक

1. परमानन्द और उनका साहित्य—डा० गोवर्द्धन नाथ शुक्ल, पृ ३१३

पुरुष न मानकर प्रकृति और पुरुष का रूप मानते हैं फिर भी उनके वर्णन लौकिक हैं।

सूरदास ने गोपियों को इस लोक की नारी न मानकर श्रीमद्भागवत के अनुसार श्रुतिरूपा माना है। गोपियाँ भगवान् के साथ रमण करने की इच्छा प्रगट करती हैं और भगवान् 'एवमस्तु' कहते हैं—

स्रुवित कह्यौ ह्वै गोपिका केलि करौ तुव सङ्ग।
एवमस्तु निज मुख कह्यौ पूरन परमानन्द॥

× × ×

धरौं तहाँ मैं गोप वेश सो पंथ निहारौ।
तव तुम होइकै गोपिका करिहौ मोसौ नेह।
करौं केलि तुम सौं सदा सत्य बचन मम एह।

इस प्रकार गोपियाँ श्रुतिरूपा और राधा मूल प्रकृति रूपा है। दोनों ने भगवान् के साथ केलि करने के लिए अवतार लिया है। श्रुति राधा के प्रेम और भक्ति साधना को समझने में सर्वथा असमर्थ हैं। जब भी श्रुति रूप गोपियाँ राधा से उनके कृष्ण के साथ प्रेम के सम्बन्ध में पूँछती हैं तभी वे उन्हें परमपद के अयोग्य जान छिपा लेती हैं। 'सूरदास की राधा आदि वृन्दावन की भाँति ही इस भूतल पर निरन्तर केलि करती है। कवि ने उनके आध्यात्म रूप का' ही वर्णन किया है जहाँ सांसारिक परकीयात्व मानने के लिये कोई स्थान नहीं।"[1]

त्रिगुणात्मक प्रकृति जो सृष्टि का आदि कारण थी ब्रह्मवैवर्त में श्रीकृष्ण के वामाङ्ग को सुशोभित करने वाली, सुख देने वाली अर्द्धाङ्गिनी राधा के रूप में आ जाती है और पुरुष निर्गुण ब्रह्म, आदि पुरुष, पुरुषोत्तम रूप से भगवान् कृष्ण का रूप धारण करता है। सूरदास का प्रकृति और पुरुष का वर्णन ब्रह्मवैवर्त का वर्णन है। सूर ने राधा को भगवान् की जगत उत्पादिका शक्ति बताया है और कृष्ण भक्ति के लिये शक्ति-स्वरूपा राधा की वन्दना की है।[2] जिस प्रकार गुण गुणी से, शक्ति आश्रय से पृथक नहीं है उसी प्रकार राधा कृष्ण से पृथक् नहीं हैं। सूर का कथन है, "राधा तू वही तो सीता है, जिसे राम ने समुद्र पर पुल बाँधकर और रावण जैसे

---

१. सूर की राधा और परकीयावाद—ब्रजभारती, वर्ष १३ अङ्क १, पृ. ५५

१. सूरसागर दशम स्कन्ध वे. प्रे., पृ. ३४५-३४६

दुर्द्धर्ष शत्रु को रण में पराजित करके प्राप्त किया था।"[1] समुद्र-मंथन और श्रीपति शब्दों से सूर ने राधा और लक्ष्मी की एकता को प्रकट किया है। सामान्य रूप से सूर ने रमा, कमला और श्री को और तात्विक दृष्टि से राधा, लक्ष्मी और श्री को एक माना है। सूर एक ओर पुरुष और प्रकृति को भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी अर्द्धाङ्गिनी राधा का स्वरूप मानते हैं और दूसरी ओर वह दोनों को गोपाल का अंश मानते हैं। उन्होंने जहाँ श्रीमद्भागवत के अनुसार वर्णन किया है वहाँ प्रकृति और पुरुष को जीव और माया के रूप में माना है अन्यथा उनके प्रिया-प्रियतम ही पुरुष और प्रकृति रूप वाले हैं।

राधा ही माया की भाँति कृष्ण की शक्ति हैं। राधा माया का अनुग्रहकारी रूप है। शिव के साथ शक्ति का, विष्णु के साथ श्री (लक्ष्मी) का, राम के साथ सीता का जो स्थान है वही स्थान राधा का है। वे प्रकृति की प्रतीक हैं। सूरसागर के दशम स्कन्ध में कृष्ण-राधा को यह बताते हैं कि वे परब्रह्म और राधा 'सुख-कारण' उत्पन्न की हुई उनकी पुरातन पत्नी प्रकृति हैं। उनके चरणों की उपासना करने वाले राधा-कृष्ण की भक्ति का वरदान पाते हैं। राधा प्रकृति का रूपक है जो ब्रह्म की शक्ति या माया कहलाती है। वे कृष्ण की आह्लादिनी अथवा अनुग्रह कारिणी शक्ति हैं। सूर ने कदाचित विद्यापति से प्रभावित होकर राधा को कृष्ण की प्रेयसी और उनकी शक्ति माना है वह कृष्ण के वामाङ्ग से आविर्भूत समान अधिकार वाली और उनके साथ रहने वाली हैं।[2] राधा और माधव दोनों एक रूप हैं—

---

१. समुझि री नाहिन नई सगाई।
सुनि राधिके तोहि माधो सों, प्रीति सदा चलि आई॥
जब जब मान कियो मोहन सों, विकल होत अधिकाई।
विरहानल सब लोक जरत है, आपु रहत जल-साई॥
सिंधु मथ्यो, सागर-बल बांध्यो, रिपु रन जीति मिलाई।
अब सो त्रिभुवन-नाथ नेह-बस, बन बांसुरी बजाई॥
प्रकृति पुरुष, श्रीपति, सीतापति, अनुक्रम कथा सुनाई।
सूर इतो रस रीति स्याम सों, तैं ब्रज बसि बिसराई॥
—सूरसागर ना. प्र. सभा. २८१६, ३४३४

२. राधा हरि आधा आधा तन एकै ह्वै ब्रज में ह्वै अवतरि।
× × ×
प्रान एक ह्वै देह कीनो भक्ति प्रीत प्रकास।
× × ×
एक प्रान द्वै देह हैं दुविधा नहिं यामें।

राधा माधव के रङ्ग रांची राधा माधव रङ्ग रई।
'सूरदास' प्रभु राधा माधव व्रज विहार नित नई नई ॥

× × ×

राधा स्याम स्याम राधा रङ्ग।
पिय प्यारी को हृदय राखत प्यारी रहत सदा हरि के रङ्ग ॥

सूरदास ने बताया है कि जब जब श्रीकृष्ण भूतल पर पधारते हैं तब तब राधा का भी प्रादुर्भाव उनके दिव्य विग्रह स्वरूप के साथ होता है। उन्होंने बताया है कि राधा के गृह में कृष्ण सदेह वास करते हैं और अन्य स्थानों पर उनका प्रकाश मात्र ही रहता है—

राधिका गेह हरि देह वासी। और तिय घर तनु प्रकासी।
ब्रह्म पूरन एक दुतीय कोऊ। राधिका सबै हरि सबै कोऊ॥
दीप सों दीप जैसे उजारी। तैसे ब्रह्म घर-घर विहारी॥

ब्रह्म ने अपने में सुख अनुभव करने के लिये गुण, कर्म और स्वभाव को ग्रहण करके निज को दो भागों में विभक्त किया, जिसमें एक भाग कृष्ण और एक भाग राधा है। श्री चन्द्रबली पांडे लिखते हैं, "सूरदास ने गुप्त लीला को प्रकट लीला से सर्वथा भिन्न रखा है और समय समय पर बराबर यह बताते रहे हैं कि विलास और आनन्द के हेतु ही एक प्राण दो शरीर में विभक्त हो गया है और वही राधा-कृष्ण के रूप में नित्य रासलीला कर रहा है।"[१]

सूरदास वल्लभ के पुष्टिमार्ग के अनुगामी थे जिसके अनुसार कृष्ण परब्रह्म परमात्मा हैं और राधिका उन्हीं के अङ्ग से उद्भूत हुई उन्हीं की अंशस्वरूपा हैं, सूरदास ने भी इस सिद्धान्त का स्पष्टीकरण किया है। राधिका के नृत्य में थक जाने पर और उनके यह कहने पर कि मुझे कन्धे पर चढ़ालो, कृष्ण भगवान् स्वयं राधिका को अपने ही नहीं उनके भी स्वरूप का ज्ञान इन शब्दों में कराते हैं—

मैं अविगत, अज अकल हौं, यह भरम न पायो।
भाव वस्य सब पै रहौं, निगमनि यह गायो॥
एक प्रान द्वै देह हैं, द्विविधा नहि यामें।[२]

राधिका और कृष्ण एक प्राण और दो देह के रूप में ही अवतरित हुए हैं, वास्तव में राधा जीव हैं और सोलह सहस्र गोपिकाएँ देह हैं—

---

१. हिन्दी कवि चर्चा—चन्द्रबली पांडे, पृ. २२०
२. सूरसागर नागरी प्रचारणी सभा दशम स्कन्ध पद १७१६

सोरह सहस पीर तनु एकै, राधा जिव, सब देह ।[१]

व्यासजी के पुराणों में बताये हुए समस्त श्रुतियों के सार को सूर ने भी बताया है। उनका कथन है कि ब्रज सुन्दरियाँ नारियाँ नहीं हैं, वे सब श्रुतियों की ऋचाएँ हैं।[२] उन्हीं वेद की ऋचाओं ने गोपिका होकर हरि के साथ विहार किया है। जो कोई भी हरि-पदों को हृदय में रखकर पति-भाव से ध्यान करता है वह स्त्री हो अथवा पुरुष श्रुतियों की ऋचा की गति को प्राप्त होता है।[३] राधा और मोहन एक हैं।[४] राधा और हरि का तन आधा आधा है। वे एक होकर भी दो रूपों में अवतार लेते हैं।[५] राधा और कृष्ण में कोई घट बढ़कर नहीं है। श्याम नागर और राधिका नागरी हैं। दोनों के प्राण एक हैं और शरीर दो हैं।[६] राधा प्रकृति और कृष्ण पुरुष हैं जल और थल पर ऐसा कोई भी स्थान नहीं है जहाँ राधा कृष्ण के बिना रहती हों। राधा और कृष्ण के दो तन होते हुए भी जीव एक ही है और उनकी उत्पत्ति सुख हेतु होती है।

ब्रजहि बसे आपुहि बिसरायौ।
प्रकृति पुरुष एकहि करि जानहु, बातनि भेद करायौ ॥
जल थल जहाँ रहौं तुम बिनु नहि वेद उपनिषद गायौ।
द्वै-तन जीव-एक हम दोउ, सुख-कारन उपजायौ ॥
ब्रह्म-रूप द्वितिया नहि कोऊ, तब मन तिया जनायौ।
सूर स्याम-मुख देखि अलप हँसि, आनन्द-पुंज बढ़ायौ ॥[७]

समस्त वेद और पुराण कहते हैं कि जिस प्रकार प्रकृति और पुरुष कभी भी पृथक नहीं हैं उसी प्रकार राधा माधव दो नहीं हैं—

राधा माधौ दोय नहीं।
प्रकृति पुरुष न्यारे नहि कबहूँ वेद पुरान कहत सबहीं।

---

१. सूरसागर पद १७४१
२. ब्रज सुन्दरि नहि नारि, रिचा स्रुति की सब आहीं। सूरसागर पद १७९३
३. वेद ऋचा ह्वै गोपिका, हरि-सङ्ग कियो विहार।
जो कोउ भरता-भाव, हृदय धरि हरि-पद ध्यावै।
नारि पुरुष कोउ होइ, स्रुति-ऋचा-गति सो पावै। वही पद १७९३
४. नर-नारी सब यहै चलावत, राधा मोहन एक। वही पद २३०१
५. राधा हरि आधा तनु, एक ह्वै द्वै ब्रज मैं अवतरि। वही पद २३११
६. मैं इनको घटि बढ़ि नहि जानति, भेद करै सो को है।
सूरस्याम नागर, यह नागरि, एक प्रान तन दो हैं ॥ वही पद २५२१
७. सूरसागर पद २३०५।

देह भेद तैं भेद जानि कै मति भ्रम भूलैं लोइ।
ब्रह्मा के स्थावर चर माहीं प्रकृति पुरुष रहे गोइ॥
भक्त-हेत अवतार धर्‌यौ ब्रज पूरन पुरुष पुरान।
सूरदास राधा माधौ के तन द्वै एकै प्रान॥[1]

जिस प्रकार छाया और वृक्ष दो नहीं हैं; जिस प्रकार दो नेत्र और दो श्रवण होते हुये भी कहने सुनने को दो नहीं हैं। जिस प्रकार स्वर्ण और उसके आभूषण, जल और उसकी तरङ्ग दो नहीं हैं, उसी प्रकार राधा और माधव भी दो नहीं हैं—

छाया तरुवर दोइ नहीं।
नैन दोइ ज्यौं स्रवन दोइ ज्यौं कहन सुनन कौं दोइ नहीं॥
दोइ न कंचन-भूषन कवहूँ जल तरङ्ग ज्यौं दोइ नहीं।
त्यौं हीं जानि सूर मन वंचक राधा माधौ दोइ नहीं॥[2]

भगवान् श्याम भक्तों को सुख देने वाले हैं। कामातुर गोपियों ने मन-वचन और कर्म से चित्त हरि में लगाकर उनका ध्यान किया और छहों ऋतुओं में शरीर को गलाकर तप किया कि गिरिधारी हमारे पति होवें। अन्तरयामी भगवान् सबके मन की जानने वाले हैं। उन्होंने प्राचीन प्रेम का पालन किया है और इसीलिये गोपियों के वस्त्र हर कर उन्हें सुख दिया है।[3] प्रकृति रूपा राधा और पुरुष स्वरूप कृष्ण का सम्बन्ध पत्नी और पति का है। उनका प्रेम भी प्राचीन है और यह लीला जन्म-जन्म और युग-युग में चलती रहती है—

तब नागरि मन हरख भई।
नेह पुरातन जानि स्याम कौ, अति आनन्द भई॥
प्रकृति पुरुष, नारी मैं, वे पति, काहैं भूलि गई।
को माता, को पिता, बन्धु को, यह तौ भेंट नई॥
जन्म-जन्म, जुग-जुग यह लीला, प्यारी जानि लई।
सूरदास-प्रभु की यह महिमा, यातैं विवस भई॥[4]

---

१. सूरसागर परिशिष्ट, पद ५
२. ,, ,, ६
३. चितदै भजै कौनहूँ भाउ। ताकौं तैसौं त्रिभुवन-राउ॥
कामातुर गोपी हरि ध्यायौ। मन-वच-क्रम हरि सौं चित लायौ॥
षट ऋतु तप कीन्हौं तनु गारो। होहि हमारे पति गिरिधारी॥
अन्तरजामी जानी सबकी। प्रीति पुरातन पाली तबकी॥ वही पद २०७८
४. सूरसागर पद २३०६

प्राचीन प्रेम के कारण राधा और कृष्ण की जोड़ी बचपन से ही सुशोभित होती है। सूर की राधा बचपन से ही हमारे सामने आने लगती है सूर ने राधा कृष्ण के प्रथम साक्षात्कार के अवसर पर भी बालकोचित भावना एवं अबोधिता की रक्षा की है। राधा का कृष्ण से प्रथम परिचय उनके "भौंरा-चकडोरी" खेल के समय होता है। कृष्ण के बाहर निकलने पर अचानक ही समवयस्क बालिकाओं के साथ चली आती हुई राधा पर उनकी दृष्टि पड़ जाती है। उसके नेत्र विशाल हैं, मस्तक पर रोली लगी है, नीले वस्त्र और कटि में फरिया पहने है, पीठ पर लटकती हुई वेणी है। वह दिनों की थोड़ी, छवि से युक्त और तन की गोरी है। श्याम देखते ही रीझे और नेत्रों के नेत्रों से मिलने पर ठगोरी पड़ गई।[1] उसमें आसक्ति की मात्रा अधिक न होकर केवल कैशोर की चंचलता और उत्सुकता है। राधिका निर्भीक है। उसमें यौवन जन्य लज्जा नहीं है। श्याम राधा से परिचय पूँछते हैं? तुम कहाँ रहती हो? तुम कौन की बेटी हो? तुमको कहीं ब्रज में नहीं देखा। राधिका ने अनजानी मुद्रा बनाकर उत्तर दिया—'हम ब्रज तन क्यों आवें,' अपनी पौरी में ही खेलती रहती हैं। हम तो वहीं सुनती रहती हैं कि नन्द का पुत्र मक्खन और दही की चोरी करता फिरता है। कृष्ण कहते हैं कि, "हमने तुम्हारा क्या चुराया है जोरी मिलकर साथ खेलने चलो।" इस प्रकार रसिक शिरोमणि कृष्ण ने भोली राधिका को बातों में भुला लिया।[2] यह दोनों के मन में उत्पन्न हुआ प्रथम स्नेह

---

१. खेलत हरि निकसे ब्रज-खोरी।
कटि कछनी पीताम्बर बांधे, हाथ लए भौंरा, चक डोरी॥
मोर-मुकुट, कुंडल स्रवननि वर, दसन-दमक दामिनि-छवि छोरी।
गए स्याम रवि-तनया के तट, अङ्ग लसति चन्दन की खोरी॥
औचक ही देखी तहँ राधा, नैन विसाल भाल दिए रोरी।
नील वसन फरिया कटि पहिरे, बेनी पीठि रुलति झकझोरी॥
सङ्ग लरिकिनी चलि इत आवति, दिन-थोरी, अति छवि तन-गोरी।
सूर-स्याम देखत ही रीझे, नैन-नैन मिलि परी ठगोरी॥
सूरसागर पद ६७२॥ १२९०॥

२. बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहति, काकी है बेटी, देखी नहीं कहूँ ब्रज-खोरी॥
काहे कौं हम ब्रज तन आवति, खेलति रहति आपनी पौरी।
सुनत रहति स्रवननि नंद-ढोटा, करत फिरत माखन-दधि-चोरी॥
तुम्हरो कहा चोरि हम लैहैं, खेलन चलौ संग मिलि जोरी।
सूरदास प्रभु रसिक-सिरोमनि, बातनि भुरइ राधिका भोरी॥
सूरसागर पद ६७३॥ १२९१॥

था। नेत्रों में ही बातें हो गई मानों कोई छिपी हुई प्रीति हो। कृष्ण, राधा से कहते हैं कि हमारे कभी खेलने आओ।[१] ब्रज ग्राम में नन्द का घर है। द्वार पर आकर मुझे पुकार लेना। हमारा नाम कृष्ण है। राधिका खड़ी हुई थीं, कृष्ण उनके नेत्रों को मींचते हैं। सूर ने उनके नेत्रों को अति विशाल, चंचल, अनियारे बताया है जो कि हरि के हाथों में भी नहीं समाते।[२] कृष्ण ने इङ्गित से ही राधिका को समझा दिया।[३] उसका मन इतना उलझ गया कि शरीर विरह से व्याकुल रहने लगा और घर लेश मात्र भी नहीं सुहाता। वह खान पान भी भूल गई। वह कभी विहँसती है, कभी विलाप करती है, कभी लज्जा से सकुचा जाती है कभी माता-पिता का डर मानती है और प्रभु से खरिक में मिलने के हेतु माता से दोहनी माँगती है।[४]

'नागर' श्याम के साथ राधा भी 'नागरी' बन गई। कृष्ण से वह कहती है है कि नन्द बाबा की बात सुनीं। अगर मुझे छोड़ तुम कहीं जाओगे तो मैं तुमको पकड़ लाऊँगी। वह तुमको मुझे ही सोंप गए हैं इसलिये मैं तुम्हारी बाँह नहीं

---

१. प्रथम सनेह दुहुँनि मन जान्यौ ॥
नैन-नैन कीन्हीं सब बातैं, गुह्य प्रीति प्रगटान्यौ ॥ सूरसागर पद ६७४ ॥१२६४॥
खेलन कबहुँ हमारैं आवहु, नन्द-सदन, ब्रज गाउँ।
द्वारैं आइ टेरि मोहिं लीजो, कान्ह हमारौ नाउँ ॥ ,, पद ६७४ ॥१२६२॥

२. ठाड़ी कुँअरि राधिका लोचन मीचत तहँ हरि आए।
अति बिसाल चंचल अनियारे हरि हाथनि न समाए ॥
सूरसागर पद ६७५ ॥१२६३॥

३. नैननि नागरि समुझाइ। ,, पद ६७६ ॥१२६४॥

४. नागरि मन गई अरुझाइ।
अति विरह तन भई व्याकुल, घर न नेंकु सुहाइ ॥
स्याम सुन्दर मदन मोहन, मोहिनी सी लाई।
चित्त चंचल कुँवरि राधा, खान-पान भुलाई ॥
कबहुँ विहँसति, कबहुँ बिलपति, सकुचि रहति लजाइ।
तातु-पितु कौ त्रास मानति, मन बिना भई बाइ ॥
जननि सौं दोहनी माँगति, वेगि दै री माइ।
सूरि प्रभु कौं खरिक मिलि हौं, गए मोहिं बुलाइ ॥
सूरसागर पद ६७८ ॥१२६६॥

छोड़ूँगी।[1] श्रीकृष्ण राधा को बातों में लगा लेते हैं।[2] फिर नवल गोपाल और नवेली राधा नये प्रेम-रस में पग जाते हैं।[3] वे दोनों परस्पर अंग चूमते हैं।[4] राधा अपनी भुजा को स्याम-भुजा के ऊपर और स्याम-भुजा को अपने उर पर रखती है।[5] कृष्ण के साथ राधा के विलास कर लौटने पर माता ने समझा कि 'दीठि' लग गई है इसलिये वह कुछ का कुछ करती और कुछ का कुछ कहती है परन्तु राधा ने 'महतारी' को समझा दिया और उसके पूछने पर बता दिया कि उनके साथ की एक बिटनियाँ को काले सप के खाने पर एक 'श्याम वर्ण ढोटा' जो कि नन्द का बालक सुना जाता है ने झाड़ दिया।[6] सर्पदंश वाले अभिनय से राधा की बाल्यावस्था की चतुराई प्रकट होती है। वह अवसर के अनुसार बातें करने में बड़ी कुशल है। कृष्ण से मिलने का उसने सुन्दर बहाना बनाया। राधा को काले भुजङ्गम के स्थान पर काले नन्द-नन्दन की फूँक लग गई थी जो विष को उतार सकने में समर्थ था। इसके लिये राधा ने सुन्दर पृष्ठ भूमि तैयार की। राधाके ऊपर से उन्होंने विष की लहर उतार दी परन्तु अन्य व्रजबालाएँ लपेट में आ गईं।

खेलने के मिस राधा नन्द महरि के यहाँ आने जाने लगी। सुन्दरी होने के कारण यशोदा को वह बहुत अच्छी लगी। यशोदा मन ही मन सिहाने लगी और सूर्य से विनती करने लगी कि राधा और श्याम की जोरी भली है। राधा के, "नैन बिसाल, बदन अति सुन्दर, देखत नीकी छोटी।"[7] यशोदा राधा से पूँछने लगी कि

---

१. सूरस्याम नागर, नागरि सौं, करत प्रेम की बातैं॥
 —सूरसागर ना. प्र. सभा ६ पद ६८१॥१२९९

२. बातनि लई राधा लाइ॥ „ पद ६८३॥१३०१

३. नवल गुपाल, नवेली राधा, नये प्रेम रस पागे। „ पद ६८६॥१३०४

४. चुंबत अङ्ग परस्पर जनु जुग, चन्द करत हित चार॥ „ पद ६८७॥१३०५

५. नवलकिसोर नवल नागरिया।
 अपनी भुजा स्याम भुज ऊपर, स्याम भुजा अपनें उर धरिया॥
 क्रीड़ा करत तमाल-तरुन-तर स्यामा स्याम उमँगि रस भरिया।
 यों लपटाइ रहे उर-उर ज्यौं, मरकत मनि कंचन मैं जरिया॥
 उपमा काहि देउँ, को लायक, मन्मथ कोटि वारने करिया।
 सूरदास बलि-बलि जोरी पर, नन्द कुँवर वृषभानु-कुँवरिया॥
 सूरसागर पद ६८८॥१३०६

६. सूरसागर पद ६९६॥१३१५

७. „ पद ७०२॥१३२०

कि तेरा क्या नाम है और तू किसकी बेटी है ? राधा के उत्तर देने पर कि वह वृषभानु महर की बेटी है, यशोदा कहने लगी कि वह बड़ी छिनार है, महर बड़ा लङ्गर है। राधा ने व्यङ्गात्मक शब्दों में उत्तर दिया कि क्या बाबा ने तुमसे कुछ ढिठाई की है ?[1] यशोदा राधा को सँवारती है राधा हरि-मुख देख तन की सुरति भूल गई।[2] कृष्ण राधा के प्रेम में गाय के मोरे में वृषभ के पग बाँधकर दुहने बैठ गये। इसी प्रकार राधा को भी विस्मरण हो गया कि कहाँ मथनी है और कहाँ माट। उसके ढङ्ग देखकर यशोदा कहती है कि, "तेरे मुख से शशि लज्जित होता है। तेरे नेत्र जलज जीत हैं और खंजन से भी अधिक चंचल हैं। तू चपला से भी अधिक चमकती है। श्याम का तू क्या करेगी ? दिन को तू ऐसे ही खोती है ? क्या तेरे घर कुछ काम नहीं है ?"[3] तूने श्याम को ठग लिया है।[4] यशोदा राधा से कृष्ण की ओर देखने को वरजती है क्योंकि हिल-मिलकर श्यामसुन्दर के साथ खेलने से कार्य में बाधा उत्पन्न होती है। वह राधा से घर बैठने और बनकर न आने को कहती है क्योंकि वह मृगनैनी है और हरि के मन को विमोहित करती है।[5] यशोदा के बार बार आने के लिए मना करने पर राधा उत्तर देती है—

मैं कह करौं, सुतहिं नहिं बरजति, घरतैं मोहि बुलावै॥
मोसौं कहत तोहिं बिनु देखैं, रहत न मेरौ प्रान।
छोह लगति मोकौं सुनि बानी, महरि तुम्हारी आन॥
मुंह पावति तबहीं लौं आवति, औरै लावति मोहिं।
सूर समुझि जसुमति उर लाई, हँसति कहति हौं तोहिं॥[6]

राधिका छोटी है तो क्या चतुराई उसके अग अंग में भरी हुई है। वह बुद्धि की मोटी नहीं अपितु पूर्ण ज्ञान से युक्त है।[7] खोटी होते हुए भी वह

---

१. सूरसागर पद ७०३॥ १३२१

२. स्याम चितै मुख-राधिका, मन हरष बढ़ाई।
राधा हरि-मुख देखिकै, तन-सुरति भुलाई॥ सूरसागर पद ७१४॥ १३३२

३. सूरसागर ना. प्र. सभा. पद ७१८॥ १३३६

४. ,, पद ६१६॥ १३३८

५. ,, पद ७२१॥ १३३६

६. ,, पद ७२३॥ १३४१

७. तुम जानति राधा है छोटी।
चतुराई अङ्ग-अङ्ग भरी है, पूरन-ज्ञान, न बुधि की मोटी॥
सूरसागर पद १६०१॥ २५१६

कृष्ण की प्यारी हैं ।[1] राधिका और कृष्ण की सुन्दर जोड़ी का सूर ने इस प्रकार चित्र चित्रित किया है—

सुन्दर स्याम पिया की जोरी ।
सखी गाँठि दै मुदित राधिका, रसिक हँसी मुख मोरी ॥
वै मधुकर ये कंज कली, वै चतुर एउ नहिं भोरी ।
प्रीति परस्पर करि दोऊ सुख, बात जतन की जोरी ॥
वृन्दावन वै सिसु तमाल ये कनक-लता सी गोरी ।
सूर किसोर नवल नागर ये, नागरि नवल किसोरी ॥[2]

राधा और मोहन सहज रूप और गुणों को प्राप्त सहज स्नेही हैं । उनके एक प्राण और दो देह हैं और उनके अङ्ग-अङ्ग में माधुरी छाई हुई है--

राधा मोहन सहज सनेही ।
सहज रूप गुन, सहज लाड़िले, एक प्रान द्वै देही ॥
सहज माधुरी अङ्ग-अङ्ग प्रति, सहज सदा बन-गेही ।
सूर स्याम स्यामा दोउ सहजहिं सहज प्रीति करि नेही ॥[3]

राधिका नन्द-नन्दन से अनुराग करती है और वह स्याम के रङ्ग-रस में ऐसी पगी हुई है कि उसके हृदय में भय और चिन्ता कुछ भी नहीं है ।[4] स्याम उसके रोम-रोम में भिद गया है और अङ्ग-अङ्ग में समाया हुआ है । हरि प्रेम करके उसका मन हर ले गये हैं । कृष्ण रस में उन्मत्त नागरी राधा मार्ग में यही विचार करती हुई यमुना को चली जाती है कि प्रभु का दर्शन उसे प्राप्त हो ।[5] राधिका अति ही

---

१ सूरदास राधा जो जोटी, तउ देखौ यह कृष्ण पियारी ॥
सूरसागर पद १८०२ ॥ २५२०

२. सूरसागर पद १८०४ ॥ २५२२

३. „ १८०८ ॥ २५२६

४. राधा नन्द-नन्दन अनुरागी ।
भय चिंता हिरदै नहिं एकौ, स्याम-रङ्ग-रस पागी ॥
सूरसागर पद १८०९ ॥ २५२७

५. राधा स्याम-रङ्ग रंगी ।
रोम रोमनि भिदि गयौ सब, अङ्ग अङ्ग पगी ॥
प्रीति दै मन लै गए हरि, नन्द-नन्दन आपु ।
कृष्ण-रस उन्मत्त नागरि, दुरत नहिं परताप ॥
चली जमुना जाति मारग, हृदै यहै विचार ।
सूर प्रभु को दरस पाऊँ, निगम-अगम-अपार ॥
सूरसागर पद १८२८ ॥ २५४६

भोरी, चतुर और दिनों की थोड़ी है।[1] राधा ही श्याम की स्नेहिनी नहीं हरि भी राधा के स्नेही हैं। राधा हरि के तन में बसती हैं और हरि राधा की देह में बसते हैं। राधा हरि के नेत्रों में और हरि राधा के नेत्रों में बसते हैं।[2] अनुरागी राधा श्याम-रस में भरी रहती है।[3] श्याम नागर और राधा नागरी हैं।[4] राधा भोली नहीं, छोटी होने पर भी खोटी है। वह साज सजाती है। मस्तक पर बेंदी लगाती है, नेत्रों में अंजन आंजती है, और अपने गोरे शरीर की ओर निहारती है। चमकती हुई चलती और वदन मटकाती है,[5] वह अपने जी में गर्व करती है।[6] वह श्याम के साथ सुख लूटती है और हरि उससे रीझते हैं। दोनों ही रूप और

---

१. राधा तू अति हीं है भोरी।

× × ×

सूरदास-प्रभु-प्यारी राधा, चतुर दिननि की थोरी ॥

सूरसागर पद १६६० ॥ २५७८

२. राधा-स्याम-सनेहिनी, हरि राधा-नेही।
राधा हरिकें तन बसै, हरि राधा देही ॥
राधा हरि कैं नैन मैं, हरि राधा-नैननि। „ पद १६६३ ॥ २५८१

३. सूर स्याम कैं रस भरी, राधा अनुरागी ॥ „ पद १६६६ ॥ २५८४

४. नागर स्याम नागरि नारि। „ पद २०८३ ॥ २७०१

तथा—
अति हीं चतुर प्रवीन राधिका, सखियनि मैं तू बड़ी सयानी ॥
सूरसागर पद २०८३ ॥ २७०१

५. तुम जो कहति राधिका भोरी।
आजु रही अब कहा भुराई, कौन दिननि की थोरी ॥
जो छोटी तेई हैं खोटीं, साजति-मांजति जोरी।
वेंदी भाल, नैन नित आंजति, निरखि रहति तनु गोरी ॥
चमकति चलै, वदन मटकावै, ऐसौं जोवन-जोरी।
सूर सखी तिहिं कहति अयानी, मन मोहनहिं ठगोरी ॥
सूरसागर पद २०५१ ॥ ८६६६

६. मैं अपनें जिय गर्व कियौ ॥ „ पद २०७६ ॥ २६६४

गुणों में बड़े नीके हैं[1] वह अति विचित्र गुण और रूप की समूह तथा परम चतुर है।[2] एक तो वह कृष्ण के प्रेम में पगी है और दूसरे यौवन ने उसे उन्मत्त बना रखा है।[3] राधा सुन्दरी है। उसके नखशिख की शोभा का वर्णन सूर करने में असमर्थ हैं। राधा के सदृश कोई भी नहीं है। राधा, राधा ही है और श्याम के मन भाई हुई है।[4] वह श्याम को रिझाती है और मन ही मन कहती है कि मेरे सदृश पिय की प्यारी कोई नहीं है।[5] राधा के मुख की शोभा का वर्णन सूर इस प्रकार करते हैं—

राधे तेरौ वदन विराजत नीकौ।
जब तू इत-उत बंक विलोकति, होत निसा-पति फीकौ ॥
भृकुटी धनुष, नैन सर, साँधि, सिर केसरि कौ टीकौ।
मनु घूँघट पट में दुरि बैठ्यौ, पारधि रति-पति ही कौ ॥
गति मैमन्त नाग ज्यौं नागरि, करे कहति हौ लीकौ।
सूरदास-प्रभु विविध भाँति करि, मन रिझयौ हरि पीकौ ॥[7]

---

१. स्याम सङ्ग सुख लूटति हौ।
सुनि राधे रीझे हरि ताकौं, अब उनतें तुम छूटति हौ ॥
भली भई हरिकैं रस पागौं, वै तुम सौं रति मानत हैं।
आवत जात रहत घर तेरैं, अन्तर हित पहिचानत हैं ॥
तुम अति चतुर, चतुर वे तुम तैं, रूप गुननि दोउ नीके हौ।
सूरदास स्वामी स्वामिनी दोउ, परम भावते जी के हौ ॥
सूरसागर पद २२१२ ॥ २८३०

२. अति विचित्र गुन-रूप-आगरी, परम चतुर तिय भारी री ॥
सूरसागर पद २५९३ ॥ ३२११

३. एक तौ लालन लाड़ लड़ाई, दूजें जोवन करी बावरी ॥
सूरसागर पद २५९७ ॥ ३२१५

४. राधा भई सयानी माधो। ,, परिशिष्ट १ पद १९८

५. नखसिख सोभा मोपै बरनी नहिं जाइ।
तुम सी तुम हीं राधा स्यामहिं मन भाइ ॥ ,, पद १०७६ ॥ १९९४

६. स्यामा स्याम रिझावति भारी।
मन मन कहति और नहिं मोसी, कोऊ पियकी प्यारी ॥
सूरसागर पद १०७९ ॥ १९९७

७. सूरसागर पद १७०२ ॥ २३२०

ग्रीष्म-लीला में राधिका गोपिकाओं के साथ देखिए कैसी सुशोभित होती है—

मध्य ब्रज-नागरी, रूप-रस आगरी, घोष उज्जागरी, स्याम-प्यारी।
बदन-दुति इंदु री, दसन-छबि-कुन्द री, काम-तनु दुन्द री करन हारी॥
अंग अंग सुभग अति, चलति गजराज-गति,
कृष्ण सौं एक मति जमुन जाहीं।[1]

राधा के रँगीले नैन श्याम रङ्ग में रंगे हुए हैं[2] और वे हरि के ही हो गये हैं।[3] रूप की राशि राधिका पर आभूषण अति सुशोभित होते हैं।[4] वह रूप की निधान और सुन्दरता की पुंज है। इस सौन्दर्य-पुंज की समानता कौन कर सकता है।[5] राधा के अङ्गों के ऊपर सुन्दरता अवशेष नहीं रही है तथा उसके अङ्गों की छवि की कोई समता नहीं कर सकता।[6] राधा के रूप का वर्णन सूर ने इस प्रकार किया है—

राधे देखि तेरौ रूप।
पठई हौं हरि संकि, मनु दल सज्यौ मनसिज भूप॥
चाल गज, शृङ्खला नूपुर, नीवि नव-रुचि ढाल।
किंकिनि-घन्टा-घोष, मावौ भए भय-बेहाल॥
कंचुकी-भूषन कवच सजि, कुच कसे रनवीर।
अंचल ध्वज अवलोकि नाहीं धरत पिय मन धीर॥
भौंह चाप चढ़ाइ कीन्हौ, तिलक सर संधान।
नैन की तक देखि गिरिधर, तज्यौ है मद मान॥
चँवर चिकुर, सुदेस घूंघट छत्र, सोभित छाँह।
ज्यौं कहौ त्यौंहीं मिलाऊं, दै दयालुहि बाँह॥

---

१. सूरसागर पद १७५१ ॥ २३६६
२. स्याम रँग रँगे रँगीले नैन।   सूरसागर पद २२५१ ॥ २८६९
३. नैन भए हरि ही के।   ,,   ,, २२५२ ॥ २८७०
४. सहज रूप की रासि राधिका भूषन अधिक बिराजै।
                                                   सूरसागर पद २४४५ ॥ ३०६३
५. बिराजति राधा रूप-निधान।
सुन्दरता की पुंज प्रगट हो, को पटतर तिय आन॥
                                                   सूरसागर पद २४४६ ॥ ३०६४
६. सुन राधे तेरे अङ्गनि ऊपर सुन्दरता न बची।
लोक चतुर्दस नीरस लागत, तू रस-रासि संची॥
                                                   सूरसागर पद २४४८ ॥ ३०६६

राधिका अति चतुर सुन्दरि, सुनि सुवचन विलास।
सूर रुचि-मनसा जनाई, प्रगटि मुख मृदु हास ॥[१]

राधा-कृष्ण संयोग प्रेम में पुनीतता लाने के लिये स्थल-स्थल पर कवि ने सुर सरिता का उपमान रखा है। सुरति वर्णन में राधा-कृष्ण की उपमा गंगा-यमुना के पवित्र सङ्गम से दी है। सुरति वर्णन में रूपकातिशयोक्ति का आधार लिया है। सुन्दर राधा ऐसी प्रतीत होती है मानों गिरिवर से गङ्गा आ रही हो—

मनों गिरिवर तें आवति गङ्गा।
राजति अति रमनीक राधिका, इहिं विधि अधिक अनूपम अङ्गा॥
गौर-गात-दुति बिमल वारि-विधि, कटि-तट त्रिवली तरल तरङ्गा।
रोम राजि मनु जमुन मिली अध, भंवर परत मानो भ्रूवभंगा॥
भुज जुग पुलिन पास मिलि बैठे, चार चक्कवं उरज उतङ्गा।
मुख लोचन, पद, पानि पंकरुह, गुरु गति, मनहुँ मराल विहङ्गा॥
मनिगन भूषन रुचिर तीर वर, मध्य धार मोतिनि मय मङ्गा।
सूरदास मनु चली सुरसरी, श्री गुपाल-सागर सुख सङ्गा॥[२]

सूर ने राधिका को काजल की रेख भी कहा है।[३]

सूर ने राधिका के कृष्ण के साथ रास और नृत्य करने के सुन्दर चित्र चित्रित किये हैं। राधिका रास में स्वकीया पत्नी की भांति ब्रज युवतियों के मध्य श्याम के वाम-भाग में सुशोभित हैं।[४] सुन्दरी राधा रानी रास में नायिका की भांति सुशोभित हैं।[५] रास मण्डल में सुशोभित[६] गोरी राधा और श्याम, सौंदर्य रस और गुण की सीमा हैं।[७] सुन्दर राधा की मोहन के साथ जोड़ी भी सुन्दर है।[८]

---

१. सूरसागर पद २४४६ ॥ ३०६७
२. „ „ २४५४ ॥ ३०७२
३. बनी राधे काजर की रेख। सूरसागर परिशिष्ट २ पद ३६ ॥ २४२
४. ब्रज-जुवति चहुं पास, मध्य सुन्दर स्याम, राधिका वाम, अति छवि विराजै। सूरसागर पद १०३५ ॥ १६५३
५. सुनहु सूर रस-रास नायिका, सुंदरि राधा रानी ॥ „ „ १०३७ ॥ १६५५
६. रास-मण्डल बने स्याम स्यामा ॥ „ „ १०४० ॥ १६५८
७. सुन्दरता रस गुन की सींवां, सूर राधिका स्याम ॥ „ „ १०४५ ॥ १६६३
८. धनि राधिका, धन्य सुन्दरता, धनि मोहन की जोरी ॥ „ „ १०४७ ॥ १६६५

रमा, उमा अरु सची अरुंधति, दिन प्रति देखन आवैं।
निरखि कुसुमगन बरसत सुरगन, प्रेम मुदित जस गावैं॥
रूप-रासि, सुख रासि राधिके, सील महा गुन-रासी।
कृष्ण-चरन ते पावहिं स्यामा, जे तुव चरन उपासी॥
जग-नायक जगदीस-प्यारी, जगत-जननि जगरानी।
नित विहार गोपाललाल-संग, वृन्दावन रजधानी॥
अगतिनि की गति, भक्तनि की पति राधा मंगलदानी।
असरन-सरनी, भव-भय-हरनी, वेद पुरान बखानी॥
रसना एक नहीं सत कोटिक, सोभा अमित अपार।
कृष्ण-भक्ति दीजै थी राधे सूरदास बलिहारी॥[1]

राधिका रस-बस कृष्ण से लिपट जाती है।[2] समस्त गुणों की आगरि राधा श्याम के साथ मिलकर चलती है।[3] वह श्याम के साथ नृत्य करती है। समस्त गुणों से युक्त राधिका के कृष्ण भी अधीन हैं।[4] सूरदास ने व्यास वर्णित रास को गन्धर्व विवाह बताया है। कुमारियों के व्रत करने पर उनकी मनोवांछा को पूर्ण करने के हेतु उनसे नन्द-सुत कृष्ण पति के रूप में मिले।[5] रास मध्य कृष्ण और राधिका की सुन्दर जोड़ी पर देवता पुष्पों की वर्षा करते हैं। सूर उनका वर्णन दूल्हा दुलहिन के रूप में इस प्रकार करते हैं—

---

१. सूरसागर पद १०५५॥१६७३

२. रस बस ह्वै लपटाइ रहे दोउ, सूर सखी बलि जाइ॥

सूरसागर पद १०५७॥१६७५

३. नागरी सब गुननि आगरि, मिलि चलतिं पिय-संग।

,, पद १०५६॥१६७७

४. नृत्यत है दोउ स्यामा स्याम।

× × ×

श्रीराधिका सकल गुन पूरन, जाके स्याम अधीन। ,, पद १०६०॥१६७८

५. जाकौं व्यास बरनत रास।
है गंधर्व बिवाह चित दै, सुनौ बिबिध बिलास॥
कियौ प्रथम कुमारिकनि व्रत, धरि हृदय बिस्वास।
नन्द-सुत पति देहु देवी, पूजि मन की आस॥

सूरसागर पद १०७१॥१६८६

बार्जाहं जु बाजन सकल सुर नभ पुहुप-अंजलि बरषहीं ।
थकि रहे व्योम-विमान, मुनि-जन जय-सबद करि हरषहीं ॥
सुनि सूरदासहिं भयौ आनन्द, पूजि मन की साधिका ।
श्री लाल गिरिधर नवल दूलह, दुलहिनि श्री राधिका ॥[१]

सूर का रास, वास्तव में गन्धर्व विवाह है। इस गन्धर्व विवाह के कारण लोग राधा को परकीया न मानकर स्वकीया मानते हैं। परन्तु सूर का यह रास वर्णन गुप्त लीला के रूप में है जिसे प्रगट सबके समक्ष नहीं दिखाया है। सूर ने राधा कृष्ण के हिंडोला झूलने के भी पद लिखे हैं।[२] उन्होंने राधिका के होली खेलने के चित्र भी चित्रित किए हैं। वह समस्त सखियों को जोड़कर श्याम के साथ होली खेलने जाती है।[३] राधा मोहन की गांठि भी सूर ने जोड़ी है।[४] सूर ने श्याम के यमुना विहार सम्बन्धी पदों की भी रचना की है। अनुराग पूर्ण राधिका का स्वरूप चित्रण सूर ने इस प्रकार किया है—

राधा भूल रही अनुराग ।
तरु तर रुदन करति मुरझानी, ढूँढ़ि फिरी बन-बाग ।
कवरी ग्रसत सिखंडी अहि भ्रम, चरन सिलीमुख लाग ।
बानी मधुर जानि पिक बोलति, कदम करारत काग ॥
कर-पल्लव किसलय कुसुमाकर, जानि ग्रसत भए कीर ।
राकाचन्द चकोर जानिकैं, पिवत नैन कौ नीर ॥
बिहवल विकल जानि नन्द-नन्दन, प्रगट भए तिहिं काल ।
सूरदास प्रभु प्रेमांकुर उर, लाय लई भुजमाल ॥[५]

राधा के बड़े भाग्य हैं। उसके वश में गिरिधारी भी हैं।[६] वह श्याम की प्यारी है और कृष्ण उसके पति हैं—

१. सूरसागर पद १०७२ ॥ १६९०
२. ,, ,, २८३३ ॥ ३४५१; २८३४ ॥३४५२; २८३५ ॥ ३४५३
३. स्याम संग खेलन चली स्यामा, सब सखियनि कौं जोरि ।
सूरसागर पद २९०७ ॥ ३५२५
४. मनमानी सब करति बड़ाई । राधा-मोहन गाँठि जुराई ॥
सूरसागर पद २९१० ॥ ३५२८
५. सूरसागर पद ११२६ ॥ १७४४
६. पुनि पुनि कहति हैं ब्रज नारि ।
धन्य बड़ भागिनी राधा, तेरैं बस गिरिधारि । ,, पद १८४२ ॥ २४६०

राधा स्याम की प्यारी।
कृष्ण पति सर्वदा तेरे, तू सदा नारी ॥[1]

राधिका संकोच से कृष्ण के मुख को देखने को लालायित है।[2] नवेली राधा नवल गोपाल को नये नेह के बस में कर लेती है।[3] श्यामा और मध्य नायक श्याम में परस्पर प्रेम बना हुआ है।[4]

राधिका के हृदय में कृष्ण मिलन का औत्सुक्य बना हुआ है। राधिका की ग्रीवा में हार नहीं है। माता बार बार ग्रीवा को देखती है। वह कहती है कि मोतियों की माला दृष्टगत नहीं होती ऐसा प्रतीत होता है कि उसे कहीं डाल आई हो। राधा मन ही मन प्रसन्न होती है कि अप्रसन्न होकर माता उसे लाने के लिये तुरन्त भेजेगी तो वहाँ का जाना बन जावेगा। इस प्रकार उसके हृदय में कृष्ण के प्रति प्रेम समाया हुआ है और वह नागरी राधा नागर कृष्ण के साथ अनुरक्त है।[5]

राधा ही कृष्ण के रँग में नहीं रँगी कृष्ण भी राधा के रंग में रंगे हैं। कृष्ण राधा को हृदय में धारण करते हैं और राधा सदा कृष्ण के साथ रहती है—

राधा स्याम स्याम राधा रँग।
प्रिय प्यारी कौं हिरदै राखत, प्यारी रहति सदा हरि कैं सँग ॥[6]

जितनी नारियाँ हैं कृष्ण उतने ही वेष धारण कर लेते हैं। श्याम दूलह और श्यामा दुलहिन हैं। श्यामा और श्याम दोनों के हृदय में कोक कला के भाव उत्पन्न होते हैं—

दुलहिनि दूलह स्यामा स्याम।
कोक-कला-व्युतपन्न परस्पर, देखत लज्जित काम ॥[7]

सूर ने राधिका के संयोग-चित्र सुन्दर प्रस्तुत किये हैं। डा० मनमोहन गौतम का कथन है, "संयोग-वर्णन में सूरदासजी ने राधा-कृष्ण की मनोहारी छवि के वर्णन

---

१. सूरसागर पद १८४५ ॥ २४६३
२. राधा सकुचि स्याम-मुख हेरति। सूरसागर पद २१५८ ॥ २७७६
३. नवल गुपाल, नवेली राधा, नए नेह बस कीने।
प्राननाथ सौं प्रानपियारी, प्रान पलटि से लीने ॥ ,, ,, २८२६ ॥ ३४४४
४. सूर स्याम स्यामा मधि नायक, वहै परस्पर प्रीति बनी ॥
सूरसागर पद ११३० ॥ १७४८
५. सूरसागर पद १९६८ ॥ २५८६
६. ,, ,, २०२२ ॥ २६४०
७. ,, ,, ११४४ ॥ १७६२

कंचन वर्ण और श्याम घन की अनुहारि हैं।[1] कृष्ण प्रसन्न होकर राधिका को अपने अङ्क में लगा लेते हैं और उसके अङ्गों का स्पर्श कर अत्यधिक सुख प्रदान करते हैं।

> बिहँसि राधा कृष्न अङ्क लीन्हौ।
> अधर सौं अधर जुरि, नैन सौं नैन मिलि, हृदय सौं हृदय लगि, हरष
> कंठ भुज-भुज जोरि, उछङ्ग लीन्हौ नारि, भुवन-दुख टारि, कीन्ही
> सुख दियो भारी।[2]

राधा के अङ्ग-अङ्ग में छवि समाई हुई है। कृष्ण भी रूप की राशि हैं। राधिका लुब्ध हैं तो कृष्ण उधर उदार मिले हैं।[3] राधिका कृष्ण से इस प्रकार भेंट करती है—

> किसोरी अँग अँग भेंटी स्यामहिं।
> कृष्न तमाल सरस भुज साखा, लटकि मिली ज्यों बाहहिं॥
> अचरज एक लता गिरि उपजी, सीस धीमे फरनाहिं।
> कछुक स्यामता स्यामल गिरि की, छाई कनक अगाहिं॥
> गिरिवर धरन सुरत-रस आगम, रति जीत्यो संग्रामहिं।
> सूर कहै ये उभय सुभट मिल, मनो दृ करे रिपु कामहिं॥[4]

श्याम राधिका को अङ्क में भरकर प्रसन्न ही नहीं होते; राधिका के विरह द्वंद को भी दूर करते हैं।[5] राधिका भी कृष्ण के हृदय से लगकर प्रसन्न होती है।[6] सूर ने अति चपल, कृष्ण पर [illegible], रस के वशीभूत एवं तन-मन को विस्मरण की हुई राधिका का स्पष्ट चित्रण इस प्रकार किया है—

> अतिहित [illegible] जाति नहीं।
> मन [illegible] पर, रस [illegible]

परमानन्द साँवरे ऊपर, तन मन विसरि गए।
राधा स्याम प्रीति उर अन्तर, सरवस प्रीति हुई॥
आवन जान गवन कत कीन्हौं, हरि सब भाँति ठई।
गोपीनाथ प्रान के रस बस, जानी जई दई॥[१]

सूर ने राधा के रति के चित्र भी उपस्थित किए हैं। राधिका का श्याम के साथ रति क्रीडा का सूर ने चित्रण इस प्रकार किया है—

स्यामा स्याम सौं अति रति कीनी।
स्रम-जल बुंद वदन यौं राजति, मनु ससि पर मोतिनि लरि दीनी॥
मुक्ता-माल टूटि यौं लागति, जनु सुरसरी अधोगति लीनी।
सूरदास मनहरन रसिकवर, राधा संग सुरति-रस भीनी॥[२]

राधिका कृष्ण के साथ रङ्गभरी सुशोभित होती है, आलस युक्त पड़ी रहती है एवं रति सग्राम में जरा भी परास्त नहीं होती।[३] राधिका की शोभा को श्याम निहारते हैं। वह चुम्बन देती, सकुचाती जाती एवं विपरीत रति का आनन्द लेती है—

वह छवि अङ्ग निहारत स्याम।
कबहुँक चुम्बन देत उरज धरि, अति सकुचित तनु वाम॥
सनमुख नैन न जोरति प्यारी, निलज भए पिय ऐसे।
हा हा करति चरन कर टेकति, कहा करत ढँग वैसे॥
बहुरि काम-रस भरे परस्पर, रति विपरीत बढ़ाई।
सूर स्याम रति पति विह्वल करि नारि रही मुरझाई॥[४]

---

१. सूरसागर परिशिष्ट १, पद १३५

२. „ पद १९९३॥२६११

३. राजत दोउ रति रङ्ग भरे।
सहज प्रीति विपरीत निसा वस आलस सेज परे॥
अति रन-वीर परस्पर, दोऊ नेंकुहु कोउ न मुरे।
अङ्ग-अङ्ग बल अपने अस्त्रनि, रति संग्राम लरे॥
मगन मुरछि रहे सेज खेत पर, इत-उत कोउ न डरे।
सूर स्याम स्यामा रति-रन तें, इक पग पल न टरे॥
सूरसागर पद २०३५॥२६५३

४. सूरसागर पद २६२५॥३२४३

उसका तन रति क्रीड़ा से थकित हो जाता है।[1] कृष्ण उसका शृङ्गार करते हैं।[2] वृषभानु कुमारी ने गिरिवर धर को वशीभूत कर रखा है। जिस रसकी भी प्रिय कामना करते हैं वही रस यह उन्हें प्रदान करती है। उसके सादृश में अन्य नारी नहीं हैं। वह कोक कला में पूर्ण है।[3] गोपिकायें अधूरी और असन्त हैं परन्तु राधा पूर्ण और सन्त है।[4] राधा का ज्ञान, ध्यान, प्रमाण, अनुराग, भाग और सौभाग धन्य है। उसका यौवन रूप अति अनुपम है। कृष्ण की प्यारी राधिका की निगम भी सदा स्तुति करते हैं। राधा की कृष्ण के साथ जोरी अटल है तथा बिना राधा के कृष्ण को धैर्य भी नहीं है।[5]

सूर ने मानिनी राधा का स्वरूप इस प्रकार चित्रित किया है--

राधा हरि कैं गर्व गहीली।
मंद-मंद गति मत मतंग ज्यौं, अङ्ग-अङ्ग सुख-पुंज-भरीली॥
पग द्वै चलति ठठकि रहै ठाढ़ी, मौन धरै हरि कैं रस गीली।
धरनी नख चरननि कुरवारति, सौतिनि भाग-सुहाग-डहीली।

---

१. पिय प्यारी तनु स्रमित भए। सूरसागर पद २६२६॥३२४४

२. मोहन मोहिनि-अङ्ग सिंगारत॥ ,, ,, २६२८॥३२४६

३. धन्य धन्य वृषभानु-कुमारी, गिरिवरधर बस कीन्हे (री)।
जोइ-जोइ साध करी पिय रस की, सो सब उनकौं दीन्हे (री)॥
तोसी तिया और त्रिभुवन में, पुरुष स्याम से नाहीं (री)।
कोक कला पूरन तुम दोऊ, अब न कहूँ हरि जाहीं (री)॥
ऐसे बस तुम भए परस्पर, मोसौं प्रेम दुरावै (री)।
सूर सखी आनन्द न सम्हारति, नागरि कंठ लगावै (री)॥
सूरसागर पद २६७४॥३२९२

४. यह पूरी, हम निपट अधूरी, हम असन्त, यह सन्त॥ ,, ,, १७८७॥२४०५

५. धन्य राधा धन्य बुद्धि तेरी।
धन्य माता धन्य पिता, धनि भगति तुव, धिग हमहिं नहीं सम दासि तेरी॥
धन्य तुव ज्ञान, धनि ध्यान, धनि परमान, नहीं जानति आन सहज-रूपी।
धन्य अनुराग, धनि भाग, धनि सौभाग्य, धन्य जोबन रूप अति अनूपी॥
हम विमुख, तुम सुमुखि-कृष्ण प्यारी, सदा निगम गुन गहत अस्तुति बखानै।
सूर स्यामा-स्याम नवल जोरी अटल, तुमहिं बिनु कान्ह धीरज न आनै॥
सूरसागर पद १७८८॥२४०६

नैंकु नहीं पिय तें कहुँ बिछुरति, तातें नाहिंन काम-दहीली।
सूर सखी बूझैं यह कैहौं, आजु भई यह भेंट पहीली ॥[१]

राधा फिर मौन धारण कर लेती है। मुँह से कुछ बात नहीं कहती और श्याम-तन को एक टक देखती हैं।[२] राधिका के मान करने पर हरि मनही मन पछताते हैं।[३] सूर राधा से मान मोचन के लिये कहते हैं क्योंकि त्रिभुवन पति भी उसकी शरण में हैं। जिसके चरण-कमलों की वंदना मुनि भी करते हैं वही धरनी-धर राधिका का ध्यान करते हैं। वह हरि तो सबका दुःख हरते हैं परन्तु हे राधिका तुम हरि का दुःख हरो।[४]

राधिका के कन्धे पर चढ़ाने की कहने पर कृष्ण के विलीन हो जाने पर सूर ने राधा के विरह के सुन्दर चित्र उपस्थित किये हैं। वह बोलती नहीं, धरणी पर व्याकुल पड़ी हुई है। वह नेत्र नहीं खोलती, स्वर्ण-वेल सदृश मुरझाई हुई है और श्रवणों से श्याम-नाम सुन सखियों को कंठ लगाती है।[५] वह मार्ग भूल जाती है और पिय को ढूँढ़ती फिरती है। वृक्षों और वेलों से पिय का नाम पूँछती फिरती है।

---

१. सूरसागर पद १७७२ ॥ २३९०

२. ,, ,, १७७३ ॥ २३९१

३. राधे तैं अति मान कर्यौ।
यह कहि हरि पछितात मनहिं मन, पूरब पाप पर्यौ ॥
सूरसागर पद २८१४ ॥ ३४३२

४. राधिका तजि मान मया करु।
तेरें चरन सरन त्रिभुवन-पति, मेटि कलप तू होहि कलपतरु ॥
जिनके चरन-कमल मुनि वदत, सो तेरौ ध्यान धरैं धरनीधरु।
× × × ×
वै हरि तौ दुख हरत सबनि कौं, तू वृषभानु-सुता हरि कौ हरु ॥
सूरसागर पद २८१७ ॥ ३४३५

५. क्यों राधा नहिं बोलति है।
काहैं धरनि परी व्याकुल ह्वै, काहैं नैन न खोलति है ॥
कनक-बेलि सी क्यों मुरझानी, क्यों बन माँझ अकेली है।
कहाँ गए मन मोहन तजि कै, काहे बिरह दुहेली है ॥
स्याम-नाम स्रवननि पुनि सुनिकै, सखियन कंठ लगावति है।
सूर स्याम आए यह कहि-कहि, ऐसैं मन हरषावति है ॥
सूरसागर पद ११०८ ॥ १७२६

अब की बार मिलने पर वह उन्हें क्षणभर को भी नहीं त्यागेगी।[1] वह इस प्रकार रुदन करती है—

रुदन करति वृषभानु-कुमारी।
बार-बार सखियनि उर लावति कहाँ गए गिरिधारी॥
कबहूँ गिरति धरनि पर व्याकुल, देखि दसा ब्रजनारी।
भरि अँकवारि धरति, मुख पोंछति, देति नैन जल ढारी॥
त्रिया पुरुष सौं भाव करति है, जाने निठुर मुरारी।
सूर स्याम कुल-धरम आपनो, लए रहत बनवारी॥[2]

राधा मान करने के उपरान्त पश्चाताप करती है। उसका शरीर तपता है और रात्रि जागते हुए व्यतीत होती है। उसकी दशा देखिए—

रैनि मोहिं जागतहिं बिहानी, मान कियौ मोहन सौं,
तातैं भई अधिक तन तपति।
सेज सुगन्धित लखि विष लागत, पावक हू तैं दाह सखी री,
त्रय विधि पवन उड़पति॥
ऐसी कै व्याप्यौ है मनमथ, मेरोई ज्यौं जानै माई,
स्याम स्याम कै जपति।
बेगि मिलाउ सूर के प्रभु कौं, भूलिहूँ मान करौं कबहूँ नहिं,
मदन बान तैं कँपति।[3]

---

१. कौंहि मारग मैं जाउँ सखी री, मारग मोहिं बिसर्यो।
ना जानौं कित ह्वै गए मोहन, जात न जानि पर्यो॥
अपनो पिय ढूँढ़ति फिरौं, मोहिं मिलिबे कौ चाव।
काँटो लाग्यौ प्रेम कौ, पिय यह पायौ दाव॥
बन डोंगर ढूँढ़त फिरौं, घर-मारग तजि जाऊँ।
बूझौं द्रुम, प्रति बेलि कोउ, कहै न पिय कौ नाउँ॥
चकित भई, चितवत फिरौं, ब्याकुल अतिहिं अनाथ।
अब कैं जौ कैसहूँ मिलौं, पलक न त्यागौं साथ॥
हृदय माँझ पिय-घर करौं, नैननि बैठक देउँ।
सूरदास प्रभु संग मिलौं, बहुरि रास-रस लेउँ॥
सूरसागर पद ११११ ॥ १७२९

२. सूरसागर पद १११२ ॥ १७३०

३. ,, ,, २०८९ ॥ २७०७

उद्धव ब्रज से वापिस आने पर राधा की विरह दशा का वर्णन कृष्ण से इस प्रकार करते हैं—

सुनहु स्याम यह बात और कोउ क्यों समुझाइ कहै।
दुहूँ दिसि की अति विरह विरहिनी, कैसें कै जु सहै॥
जब राधा तबहीं मुख माधौ माधौ रटत रहै।
जब माधौ ह्वै जात सकल तन, राधा-विरह दहै॥
उभै अग्र दव दारु कीट ज्यौं, सीतलताहिं चहै।
सूरदास अति बिकल बिरहिनी, कैसेंहु सुख न लहै॥[1]

उद्धव आगे कृष्ण से कहते हैं—

चित दै सुनौ स्याम प्रवीन।
हरि तुम्हारैं बिरह राधा, मैं जु देखी छीन॥
तज्यौ तेल तमोल भूषन, अङ्ग बसन मलीन।
कंकना कर रहत नाहीं, टाड़ भुज गहि लीन॥
जब सँदेसौ कहन सुंदरि, गवन मो तन कीन।
छुटी छुद्रावलि चरन अरुझी गिरी बल हीन॥
कंठ वचन न बोलि आवै, हृदय परिहस मीन।
नैन जल भरि रोइ दीनौ, ग्रसित आपद दीन॥
उठी बहुरि सँभारि भट ज्यौं परम साहस कीन।
सूर हरि के दरस कारन, रही आसा लीन॥[2]

---

१. सूरसागर पद ४१०६ ॥ ४७२४

विद्यापति से तुलना कीजिए—

अनुखन माधव माधव सुमरत सुन्दरि भेलि मधाई।
ओ निज भाव सुभावहि विसरल अपने गुन लुबुधाई॥ २॥
माधव, अपरुब तोहर सिनेह।
अपने विरह अपन तनु जरजर जिवइत भेलि संदेह॥ ४॥
भोरहि सहचरि कातर दिठि हेरि छल-छल लोचन पानि।
अनुखन राधा-राधा रटइत, आधा आधा बानि॥ ६॥
राधा सयँ जब पुनतहि माधव माधव सयँ जब राधा।
दारुन प्रेम तबहि नहि टूटत बाढ़त विरहक बाधा॥ ८॥
दुहु-दिसि दारु-दहन जैसे दगधई आकुल कीट परान।
एसन बल्लभ हेरि सुधामुखि कवि विद्यापति भान॥ १०॥

विद्यापति की पदावली, रामवृक्ष बेनीपुरी पद २१७

२. सूरसागर पद ४१०७ ॥ ४७२५

उनका कथन है कि नन्दकुमार ! तुम फिर ब्रज में जाकर रहो। तुम्हारे विरह में राधा जलकर राख हो गई है बिना आभूषण के बड़ी विकराल लगती है। वह पीव पीव की ही रट रटती है। उसके नेत्रों से प्रवाहित अश्रु ऐसे प्रतीत होते हैं मानों यमुना की धार प्रवाहित हो रही हो। वह प्रचण्ड विरहाग्नि से जल रही है। उसकी और कुछ गति नहीं, बार-बार तुम्हारा ही नाम रटती है।[1] वह दीर्घ निःश्वास छोड़ती है[2] और उसके नेत्र अश्रु प्लावित रहते हैं।[3] उसके पास पङ्खों का अभाव है अन्यथा वह श्याम के पास उड़ जाती। उसके शरीर का ताप श्याम के दर्शन से ही मिट सकता है।[4] वह कामदेव से इतनी सताई हुई है कि वह संकोच त्याग, लेखिनी और मसि से हरि को अपना संदेश लिखने के लिये लालायित है—

अब हरि आइ हैं जनि सोचै।
सुनु बिधुमुखी वारि नैननि तें, अब तू काहैं मोचै॥
लै लेखनि मसि लिखि अपने, संदेसहि छाँड़ि सँकोचै।
सूर सु बिरह जनाउ करत कत, प्रबल मदन रिपु पोचै॥[5]

---

१. फिरि ब्रज बसौ नन्दकुमार।
हरि तिहारे बिरह राधा, भई तन जरि छार॥
बिनु अभूपन मैं जु देखी, परी है बिकरार।
एकई रट रटत भामिनि, पीव पीव पुकार॥
सजल लोचन चुअत उनके, बहति जमुना धार।
बिरह अगिनि प्रचंड उनकैं, जरे हाथ तुहार॥
दूसरी गति और नाहीं, रटति बारम्बार।
सूर प्रभु की नाम उनकें, लकुट अन्ध अधार॥
सूरसागर पद ४१०८ ॥ ४७३६

२ भरि-भरि लेति ऊरध स्वास। ,, ,, ४११० ॥ ४७३८

३. भरि-भरि लेति लोचन नीर। ,, ,, ४१११ ॥ ४७३९

४. राधा नैन नीर भरि आए।
पत्र धौं मिलै स्याम सुन्दर सखि, जदपि निकट है आए॥
कहा करौं किहि भाँति जाहुँ अब, पंख नहीं तन पाए।
सूर स्याम सुन्दर घन दरसैं, तन के ताप नसाए॥
सूरसागर पद ४२७९ ॥ ४८६७

५. सूरसागर पद ४२८० ॥ ४८६८

शीलवती, गुण की राशि, जगनायक, जगदीश की प्यारी, जगत की जननी. जग की रानी, वृन्दावन में गोपाल लाल के साथ नित्य विहार करने वाली भक्तों को मङ्गल देने वाली, अशरण को शरण देने वाली और संसार के भय को दूर करने वाली है जिनका वर्णन वेद और पुराण भी करते है।[१]

परमानन्द दास की राधा

आचार्य चरणों ने जिस प्रकार राधा को स्वकीया माना है उसी प्रकार वल्लभ सम्प्रदाय और अष्टछाप के कवियों ने राधा को स्वकीया माना है। राधा के जन्म-महोत्सव से लेकर उनके श्रीकृष्ण के साथ निवास पर्यन्त अनेक पद परमानन्द सागर में मिलते हैं। राधा ने वृषभान गोप के यहाँ अवतार लिया है। परमानन्द दासजी ने राधा की बधाई इस प्रकार गाई है—

आज रावल में जय जयकार।
प्रगट भयो वृखभान गोपकें स्री राधा अवतार ॥
गृह गृह तें सब चली वेग कें गावत मङ्गलचार।
निरतत गावत करत बधाई भीर भई अति द्वार ॥
'परमानन्द' वृखभान नन्दिनी जोरी नन्द कुमार ॥[२]

राधा के जन्म दिवस की ओर परमानन्द दासजी ने इस प्रकार संकेत किया है—

राधा जू को जन्म भयो सुनि माई।
सुकल पच्छ निसि आठें घर घर होत बधाई ॥
अति सुकुमारी धरी सुभ लच्छन कीरति कन्या जाई।
'परमानंद' नदनंदन के आगन जसुमति देत बधाई ॥[3]

कवि ने लाड़िली राधा के चरणों को 'सुरत सागर तरन' कहकर नमस्कार किया है—

धन धन लाडिली के चरन।
अतिहि मृदुल सुगंध सीतल कमल के से बरन ॥
नखचन्द चारु अनूप राजत जोति जगमग करन।
नूपुर कुनित कुंज विहरत परम कौतिक करन ॥

---

१. सूरसागर पद १०५५ ॥ १६७३
२. परमानंद सागर पद संग्रह—डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल, पद १६३
,, ,, ,, ,, पद १६४

नंद सुत मनमोद कारी विरह सागर तरन।
'दास परमानंद' छिन छिन स्याम ताकी सरन॥[1]

परमानन्ददास जी ने 'श्याम ताकी सरन' कहकर राधा को श्याम से अधिक महत्त्व दे दिया है। राधिका को पलना में झूलते हुए देखकर गोपीजन प्रसन्न हो जाते हैं। वह सुकुमारी राधा शोभा का समुद्र है और उमा, रमा, तथा रति को उस पर न्योछावर किया जा सकता है—

रसिकनी राधा पलना झूलें। देखि देखि गोपी जन फूलें॥
रतन जटित को पलना सोहै। निरखि-निरखि जननी मन मोहै॥
सोभा को सागर सुकुमारी। उमा रमा रति वारी डारी॥
डोरी ऐंचत भौंह मरोरै। बार बार कुंवरी तृन तोरै॥
तिहि छिन की सोभा कछु न्यारी। अखिल भुवन पति हाय सँवारी॥
मुख पर अंबर वारति मैया। आनंद भयो 'परमानन्द' भैया॥[2]

हिंडोले झूलते समय श्यामा और श्याम बराबर बैठे हुये हैं। सुन्दर शरद रात्रि है। वे परस्पर मीठी बातें करते हैं—

हिंडोरे झूलत है भामिनी।
स्यामा स्याम बराबर बैठे सरद सुहाई यामिनी॥
एक भुजा कर डारी टेकी एक परे असकंध।
मीठी बातें करत परस्पर उभय प्रेम अनुबन्ध॥
लरकाई में सब कछू बनि आवै कोई न जाने सूत।
'परमानन्द दास' को ठाकुर नन्द राय को पूत॥[3]

सावन में इस प्रकार दूल्हा कृष्ण और दुलहिन राधिका झूल रहे हैं। गोपवधू राधाजी पर नन्दलाल जी का नाम लिवाती हैं। राधाजी पवित्रा भी पहनती हैं जिससे तीनों लोक पवित्र हो गये हैं—

पवित्रा पहरत राजकुमारी।
तीन्यो लोक पवित्र किए हैं स्री विट्ठल गिरिधारी॥

---

१. परमानन्द सागर पद संग्रह—डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल, पद १६०
२. ,, ,, ,, ,, पद १६५
३. ,, ,, ,, ,, पद ७७८

अति ही पवित्र प्रिया बहु बिलसित निरख मगन भयो भारी।
'परमानंद' पवित्र की माला गोकुल की निज नारी ॥[1]

राधा गोरस लेकर निकलती हैं, निकलते ही अनोखे गाहक नन्द के लाल ने उसे पकड़ लिया और कहने लगे कि इन मटकिया को मैं ले लूंगा, तू नगर में क्या फिरेगी। नन्दराय के लाड़िले कुंवर से वह दही के दाम के लिये झगड़ने लगी। इस इस प्रकार वह स्वामी से मिलकर सब कुछ देकर चली गई।[2] राधिका कृष्ण से अपने घर जाने के लिये कहती है क्योंकि वह वहाँ खीर जिमावेगी। लड़काई की बात है इसलिये उनका कोई बुरा नहीं मानेगा नित्य प्रातःकाल तुम मेरे भवन आया करो—

कहति है राधिका अहीरि।
आजु गोपाल हमारैं आवहु न्यौति जिवाऊँ खीरि ॥
बहुत प्रीति अतर गति मेरे नैन ओट दुख पाऊँ।
जानति हौं पिय कुंवर छैल कौं संग मिले जनु गाऊँ ॥
तुम्हरो कोऊ बिलगु नहीं मानैं लरिकाई की बात।
'परमानंद प्रभु' नित उठि आवहु भवन हमारे प्रात ॥[3]

राधा गोपाल को भाती है क्योंकि वह चन्द्र वधू सी सुशोभित होती है—

राधा रसिक गोपालहि भावै।
सब गुन निपुन नवल अंग सुन्दरि प्रेम मुदित कोकिल सुर गावै ॥

---

१. परमानन्द सागर पद संग्रह—डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल, पद ७७६
तथा—
मह सुख सावन में बन आवं। दूल्हे दुलहिन संग झुलावै ॥
नंद भवन रच्यो सुरङ्ग हिंडोरो। गोप वधू मिलि मङ्गल गावं ॥
नंदलाल को राधा जू पं। हरि जू पं राधाजी को नाम लिवाव ॥
जसुमति सू परमानंद तिहि छन। वार फेर न्यौछावर पावं ॥
—परमानंद सागर पद संग्रह—डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल, पद ७८७
२. गोरस राधिका लै निकरी।
नंद को लाल अनोखो गाहक ब्रज में निकसत पकरी ॥
'परमानंद स्वामी' सौं मिलि कै सरबसु दै डिगरी ॥
—परमानन्द सागर पद संग्रह—डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल, पद १८४
     ,,   ,,   ,,   ,,   पद ३६१

पहिर कसुंभी कटाव की चोली चंद वधू सी ठाढ़ी सोहे।
सावन मास भूमि हरियारी मृग नयनी देखत मन मोहे॥
उपमा कहा देन को लायक के हरि के आँखी मृग छौनन।
'परमानंद प्रभु' प्रान वल्लभ चितवनि चारु चाप सर मौनन॥[1]

राधा मोहन के बिना नहीं रह सकती, वह श्याम सुन्दर के कारण सबकी निन्दा सहती है। उसने लोक लज्जा को त्याग दिया है उसके मन क्रम वचन से और गति नहीं है—

राधा माधो बिनु क्यों रहे।
एक श्याम सुन्दर के कारन और सबनि की निन्दा सहै॥
प्रथम भयो अनुराग दृष्टि ते इन मोहन मन हर्यो।
पिय के पाछे लागी डोलें वधुवरग सौं बैर पर्यो॥
मन क्रम वचन और गति नाहीं वेद लोक की लाज तजी।
'परमानन्द' सब ते सुख पायो जब ते यह अरुणोदय भजी॥[2]

राधा माधो के साथ खेलती है। वह बार बार श्याम के शरीर से लिपटती है और पिय के गले में बाँह डालती है।[3] मोहन राधिका को बातों से बहलाते हैं। वह कहते हैं कि खेलने के बहाने तेरे दूध को जमा आऊँगा। राधिका कनक वर्ण की, सुढार और सुन्दर है। राधिका इतनी सुन्दर है कि कृष्ण के नेत्र राधिका से उलझे हुए हैं। उसके रूप की शोभा कहते नहीं बनती, वह विचित्र गुणों से युक्त है—

आवनि आनद कंद दुलारी।
विधु वदनी मृग नयनी राधा दामोदर की प्यारी॥
जाके रूप कहत नहिं आवे गुन विचित्र सुकुमारी।
मानो कछु परयो घन आगरि विधना रच्यो सवारी॥
प्रीति परस्पर पांचि न छूटे ब्रज जन रही विचारी।
'परमानंद दास' बलिहारी मानो सांचे ढारी॥[4]

---

1. परमानन्द सागर संग्रह—डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल पद २६६
2. " " " " पद ३७०
3. राधा माधो संग खेलें।
   बार बार लपटात श्याम तन लटकत बांह पिय के गल मेलें॥
   परमानन्द सागर पद संग्रह—डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल, पद ४०९
4. " " " " पद ३२८

राधिका की चूनरी की शोभा का वर्णन परमानन्ददास जी ने इस प्रकार किया है—

आजु तेरी चूनरी अधिक बनी ।
बारम्बार सराहत राधा परम गुनी ॥
जे भूषन पहिरत सो तें सोहत चोली चारु तनी ।
मदन गोपाल लाल तें मोहे जे त्रैलोक मनी ॥
अंग अंग बरनौं कहा भामिनि राजत सुभी अनी ।
'परमानंद स्वामी' की जीवनि जुवतिन रतन गनी ॥[1]

राधिका का मुख चन्द्रमा के समान है कृष्ण का हृदय क्यों न जुड़ावे । हरि उसके वदन की सराहना करते हैं । वह दर्पण लेकर अपने मुख को देखते हैं और प्रशंसा करते हैं कि वह मुझसे अच्छी है । राधिका भी बैठी तिलक सँवारती है और शृङ्गार बनाती है—

राधे बैठी तिलक संवारति ।
मृग नयनी कुसुमायुध के डर सुभग नंद सुत रूप विचारति ॥
दरपन हाथ सिंगार बनावत बासर जाम जुगति यों डारति ।
अन्तर प्रीति स्याम सुन्दर सों प्रथम समागम केलि संभारति ॥
बासर गत रजनी ब्रज आवत मिलत लाल गोवर्धन धारी ।
'परमानंद स्वामी' के संगम रति रस मगन मुदित ब्रजनारी ॥[2]

परमानन्द दास ने राधिका के रास रचने का वर्णन इस प्रकार किया है—

रास रच्यौ बन कुंवर किसोरी ।
मंडल विमल सुभग वृन्दावन पुलिन स्याम घन घोरी ॥
बाजत बेनु रबाब किन्नरी कंकन नूपुर किंकिनि सोरी ।
ततथेई ततथेई सब्द उघटत पिय भले बिहारी बिहरत जोरी ॥
बरहा मुकुट चरन तट आवत धरे भुजन में भामिनी मोरी ।
आलिंगन चुंबन परिरंभन 'परमानन्द' डारत तृन तोरी ॥[3]

राधिका ने माधव से प्रेम बढ़ा रखा है। वह प्राण प्यारे से मिलना चाहती है।[1]

अनिरति स्याम सुन्दर सौं बाढ़ी।
देखि सुरूप गोपाल लाल कौं रही ठगी सी ठाढ़ी॥
घर नहिं जाइ पंथ नहिं रेंगति चलनि बलनि गति थाकी।
हरि ज्यौं हरि को मगु जोवति काम मृगुमनति ताकी॥
नैनहिं नैन मिले मन अरुझ्यो यह नागरि वह नागर।
'परमानंद' बीच ही बन में बात जु भई उजागर॥[2]

राधिका की सहज प्रीति गोपाल को भाती है। वह प्रीतम के नेत्रों से नेत्र मिलाती है।[3] राधिका ने कृष्ण से रस रीति बढ़ाली है। नन्द नन्दन के सादर भेंटने पर दूने चाव में चढ़ जाती है।[4] उनकी प्रीति सच्ची है—

सांची प्रीति भई इक ठौर।
मृग नैनी कमल दल लोचन लाल स्याम राधा तन गोर॥
तुम सिर सोहत पाट की डोरी हरि सिर रुचिर चन्द्रिका मोर।
तुम रसिकिनि वे रसिक सिरोमनि तुम ग्वालिन वे माखन चोर॥
तुम करिनी वे गज बल नायक तुम मालति वे भोगी भौंर।
'परमानन्द' नन्द नन्दन को राधा सी गोरी नहिं और॥[5]

परमानन्द की राधिका चंचल है, समझाने पर भी नहीं मानती। क्षण क्षण, पल पल उसे रहा नहीं जाता और लोक लाज भी उसने मिटा दी है—

मैं तू कै बिरियां समुझाई।
उठि उठि उझकि उझकि चंचल टेव न जाई॥
छिनु छिनु पलु पलु रह्यो न परै तव सहचरि ओट लगाई।
कमल नयन कौं फिरि फिरि देखै लोक की लाज मिटाई॥

---

1. राधा माधौ सो रति बाढ़ी।
× × ×
चाहति मिल्यो प्रान प्यारे कौं 'परमानन्द' गुन आढ़ी॥
—परमानन्द सागर पद संग्रह—डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल, पद २६६
2. " " " " पद २६७
3. सहज प्रीति गोपालै भावै। " " पद ३८२
4. राधा भाम सौं रस रीति बढ़ी। " " पद २४३
5. परमानन्द सागर पद संग्रह— " " पद २४४

को प्रति उत्तर देइ सखी कौं गिरिधर बुद्धि चुराई।
मदन मोहन राधा रस लीला कछु 'परमानन्द' गाई ॥[1]

राधिका के वस्त्रों का वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है—

नव रङ्ग कंचुकी तन गाढ़ी।
नव रङ्ग सुरङ्ग चूनरी ओढ़ैं चन्द्रवधू सी ठाढ़ी ॥
नव रङ्ग मदन गोपाल लाल सौं प्रीति निरन्तर बाढ़ी।
स्याम तमाल लाल उर लपटी कनक लता सी आढ़ी ॥
सब अङ्ग सुन्दर नवल किसोरी कोक कला गुन पाढ़ी।
'परमानन्द स्वामी' की जीवनि रस सागर मथि काढ़ी ॥[2]

नागर नवल रसिक चूड़ामणि मदन गोपाल सब प्रकार से राधिका-कन्त हैं। उनका वसन्त का वर्णन देखिए—

खेलत मदन गोपाल वसन्त।
नागर नवल रसिक चूड़ामनि सब विधि राधिका कंत ॥
नैन नैन प्रति चारु बिलोकी वदन वदन प्रति सुन्दर हास।
अंग-अंग प्रति प्रीति निरंतर रति आगम सजाई विलास ॥
बाजत ताल मृदङ्ग अधोरी डफ बांसुरी कोलाहल केलि।
'परमानन्द स्वामी' के संग मिलि नाचत गावत रंग रेलि ॥[3]

यह लोक वेद से परे का अनुराग चरम प्रणयावस्था में पहुँचकर परिणय में परिवर्तित हो गया। राधा माधव का विवाह भी देवोत्थायिनी एकादशी के दिन हो गया—

ब्याह की बात चलावत मैया।
बरसाने वृषभानु गोपकें लाल की भई सगैया ॥

विवाह हुआ, द्वारचार हो गया और वर वधू घर आ गये। वर वधू के मिलन का समय भी आ गया—

कुञ्ज भवन में मङ्गलचार।
नव दुलहिन वृषभान नन्दिनी दूलहे श्री व्रजराज कुमार ॥

श्याम और राधिका की जोड़ी सुन्दर बनी है। वृषभानु किशोरी वसन्त के आगमन पर पिय से देखिये होली किस प्रकार खेलती है—

१. परमानन्द सागर पद संग्रह—डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल, पद ४३६
२. ,, ,, ,, ,, पद ३६८
३. ,, ,, ,, ,, पद २८०

राजत हैं वृषभान किसोरी ।
ब्रज के आंगन में खेलत पिय सों रितु बसन्त के आगम होरी ॥
ताल मृदङ्ग चङ्ग बाजे राजत सरस बांसुरी धुनि घोरी ।
अगर जवाद कुंकुमा केसर छिरकत स्याम राधिका गोरी ॥
जब ही रवकि पीत पट पकरत यह रस रसकिन देत झकझोरी ।
'परमानन्द' चरन रज बंदित राधा स्याम बनी है जोरी ॥[1]

परमानन्ददास जी ने राधिका के कृष्ण के साथ रथ यात्रा के भी पद लिखे हैं। राधिका गिरधारी के साथ परम मनोहर रूप से विराजमान हैं। उन्होंने राधिका के यमुना जल में नाव खेने के भी पद लिखे हैं। हरि राधिका का रूप देखते और अकुलाते हैं। सखी के कहने पर राधिका दौड़ी हुई आती है और कंठ से लिपट जाती है।[2] राधिका के जेठ बदी अमावस सुदी के पद को देखिये—

घन में छिप रही ज्यों दामिनी ।
नन्द कुँवर के पाछे ठाढ़ी सोहत राधा भामिनी ॥
बाल दसा अपने रङ्ग खेलत सरद सुहाई जामनी ।
'परमानन्द स्वामी' रस भीने प्रेम मुदित गज गामिनी ॥[3]

कवि ने राधिका और गोविन्द का रङ्ग महल में मिलन इस प्रकार चित्रित किया है—

पौढ़े रङ्ग महल गोविन्द ।
राधिका सङ्ग सरद रजनी उदित पून्यो चन्द ॥
विविध चित्र विचित्र चित्रित कोटि कोटिक चन्द ।
निरखि निरखि विलास विलसत दंपती सुख कन्द ॥

को प्रति उत्तर देइ सखी कौं गिरिधर बुद्धि चुराई।
मदन मोहन राधा रस लीला कछु 'परमानन्द' गाई॥[1]

राधिका के वस्त्रों का वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है—

नव रङ्ग कंचुकी तन गाढ़ी।
नव रङ्ग सुरङ्ग चूनरी ओढ़ें चन्द्रवधू सी ठाढ़ी॥
नव रङ्ग मदन गोपाल लाल सौं प्रीति निरन्तर बाढ़ी।
स्याम तमाल लाल उर लपटी कनक लता सी आढ़ी॥
सब अङ्ग सुन्दर नवल किसोरी कोक कला गुन पाढ़ी।
'परमानन्द स्वामी' की जोवनि रस सागर मथि काढ़ी॥[2]

नागर नवल रसिक चूड़ामणि मदन गोपाल सब प्रकार से राधिका-कन्त हैं। उनका वसन्त का वर्णन देखिए—

खेलत मदन गोपाल वसन्त।
नागर नवल रसिक चूड़ामनि सब विधि राधिका कंत॥
नैन नैन प्रति चारु विलोकनि वदन वदन प्रति सुन्दर हास।
अंग-अंग प्रति प्रीति निरंतर रति आगम सजाई विलास॥
बाजत ताल मृदङ्ग अघोटी डफ बांसुरी कोलाहल केलि।
'परमानन्द स्वामी' के संग मिलि नाचत गावत रंग रेलि॥[3]

यह लोक वेद से परे का अनुराग चरम प्रणयावस्था में पहुँचकर परिणय में परिवर्तित हो गया। राधा माधव का विवाह भी देवोत्थापिनी एकादशी के दिन हो गया—

ब्याह की बात चलावत मैया।
बरसाने वृषभानु गोपके लाल की भई सगैया॥

विवाह हुआ, द्वाराचार हो गया और वर वधू घर आ गये। वर वधू के मिलन का समय भी आ गया—

कुञ्ज भवन में मङ्गलचार।
नव दुलहिन वृषभान नन्दिनी दूलहे श्री व्रजराज कुमार॥

श्याम और राधिका की जोड़ी सुन्दर बनी है। वृषभानु किशोरी वसन्त के आगमन पर फिर से देखिये होली किस प्रकार खेलती है—

१. परमानन्द सागर पद संग्रह—डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल, पद ४३६
२. ,, ,, ,, ,, पद ३६८
३. ,, ,, ,, ,, पद २८०

डा० शुक्ल परमानन्ददास जी की राधा का विवेचन करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं—

१. परमानन्ददास जी ने राधा तत्त्व आचार्य वल्लभ एवं गोस्वामी विट्ठलनाथजी से ही लिया है।
२. राधा पुष्टिमार्गीय भावना के अनुकूल स्वकीया हैं।
३. राधा की प्रीति अलौकिक है।
४. वे साक्षात् आद्या शक्ति और लक्ष्मी का भी अवतार हैं और हैं कृष्ण की अनन्य प्रिया।
५. अवस्था में वे कृष्ण से दो वर्ष बड़ी हैं।
६. परमानन्ददास जी की भक्ति का चरम आदर्श 'राधा भाव' में पर्यवसित होता है।

सूर की भाँति परमानन्ददास जी की राधा अतिशय मौन, कष्ट सहिष्णु, सुरत-वंचिता नहीं है। अपितु वे रूप मुग्धा, सौन्दर्य शालिनी, मुग्ध-मुग्धा, कृष्ण-प्रेम-मग्ना हैं। उनका प्रणय क्रमशः विकसित होकर परिणय में पर्यवसित हुआ है। श्रीराधा को लेकर परमानन्ददास जी पर वल्लभाचार्य एवं गोस्वामी विट्ठलनाथजी का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है।[1]

कुंभनदास

अष्टछाप के कवियों ने राधाकृष्ण का युगल स्वरूप अपनाया तथा राधा को कृष्ण की कुलहित के रूप में स्वीकार किया। कुंभनदास राधा का स्वरूप इस प्रकार चित्रित करते हैं—

मंजुल कल कुंज-देस, राधा हरि विसद बेस,
राका कुमुद-बंधु सरद-जामिनी।
सांवल दुति कनक अंग, विहरत मिलि एक संग,
मानों नील नीरद-मधि लसति दामिनी॥
अरुन पीत पट दुकूल, अनुपम अनुराग मूल,
सौरभ सीतल अनिल, मंद-मंद गामिनी।
किसलय-दल रचित सैन, बोलत पिक चारु बैन,
मान-सहित प्रति पद प्रतिकूल कामिनी॥
मोहन मन्मथन-मार, परसत कुचनि विहार,
वेपथु जुत वदति नेति-नेति भामिनी।

१. कविवर परमानन्द दास और वल्लभ सम्प्रदाय — डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल, पृ० २१४

'कुंभनदास' प्रभु केलि, गिरिवर सुख-सिंधु झेलि,
सौरभ त्रैलोकनि की जगत-पावनी ॥[1]

राधिका के रूप-सौन्दर्य का कथन नहीं हो सकता। ब्रह्मा ने उसे पचि-पचि कर बड़ा अद्भुत रचा है। उसका वर्णन कहाँ तक किया जावे ? करोड़ों मुख और जिह्वायें भी उसकी सीमा तक नहीं पहुँच सकतीं। वह शोभा की समुद्र राधिका देखिये कैसी है—

चाल मत्त मराल, जङ्घ कदली-खंभ,
कटि सिंघ, गौर तन सुभग-सींवा।
उरज श्रीफल पक्क, अलक केकी-छटा,
वचन पिक मोहत, कपोत ग्रीवा ॥

तरल जुग लोचने नलिन-श्री-मोचने,
चिबुक सांवल बिंदु चारु वेसं।
स्रवन ताटंक हाटक रत्न खचित,
सुनधिक छवि सोभित कपोल वेसं ॥

अधर बंधूक-दुति कुंद दसनावली,
ललित वर नासिका तिल प्रसूने।
निरखि मुख चन्द्रमा रवनि संभ्रम चित्त,
चलत सनछिन्न बिछुरि कोक दूने ॥[2]

उसके नख-शिख-सौन्दर्य को देख ब्रह्मा भी चकित हो गया।[3] विधाता ने सबका सार लेकर राधिका के तन की रचना की है।[4] राधिका के मुख की शोभा गिरिधर के हृदय में बसी है।[5] उसके चपल नेत्र बड़े-बड़े तारों के समान हैं। राधा के अङ्गों का वर्णन कुंभनदास ने इस प्रकार किया है—

कुंवरि राधिका ! तू सकल-सौभाग्य सींव,
या बदन पर कोटि-सत चन्द्र वारौं।
खंजन कुरंग-सत कोटि नैननि-ऊपर,
वारने करत जिय में न विचारौं ॥

१. कुंभनदास-विद्या विभाग कांकरोली, पद ३६
२. ,, ,, पद १६०
३. ,, ,, पद १६१
४. ,, ,, पद १६२
५. ,, ,, पद १६३
६.

कदलि सत-कोटि जंघनि-ऊपर।
सिंह सत-कोटि कटि पर न्योंछावरि उतारौं ॥
मत्त गज कोटि-सत चाल पर।
कुंभ सत-कोटि इनि कुचनि पर वारि डारौं ॥
कीर सत-कोटि नासा-ऊपर।
कुंद सत-कोटि दसननि-ऊपर कहि न पारौं ॥
पक्व बिंदूर बंधूक सत-कोटि।
अधरनि-ऊपर वारि रुचि गर्व टारौं ॥
नाग सत-कोटि वेनी ऊपर।
कपोत सत-कोटि ग्रीव-पर वारि दूरि सारौं ॥
कमल सत-कोटि कर-जुगल पर वारने।
नाहिन कोउ लोक उपमा जु धारौं ॥
'दास कुंभन' स्वामिनी-सुभग सिख।
अङ्ग अद्भुत सुठान कहाँ लगि संभारौं ॥
लाल गिरिवर-धरन कहत मोहि तीनौं पुर।
जौलौं-उह रूप छिनु-छिनु निहारौं ॥[1]

कुंभनदास को राधिका के तन की उपमा भी विचारने पर नहीं मिलती। गिरिधर को वह बहुत भाती है :—

तेरे तन की उपमा कों देख्यौ।
मैं विचारि कै कोउ नाहिन भामिनि ॥
कहा बापुरो कंचन, कदली, कहा केहरि, गज।
कपोत, कुंभ, पिक कहा चंद्रमा कहा बापुरो दामिनि ॥
कहा कुरंग, मृग, बंधूक, कीरो, कमल या आगे।
औ देखिये सब की निः कामिनि ॥
मोहन रसिक गिरि-धरन कहत हारे।
परम भावती तू है, 'कुंभनदास' स्वामिनि ॥[2]

राधिका के अनुगामी हैं। जिस समय राधिका अनमनी सी बैठी है उस समय कवि का कथन है कि जो कुछ भी तू कहेगी उसे ही श्याम मान लेंगे। बात क्या है, जरा बता तो सही? गिरिधरलाल को तेरा ध्यान रहता है और रात-दिन तू मृगनैनी ही उनके हृदय में निवास करती है।[1]

विविध पर्वों पर कृष्ण और राधा किस प्रकार केलि कुतूहल करते हैं यह भी कवि ने भारतीय पर्वों में श्रद्धा एवं महत्व स्थापना करते हुये बताया है। उनमें राधा कृष्ण के हास-विलास का भी सन्निवेश है। नन्दलाल ने व्रज बालाओं को लेकर रास की रचना की है। उसमें राधिका भी सम्मिलित है जिसके अंग में बड़ा रंग बढ़ने लगा और चित्त में हाव भाव।[2] राधिका कृष्ण के साथ क्रीड़ायें करने लगी।[3] श्यामा श्याम के साथ विलासयुक्त है और रूपवान अङ्गों से उनके साथ नृत्यरत है।[4] अक्षय तृतीया पर वृषभान-दुलारी श्याम के अङ्गों पर चन्दन का लेप करती है।[5] ये युगल हिंडोरे झूलते हुए अङ्ग-अङ्ग में सुखानुभव करते हैं। परम सुन्दर पावस ऋतु में गोरी राधिका कृष्ण के साथ ऐसी सुशोभित हो रही है जैसे

---

१. अनमनी-सी तूं काहे बैठी है री ! कर कपोल दियें।
हसति, खेलति, बोलति नांहिने मानों मौन लियें॥
जोई तूं कहि है सोई री ! स्याम मानि हैं।
सो बात कहा जाको इतो कियें॥
'कुंभनदास' प्रभु गिरिधरलाल हि तेरो ध्यान रहतु।
है देखत निसि-दिनु मृगनैनी बसति हियें॥

कुंभनदास-विद्या विभाग कांकरोली, पद २७५

२. बढ्यो रंग सु अङ्ग स्यामा चित्त हाव भावनि सुद।
कुंभनदास-विद्या विभाग कांकरोली, पद ४३

३. गिरिधर-संग रंग भीनी, राधा भामिनी। ,, ,, ,, पद ४४

४. स्याम-संग स्वामिनी विलास रस में बनी। ,, ,, ,, पद ४६

५. चंदन स्याम-अंग ठौर-ठौर लेपन करति वृषभान-दुलारी।
कुंभनदास-विद्या विभाग कांकरोली, पद ८७

घन में दामिनि।[१] नवलकिशोर के वाम्पार्श्व में राधिका सुशोभित है।[२] उनका झूला झूलते समय का चित्र देखिये—

राधे-तन नव चूनरी नव पीत सुंदर स्याम कें।
अरु मनिगन खचित पटेला वैठे इक जोर॥
'कुंभनदास' प्रभु गोवर्धन-धारी लाल।
नव रस भींजे देत मधुरें रोर॥[३]

प्रस्तुत कवि ने राधा के कृष्ण के साथ सम्मिलन, शयन, सुरतांत के चित्र ही चित्रित किये हैं तथा खण्डिता एवं विरहिणी राधा के स्वरूप का भी चित्रण किया है। कामिनी राधा के सम्मिलन के वर्णन में कवि की वृत्ति विशेष रमी है। मृगनैनी, मधुवैनी, नख-शिख पर्यंत अनूप रूप धारण किये हुये रस युक्त[१] राधा का सम्मिलन के लिए गमन देखिये :—

मदन गोपाल-मिलन कों राधे, द्यौस कुंज-बन वनी चली कामिनी।
सकल सिंगार विचित्र विराजित नखसिख-अंग अनूप अभिरामिनि॥
जोवन नवल ठौनि, कटि केहरि, कदलि जंघ जुगल गज-गामिनि।
चकई विछुरि, कमल पुट दीनों कियो है उद्योत ससी भई जामिनि॥
ठाढ़ी जाइ निकट पिय कें भई, लई कर पकरि सेज पर भामिनि।
'कुभनदास' लाल गिरिधर कें लागि सोहै जैसे-घन-मँह दामिनि॥[४]

कवि युगल स्वरूप में इस प्रकार अभिन्नता का आभास पाता है—

राधा के संग पौढे कुंज-सदन में सहचरी सबै मिलि द्वारें ठाढ़ी।
नंदनंदन कुंवर वृषभान-तनया सों करत केलि में जु रुचि बाढ़ी॥
पिया-अङ्ग-अङ्ग सों लपटाइ स्यामघन।
पिय-अङ्ग-अङ्ग सों लपटाइ स्यामा॥

---

१. सुरंग हिंडोरें झूले नागरि नागर।
दंपति अङ्ग-अङ्ग सब सुखदाई॥
सुंदर स्याम के संग सोभित गोरी।
भामिनि मानों घन में दामिनि।
तैसोये पावस रितु परम ——॥

दोउ कर सों कर परसि उरोज अति ।
प्रेम सौं कियो चुंबन अभिरामा ॥
लाल गिरिधरन कों कंठ लागि पुनि ।
बहुत भांति करि केलि, निसि सुख दीनों ॥
'दास कुंभन' प्रभु प्रात बन-कुंज तें ।
प्यारी कंठ भुज मेलि गवन कीनों ॥[1]

सुरतांत में कवि का कथन है कि, 'तू राधे ! बड़भाग उदित जिति त्रिभुवन-पति अपनायो ।'[2]

कृष्णदास

कृष्णदास ने राधा के आगमन का वर्णन इस प्रकार किया है—

भादों सुदि आठें उजियारी, आनन्द की निधि आई ।
रस की रासि, रूप की सीमा, अंग-अंग सुन्दरताई ॥
कोटि बदन वारों मुसिकनि पर, मुख-छबि बरनि न जाई ।
पूरन सुख पायो ब्रज-बासी, नैनन निरखि सिराई ॥
'कृष्णदास' स्वामिनि ब्रज प्रगटीं, श्री गिरिधर सुखदाई ॥[3]

ब्रज में रतन राधिका गोरी है ।[4] यह कृष्ण को प्राणों से भी प्रिय है और ये भी उनकी शरण में हैं—

तू तो मेरे प्रानन हू तें प्यारी ।
नेक चितै हँस बोलिये मोसों हों तो सरन तुम्हारी ॥
अन्तर दूर करौ अचरा को मोहन दे घूंघट पट सारी ।
कृष्णदास प्रभु गिरिधर नागर भर लीने अंक धारी ॥[5]

राधिका की छवि अति ही सुन्दर है—

आज तेरी बनी अधिक छबि नागरी ।
मांग मोतिन गुहावलन पर चन्द्र सदा सीस पर घन घटा सुख आगरी ॥१॥
नयन कज्जल अली कजरी लज्जित भयी तिलक रेखा बनी अलक सोभागरी ।
नासिका सुक सम अधर मधुरतम दंत दाड़िम दसन निकर पर सागरी ॥२॥

१. कुंभनदास—विद्या विभाग कांकरोली, पद २८४
२. ,, ,, ,, पद ३११
३. अष्टछाप परिचय—प्रभुदयाल मीतल, पद १६, पृ० २३०
४. ब्रज में रतन राधिका गोरी ।
अष्टछाप परिचय—प्रभुदयाल मीतल, पद २०, पृ० २३०
५. कीर्तन संग्रह भाग ३, पद ९, पृ० ४०

वलय कंकरण चुरि मुद्रिका अति रूरी वेंसरी लटक रही काम गुरण आगरी।
ताटंक मणि जटित किंकणी कटि तटि तपोत मुक्तादाम कुच कंचुकी लागरी ।।३।।
मूक मंजीर ध्वनि चरण नख चंद्रमा परम सौरभ बढत मृदुल अनुरागरी।
कहे कृष्णदास गिरिधरन वश किये करत जब मधुर स्वर ललित वर रागरी ।।४।।[1]

राधा का रूप वर्णन कृष्णदास ने इस प्रकार किया है—

भामिनी चंपे की कली।
वदन पराग मधुर रस लंपट नवरङ्ग लाल अली ।।१।।
चोवा चंदन अगर कुंकुमा करि जु सिंगार झांझ डफ
बीना बीच-बीच मुरली।[2]

राधिका के लम्बे केस पुष्पों से गुथे हुए हैं—

तेरे लांबे केस विविध कुसुम ग्रथित देख हरी सिर धरें मोर चंदवा।
शृङ्गार रस को सर्वस्व किशोरी प्यारी तव अंग-अग
कहा लों कहूँ अल्प मतिवश भये आनंद के कंदवा ।।
कस्तूरी के पत्र कुंकुम कलित वल्ली सिंदूर को चित्र निरख
कुच मंडित धातु प्रवाल परे सुभग श्री तन मन वचन मन आनंदवा।
कृष्णदास बलिहारी अलकन की शोभा पर गिरिवरधरके
अलोचित फंदवा ।।[3]

राधिका के दोनों चंचल नेत्र खंजनों से श्रेष्ठ हैं। संसार में वे ताप हरने वाले हैं और उनके समक्ष समस्त दल फीके लगते हैं। वे अनी वाले श्याम, श्वेत और लाल रंग से समन्वित तथा गिरिधर को प्रसन्न करने वाले हैं। सुरति कौतुक के वशीभूत हो पिय को प्रेम करती है।[4] उसके ऐसे नेत्र कृष्ण के कमल-मुख

१. कीर्तन संग्रह भाग ३, पृ. २१५
२. ,, ,, पद ८२, पृ. २५
३. ,, ,, पद ६, पृ. २०६
४. तेरे चपल नयन जुग खंजन नीके।
ताप हरन अति विदित विश्व महिं देखत सब दल लागत फीके।
स्याम स्वेत राते अनियारे, गिरिधर कुंजर रसद सुख जीके ।।
'कृष्णदास' सुरति कौतुक बस, प्यारी दुलरावति आपने पियके ।।

को देखते नहीं अघाते। उसके प्रमुदित और सहज नेत्र तृष्णा से उलझे हुए हैं।[1] वह अलसनी सी फूली-फूली डोलती है। वह अन्य भाव से वचन बोलती और चरण रखती है। उसके हृदय में आनन्द और चाव है। वह अङ्ग-अङ्ग फूली नहीं समाती मानों उसे गिरिधरराय मिल गये हों।[2] वह फूलों का ही शृङ्गार धारण किये हुए है।[3] नव निकुंजों में आती हुई राधिका की गति बड़ी सुन्दर है। वह मन को हरने वाली है। तरुणी की शोभा अवर्णनीय है। ऐसा विदित होता है कि नवीन श्याम तरुण मेघों के साथ रसप्लावित पृथ्वी का मिलन हो रहा हो।[4] श्यामा और श्याम की अद्भुत जोड़ी वृन्दावन में किस प्रकार विहार करती है :—

अद्भुत जोट स्याम-स्यामा वर, विहरत वृन्दावन चारी।
रूप कांति बल वैभव महिमा, रटत वेद-श्रुति-मति हारी॥
पदहिं विलास कनिन मनि-नूपुर रनित मेखला झनकारी।
गावत, हस्तक-भेद दिखावत, नांचत गति मिलवत न्यारी॥
किलकत, हँसत, कनखियन चितवत, प्यारे तन प्रीतम प्यारी।
कंठ बाहु धरि मिलि गावत है, ललितादिक सखि बलिहारी॥
मुरलियन सिंगार सुफोरति, निरखि चकित मृग अलि-नारी।
कृष्णदास प्रभु गोवरधन-धर, अनिमिष रसिक वृषभानु कुँवारी॥[5]

---

१. कमल मुख देखत कौन अघाय।
सुनरी सखी लोचन अलि मेरे मुदित रहे अरुझाय॥१॥
मुक्तामाल लाल ऊपर जन फूली बनराय।
गोवर्धन धर अंग-अंग पर कृष्णदास बलि जाय॥२॥
कीर्तन संग्रह भाग ३, पद १०, पृ. ८०

२. फूली-फूली डोलत कौन भाय।
आन भांति वचन रचत आन भांति भूमि धरत पाय॥
जानत हौं तेरे मन की सजनी उर आनन्द और हृदे चाव।
सुनि कृष्णदास अङ्ग-अङ्ग फूली मानों मिले गिरिधरन राय॥
कीर्तन संग्रह, पद १८०, पृ. ३६

३. कीर्तन संग्रह भाग ३, पद ३९, पृ० १२६

४ नव निकुंज में आवति राधा कहो री चाल सुहावनी।
मन की हरन, विलसत मुख-कमल की शोभा तजत कहो देखत ललित लगनी।
सरस उमड़ नव श्याम के संग में, रसभरी धरनि सुहावनी।
कृष्णदास प्रभु-गिरिधर मिल को, बांधी मैं रसिक रमनी छरनी॥
अष्टछाप परिचय—प्रभुदयाल मीतल, पद ११, पृ० २२८

५. अष्टछाप परिचय—प्रभुदयाल मीतल, पद १५, पृ० २२९

मटकी भरने आते समय राधा के नेत्र कृष्ण के दर्शन में अटक जाते हैं और वह लोक लाज का निवारण करती है—

ग्वालिन कृष्ण दरस सों अटकी।
बार-बार पनघट पर आवत सिर यमुना जल मटकी।
मन मोहन को रूप सुधानिधि पीवत प्रेम-रस गटकी ॥
कृष्णदास धन्य-धन्य राधिका लोक लाज सब पटकी ॥[1]

कुंज महल में कृष्ण दूल्हा और राधिका नव दुलहिन बनी बैठी हुई है—

कुंज महल बन बैठे दुल्हैया न दुलहिन व्रखभान किशोरी।
पीत पाग पर फूल सहेरो फुल वांगो छुटे बंद सोरी ॥
फुलन हार बन्यो अति शोभित फुलन गजरा फूल बन्योरी।
पुरवत गावत गिरिधर की रति कृष्णदास प्रभु संग ठग्योरी ॥[2]

कृष्णदास ने रास के पदों में राधिका को इस प्रकार नमस्कार किया है—

नमो तरनि तनया परम पुनीत जगपावनी,
कृष्ण मन भावनी रुचिर नामा।
अखिल सुख दायिनी सब सिद्धि हेतु,
श्रीराधिकारमण रति कारण स्यामा ॥[3]

वृन्दावन में वसंत ऋतु में वृक्ष फूल रहे हैं। विभिन्न प्रकार की शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। कोयल, मोर और शुक बोल रहे हैं। गिरधारी खेल रहे हैं साथ में ग्वालों की भीड़ भी यमुना के किनारे सुशोभित है। इसी मध्य व्रज नवल नारियों के साथ राधिका सत शृङ्गार करके आई—

आई व्रज नवल नारी संग राधिका कुमारी कीने नवसत सिंगार
साजे नव वसन चीर।
वदन कमल नैन भाल छिरकत केसरि गुलाल वूका
रसाल सांधो मृगमद अबीर।
बाजत बीना मृदङ्ग बांसुरी उपंग चंग मदन मीर डफ झाझ
झालरी मंजीर।
निरखत लीला अपार भूली सुधि बुधि संभार बलिहारी
कृष्णदास देखत व्रजचंद धीर ॥[4]

---

१. राधा का क्रम विकास—शशिभूषणदास गुप्त, पृ० २८९
२. कीर्तन संग्रह भाग ३, पद ६, पृ० १९
३. राधा का क्रम विकास—शशिभूषणदास गुप्त से उद्धृत, पृ० २८९
४. कीर्तन संग्रह भाग २, पद ८८, पृ० २६

अमूल्य डोरी है। ऐसे भूला पर गोपाल उसे भुलाते हैं।[१] प्राणों से भी प्रिय वृषभानु-नंदिनी किस प्रकार भूलती है देखिये—

हिंडोरे माई भूलत लाल विहारी।
संग भुलति वृषभानु-नंदिनी, प्रानन हू तें प्यारी।
नीलांबर पीतांबर की छवि, घन दामिनि मनुहारी।
वलि-वलि जाय जुगल चंदन पर 'कृष्णदास' वलिहारी ॥[२]

राधा और कृष्ण का नये गृह में नवीन शैया पर नवीन स्नेह बढ़ रहा है। सुन्दर श्याम में नव यौवन का विकास हो रहा है।[३] रंग भरी राधिका बोलती नहीं। वह मदनगोपाल लाल से अपने यौवन को तोलती है।[४] वह रस में भीगी हुई है—

रसिकनी राधा रस भीनी।
मोहन रसिक लाल गिरिधर पिय, अपने कंठमनि कीनीं ॥
रसमय अङ्ग, अङ्ग रस-रसमय, रसिक रसिकता चीन्हीं।
उभय स्वरूप की रति न्यौछावर, 'कृष्णदास' कों दीनीं ॥[५]

वह प्राण प्रिया के साथ रमी हुई है—

रमी तू प्राण प्रिया के संग।
मोसों कहा दुरावत प्यारी प्रकट जनावत अङ्ग ॥१॥
अधर दशन लागे निज पिया के पीक कपोल सुरङ्ग।
शिथिलता वसन मरगजो अंगिया नख क्षत उरज उतंग ॥२॥
कृष्णदास प्रभु गिरिधर पिय को रूप पियो दृग भृङ्ग।
डगमगात पद पग धरत धरणी पर करत मदन मान भङ्ग ॥३॥[६]

वह रस केलि में तीन प्रहर जागती है और गिरिधर पिय के मुखारविन्द का पान करते हुए उसकी तृषा नहीं बुझती—

१. अष्टछाप परिचय—प्रभुदयाल मीतल, पद ६, पृ० २८८
२. „ „ पद ८, पृ० २२८
३. कीर्तन संग्रह भाग ३, पद १६, पृ० २१७
४. राधा रंग भरी नहि बोलति।
मोहन मदन गोपाल लाल सों, अपनो यौवन तोलति ॥
अष्टछाप परिचय—प्रभुदयाल मीतल, पद ४६, पृ० २३५
५. अष्टछाप परिचय—प्रभुदयाल मीतल, पद २२, पृ० २३०
६. कीर्तन संग्रह भाग ३, पद ३, पृ० ४०

तेरे नैन उनींदे तीन प्रहर जागे काहे को सोवत अब पाछली निसा।
कछु अलसत बीच श्रम लागत श्रीपति न जाय अधिक रिसा ।।१।।
गिरिधर पिय के वदन सुधारस पान करत नहीं जात तृसा।
एते कहत होय जिन प्रगटित रतिरस रिपु रवि इन्द्र दिसा ।।२।।
तुव मुख जोति निरखत उडपति मगन होत निरखि जलद खिसा।
कृष्णदास वलि-वलि वैभव की नव निकुंज ग्रह मिलत निसा ।।३।।[1]

नंददास की राधा

नंददास ने भी पुष्टि मार्गीय अष्टछाप के कवियों की भाँति ही राधा का स्वरूप चित्रित किया है। रास, नृत्य, झूला, होली आदि के अतिरिक्त उन्होंने सगाई, मिलन, प्रेम, मान आदि के स्वरूप का तथा राधा के गुणों का भी वर्णन किया है। राधा का मान तथा पर्यायवाची शब्दों की माला मान मंजरी ग्रन्थ के मुख्य विषय हैं। इसमें शब्दों के पर्यायवाचियों के साथ मानिनी राधा के मनाने की कथा का कुछ विस्तृत वर्णन देकर अन्त में राधा और कृष्ण का मिलन करा दिया है।

राधिका के जन्म के विषय में नन्ददास ने लिखा है—

बरसानें वृषभान गोप कें कीरतिदा सुभ नारी।
जिन कें उदर मुकटमनि राधा सोंयी वंदति चरन विहारी ।।[2]

वह प्रभावती जिन्होंने राधा को जन्मा है तथा वृषभान पिता भी धन्य है—

धन-धन प्रभावती जिन जाई अैसी बेटी
धन-धन हो वृषभान पिता।
सुर धुननि की वानी सो तो तिहूं लोक जानी
उपज परी मानो कनक लता ।।
चरन पर गंगा वारों मुख पर शशि वारों
अैसी त्रिभुवन में नाहिन वनिता।
नंददास स्याम वस करिवे को राधा जु के
तोलें नहि सिंधु सुता ।।[3]

१. अष्टछाप परिचय भाग २, पद १४६, पृ० ४१
२. नंददास प्रथम भाग—उमाशंकर शुक्ल, पृ० ३८
३. नंददास द्वितीय भाग परिशिष्ट (ग) पदावली १७६, उमाशंकर शुक्ल

वृन्दाविपिन के कुंजों में अद्‌भुत नई शोभा छाई हुई है। वहाँ अतिशीतलता है श्याम शोभायमान हैं, केले झुक रहे हैं, भौंरे गुंजार रहे हैं, कोयल गा रही है। वहाँ पर वृषभानु की लाड़ली सुशोभित है मानों घनश्याम के पास नई शोभा उमड़ी हो।[१] वह राधिका कैसे वस्त्र धारण किये हैं :—

लाल सिर पाग लहैरिया सोहै।
तापर सुभग चंद्रिका राजत निरख सखी मन मोहै॥
तैसोई चीर सु बन्यौ लहैरिया पैहरे राधा प्यारी।
तैसौई घन उमड्यौ चहुं दिस तें नंददास बलिहारी॥[२]

कमल-कनिका के बीच राधिका और लाल की छवि शोभायमान है। दो-दो गोपियों के बीच में मोहनलाल फब रहे हैं। एक मूर्ति को अनेक देख रहे हैं जिसकी शोभा ऐसी है मानो सुन्दर शीशे की मंडली के बीच एक चन्द्रमा प्रतिबिम्बित हो रहा हो।[३]

राधिका नंद-नंदन के साथ रथ पर विराज रही है। उनको देखकर कामदेव भी लज्जित होते हैं। जब व्रज जन मिलकर रथ खेंचते हैं तो अद्‌भुत शोभा छा जाती है।[४]

---

१. तहँ राजत श्री वृषभांनु की लाड़िली मनों
घनस्याम ढिग उलही सोभा नई॥
नंददास द्वितीय भाग परिशिष्ट (ग) पदावली २३०, उमाशंकर शुक्ल, पृ० ४४५

२. नंददास द्वितीय भाग परिशिष्ट (ग) पदावली २२४, उमाशंकर शुक्ल, पृ० ४४३-४४४

३. कमल-कनिका-मध्य, राधिका लाल बनी छवि।
द्वै-द्वै गोपिन बीच, जु मोहनलाल बने फवि॥
मूरति एक अनेक देखि, अद्‌भुत सोभा अस।
मंजु मुकर-मंडली मध्य, प्रतिबिंब चंद्र जस॥
नंददास प्रथम भाग ४५७-४६०, उमाशंकर शुक्ल

४. देखो माई नंद-नंदन रथ हो विराजे।
संग सोहे वृषभान नंदनी देखत मन्मथ लाजे॥
व्रज जन सब मिल रथ खेंचत है शोभा अदभुत छावे।
सीतल भोगधर करत आरती नंददास गुण गावे॥
नंददास द्वितीय भाग परिशिष्ट (ग) पदावली ५३, उमाशंकर शुक्ल, पृ० ३८०

राधिका प्रिय दूती के वचनों को सुनकर मुसकाने लगती है।[1] वह फूलों का शृङ्गार किस प्रकार धारण करती है देखिये—

फुलनसों वेनी गुही फुलन की अँगिया
फुलन की सारी मानो फुली फुलवारी।
फुलन की दुलरी हमेल हार
फुलन की चोली चारु ओर गजरारी॥
फुलन के तरोंना कुंडल फुलन की
किंकिणी सरस सँवारी।
फुल महल में फुली सी राधा
प्यारी फुले नंददास जाय बलहारी॥[2]

राधिका गनगौर का पूजन भी करती है। ललिता विशाखा भी वृषभानु की पौरी की ओर आ जाती हैं। सुन्दर वन में, सघन कुंज में नंदकिशोर को मिलने पर घेर लेती हैं।[3]

श्याम सगाई में राधा के कृष्ण विषयक प्रेम का चित्रण हुआ है। उसकी कथावस्तु अत्यन्त संक्षिप्त है। यशोदा ने कीर्ति के पास राधा के साथ कृष्ण के विवाह का प्रस्ताव भेजा। कीर्ति ने भोली कन्या का विवाह कृष्ण के साथ करना ठीक नहीं समझा। राधिका का भोलापन देखिये—

कीरति उत्तर दयो, सु हौं नाहि करौं सगाई।
सूधी राधे कुंवरि, स्याम है अति चरचाई॥
नँद-ढोटा लंगर महा, दधि-माखन को चोर।
कहत-सुनत लज्जा नहीं, फरै थोर तें ओर॥
कि लरिका अचपलो॥[4]

इस प्रस्ताव की अस्वीकृति से माँ को दुखी देखकर कृष्ण मनमोहक वेष में बरसाने के बाग में जा बैठे। राधिका सखियों के साथ कृष्ण को देखने आई। प्रथम दर्शन होते ही वह मूर्छित हो जाती है—

मन हरि लीनौ स्याम, परी राधे मुरझाई।
भई सिथिल सब देह, बात कछु कही न जाई।।
दौरि सखी कुंजन चली, नैंनन डारति नीर।
अरी बीर! कछु जतन करि, हिरदै धरति न धीर।।
हरयौ मनमोहना।।[1]

उसकी क्या दशा हो जाती है देखिये—

सखियन ऊँचे बैन कहे, पै कुंवरि न बोलै।
पूँछति विविध प्रकार, लड़ैती नैंन न खोलै।।
बड़ी बेर बीती जबै, तब सुधि आई नैंक।
'स्याम! स्याम!' रटिबे लगी, एकहि बार जु ह्वैक।।
बदति ज्यौं बाबरी।।[2]

कुछ चेतना आने पर सखियाँ उसे कृष्ण प्राप्ति की युक्ति बतलाती हैं। उन्होंने उसे सिखलाया कि माँ के इस अवस्था का कारण पूछने पर तुम बतलाना कि मुझे सर्प ने काट खाया है। घर जाने पर माँ कन्या की दशा देख अति व्याकुल हुई। एक सखी भेज कृष्ण को बुलवाया। उसके दर्शन मात्र से राधा की मूर्च्छा जाती रही—

सुनत बचन ततकाल, लड़ैती नैंन उघारे।
निरखत ही घनस्याम, बदन तैं केस सँवारे।।
सब अपने घर निरखि कै, पुनी निरखी ढिग माइ।
अचरा डारयौ बदन पै, मन दीनौं मुसकाइ।।
सकुच मन में बड़ी।।[3]

राधा का कृष्ण के नाम सुनने के उपरान्त विक्षिप्तावस्था का स्वरूप निरखिये—

---

१. नंददास द्वितीय भाग परिशिष्ट (ग) पदावली ४६, उमाशंकर शुक्ल, पृ० ३७८
२. ,, प्रथम भाग स्याम सगाई ५१-५५, उमाशंकर शुक्ल, पृ० ११७
३. ,, ,, ,, १२६-१३०, ,, पृ० १२१

कृष्ण-नाम जब तें श्रवन सुन्यौ री आली,
भूली री भवन हौं तौ बावरी भई री।
भरि-भरि आवें नैंन, चित हू न परै चैन,
तन की दसा कछु औरै भई री॥
जेतिक नेम-धर्म-व्रत कीने री मैं बहु विधि,
अँग-अँग भई मैं तौ श्रवन मई री।
'नंददास' जाके श्रवन सुने ऐसी गति,
माधुरी मूरति कैधौं कैसी दई री॥[1]

दोनों का प्रेम देखकर कीर्त्ति प्रसन्नता पूर्वक राधाकृष्ण की सगाई निश्चित कर देती है—

देखि दोउन कौ प्रेम, जु कीरति मन मुसकाई।
जोरी जुग जुग जियौ, विधाता भली बनाई॥
सखी कहँ जुरि विप्र सौं पुहुपन तें बनमाल।
राधे के कर छुवाइ कै, गर मेलौ नँदलाल॥
बाद आछी बनी॥[2]

'स्याम सगाई' राधाकृष्ण की सगाई के साथ ही समाप्त हो जाती है। नंददास के फुटकर पदों में दाम्पत्य रति की कुछ झाँकी अवश्य देखने को मिलती है किन्तु ये पद संख्या में अधिक नहीं हैं।

नन्ददास ने राधाकृष्ण का विवाह पूर्ण भारतीय परम्परा के अनुसार कराया है। गिरिधर की बरात जाती है, बाजे बजते हैं, वेद गाये और मङ्गल पढ़े जाते हैं तथा जोरी को यशोदा आशीर्वाद देती है—

दूलह गिरिधर लाल छबीलो दुलहिन राधा गोरी जू।
जिन देखत मन में जिय लाजत एसी बनी है यह जोरी॥
रत्न जटि को बन्यो सेहरो उर मोतिन की माला।
देखत बदन श्याम सुन्दर को मोहि रही ब्रज बाला॥
मदनमोहन राजत घोरा पर और बराती संगा।
बाजत ढोल दमामा चहूँ दिश ताल मृदंग उपङ्गा॥
जाय जुरे वृषभान की पौरी उत तें सब मिल आए।
टीको करी आरती उतारी मंडप में पधराए॥

---

१. नन्ददास द्वितीय भाग परिशिष्ट (ग) पदावली २६८-२७५, उमाशंकर शुक्ल, पृ० ३४१

२. " प्रथम भाग स्याम सगाई १३१-१३५, उमाशंकर शुक्ल, पृ० १२१

पढ़त वेद चहूं दिश विप्र जन भये सवन मन भाये।
हय लेवा करि हरि राधा सों मंगल चार पढ़ाये।।
व्याह भयो मोहन को जबहीं यशोमति देत बधाई।
चिरजीयो भूतल यह जोरी नन्ददास वलि जाई।।[1]

नई जोरी में नया नेह होना स्वाभाविक है—

नयो नेह नयो मेह नई भूमि हरियारी नवल दूल्ही प्यारो नवल दुल्हैया।
नवल चातक मोर कोकिल करत रोर नवल युगल भोर नवल उलैया।।
नवल कुसुंभी सारी पेहेरें श्रीराधा प्यारी ओढ़नी के अंग संग सरस सुलैया।
नन्ददास बलहारी छवि पर वारि डारी नवल ही पाग बनी नवल कुल्हैया।[2]

वृन्दावन में वनवारी रास रचते हैं।[3] रास में कृष्ण मुरली में राधे-राधे की रट लगाते हैं।[4] उसमें प्यारी राधिका षोडश शृङ्गार और नये आभूषण धारण करती है।[5] दोनों हाथ जोड़कर सघन मण्डल में भोर होने तक नृत्य करते हैं।[6] वृन्दावन में कुंजों की परछाही में नन्दिनी को नन्द के साथ नृत्य के सुख की प्राप्ति बिना सहचरी भाव के नहीं हो सकती।[7] वह नृत्य देखिये—

रास में रसिक दोऊ नांचत आनन्द भरि
गताद्रिता तत ततथेई थेई गति बोले।
अङ्ग-अङ्ग विचित्र किये लाल काछनी सुदेस
कुंडल झलकत कपोल सीस मुकट डोले।।

---

१. नन्ददास द्वितीय भाग परिशिष्ट (ग) पदावली ३७, उमाशंकर शुक्ल, पृ० ३७५
२. ,, ,, ,, ५६, पृ० ३८२।
३. ,, ,, ,, २०७, पृ० ४३५
४. ,, ,, ,, १०८–११०, उमाशंकर शुक्ल पृ० ३३३
५. षोड (स) साजि सिगार आभूषन नवल राधिका प्यारी।
लेति उरप घुल लेति सुलय गति घुंघरुन की छवि न्यारी।।
सुख सागर नागर अति दंपति भक्तन के हितकारी।
बिहसि-बिहसि बिहरत रंग भीने निरखि मदन गयो वारी।।
नन्ददास द्वितीय भाग परिशिष्ट (ग) पदावली २०७
६. राधा-माधो कर जोरे, रवि-ससि होत भोरे,
मंडल में निरतत दोऊ सरस सघन में।
नन्ददास द्वितीय भाग पदावली ११२-११३, उमाशंकर शुक्ल, पृ० ३३३
७. ,, ,, ,, ११८–११९, ,, पृ० ३३३

जुवति जूथ निर्त्त करत श्याम ग्रीव भुजा धरे
श्यामा गीत रसनांहि सम तोले।
नन्ददास पिय प्यारी की छवि पर
त्रिभुवन की शोभा वारों बिनु मोले॥[1]

वृषभानु नन्दिनी अङ्ग-अङ्ग में सुन्दर रूप धारण किये हुए हैं और हिंडोरे में गिरिधरलाल के साथ झूलते हुए सुशोभित हो रही हैं।[2] यमुना के किनारे पर झूलते समय राधिका बादलों की गर्जन के समान किलकारी भी करती है। राधिका का झूलना देखिये—

रंग भरी झूलति स्याम संग राधिका प्यारी।
मधुरे सुर गावति उपजावे, आछी-आछी तानन मनुहारी॥
कबहुँक मंद-मंद मुसकात मनोहर, कबहुँक रीझि देत कर तारी।
निरखि–निरखि या मुख ऊपर तहाँ 'नन्ददास' बलिहारी॥[3]

राधा मोहन के यमुना के किनारे झूलने के स्थान पर सघन लता छाई हुई है और चारों ओर फूल खिल रहे हैं।[4] उन्हें ललिता झुलाती है[5]—

झुलावत पचरंग डोरी व्रज वधु।
नन्द नन्दन मुख अवलोकित त्रीय संग राधिका गोरी॥
गुलाबी सारी कंचुकी उपर गुलाबी सींगर कीसोरी।
गुलाबी लाल उपरना लाल अङ्ग चमकत दामिनि ओर॥
गुलाबी झुम छाय रहो रंगना बरखत बुंदन थोरी।
नन्ददास नंद-नंदन संग क्रीडत गोपी जन लखी कोरी॥[6]

---

१. नन्ददास द्वितीय भाग पदावली २०६, उमाशंकर शुक्ल, पृ० ४३५

२. हिंडोरे माई झूलत गिरिधर लाल।
सँग राजत वृषभान नन्दिनी अँग-अँग रूप रसाल॥
नन्ददास द्वितीय भाग पदावली १४८-१४९, उमाशंकर शुक्ल, पृ० ३३५

३. नन्ददास द्वितीय भाग पदावली १६०-१६३, उमाशङ्कर शुक्ल, पृ० ३३६

४. ,, ,, परिशिष्ट (ग) पदावली ७४, ,, पृ० ३८६

५. ,, ,, ,, ७५, ,, पृ० ३८७

६. ,, ,, ,, ७१, ,, पृ० ३८५-३८६

राधा बांई ओर बैठी है।[१] वह कंधों पर हाथ रखे हुए हैं और हास विलास करती है।[२] वह पिय के साथ किस प्रकार झूलती है—

आजु झूली सुरंग हिंडोरे प्यारी पिय के संग।
गौर तन वनि सुरंग चूनरी पीत वसन सोहैं सुभग सांवरे अङ्ग।
तेसेई वादर अलि आए तेसोई गावत ललितादिक भीने रङ्ग।
नन्ददास प्रभु प्यारी सी छवि पर वारों कोटि अनङ्ग॥[3]

नन्ददास ने राधिका के कृष्ण के साथ होली खेलने के विशद चित्र उपस्थित किये हैं परन्तु उनके होली सम्बन्धी पद कुछ लम्बे हैं। होली में राधिका सक्रिय योग देती है और हाथ में पिचकारी लेकर प्रसन्न हो उठती है। उसकी अगाध रूप छवि का वर्णन नहीं हो सकता। ऐसा प्रतीत होता है मानों नवीन किशोर स्वच्छ चन्द्रमा में चांदनी आकर मिल गई हो[४]—

उत तें सबै सखी जुरि आई, प्रवल मदन के जोर।
खेल मच्यौ है नन्द जू की पौरी, प्यारी राधा नन्दकिसोर॥
नव वृषभान नन्दिनी आई, लीनी सखी बुलाई।
ऐसी मतौ करौ मेरी सजनी मोहन पकरौ जाई॥[५]

होली खेलते समय एक ओर कृष्ण हैं और दूसरी ओर व्रज नव किशोरी राधा—

उत बनी व्रज नव किसोरी, गोरी रूप भोरी।
वोरी प्रेम रंग में, मार्नो एक ही डार की तोरी॥[६]

---

१. वांये अंग राधा प्यारी फूल भई मगना॥
नन्ददास द्वितीय भाग पदावली ७७, पृ० ३८८

२. बैठी अंस पर भुज दे अरु वृषभान दुलारी।
× × ×
करत विलास हास मन भावन रसिक राधिका प्यारी।
नन्ददास द्वितीय भाग पदावली २१४, पृ० ४४०

३. " " " २१५, "

४. उठि बिहसी वृषभान कुंवरि वर, कर पिचकारी लेत।
सहि न सकत कोउ महासुभट वर, सुनत समर संकेत॥
आई रूप अगाधा राधा, छवि वरनी नहिं जाइ।
नवल किसोर अमल चंद मानो मिलि है चंद्रिका आइ॥
नन्ददास द्वितीय भाग पदावली १७६-१८२, पृ० ३३६-३३७

५. " " " २०८-२११, पृ० ३३८
६. " " " २५२-२५३, पृ० ३४०

होली में खेलते-खेलते कृष्ण वृषभान की पौरी में पहुँच जाते हैं—

खेलत खेल जब रंगीलो लाल गये वृषभान की पौरि ।
जो हुती नवल किशोरी भोरि ते आई आगें दोरि ॥
सुनि निकसी नव लाडिलो श्रीराधा राज किशोरी ।
ओलिन पोहोप पराग भरे रूप अनुपम गोरी ॥
संग अली रंगरली सोहें करन कनक पिचकारी ।
मोहन मन की मोहनी देत रंगीली गारी ॥[1]

यही नहीं

पाग उतारत आप श्री वृषभान कुमारी ।
केस खोल निरवार वेनी सरस संवारी ॥[2]

नवीन हास, नवीन छवि, नवीन विलास के साथ वृन्दावन में यमुना के किनारे नवीन निकुंजों में जहाँ नवीन पुष्प विकसित हो रहे हैं कृष्ण राधा के साथ विहार करती हैं।[3] नन्ददासजी ने नाव में कृष्ण के साथ बैठकर विहार करने के राधा के स्वरूप का भी चित्रण किया है—

चंदन पहर नाव हरि बैठे संग वृषभान दुलारी हो ।
यमुना पुलीन शोभित तहाँ खेलत लाल विहारी हो ॥
त्रिविध पवन वहत सुखदायक सितल मंद सुगंध हो ।
कमल प्रकाश कुसुम बहु फुले जहाँ राजत नंद नंद हो ॥
अक्षय तृतीया अक्षय लीला संग राधिका प्यारी हो ।
करत विहार सब सखी सों नंददास बलहारी हो ॥[4]

मान मंजरी, नाम माला में राधा के मान के सम्बन्ध में आया है—

मान—अहंकार, मद, दर्प, पुनि, गर्व, स्मय, अभिमान ।
मान राधिका कुँवरि कौ, सब कौ करत कल्यान ॥
सखी—वयसा, सौरिन्धी, सखी, हितू, सहचरी आहि ।
अली कुँवरि वृषभान की, चली मनावत ताहि ॥[5]

---

१. नन्ददास द्वितीय भाग परिशिष्ट (ग) पदावली ८४, उमाशंकर शुक्ल, पृ० ३६०
२. ,, ,, ,, ,, ८८, पृ० ३६३
३. ,, ,, ,, ,, १६५, पृ० ४३०
४. ,, ,, ,, ,, ५१, पृ० ३७६-३८०
५. नन्ददास प्रथम भाग मान मंजरी नाम माला ७-१०, उमाशङ्कर शुक्ल, पृ० ६१

राधा कृष्ण के साथ एकांत में रस लेती हुई सुशोभित होती है। उन्होंने हरि से कंधे पर चढ़ने के लिये कहा इसलिये ही मुरारी ने उन्हें छोड़ दिया।[१] राधा और कृष्ण (दंपति) पुष्पों की सेज पर लेटकर रस युक्त बातें करते हैं।[२] सेज पर लेटे ही लेटे रस की बातें करते हुए दोनों के नेत्र लग गये।[३]

नन्ददास के कृष्ण राधिका के आज्ञानुवर्ती हैं। राधा जिस प्रकार से भी कृष्ण को नचाना चाहती है कृष्ण उसी प्रकार नाचते हैं—

तेरी भौंह की मरोरन तें ललित त्रीभंगी भये
अंजन दे चितयो भये जू स्याम धाम।
तेरी मुसकान देख दामिनी सी कौंध जात
दीन ह्वे याचत प्यारी लेत राधे आधो नाम।
ज्यों-ज्यों नचायो चाहो तैसे हरि नाचत बल
अब तो मया कीजे चलिये निकुंज धाम।
नंददास प्रभु बोलो तो बुलाय लाऊँ
उनको तो कलप बीतें तेरी घरी याम॥[४]

नन्ददास के मोहन राधिका के पूर्णाधीन हैं और उनके चरण भी पलोटते हैं—

चांपत चरण मोहनलाल।
पलका पोढी कुंवरि राधे सुंदरी नव बाल॥
कबहुँ कर गहि नयन मिलवत कबहुँ छुवावत भाल।
नंददास प्रभु छवि निहारत प्रीत के प्रतिपाल॥[५]

तथा पिय प्यारी के चरन पलोटत।
ललितादिक बीजना ले आई ताही-ताही देख के घूंघट ओटत॥
चंदन लेप करत दोउ अंगन आलिंगन अधरन रस घोटत।
नंददास स्याम-स्यामा दोऊ पोढे नव निकुंज कालिंदी के तट॥[६]

---

१. पिया संग एकांत रस, विलसत राधा नारि।
कंध चढ़न हरि सों कह्यो, याते तजी मुरारि॥
नन्ददास द्वितीय भाग परिशिष्ट (ग) पदावली ८०, उमाशङ्कर शुक्ल, पृ० ३५८

२. कुसुम सेज पोढे दंपति करत है रस बतियां।
नन्ददास द्वितीय भाग परिशिष्ट (ग) पदावली १६७, पृ० ४२२

३. दंपति पोढे रसबतियां करन लागे दोउ नयना लाग गये।
नन्ददास द्वितीय भाग परिशिष्ट (ग) पदावली १६८, पृ० ४२२

४. ,, ,, ,, ,, १४७, पृ० ४१५-४१६

५. ,, ,, ,, ,, १६५, उमाशङ्कर शुक्ल, पृ० ४२१

६. नन्ददास द्वितीय भाग परिशिष्ट (ग) पदावली १६६, पृ० ४२२

चतुर्भुजदास

चतुर्भुजदासजी ने भी अन्य पुष्टिमार्गीय कवियों की भाँति ही राधिका के झूला, वसन्त, होली, सौंदर्य, शृङ्गार, केलिक्रीड़ा व मान का वर्णन किया है। उन्होंने राधाष्टमी की बधाई इस प्रकार गाई है—

रावलि राधा प्रगट भई ।
श्री वृषभान गोप गरुवे कुल प्रगटी आनंद भई ।।
रूप रासि रस रासि रसिकनी नव अंकुर अनुराग नई ।
चिरजीवहु चतुर चिंतामनि प्रगटी जोरी अति पुन्यमई ।।
गुननिधान अतिरूप नागरी करत ध्यान गिरिवरन सही ।
'चत्रुभुज' प्रभु अद्‌भुत यह जोरी
सुंदर त्रिभुवन सोभा नहीं जात कही ।।[1]

उन्होंने राधिका के रास के चित्र उपस्थित किये हैं। रूप की राशि राधिका कृष्ण के साथ रास-रङ्ग करती और मुदित होती है—

प्यारी ग्रीवां भुज मेलि निर्तत पीउ सुजान ।
मुदित परस्पर लेत गति में गति
गुनरासि राधे गिरिधरन गुननिधान ।।
सरस मुरलि धुनि मिले मधुर सुर
रास रंग भीने गावें औघर तान बंधान ।
'चत्रभुज' प्रभु स्याम स्यामा की नटनि देखि
मोहे खग मृग वन थकित व्योम विमान ।।[2]

हिंडोलना झूलने के दिन आ गये।[3] राधा ने नवीन चूनरी और कृष्ण ने पीत पट पहन रखा है और दोनों ने नवीन मणिमय पट लगा रखा है।[4] वाम भाग में बैठी राधा झूलने हुए डर रही है। मोहन उसे हृदय से लगा लेते हैं—

हिंडोरें झूलत लाल गोवर्द्धनधारी सोभा बरनी न जावै हो ।
वाम भागि वृखभान नन्दिनी नखसत अङ्ग बनावै हो ।।

---

१. चतुर्भुजदास–विद्या विभाग कांकरोली, पद १७
२. चतुर्भुजदास, पद ३१
३. हिंडोरना झूलन के दिन आए । चतुर्भुजदास, पद ११६
४. राधे तन नव चूनरी नव पट पीत स्याम कें अङ्ग,
नवल मनिमं जटित पटिला बंठे हैं एक जोर । चतुर्भुजदास, पद १२१

अति सकुँवारी नारि डरपत है मोहन उरसि लगावै हो।
नील पीत पट फरहरात है मन दामिनि दुरि जावै हो।।
मनहुँ तरुन तमाल मल्लिका अङ्ग-अङ्ग अरुझावै हो।
गौर श्याम छबि मरकत मनि पर कनक बेलि लपटावै हो।।
सुरत सिंधु बिलसत दोऊ जन सब सहचरी सुख पावै हो।
'चत्रभुजदास' लाल गिरिधर–जसु सुर मुनि सब मिलि गावै हो।।[1]

श्रीगिरिवरधारी के वाम भाग में वृषभानु नन्दिनी कसूंमी सारी पहने बैठी है।[2] हिंडोरे के समय भी युवतीगण पिय के सिर पर सेहरा बाँधकर नवल ब्याह के गीत गाती हैं और दोनों दंपति अनुराग भरे सुशोभित होते हैं––

पिय के सीस सेहरो सब मिलि बाँधही।
नवल ब्याह के गीत सबै मिलि गावहीं।।
उभय परस्पर भुवन दुंदुभी बाजहीं।
मिलि दंपति अनुराग भरे दोउ राजहीं।।[3]

गोरी[4] राधिका गुणों की निधि है।[5] समस्त नारियों में राधिका नागरि सबसे अधिक सुन्दर है। वह फाग के अवसर पर मोहन का मन मोहने वाली और स्वर्ण के समान वर्णवाली है।[6] मदन मोहन प्यारी राधिका के साथ वसंत खेलते हैं।[7] होली का अवसर है। सुन्दर श्याम और गोरी राधिका की परम मनोहर

१. चतुर्भुजदास, पद ११७
२. हिंडोरें माई झूलें श्रीगिरिवरधारी।
वाम भाग वृषभानु नन्दिनी पहिरि कसूंमी सारी।। चतुर्भुजदास, पद १३०
३. चतुर्भुजदास, पद १२६
४. हो हो हो हो हो हो होरी। सुंदर स्याम राधिका गोरी।।
राजत परम मनोहर जोरी। नन्द नन्दन वृषभानु-किशोरी।।
चतुर्भुजदास, पद ६७
५. उनहिं चतुर चंद्रावली श्रीराधा गुननिधि गोरी।। चतुर्भुजदास, पद ८१
६. तिनमें मुख्य राधिका नागरि सबहिनि ऊपर सोहे जू।
कुटिल कटाच्छ फागु के औसर मोहन को मन मोहे जू।।
कनक बरन वृषभान-किसोरी नवघन नन्दकिसोर जू।। चतुर्भुजदास, पद ६२
चतुर्भुजदास, पद ८६

साथ मिलकर होली खेलते हैं।[1] श्यामा का शृङ्गार सुन्दर बना हुआ है जो श्याम के मन को भाता है—

आजु सिंगार निरखि स्यामा कौ, नीकौ बनौ स्याम मन भावत।
ये छवि तनहिं लखायौ चाहत, कर गहि कें नख चंद दिखावत॥
मुख जोरैं प्रतिबिंब विराजत निरखि-निरखि मन में मुसिकावत।
'चतुर्भुज' प्रभु गिरिधर श्रीराधा, अरस-परस दोउ, रीझि रिझावत॥[2]

नवल किशोर और नवल किशोरी की जोरी विचित्र बनी है। राधिका की शोभा का स्वरूप देखिये—

नवल किसोरी नवल किसोर, बनी है विचित्र जोरि,
सोभा सिंधु, मदन मोहन रूप रासि भामिनी।
राजत तन गौर स्याम प्यारी पिय भाग वाम,
नव घन गिरिधरन अंग, सग मनहु दामिनी॥
पहिरें पट पीत राते भूषन भूषित मनोहर
गज वर गोपाल नागर नागरी गज गामिनी।
'दास चतुर्भुज' दंपति उपमा कहँ नाहिन और
काम मूरति कमल लोचन मृगनयनी कामिनी॥[3]

चतुर्भुजदास ने स्वामिनी के स्वरूप का चित्रण इस प्रकार किया है—

तूं देखि सुता वृषभान की।
मृगनैनी सुंदरि सोभा निधि अङ्ग-अङ्ग अद्‌भुत ठान की॥
गौर वरन में कांति वदन की सरद चंद उनमान की।
विश्व मोहिनी वाल दसा में कटि केहरि सु वंधान की॥
विधि की सृष्टि न होइ मानहुं इह वानक और वान की।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर लाइक इह प्रगटी जोटि समान की॥[4]

उसके शरीर के वस्त्रों की आज और ही चटक है जिनके कारण शोभा सरस और सुन्दर है। उसकी गति हंस और गज के सादृश है। श्याम कमल के समान और राधिका के नेत्र भौंरे के समान हैं जो रूप-रस का पान करते हैं। वह तृपित अंग-अंग में फूली फिरती है। उसके मन में विरह का कोई खटका नहीं। वह

१. कीर्तन संग्रह भाग २, पद १, पृ० १७६
२. अष्टछाप परिचय—प्रभुदयाल मीतल, पद ३०, पृ० २८२
३. चतुर्भुजदास, पद ११६
४. चतुर्भुजदास, पद १६६

लोक लाज को तिलांजलि दे कुंज भवन को निडर हो चल देती है। वह गिरिधर नागर से रति रंग की झटक लेती है।[1]

राधा श्याम कंचुकी धारण किये है। पीले लहँगे और रगमगी सारी की उपमा किसी से भी नहीं दी जा सकती। ठोढी पर बिन्दु लगी है। जब वह कज्जल लगे नेत्रों से गिरिधर नागर को निहारती है तो उसकी चितवन से चतुर कृष्ण का मन विमोहित हो जाता है।[2] वह कृष्ण के चित्त में प्रेम उत्पन्न करती है—

सारंग नैनी सारंग गावै।
तनसुख सारी पहरि झीनी अति मधुर-मधुर सुर बीन बजावै॥
अंजन नैन आंजि बिंदुली दै सैन बैन दृढ वान चलावै।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधरन लाल के चित अति रति अन्तर उपजावैं।[3]

जब से नन्द-नन्दन उसकी दृष्टि पड़े हैं पल भर भी उस पर रहा नहीं जाता। घर में माता-पिता उससे कहते हैं कि कृष्ण के प्रेम में वह खो गई है। उसे रात दिवस कल नहीं पड़ती, घर व आंगन नहीं सुहाता। हँसकर गिरिधर नागर ने उसका मन चुरा लिया है।[4]

१. आजु तन वसन ओरसी चटक।
सोभा देत सरस सुंदरि इह चलनि हंस गज लटक॥
स्याम सरोज नैन तेरे षट्पद पियौ रूप रस गटक।
तृषित भए अङ्ग-अङ्ग फूलनि मन गई विरह की खटक॥
कुंज भवन तें चली निडर तजि लोक-लाज की अटक।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधर नागर सों लै वन रति रन झटक॥
चतुर्भुजदास, पद १६७

२. तो कों री स्याम कंचुकी सोहै।
लहँगा पीत रँगमगी, सारी उपमा कों ह्यां को है।
चिबुक बिंदु वर खुभी नैन अंजन धरि कें अब जोहै।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधर नागर को चितै चतुरि मन मोहै॥
चतुर्भुजदास, पद १६६

३. चतुर्भुजदास, पद २०२

४. अब हौं कहा करों री माई।
जब तें दृष्टि परयौ नंदनंदन, पल भर रह्यौ न जाई॥
भीतर मात-पिता मोहि त्रासत, तें कुल गारि लगाई।
बाहर सब मुख जोरि कहत है, कान्ह सनेह नसाई॥
निसि-वासर मोहि कल न परत है, घर-आंगन न सुहाई।
'चतुर्भुज' प्रभु गिरिधरन छबीले, हँसि मन लियौ है चुराई॥
अष्टछाप परिचय—प्रभुदयाल मीतल, पद ५१ पृ० २८७

इसका सुन्दर शृङ्गार श्याम के मन को भी भाता है। राधा और कृष्ण परस्पर एक दूसरे को प्रसन्न करते हैं—

आजु सिंगार निरखि स्यामा को नीको बनो स्याम मन भावत ।।
यह छवि तन ही लिखायौ चाहत कर गहिके नखचंद दिखावत ।
मुख जोरें प्रतिबिंब विराजत निरखि-निरखि मन में मुसिकावत ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर श्रीराधा अरस परस दोउ रीझि रिझावत ।।[1]

चतुर्भुजदास ने भामिनी राधा का भी चित्र चित्रित किया है। वह मनाने पर भी नहीं मानती—

मान मनावत मानत नाँई ।
स्याम सुंदर तेरे हित कारन पाती विरह पठाई ।।
आवत जात रैनि सब बीती दूखन लागे पाँई ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन लाल अब टेरत हैं चलि तहाँई ।।[2]

वह फिर मान विमोचन कर कृष्ण के पास गमन भी करती है। उसके केश गुँथे हैं, नेत्रों में अंजन लगा है और वह शरीर पर आभरण धारण किये हुए है। उस हंस-गज गामिनी ने पिय के निकट गिरिवरधर के अंगों को स्पर्श कर रति में अति सुख किया।[3] राधिका जब तक कृष्ण के सुन्दर कमल-मुख को नहीं देख पाती तभी तक सयानी बात करती है। मुख देखते ही वह सम्पूर्ण चतुराई को खान-पान ही नहीं भूल जाती अपितु उसके पल भी कल्पों के समान व्यतीत होते हैं—

---

१. चतुर्भुजदास, पद २०४

२. चतुर्भुजदास, पद ३१७

३. मान तजि मानिनी कियौ पिय पैं गौंचन ।
केस ग्रन्थे सरस नैन अंजन दिये
पहिरि दच्छिन चीर सजे तन आभरन ।।
हंस-गज-गामिनी आइ पिय के निकट ।
निरखि छबि माधुरी अंग भेटो रवंन ।
'चतुर्भुज' दास मिलि रैनि सुख अति कियौ
परसि के अंग सो लाल गिरिवरधरन ।।
चतुर्भुजदास, पद ३१८

करत हो सबे सयानी बात ।
जो लों देखें नाहिन सुंदर कमल नयन मुसकात ॥
सब चतुराई बिसर जात है खान-पान की तात ।
बिन देखे छिन कल न परत है पल भर कल्प विहात ॥
सुन भामिनि के वचन मनोहर मन में अति सकुचात ।
'चतुर्भुज' प्रभु गिरिधर लाल संग सदा वसों दिन रात ॥[1]

राधिका कृष्ण के साथ पौढती है। उस नव किशोरी का गौर वर्ण है। पलंग रत्नों से जड़ा, सुगन्धित, शीतल और पुष्पों से युक्त है। वह गिरिवरधर को विजय कर प्रसन्न होती है।[2] रात्रि में निकुंज की रानी राधिका राज्य ले लेती है और मदन महीपति को जीत लेती है—

रजनी राज लियो निकुंज नगर की रानी।
मदन महीपति जीति महारनु स्रम-जल सहित जँभानी ॥
परम सूर सौन्दर्य भृकुटि धनु अनियारे नैन बान संधानी ।
'दास चतुर्भुज' प्रभु गिरिधर रस-संपति बिलसी यों मनमानी ॥[3]

वृषभानु-दुलारी ने रात्रि को कृष्ण के साथ गोवर्द्धन-गिरि की सघन कंदरा में निवास किया। सुरतांत के समय वह किस प्रकार उठकर चलती है देखिये—

गोवर्द्धन-गिरि-सघन कंदरा रयनि-निवास कियो पिय प्यारी ।
उठि चले प्रात सुरत-रस भीने नंद-नंदन वृषभानु-दुलारी ॥
इत बिगलित कच माल मरगजी अटपटे भूषन रगमगी सारी ।
उतहो अधर मसि पागु रही घसि दुहूँ दिसि छवि लागति अति भारी ॥
घूमत आवत रति-रनु जीते करिनि-संग गजवर गिरिधारी ।
'चत्रुभुजदास' निरखि दंपति-सुख तन-मन-प्रान कीनो वलिहारी ॥[4]

---

१. कीर्तन संग्रह भाग २, पद ५, पृ० ५७

२. पौढे हरि राधिका के संग ।
नव किसोर र नव किसोरी गौर सांवल अंग ॥
कुसुम-सेज सुगंध सीतल रतन जटित प्रजंग ।
दसन खंडित वदलि बीरी भरे रति रस-रंग ॥
उपजि 'चत्रुभुजदास' दुहुं दिसि प्रेम-सिंधु-तरंग ।
रसिकिनी वर रसिक गिरिधर जीति मुदित अनंग ॥
चतुर्भुजदास, पद ३२१

३. चतुर्भुजदास, पद ३२६

४. ,, ,, ३२५

चतुर्भुजदासजी की राधिका रस भरी है और कोक-कला में नवीन प्रवीणा है—

प्रात समै नव कुंज द्वार ह्वै ललिता ललित बजायो बीना।
पौढ़ें सुने स्याम स्यामा दोउ दंपति छवि अति प्रवीन प्रवीना ॥
रस-भरी रसिक-रसिकनी प्यारी कोक-कला नवीन प्रवीना।
'चत्रुभुजदास' निरखि दंपति-छवि तन मन धन न्योछावर कीना ॥[1]

गोविंद स्वामी

पुष्टि मार्गीय अन्य कवियों की भाँति गोविंद स्वामी ने भी राधिका को स्वकीया मान उन्हें दुलहिन के रूप में चित्रित किया है। राधिका के कृष्ण के साथ विहार, गान, रास, नृत्य, विविध प्रकार की क्रीड़ायें, झूलना, होली, शयन आदि के प्रसंग हमारे सम्मुख उपस्थित किये हैं। दशहरा का पर्व है, कृष्ण ऊँचे घोड़े पर चढ़कर उसे सुखपूर्वक कुदाने चले कि उन्होंने वृषभानु दुलारी अटा पर चढ़ी खड़ी हुई देखी और उनका मन वहां अटक गया। इस प्रथम समागम का वर्णन गोविंद स्वामी ने इस प्रकार किया है—

आजु दसेरा परम मंगल दिन धरें जवारे गोवर्धन धारी।
कुंकुम तिलक सुभाल विराजै अच्छत सोभा लागत भारी ॥
अश्व उतंग चढ़े नंद-नंदन चले कुदावन महा सुखकारी।
मनकी अटक भई तहाँ ठाढ़े चढ़ी अटा वृषभानु दुलारी ॥
चारों नैन भए जब सनमुख बाँहि पसारि सैन सुखकारी।
'गोविन्द' प्रभु के चरन परसि कें प्रथम समागम मिले पिय प्यारी ॥[2]

उनकी राधिका के गुण और रूप की समानता करने वाला कोई नहीं है—

कौन करै पटतर तेरी गुन रूप रास राधा प्यारी।
श्रीय प्रभृति जेती जग जुवती वारि फेरि डारीं तेरे रूप ऊपर ॥
राग मलार अलापति सकल कला गुन प्रवीन है री तू सुघर।
'गोविंद' प्रभु कों तू ल्यायत बस करि
                                        कहत भले जु भले व्रजराज कुंवर ॥[3]

1. चतुर्भुजदास, पद २३२
2. गोविंद स्वामी विद्या-विभाग कांकरौली, पद ५०
3. ,,   ,,   ,,   पद १८४

उनकी राधिका की छवि निरखिये—

आज तेरी फबी अधिक छवि नागरी ।
अंग मोतिनि छटा बदन पर कुच लता
नील पट घन घटा रूप गुन आगरी ।।
कबरी लजित फन नैन काजर अनी फल
कुमकुम बर्नी परम सोभागरी ।
नासिका सुक चंचल अधर
ईं बिंब पर दसर दाडिम कली चिबुक पर डागरी ।।
कमनीय जटित किंकिनी अति बनत
पोत मुक्तादाम कुच लाग री ।
वलय कंकन चूडी मुद्रिका अति रुडी
बेसरी लटक रही कामरस राग री ।।
चरन नूपुर बजत नख सिख चक्र चंद्रमा
मंद मुसक्यान बस्यो है जु सुहागरी ।
'गोविंद' प्रभु सु मिलो क्यों न भामिनी ।।[1]

उसके नेत्र बड़े रस मतवाले हैं। वे श्रवणों तक जा रहे हैं और कटाक्ष से रात्रि की रति की बात कहते हैं।[2] राधिका का मुख शरद चंद सदृश है। दाँतों की ज्योति चन्द्रिका के समान, वचन शीतल, हास अमृत सदृश, वचन ज्योत्स्ना सदृश, और नेत्र ससि तुल्य हैं। मस्तक पर कस्तूरी का तिलक और कटि की छवि रति के समान है।[3] राधिका ने सुन्दर पचरंग की चूनरी पहन रखी है। चंपा के समान शरीर पर खुली कंचुकी धारण कर रखी है। सिर पर फूल सुशोभित हैं,

१. गोविंद स्वामी—विद्या विभाग, कांकरोली, पद ४६४

२. अति रसमाते री तेरे नैन ।
दौरि-दौरि जात निकट स्रवनि के हँसि
मिलवत करि कटाच्छ कहत रजनी रति बैन ।।
गोविंद स्वामी—विद्या विभाग, कांकरोली, पद ४६५

३. तेरो मुख प्यारी जैसो सरद ससी ।
दसन ज्योति जुन्हाई वचन सीतलताई अमृत हास सुहाई चोन्हत नैन ससी ।
कस्तूरी तिलक भाल रति लंक छवि नछत्र मालमनि मंगल सी ।
'गोविंद' प्रभु नंदसुवन चकोर वर पान करत वर मनमथ ताप नसी ।।
गोविंद स्वामी—विद्या विभाग, कांकरोली, पद ४६६

निर्वाह हिंडोला झूलते समय भी होता है।[1] कुंजमहल में कृष्ण और राधा दंपति[2] के रूप में ही सुशोभित नहीं होते अपितु कृष्ण राजा और राधिका रानी हैं।[3] गोविन्द स्वामी ने कृष्ण राधिका के नव निकुंजों में क्रीड़ा सम्बन्धी चित्र प्रस्तुत किये हैं। वे दोनों एक दूसरे से लिपटते और प्रेम-तरंगों में रस युक्त हैं। वधू राधिका के हाव भाव बड़े मृदु हैं। राधिका और गिरिवरधर की छवि अवर्णनीय है।[4] कुंजमहल में सेज पर कृष्ण और राधिका लेटे हुए हैं। शृङ्गारिक राधिका का कवि ने प्रकृति के साथ कैसा तादात्म्य स्थापित किया है देखिये —

कुँजमहल कुसुमनि सज्या पर पोढ़े रसिक रसिकिनी प्यारी।
नव सत साज सिंगार किये तन सोभित है कुसुमनि की सारी॥
तैसीए सरद चाँदनी फबि रही तैसोई पवन बहत सुखकारी।
तैसीए मधुप कोकिला कूजत तैसेई बचन कहत मनुहारी॥
रति स्रम स्रमित जानि प्रीतम के चाँपति चरन वृषभानु दुलारी।
इह सुख निरखि-निरखि 'गोविंद' प्रभु तन मन धन कीनों बलिहारी॥[5]

---

१. कान्ह कनक हिंडोरें झूलत रितु बसंत मुरारी।
वाम भाग अब लावत राधा अंग-अंग सकुंवरी॥
गोविंद स्वामी—विद्या विभाग, कांकरौली, पद १४३

२. राजत दंपति कुंज महल में।
बनि ठनि बैठे एक सेज पर डारे भुजा परस्पर गल में॥
गोविंद स्वामी—विद्या विभाग, कांकरौली, पद ५१९

३. राइ गिरिधरन संग राधिका रानी।
निविड नव कुंज नव कंज सिज्या रची नवरंग पीय संग बोलत पिक बानी॥
गोविंद स्वामी—विद्या विभाग, कांकरौली, पद ५२१

४. क्रीडत दोऊ नवनिकुंज।
स्याम स्यामा ललित लपटनि बढ्यो आनंद पुंज॥
बढयो सुरत संजोग रस बस भए प्रेम तरंग।
हाव भाव व्रजभाव मृदु वधू बचन उदित अनंद॥
राधिका गिरिवरधरन छवि कहत न बने चैन।
बसो 'गोविंद' दास के उर संतत निरखो नैन॥
गोविंद स्वामी—विद्या विभाग, कांकरौली, पद ४१०

५. गोविंद स्वामी—विद्या विभाग, कांकरौली, पद ५२२

रस प्लावित तान से गाती है।[1] कवि ने उसके कृष्ण की ओर अर्द्ध नेत्रों से निहारने का स्वरूप सुन्दर चित्रित किया है।[2] मोहन आगमन के आभास में प्रसन्न राधा को स्वर्ण मदन में डोलते हुए देखिये—

अंजन की रेखा राजै, कुच-बिच चित्र साजै,
ऐहैं वेली रेली हेली उचित अदन में।
अरवराय प्यारी देखियत ऐसी भारी सकुंवारी,
हंस गति भूल्यौ, नूपुर-नदन में॥
गोवर्धनधारीलाल, तोही सों रति कौ ख्याल,
अधर कौ मधु भावै सुंदर रदन में।
'छीत-स्वामी' स्यामा स्याम, दोऊ अति अभिराम,
मोतिनि कौ चौक पूरयौ लेपन चँदन में॥[3]

राधा के रूठ जाने पर मोहन उसे आश्वासन दिलाते हैं कि उनकी मित्रता राधा से ही है।[4] राधा कृष्ण के साथ विविध प्रकार की क्रीड़ायें करती है। वह कृष्ण के साथ होली खेलती है।[5] वह नवल नागरी फूलों का शृङ्गार धारण कर अत्यधिक सुशोभित होती है। वह फूल की ही सारी, फूल की ही अँगिया तथा फूल का ही लहँगा धारण करती है जिसे देखकर कामदेव भी लज्जित होता है।[6]

---

१. छीत स्वामी—विद्या विभाग, कांकरौली, पद ९३
२. ,, ,, ,, पद ९०
३. ,, ,, ,, पद ८८
४. ,, ,, ,, पद १४५
५. ,, ,, ,, पद ५७
६. फूल सारी, कंचुकी बनी फूल की
फूल लहँगा निरखि काम लाजै।
'छीत-स्वामी' फूल-सदन प्यारी सदा,
विलसि मिलवत अङ्ग काम दाजै॥

छीत स्वामी—विद्या विभाग, कांकरौली, पद ९०

छीत स्वामी ने कुंज सदन में विहँसते हुए, सत शृंगार धारण किये, लालों से जड़े आभूषण युक्त, रूप-राशि राधिका का स्वरूप चित्रण किया है।[१] उन्होंने राधिका के शृंगारिक रूप के साथ ही परस्पर सम्मिलन, परस्पर अंग स्पर्श और रतिकेलि के चित्र उपस्थित किये हैं। ऐसे स्थानों पर राधा और कृष्ण का नग्न स्वरूप ही सम्मुख आता है। ऐसे पदों से भक्ति-भावना के साथ ही शृंगारिक भावना का उद्रेक होता है। यहाँ राधा कामकेलि कुतूहला और चतुरा है। वह कुंज महल में कृष्ण के साथ क्रीड़ा करती,[२] प्रिय के साथ रास रङ्ग करती[३] और आनन्दित होती है। कवि ने शयन, सुरतान्त और खंडिता नायिका सम्बन्धी पदों की रचना की है। इनके राधा सम्बन्धी शृंगारिक, परस्पर सम्मिलन एवं रति क्रीड़ा सम्बन्धी पद ही प्रचुर हैं।

---

१. आजु राधिका प्रवीन स्याम-संग कुंज-सदन
बिलसति मन हुलसि-हुलसि नवल नागरी।
नव सत सिंगार सजें रूप-रासि अङ्ग-अङ्ग
भूषन नव जटित लाल, जलज-मांग री॥
पिय अँस धरे-बाहु, निरखत जिय में उछाहु
परसत कर गंड बाहु मानि भाग री।
'छीत' स्वामिनी विचित्र गिरिवरधरलाल जुगल
पीवत अधर मधुर-मधुर कंठ लाग री॥

छीत स्वामी—विद्या विभाग, कांकरौली, पद १४८

२. छीत स्वामी—विद्या विभाग, कांकरौली, पद १५५

३. नंद-नंदन-संग राधिका खेली।
कुंज के सदन अति चतुर वर नागरी
चतुर नागर मिले करत केली॥
नील पट तन लसैं, पीत कंचुकी कसैं,
सकल अङ्ग भूषननि रूप-रेली।

× × ×

'छीत-स्वामी' नवल वृषभानु-नंदिनी
करनि सुख-रास पिय-संग नवेली।

छीत स्वामी—विद्या विभाग, कांकरौली, पद १५३

मीराबाई

मीराबाई अष्टछाप कवियों के प्रायः समकालीन कवियित्री थीं। मीराबाई ने किसी सम्प्रदाय विशेष से सम्बन्ध न रख अपने 'प्रियतम' का गान स्वतन्त्र वन विहगी की भाँति गाया। मीराबाई के पदों में राधा का उल्लेख बहुत ही कम है। उनके एक दो पदों में राधा का उल्लेख और एक दो पदों में राधा का आभास मिलता है। उनके काव्य में राधा कृष्ण की लीलाओं का चित्रण नहीं हुआ अपितु गोपाल कृष्ण की विविध लीलाओं के प्रसङ्ग में ही राधा का उल्लेख हुआ है। उदाहरण स्वरूप देखिये—

हमरो प्रणाम बाँके बिहारी को।
मोर मुकुट माथे तिलक विराजे कुंडल अलकाकारी को।
अधर मधुर पर वंशी बजावैं रीझ रिझावैं राधा प्यारी को।
यह छवि देख मगन भई मीरा मोहन गिरिवर धारी को॥

अथवा

आली म्हाँने लागे वृन्दावन नीको।
× × ×
कुंजन कुंजन फिरत राधिका सबद सुनत मुरली को।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर भजन बिना नर फीको॥

अथवा

माई री मैं तो गोविन्द लीनो मोल।
× × ×
कोउ कहे घर में कोई कहे बन में राधा के सङ्ग किलोल।
मीरा कूँ प्रभु दरसन दीज्यो पूरब जनम को कोल॥

मीरा के मुरारी राधा-मय और राधा कृष्णमय बन जाती हैं। उसकी दशा कीट-भ्रंग की सी हो जाती है। मीरा की भक्ति माधुर्य भाव की थी। मीरा प्रेम की समाधि में अपने को प्रिय से आत्म सात कर लेती है और गिरिधर गोपाल को अपनाकर उन्हें अपने पति के रूप में देखती है—

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई॥

वहाँ कुल की कानि का कोई प्रश्न ही नहीं है। अनेक स्थानों पर मीरा स्वयं ही राधा का स्थान ग्रहण कर लेती हैं और राधा की भाँति ही कृष्ण से प्रेम करने लगती है। उनकी प्रेम साधना राधा से ही समता रखती है। वे स्वमेव राधा के

भाव का ही अवलम्बन कर काव्य रचना करती है ऐसे हमको अनेक उदाहरण मिलते हैं—

सखी मेरी नींद नसानी हो।
पिया को पंथ निहारते, सब रैन विहानी हो॥
सखियन मिल के सीख दई, मन एक न मानी हो।
बिन देखे कल न पड़े, जिय ऐसी ठानी हो॥
अंगन छीन व्याकुल भई, मुख पिय पिय बानी हो।
अन्तर बेदन विरह की वह, पीव न जानी हो॥
ज्यों चातक घन को रटै, मछरी जिमि पानी हो।
मीरा व्याकुल विरहिनी, सुध बुध बिसरानी हो॥

देखिये निम्नलिखित पद को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि मानों इसे मीरा न कहकर राधा अपने मुख से कह रही हो—

मैं हरि बिन कैसे जिऊँ री माय।
पिय कारण जग बैरी भई, जस काठइ घुन खाइ॥
औषद मूल न संचरै, मोहि लागो बैराय।

× × ×

पिय ढूँढ़न वन वन गई, कहुँ मुरली धुन पाय।
मीरा के प्रभु लाल गिरिधर मिलि गये सुखदाय॥

मीरा के कुछ ऐसे भी पद मिलते हैं जिनमें उन्होंने राधा का कोई स्पष्ट उल्लेख न कर केवल अपनी प्रेम विह्वलता का ही उल्लेख किया है परन्तु सूक्ष्म रूप से देखने पर प्रतीत होता है कि मीरा की ऐसी अपनी प्रेम विह्वलता के अन्दर श्री राधा का ही आभास है—

नैना लोभी रे बहुरि सके नहिं आय।
रोम-रोम नखसिख सब निरखत, ललच रहे ललचाय॥
मैं ठाढ़ी गृह आपने मोहन निकले आय।
सारंग ओट तजे कुल अंकुस, बदन दिये मुसकाय॥
लोक कुटुम्बी बरजहीं, बतियाँ कहत बनाय।
चंचल चपल अटक नहिं मानत, पर हाथ गये बिकाय॥
भलो कहो कोई बुरो कहो मैं, सब लई सीस चढ़ाय।
मीरा कहे प्रभु गिरिधर के बिन, पल भर रह्यो न जाय॥

रसखान

रसखान ने गोस्वामी विट्ठलनाथ से दीक्षा ली थी इसलिये उन पर इनका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। रसखान की कृष्ण की सगुण भक्ति में प्रेम के लक्षण विद्यमान हैं। रसखान ने आत्म समर्पण भक्ति को ही सर्वोपरि माना तथा वे तन और मन से श्रीकृष्ण के हो गये और उन्हीं पर अपने को न्यौछावर कर दिया। रसखान की भक्ति प्रेम लक्षणा भक्ति से समन्वित होने के कारण उनके कवित्त और सवैयों में राधा-कृष्ण और गोपियों के प्रणय का निरूपण है। सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि रसखान के आराध्यदेव राधा-कृष्ण न होकर श्रीकृष्ण ही हैं। राधा के प्रेम की पूर्ण प्रतिष्ठा न कर उन्होंने केवल परम्परा का ही निर्वाह किया है। राधा की ओर उनकी दृष्टि विशेष रूप से नहीं गई है और उनके काव्य में दो चार स्थलों पर ही राधा का नाम आया है। उन्होंने प्रेम वाटिका में कृष्ण और राधा को माली और मालिन के जोड़े के रूप में देखा है तथा राधिका प्रेम का अयन ही है—

प्रेम अयन श्री राधिका, प्रेम-बरन नन्दनन्द।
प्रेम-वाटिका के दोऊ, माली-मालिन-द्वन्द ॥[1]

उनकी राधा और माधव सखियों के साथ कुंज में विहार करते हैं—

राधा माधव सखिन सङ्ग, विहरत कुंज कुटीर।
रसिक राज रसखानि जहँ, कूजत कोइल कीर ॥[2]

उनकी राधा कृष्ण पर विमुग्ध हो जाती है। कृष्ण वंशीवादन करते हुए गली में आ निकले और कटाक्षकर उन्होंने कुछ जादू सा कर दिया तभी से राधिका सेज पर पड़ी है। गोपिकाओं का कथन है कि यदि राधिका जीवेगी तो वे भी जीवेंगी अन्यथा नन्द के द्वार पर विषपान कर लेंगी—

बंसी बजावत आनि कढ़ो सो गली में अली कछु टोना सों डारें।
हेरि चितै तिरछी करि दृष्टि चलो गयो मोहन मूठि सी मारें॥
ताही घरी सों परी धरी सेज पै प्यारी न बोलति प्रान हूँ वारें।
राधिका जी है तो जी है सबै न तो पी है हलाहल नन्द के द्वारें॥[3]

1. प्रेम वाटिका—रसखानि, दोहा १, पृ० १
२. शेष पूरन, पृ १६
३. सुजान रसखान सवैया ११, पृ. १८

यही नहीं कि राधिका ही कृष्ण पर विमुग्ध हो अपितु वह कृष्ण भी जिसको पुराणों, गानों, वेदों, ऋचाओं में ढूँढ़ा जिसके स्वरूप और स्वभाव का भी पता नहीं लगा और जिसको कोई व्यक्ति नहीं बता सकता कि वह कहाँ है, वह कुंज कुटीर में राधिका के पैरों को पलोटते हैं—

ब्रह्म में ढूँढ्यो पुरानन गानन वेद रिचा सुनि चौगुने चायन।
देख्यो सुन्यो कबहूँ न कितूं वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन।।
टेरत हेरत हारि पर्यो रसखानि बतायो न लोग लुगायन।
देखो दुरो वह कुंज कुटीर में बैठो पलोटत राधिका पायन।।[1]

राधिका ने कृष्ण को अपने वश में कर रखा है और हरि राधिका के चेरे हो गये हैं।[2] रसखानि की राधिका लोक लाज को तिलांजलि दे कृष्ण के साथ प्रेम बरसाती, मुरि मुसकाती उनके पैरों में पड़ती और अपने कार्य को भी भूल जाती है। इस चतुर राधिका को अपनी बात फैलने का भी कोई भय नहीं है—

एरी आजु काल्हि सब लोक लाज त्यागि दोऊ
सीखे हैं सबै विधि सनेह सर साइबो।
यह रसखान दिना द्वै में बात फैलि जैहै
कहां लौं सयानी चन्दा हाथन छिपाइबो।।
आजु हौं निहार्यो बीर निपट कलिंदी तीर
दोउन को दोउन सौं मुरि मुसकाइबो।
दोउ परैं पैयां दोऊ लेत हैं बलैयां इन्हें
भूलि गईं गैयां उन्हें गागर उठाइबो।।[3]

अष्टछाप के कवियों की भाँति रसखान ने कृष्ण राधिका को दूल्हा दुल्हिन के रूप में चित्रित करते हुये उनकी जोड़ी सुन्दर बताई है—

मोर के चन्दन मौर बन्यो दिन दूलह है अली नन्द को नन्दन।
श्री वृषभानु सुता दुलही दिन जोरी बनी बिधना सुखकंदन।।

---

१. रसखानि यहै सुनि कै गुनि कै हियरा सत टूक ह्वै फाटि गयो है।
मुनो जानत हैं न कछू हम ह्यां उनवा पढ़ि मंत्र कहा धौं दयो है।।
गुरु सांचो कहै जिय में निज जानि कै जानत हौं जस कैसो लयो है।
सब लोग लुगाई कहैं ब्रज माहिं अरे हरि चेरो को चेरो भयो है।।
सुजान रसखान सवैया ६६ पृ. ३६

२. सुजान रसखान,-कवित्त ६०, पृ० २८

रसखानि न आवत मो पै कह्यो कछु दोउ फँदे छबि प्रेम के फंदन।
जाहि बिलोकें सबै सुख पावत ते ब्रज जीवन हैं दुखदंदन ॥[१]

राधिका को अचानक कृष्ण से भेंट होने पर देखिये उसकी क्या दशा होती है—

आज अचानक राधिका रूप निधान सों भेंट भई बन माहीं।
देखत दीठि परे रसखानि मिले भरि अंक दिए गल बाहीं॥
प्रेम पगी बतियाँ दुहुँ की दुहूँ कों लगि अति ही चित चाहीं।
मोहिनी मन्त्र बसीकर जन्त्र हहा पिय की तिय की नहिं नाहीं ॥[२]

राधिका और गोपिकाओं को कृष्ण ही भाते हैं वे उपवन में कृष्ण को जाने की आवश्यकता न समझ उपवन की वस्तुएँ वहीं मँगा लेती हैं।[३] वे कृष्ण प्रेम में परिप्लावित विक्षिप्त सी फिरती हैं।[४]

---

१. सुजान रसखान-सवैया ८६
२. ,, ,, ,, ८५
३. ,, ,, ,, १५
४. ,, ,, ३१, २७

निम्बार्क सम्प्रदाय के कवियों का राधा का स्वरूप

श्रीभट्ट

श्रीभट्ट केशव काश्मीरी के अन्तरंग शिष्य होने के कारण उनके उपरान्त उनकी गद्दी पर बैठे। अपने गुरुदेव के ऐश्वर्य भाव के उपासक होने पर भी आप माधुर्य रसोपासक थे और श्रीराधा माधव की दिव्य लीलाओं में आनन्द विभोर रहते थे। नाभादास ने आपके सम्बन्ध में भक्तमाल में लिखा है—

मधुर-स्वभाव-संवलित, ललित लीला सुवलित छवि।
निरखत हरषत हृदय प्रेम बरसत सुकलित कवि॥
भव-निस्सारन-हेत देत दृढ़ भक्ति सबनि नित।
जासु सुजसु-ससि-उदै हरत अति तम भ्रम स्रमचित॥
आनन्द कंद श्री नंद सुत श्री वृषभानु-सुता-भजन।
श्रीभट्ट सुभट्ट प्रगट्यौ अघट रस रसिकन मन मोद-वन॥

जिस प्रकार स्वामी हरिदासजी के अनुयायी उन्हें श्रीराधा कृष्ण की मुख्य सखियों में से श्री ललिताजी का अवतार मानते हैं उसी प्रकार उन्हें श्री हितू सखी का अवतार कहा जाता है। श्री रूप रसिक कृत एक छप्पय आपके सम्बन्ध में प्रसिद्ध है—

जे नर आवे शरण ताप त्रय तिनके हरहीं।
तत्त्वदर्शी ते होय हस्त जा मस्तक धरहीं॥
गुणनिधि रसिक प्रवीण भक्ति दशधा को आगर।
श्रीराधा कृष्ण स्वरूप ललित लीला रस सागर॥
कृपा दृष्टि संतन सुखद भक्त भूप निज वंश वर।
कल्प विटप श्रीभट प्रकट कलि कलमष दुख दूरि कर॥

श्रीभट्ट ने युगल शतक की रचना की। आपने निम्बार्काचार्यों में सर्व प्रथम ब्रजभाषा में रचना की, इसलिये श्री युगल शतक आदि वानी के नाम से भी प्रसिद्ध है। इसमें सौ पद हैं। मधुर रसोपासना में इनके पद मन्त्र रूप ही माने जाते हैं। इसमें छः सुख हैं। रूप रसिक देवजी ने इस सम्बन्ध में एक छप्पय लिखा है—

दस पद हैं सिद्धान्त विशिष्ट ब्रज लीला पद।
सेवा सुख सोलह सहज सुख एक बीस हद॥
आठ सुरत रत उनवीस उत्सव सुख लहिये।
श्रीगुन श्री भट्टदेव रच्यो सत जुगल जु कहिये॥
नित भजन माध रसिकै किये इसे भेद ये उर धरी।
रूप रसिक सब सरस जन अनुमोदन धारो करो॥

युगल शतक में सिद्धांत, ब्रजलीला, सेवा, सहज, सुरत, उत्सव छ: सुख हैं। इन छहों विभागों में क्रमशः इस प्रकार विषय वर्णित है—

१. साध्य, साधन, साधक
२. भगवान् की अष्टयाम सेवा
३. ब्रज लीला की झांकी
४. परमात्म तत्त्व और उसकी शक्ति का वास्तविक स्वरूप
५. रहस्य क्रीड़ा
६. वर्ष भर के उत्सव

श्री भट्टजी ने युगल मूर्त्ति की लीलाओं का अत्यन्त सुन्दर और सरस वर्णन किया है। इनके काव्य में माधुर्य, भक्त हृदय की विह्वलता और रस स्निग्धता है। श्री राधाकृष्ण की उपासना के सम्बन्ध में आपकी भव्य धारणा है कि—

दोहा—सेव्य हमारे है सदा, वृन्दा विपिन विलास।
नन्द-नन्दन वृषभानुजा, चरण अनंन्य उपास॥
पद – सन्तो ! सेव्य हमारे श्री पिय प्यारे वृन्दा विपिन विलासी।
नन्द-नन्दन वृषभानु नन्दिनी, चरण अनंन्य उपासी॥
मत्त प्रणय वश सदा एक रस विविध निकुंज निवासी।
जै श्री भट्ट युगल वंशीवट, सेवत मूरति सब सुखरासी॥[1]

श्री भट्टजी की राधिका कृष्ण से कभी पृथक नहीं दिखाई देती। उनका कथन है—

दोहा—दर्पन में प्रतिबिंब ज्यों, नैंन जु नयननि मांहि।
यों प्यारी पिय पलक हू, न्यारे नहि दरशांहि॥
पद (तिताला)—प्यारी तन श्याम श्यामा तन प्यारो।
प्रतिबिम्बित तन अरसि परसि दोउ,
एक पलक दिखियत नहि न्यारो॥
ज्यों दर्पन में नैंन नैंन में, नैंन सहित दर्पन दिखवारो।
(जै) श्रीभट जोटकि अति छवि ऊपर,
तन मन धन न्योछावरि डारों॥[2]

श्री भट्टजी ने कृष्ण से राधा को कहीं अधिक महत्ता दी है। उनके कृष्ण अपने मुख से सदा श्री राधे-राधे रटते हैं—

१. युगल शतक—श्री भट्ट देवाचार्य ५
२. श्री युगल शतक—भट्ट देवाचार्य ६०

दोहा–प्रीति रीति रसवश भये, यदपि मनोहर मैंन ।
तदपि रटैं निज मुख सदा, श्री राधे राधे बैंन ॥

पद (राग केदारो ताल-चम्पक)

मोहन श्रीराधे राधे बैंन बोलैं ।
प्रीति रीति रस वश नागरि हरि, लिये प्रेम के मोलैं ॥
हास विलास रास राधे संग शील आपनों तोलैं ।
(जै) श्रीभट मदनमोहन तउ हारि-हारि शिर डोलैं ॥[1]

राधिका के प्रेम की बात ही नहीं कही जा सकती । जो किशोर मन, वचन और क्रम से दुर्लभ है वही उसके प्रेम के कारण चरणों को स्पर्श करता है—

दोहा–मन वच क्रम दुर्गम सदा, ताहित्र चरण छुवात ।
राधे तेरे प्रेम की, कहि आवै नहि बात ॥
पद (इकताल)––राधे तेरे प्रेम की, कापे कहि आवै ।
तेरी सौ गोपाल की, तो पै बनिं आवै ॥
मन वच क्रम दुर्गम किशोर, ताहि चरण छुवावै ।
जै श्रीभट मति वृषभानु जे, जु प्रताप जनावैं ॥[2]

उनकी राधिका कुँवरि वृषभानु की किशोरी बालिका है जिसने अल्पवयस में ही श्री मोहनलाल को मोह लिया है—

दोहा–(अ) हो राधे वृषभान की, कुंवरि किशोरी बाल ।
थोरी वय भोरी हि में, मोहे मोहनलाल ॥
पद (इकताला)—जै जै श्री वृषभानु किशोरी ।
राजत रसिक श्रंक अंकित सी, लसी श्याम संग गोरी ॥
जै जै राधे रूप अगाधे, चितै चारु चित चोरी ।
श्रीभट नटवर रूप सुन्दर वर, मोहे तें थोरी वय भोरी ॥[3]

श्रीकृष्ण भगवान् सुख-समूह कुंज महलों में विविध प्रकार के सुन्दर भोजन करते हुए श्रीराधा के वश में हो जाते हैं ।[4] श्री भट्टजी ने राधा को दुल्हिन और कृष्ण को दूल्हा के रूप में स्वीकार किया है । नंदलाल दूल्हा का रूप अनूप है और

१. श्री युगल शतक—भट्ट देवाचार्य ६८
२. ,, ,, २९
३. ,, ,, ८१
४. कुंज महल सुख पुंज में, भोजन विविध रसाल ।
श्रीराधा रस वश भये, जेंमत लाल गोपाल ॥ श्री युगलशतक–भट्टदेवाचार्य १७

रंग-रंगीले शरीर के समस्त ग्वाले बराती हैं।[1] वृन्दावन में राधा और कृष्ण की जोरी ऐसी सुन्दर बनी है जो चौदहों भुवनों में सिरमौर है।[2] दोनों नख से शिख तक सुषमा की खान हैं। राधा माधव की जोड़ी अद्भुत है—

दोहा—नख शिख सुखमा के दोऊ, रतनाकर रसिकेश।
अद्भुत राधा माधवौ, जोरी सहज सुदेश॥

पद (त्रिताला)—राधा माधव अद्भुत जोरी।
सदा सनातन इक रस बिहरत, अविचल नवल किशोर किशोरी॥
नख शिख सब सुषमा रतनागर भरत रसिक वर हृदय सरोरी।
जै श्रीभट्ट कटक कर कुंडल, गंडवलय मिलि लसत हिलोरी॥[3]

वे दम्पति कुंजमहल में सुशोभित हो रहे हैं। यह मिलन ऐसा प्रतीत होता है मानो गौना हो रहा है और वे अपने मनोरथपूर्ण कर रहे हों।[4] सेज पर श्यामा और श्याम सुख पूर्वक विहार करने के उपरान्त जब उठते हैं तो राधिका कंचुकी कसती हुई उठती है और उसके सिर से नील वस्त्र फिसल-फिसल पड़ता है। यहाँ कवि ने राधिका का नग्न चित्रण करते हुए भी संयम एवं शालीनता का ध्यान रखा है।[5] राधा शोभा निधि और सुख सिद्धि है। उस प्राण वल्लभा प्यारी का स्वरूप भट्टजी इस प्रकार चित्रित करते हैं—

---

१. रंग रंगीले गात के, संग बराती ग्वाल।
दूलह रूप अनूप ह्वै, नित विहरत नंदलाल॥
पद (राग विहागरो)
लखे आली नित विहरत नँदलाल।
रंग रंगीले अँग अँग कोमल, संग बराती ग्वाल॥
दूलह श्री ब्रजराज लाडिलो, दुलहिन राधा बाल।
जै श्री भट्टवल्लवी जुग के, गावत गीत रसाल॥
श्री युगलशतक—भट्ट देवाचार्य १९

२. भुवन चतुर्दश की सबै, सुन्दरता शिर मौर।
सुंदर बरजोरी बनी, वृन्दावन निज ठौर॥ ,, ,, ५८

३. युगलशतक—श्री भट्ट देवाचार्य ५९

४. ,, ,, ३४

दोहा
५. खिसि–खिसि शिरते परत पट, शशिवदनी जुव जाल।
उठत भोर संग लाल के, कसति कंचुकी बाल॥
पद
उठत भोर लाल जू के संग ते कंचुकी कसत राधिका प्यारी।
खिसि खिसि परत नील पट शिरतें, शशि बदनी बन जोवन वारी॥
मन भावतो लाल गिरिधर जू की रची विधाता सुहाथ सँवारी।
जै श्रीभट्ट सुरत रङ्ग भीने, लखे प्रिया जुत कुंजविहारी॥
युगलशतक—श्री भट्टदेवाचार्य ३८

दोहा—शोभा निधि सुख सिद्धि रिधि, राधा धवको धाम।
जहां हितु हित सज्या सजी, श्रीभट निजकर श्याम ॥

पद (ताल चंपक)—निजकर अपने श्याम सँवारी।
सुखद सेज राधा माधव मन्दिर, शोभा निधि रिधि-सिद्धि महारी ॥
हितु के हेत हरपि सुंदरवर अतिहि अनूप रची रचिकारी।
जै श्रीभट्ट करत परिचर्य्या, रिझवत प्राण वल्लभा प्यारी ॥[1]

उनकी राधा आधुनिक रमणी की भांति अपने श्रीगोपाल को ताम्बूल सेवन कराती है।[2] राधा और माधव दोनों निज कुंज में क्रीड़ा करते हैं।[3] श्रीभट्ट ने युगल शतक में राधिका और कृष्ण की जोड़ी का वर्णन दम्पत्ति के रूप में किया है तथा राधा के मान का भी चित्रण किया है। राधा श्रीकृष्ण में अपने ही शरीर का प्रकाश देख अन्य नारी का आभास पा मान करती है। कवि की यह कल्पना कितनी मौलिक है कि वह पर नारी को भी राधा की छाया मात्र के रूप में प्रस्तुत करने को उद्यत है। उनके परकीया भाव में भी स्वकीया भाव है मानिनी राधा का चित्र देखिये—

दोहा—एक समै श्रीराधिका, कृष्णकांति परकाश।
आन त्रिया तट जानि कै, मान कियो रस रास ॥

पद (इकताल)—रसिकनी मान कियो रस रास।
एक समै पिय तन मैं अपनों निज प्रतिबिंब प्रकाश ॥
यह सम्भ्रम उपजायो उन में, पर तिरिया कोउ पास।
जै श्रीभट हठ हरि सों करि रहि, नागर निपट उदास ॥[4]

---

१. युगल शतक—श्री भट्ट देवाचार्य ५०

दोहा

२. शरद रैन गिरि नील मनु, घन चपला सनमान।
अपने श्री गोपाल कों, प्रिया खवावति पान ॥

पद (इकताल)

गोपाल जू को पान खवावत भामिनी।
परम प्रिया गुण रूप अगाधा, श्रीराधा निज वामनी ॥
कर अंकमाल पीक मुख लखहीं चितगहि ज्यों घन दामिनी।
जै श्रीभट्ट पृष्टपर्यंक तट, निर्खी शरद मनु यामिनी ॥
युगलशतक—श्री भट्ट देवाचार्य ६५

३. युगलशतक—श्री भट्ट देवाचार्य ७८

४. 　　"　　　　"　　　　६६

उनकी राधा की किसी से समता ही नहीं की जा सकती। जरा से नेत्र की कोर से सब कुछ छोड़कर मोहन उनके वश में हो गए हैं। वास्तव में वह रूप ऐसा ही है देखिए—

दोहा–राधे तेरे रूप की, पटतर कहिये काहि।
सर्वस तजि रसवश भये, नैंन कोर तन चाहि॥

पद–(राग रायसौ, ताल चम्पक)
नेंक नैंन की कोर मोरि मोहन वश कीनें।
(श्री) राधे तेरे रूप की, पटतर को दीनें॥
कमल कोश अलि ज्यों चलै, तारे रङ्ग भीने।
(जै) श्रीभट्ट तन अंजन छुवै, लालन लव लीनें॥[1]

हरिव्यास

निम्वार्क सम्प्रदाय के अन्तर्गत होते हुए भी उन्होंने 'रसिक-सम्प्रदाय' नामक शाखा चलाई। इस मत में भगवान् के शृङ्गारी रूप की उपासना की जाती है। इस शाखा के सन्त लोग 'हरिव्यासी' नाम से प्रसिद्ध हुए। आचार्यजी ने संस्कृत के निम्नलिखित ग्रन्थ लिखे—(१) सिद्धान्तरत्नांजलि (२) अष्टयाम (३) श्री निम्वार्क अष्टोत्तर नाम की टीका (४) तत्वार्थपंचक (५) पंच संस्कार निरूपण आदि। भाषा में केवल एक मात्र 'महावाणी' की उन्होंने रचना की। अपने गुरु की आज्ञानुसार इन्होंने युगल शतक के ऊपर जो भाष्य लिखा वही 'महावाणी' के नाम से प्रसिद्ध है। युगल शतक के दोहों में जो भाव संक्षेप में वर्णित है उन्हीं का विस्तार महावाणी के दोहों में हुआ है। युगल शतक में व्रज एवं नित्य रस का सम्मिश्रण हैं परन्तु महावाणी में शुद्ध विहार रस का वर्णन है। साम्प्रदायिक रसिकों के मत से श्रीमहावाणी मूल-मन्त्रार्थ भी है।

अपने गुरु श्री भट्टजी के आदेश से इन्होंने युगल शतक का भाष्य लिखा वही 'महावाणी' है। श्री राधा कृष्ण की नित्य विहारी लीला का बड़ा मार्मिक और हृदय स्पर्शी वर्णन इसमें किया गया है जो भक्त कवि की अनुभूति की सुन्दर अभिव्यक्ति है। यह महावाणी निगमागम का सार है और तन्त्र शास्त्रों की मन्त्ररूप होने के कारण इसका भावार्थ बड़ा गम्भीर है। महावाणी में पाँच सुख है—सेवा उत्साह, सुरत, सहज और सिद्धान्त। सेवा सुख में नित्य विहारी श्रीराधा-कृष्ण की अष्टयाम सेवा का वर्णन है। श्री श्यामा-श्याम की अष्ट प्रहर सेवा में समयानुसार

१. युगलशतक—भट्ट देवाचार्य २६

सखी भाव में तन्मय होकर निमग्न रहना ही अष्टयाम सेवा सुख है। इसमें प्रथम छत्तीस पदों में सखी रूपा आचार्यों की वन्दना है इसके पश्चात् मङ्गला, शृङ्गार, मध्याह्न, संध्या एवं शयनादि सेवाओं का कार्य प्रणाली सहित वर्णन है। उत्सव सुख में नित्य विहार के नैमित्तिक उत्सवों के आनन्द का वर्णन है जिससे सखियों के नित्य नवीन आनन्द का अनुभव होता रहे। सुरत सुख के अनुसार नित्य विहारी राधा-कृष्ण परस्पर एक दूसरे के सुरत सागर में निमग्न रहते हैं। प्रिया प्रियतम के एक दूसरे के स्वरूप पर मुग्ध हो अभङ्ग केलि का नाम सुरत विहार है। यह अति गोपनीय और दुर्लभ है। सहज सुख में स्वाभाविक प्रेमावस्था में विभोर हो जाने का वर्णन है। इस सुख में परस्पर एक दूसरे के निकट विद्यमान रहते हुए भी बिछुड़ने के भय से अधीरता है और धैर्य रहित होने पर शीघ्र मिलन की व्याकुलता है। इस सुख में हृदयोल्लास के साथ विलास है। यह अति गोपनीय न होने पर भी उपासना तत्त्व के न जानने वाले एवं गुरु मार्ग से बहिर्मुख व्यक्तियों के लिये वर्जनीय है। सिद्धान्त सुख अति गम्भीर है। इसमें उपास्य तत्त्व, धाम तत्त्व, सखी नामावली और महावाणी के गूढ़ विषयों की तालिका है। उपास्य तत्त्व में माधुर्य एवं ऐश्वर्य का सम्मिश्रण है। श्रीराधा-कृष्ण की विभूति वर्णन के साथ सर्वेश्वरता की अभिव्यंजना है। इसमें धामतत्त्व की परात्परता और अखण्ड नित्यता का प्रतिपादन है। इसके अनुसार माधुर्य मूर्ति सर्वशक्ति सम्पन्न श्रीकृष्ण ही अखिल ब्रह्माण्डाधीश, अखिल अण्ड के आधार और ब्रह्माण्ड लीला के विस्तारक है। निराकार, अविकार, शुद्ध चैतन्य और सर्वव्यापक ब्रह्म तो नित्य विहारी के निर्देश मात्र है। सखी नामावली में प्रमुख आठ सखियों के आठ-आठ एवं उनके भी आठ-आठ सखियों के नामों का वर्णन है। योगपीठ वर्णन भी अद्भुत है।

जीवन मूल हैं।[1] उनका मुख सुषमा का आधार है।[2] सुहाग भरी, अनुराग भरी, अमित अनूपम अङ्गवाली रसरूपा राधिका-कृष्ण के रंग में रंगी हुई है।[3] राधिका सुकुमारी और नवरंग विहारिणी है। राधा के गुणों का विशद वर्णन हरिव्यासजी इस प्रकार करते हैं—

जय जय श्री नवरङ्ग विहारिनि; जय जय नववासासुख कारिनि।
जय जय श्री नवकेलिपरायनि; जय जय विश्वानन्द विधायनि।
जय जय श्री वृन्दावनरानी; जय जय परमोत्तम सुखदानी।
जय जय श्री मुख अद्भुत सोभा; जय जय निज विलासरस गोभा।
जय जय श्री प्रीतम की प्यारी; जय जय सरस सरूप उजारी।
जय जय श्री राधागुन गोरी; जय जय मधुरा मधुरस बोरी।
जय जय श्री अति अमित अनूपा; जय जय सहज सुभद्र सरूपा।
जय जय श्री मोहनमन हारी; जय जय पद्मा प्रान अधारी।
जय जय श्री अह्लादिनि देवी; जय जय स्यामा सब सुख सेवी।
जय जय श्री प्रियवल्लभराधा; जय जय सारद सब सुख साधा।
जय जय श्री नवनित्यनवीना; जय जय परम कृपाल प्रवीना।
जय जय श्री सबसुख की धामा; जय जय देवि देविका नामा।
जय जय श्री लावनितादेसा; जय जय सुन्दरि सरस सुवेसा।
जय जय श्री कलकोकिलबैनी; जय जय पद्मास्या सुखदैनी।
जय जय श्री गुनरूप गंभीरा; जय जय इन्दिरा हरि हिगहीरा।
जय जय श्री छवि कोटि छबीली; जय जय वामा सब सुखधामा।

---

१. सहज ही सुहाग भरी गरबीली गोरी।
जीवन धन हितू की श्रीहरि प्रिया किशोरी ॥१॥
रसिक बिहारी लाल की, जीवन प्रान अधारि।
रसिक रसीली रसभरी, अलबेली सुकुमारी ॥
रसिक रसीली राधा रस ही सों भरी है।
रसिक विहारीजू की जीवन की जरी है ॥२॥
महावाणी पृ० २४

२. प्रिया मुख सुखमा को आधार ॥५॥ महावाणी पृ० २५

३. रची रसिक रवन के रङ्ग।
श्रीराधा रवनी रस रूपा अमित अनूपा अङ्ग ॥
मांग सुहाग भरी भरि भामिनि उर अनुराग अभङ्ग।
गारी रंन सुरत सुख लूटी प्रान प्रिया हरि सङ्ग ॥१५॥
महावाणी पृ० २७

जय जय श्री आनंद अभिरामा, जय जय वामा सब सुखधामा।
जय जय श्री मोहन मनहरनी, जय जय कृष्ण प्रिया सुख करनी।
जय जय श्री रँग रूप रसाली, जय जय पद्माभा प्रतिपाली।
जय जय श्री रसबरषा करनी, जय जय श्रुतिरूपा श्रुतिबरनी।
जय जय श्री परिपूरनकामा; जय जय भागवती भविभामा।
जय जय श्री शशि कोटि प्रकाशी; जय जय माधवि हिये निवासी।
जय जय श्री वृन्दावनवसिता; जय जय असित सितारस रसिता।
जय जय श्री यशजग विख्याता; जय जय गुन आकरि सुखदाता।
जय जय महाप्रेम प्रसिद्धा; जय जय विसदवल्लभारिद्धा।
जय जय श्री गुन गन आगारा; जय जय गोरांगी आधारा।
जय जय श्री कंचन दिव्य अंगी; जय जय कुंवरि सुकेसि सुरंगी।
जय जय श्री छवि चित्र विचित्रा; जय जय पावन करा पवित्रा।
जय जय श्री अलि अलक लड़ैती; जय जय कुमकुम काला वढ़ैती।
जय जय श्री नवनित्य नवेली; जय जय सुखदाहिहू सहेली।
जय जय श्री राधा निज नामिनि; जय जय श्रीहरि प्रिया जय स्वामिनि॥[1]

श्री राधा कृष्ण नित्य किशोरी किशोर है, नित्य कामिनी कन्त हैं। दोनों नित्य नवीन अनन्तभावों में विलास करते हैं। श्रीराधा और कृष्ण दोनों के स्वरूप के दर्शन हरिव्यासदेवजी ने इस प्रकार कराये हैं—

जय श्री राधा नित्य किसोरी; रसिकविहारी नित्य किसोर।
जय श्री राधा पिय चित चोरी; प्रीतम पुरन प्रिया चित चोर।
जय श्री राधा राजत गोरी; गुन मंदिरवर सुंदर स्याम।
जय श्री राधा रसिक निजोरी, रसिकरसीलो सबसुखधाम।
जय श्री राधा रूप अगाधा; मन मोहन सोभा नहिं पार।
जय श्री राधा हरनीबाधा; बाधाहर हरि प्रान अधार।
जय श्री राधा अति सुकुमारी; अति अद्भुत प्यारो सुकुमार।
जय श्री राधा पिय की प्यारी; प्यारी को पिय परम उदार।
जय श्री राधा कृष्ण वल्लभा; राधा वल्लभ कृष्ण कृपाल।
जय श्री राधा कृपा सुल्लभा; दया निधि हरि दीनदयान।
जय श्री राधा नैन बिसाला; कृष्ण कमल दल नैन बिसाल।
जय श्री राधा रूप रसाला; रंग रँगीलो रूप रसाल।

---

[1] महावाणी १६, पृ० २७-२८

जय श्री राधा परम प्रवीना; चितमुख चातुर परम प्रवीन।
जय श्री राधा नित्य नवीना; नीरज नैन सु नित्य नवीन।
जय श्री राधा रति रसरंगी; कृष्ण कोटि कंदर्प सुरंग।
जय श्री मनि कनकांगी; मरकत मनि मोहनमृदु अंग।
जय श्री राधा रमनी कमनी; रहसि रमन रसजोरि विचित्र।
जय श्री राधा दुखदवदवनी; दुखदवदवन प्रवीन पवित्र।
जय श्री राधा वारिजवदनी; वारिजवदन वृन्दावन चंद।
जय श्री राधा सब सुख सदनी, सब सुख सदन सदानंद कंद।
जय श्री राधा लावनिललिता; लावनिललित लाड़िलो लाल।
जय श्री राधा सबसुख सलिता; सबसुखसलित सदासब काल।
जय श्री राधा सहज सरूपा; सकल सिरोमनि सहज सरूप।
जय श्री राधा अमित अनूपा; अद्भुत आभा अमित अनूप।
जय श्री राधा कंताकामिनि; कंतकामिनी राधा कंत।
जय श्री राधा हरि प्रिया स्वामिन; विलसत नवनवभाव अनंत ॥[1]

राधा समस्त सुखों की कामनाओं को पूर्ण करने वाली, सब सुखों की धाम, गोरी, नित्य किशोरी और सुयश उजागर हैं।[2] कृष्ण और राधिका दोनों एक दूसरे के प्राण जीवन धन हैं। दोनों के दो शरीर होते हुए भी एक ही प्राण हैं।[3] हरिव्यासदेवजी ने राधा की वन्दना करते हुए उनके गुणों पर इस प्रकार प्रकाश डाला है—

जय नमोराधारसिकनी; जय नमो मृदुमधुमुसकनी।
जय नमो प्रीतमवल्लभा; जय नमो प्रनतनसुल्लभा।

---

१. महावाणी १३, पृ० २८–२९
२. ,, २२, पृ० ३०
३. दोउ दोउन के प्रान जीवन धन छिन बिछुरे न सुहात।
एक रंग रँगि रहे रँगीले एक प्रान द्वै गात॥
तथा महावाणी सेवा सुख २३, पृ० ३०
प्रान एक द्वै देही श्रीहरि प्रिया हितू जनन को भान होरी॥
तथा ,, ,, ३६, पृ० ५१
है यह बात सबै कहबे की एकहि रूप दिये द्वै देह।
श्री हरिप्रिया येह वहु भावति तऊ पै थाह न आवत एह॥
महावाणी सहजसुख ११, पृ० १५२

जय नमो पियमनरजनी; जय नमो विरह विभंजनी।
जय नमो प्रेमपयोधनी; जय नमो रति रस बोधनी।
जय नमो सबसुखसागरी; जय नमो सब गुन आगरी।
जय नमो अद्भुतआननी; जय नमो मनहरमाननी।
जय नमो चन्द्रप्रभाहरा; जय नमो प्रेमापरपरा।
जय नमो कोकिलकलरवा; जय नमो भवभंजनिनवा।
जय नमो बीरीचर्विता; जय नमो गुननिधिगर्विता।
जय नमो अधरप्रवालनी; जय नमो रदन सुढालनी।
जय नमो नासाचटकनी; जय नमो पिया मन अटकनी।
जय नमो नकवेसरिधरा; जय नमो प्रीतम मनहरा।
जय नमो नैन बिलासनी; जय नमो रूपरसालनी।
जय नमो अंजन अंजिता; जय नमो खंजनगंजिता।
जय नमो दृशनआतुरा; जय नमो चितवन चातुरा।
जय नमो भौंहि मोहनी; जय नमो पिय मनमोहिनी।
जय नमो श्रुतिताटंकनी; जय नमो अलकनिबंकनी।
जय नमो आड़ललाटिका; जय नमो दिव्यसुहाटिका।
जत नमो सीस सुफूलनी; जय नमो नील दुकूलनी।
जय नमो सुभ सीमंतनी; जय नमो रसबरषंतनी।
जय नमो सुनमरसंतनी; जय नमो सुभदरसंतनी।
जय नमो गंडउदारनी; जय नमो चिबुकसुचारनी।
जय नमो कंठ अदूषना; जय नमो जगमग भूषना।
जय नमो कंचुकिरमवनी; जय नमो नवरंगरससनी।
जय नमो उरजसुढारनी; जय नमो मनिगनहारनी।
जय नमो मुक्तादामनी; जय नमो अतिअभिरामनी।
जय नमो उदरसुदेसनी; जय नमो नाभिसुदेसनी।
जय नमो सुंदर [illegible]; जय नमो सोभागीयनी।
जय नमो बाहुविचित्रनी; जय नमो परमपवित्रनी।
जय नमो पुरीचित्रनी; जय नमो मोहनमित्रनी।
जय नमो [illegible]; जय नमो [illegible]।
जय नमो पदुंनिरूपन[illegible]; जय नमो अगनित नागरा।
जय नमो [illegible]; जय नमो [illegible]।
जय नमो [illegible]; जय नमो [illegible]।

जय नमो नखचंद्रावली; जय नमो परम प्रभावली।
जय नमो करतलकलितनी; जय नमो रंगसुललितनी।
जय नमो कुशकटिराजनी; जय नमो किंकिनिवाजनी।
जय नमो पृथुलनितंवनी; जय नमो मन असलंवनी।
जय नमो जंघसुकेलनी; जय नमो प्रीतम भेलनी।
जय नमो जानुसुहेतकी; जय नमो पिंडुरिकेतकी।
जय नमो जेहिरिहेमकी; जय नमो मूरतिप्रेम की।
जय नमो गुल्फमुसाजिता; जय नमो नूपुरवाजिता।
जय नमो एड़ीअद्भुता; जय नमो रंगसुसंजुता।
जय नमो पदपदपानभा; जय नमो सबसुखदानभा।
जय नमो अंगुरीचारुभा; जय नमो सुखदसुठारुभा।
जय नमो हंसकअनवटा; जय नमो सोहत शुभघटा।
जय नमो नखमनिधिसदनी; जय नमो पदतलरसदनी।
जय नमो कंताकामिनी; जय नमो नवघनदामिनी।
जय नमो छबिचंपकतनी; जय नमो सहजहिं सुखसनी।
जय नमो गौरांगीप्रिया; जय नमो श्यामासुभश्रिया।
जय नमो रासविलासनी; जय नमो रहसिहुलासिनी।
जय नमो प्रेमप्रकाशनी; जय नमो नेह निवासनी।
जय नमो रंगबिहारनी; जय नमो पिय हियहारनी।
जय नमो पियउरधारनी; जय नमो रस विस्तारनी।
जय नमो अखिलानंदनी; जय नमो वल्लभवंदनी।
जय नमो पियमनफंदनी; जय नमो परमाकंदनी।
जय नमो जीवन जीयकी; जय नमो प्रेमापियकी।
जय नमो प्रेमप्रदायका; जय नमो नागरिनायका।
जय नमो रतिरमनीयका; जय नमो अतिकमनीयका।
जय नमो प्रगलभभक्तिदा; जय नमो तुरिव विरक्तिदा।
जय नमो निगमागमसदा; जय नमो रसिकानंददा।
जय नमो राधानागिनी; जय नमो हरिप्रिया स्वामिनी।[1]

राधा दुखमोचन, मृगमोचन, दिव्यछटा धारण किये हुए, गोरी, रसिक-रसीली, नागरी, नवल छबीली दुलहिन, परममनोहर मूर्ति, सहज-सदा सुख सिंधु,

१. महावाणी—श्री हरिव्यासदेवाचार्य ३८, पृ० ३३, ३४, ३५

अति रति पागी पिय उर लागी सहज सुहागी,
कलि अनुरागी पदम परागी प्रति छिन खागी।
बोलत हम्बे सुरले लम्बे सखी कदम्बे,
अधरन बिम्बे अंचवत कम्बे लागि नितम्बे।
कटि की कोरें नीवी डोरें बन्धन छोरें
मदन मरोरें वदन निहोरें रति रस ढोरें।
जलज रसालैं रस प्रतिपालैं अति गति चालैं,
लड़वत लालैं नैन विशालैं लै लै गुलालैं।
चटपट चटकें लटपट लटकें भटपट भटकें,
अंग अंग अटकें उमग अघट कें रसघट गटकें।
रटत विहारी मैं बलिहारी जांउ तिहारी,
जीय जियारी जगउजियारी श्रीहरिप्रिया प्यारी।
यह रस दुर्लभ है महा सुल्लभ कृपा मनाय।
श्रीहरिप्रिया की केलिनी सब दिन सहज सुभाय ॥[1]

राधा का कृष्ण के साथ झूलने का भी विशद वर्णन है। कवि ने अनेक स्थानों पर सुन्दर विशेषणों से युक्त वर्णनात्मक चित्र प्रस्तुत किये हैं। ऐसे वर्णनों से राधा के गुणों का प्रकाशन होता है। उत्साह सुख का राधा सम्बन्धी एक ऐसा ही वर्णन देखिए—

जयति श्री राधिका कृष्ण सुख राधिका सुगुणअगाधिका मम शरण्यं।
जयति हरिभामिनी कृष्ण घन दामिनी मत्तगजगामिनी मम शरण्यं।
जयति रतिवर्द्धिनी सौभगसुसर्द्धिनी प्रीतमसमर्धिनी मम शरण्यं।
जयति रसदायका पियशयनशायका नित्यनवनायका मम शरण्यं।
जयति नवनागरी सर्वसुखसागरी दिव्य गुण आगरी मम शरण्यं।
जयति दिव्यंगिनी स्याम निज संगिनी प्रेमरसरंगिनी मम शरण्यं।
जयति मृदुहासिनी नीलवरवासिनी परम प्रकाशनी मम शरण्यं।
जयति मनमोहनी सर्वतनसोहनी दया संदोहनी मम शरण्यं।
जयति मृगलोचनी दृष्टिदुखमोचनी कृष्णमनरोचनी मम शरण्यं।
जयति आनंदनी गुह्यगुणछंदनी पीय मन फंदनी मम शरण्यं।
जयति निधिरूपिका अद्भुतानूपिका भागवति भूपिका मम शरण्यं।
जयति कलकेलनी रंगरसरैलनी मदनमदपेलनी मम शरण्यं।

जयति खंजनगंजनी लोचन विशालनी रसिकरसालनी मम शरण्यं ।
जयति चन्द्रमुखा सर्वसुखपूरना परमानंदपूरना मम शरण्यं ।
जयति प्रियप्रेडनी महारसवेडनी परापरमेष्ठनी मम शरण्यं ।
जयति मल्लिकालिका मंजुरसमालिका प्रान प्रतिपालिका मम शरण्यं ।
जयति पियतोषिका नित्य तनतोषिका शोकसरशोषिका मम शरण्यं ।
जयति सुखकारिनी प्रियवशचारिनी चरित चित हारिनी मम शरण्यं ।
जयति जगद्विनुतमा वितन्वनिननरमा वतुलस्तनसमा मम शरण्यं ।
जयति पद्मानना वेणिवरवंधना केसमन रंजना मम शरण्यं ।
जयति श्रुति गोचरा सरसकरुणाकरा रासरसतत्परा मम शरण्यं ।
जयति नगभूषणा पियजलजपूषणा स्याम संतूषणा मम शरण्यं ।
जयति हरिकामिनी मनहरानामिनी प्रियाअभिरामिनी मम शरण्यं ।
जयति वरलालिता लालहित संहिता कृष्णहृदयस्थिता मम शरण्यं ।
जयति छविछाजिता कृशकटि विराजिता नित्य सुख साजिता मम शरण्यं ।
जयति भव भंजनी भक्तमन रंजनी सर्वसुखसंजनी मम शरण्यं ।
जयति शुभसुन्दरी महारसमंजरी विश्व गुणवल्लरी मम शरण्यं ।
जयति हेमांगदा स्यामसेव्यासदा रतिरहसिरंगदा मम शरण्यं ।
जयति हित आलया नेहनीनिर्मया मंजुल महाशया मम शरण्यं ।
जयति रसरासनी कादिकउपासनी विपिनपति वासनी मम शरण्यं ।
जयति हरि धीमता रसमया रसरता कृष्ण अन्तरगता मम शरण्यं ।
जयति मृदुलाकृता स्नेहनिसुधाधृता सौरभासाहृता मम शरण्यं ।
जयति वर सर्विता ताम्बूल चर्विता गोरीगुनगर्विता मम शरण्यं ।
जयति पियतल्पगा निर्मलाकल्पगा रंगरतिशिल्पगा मम शरण्यं ।
जयति विम्बाधरा कृष्णचूम्बितवरा सर्वसुखविस्तरा मम शरण्यं ।
जयति पियपूजिता कलस्वरकूजिता कोकिल चमूजिता मम शरण्यं ।
जयति मणिकुंडला कामलाकोमला कुंज कौतुहला मम शरण्यं ।
जयति रुचिरारमा रसभरासंगमा निगम गुप्तागमा मम शरण्यं ।
जयति पीयूषदा प्रेयसीपारदा सौहृदाशारदा मम शरण्यं ।
जयति रसवर्धनी चित्तआकर्षनी नित्यहिय हर्षनी मम शरण्यं ।
जयति गुणआवली कुटिलअलकावली शुभ्रशोभावली मम शरण्यं ।
जयति हरि जल्पिता चारुतिलकंकिता कृष्णपदवंदिता मम शरण्यं ।
जयति गुणअर्णवा किंकिणीकलरवा नित्यनवउत्सवा मम शरण्यं ।
जयति सौभागिनी प्रीतिप्रतिपागिनी कृष्ण अनुरागिनी मम शरण्यं ।

जयति जन आर्तिहा इन्दिरासुस्पृहा पियमुखमधुलिहा मम शरण्यं ।
जयति कृष्णस्तुता कृष्णगुणगणरता कृष्णमनवंछिता मम शरण्यं ।
जयति सुखसद्मनी पियमधुप पद्मनी अंतः अछदमनी मम शरण्यं ।
जयति हरिर्भतिनी भर्तृवसवर्तिनी श्यामसंघर्तिनी मम शरण्यं ।
जयति दुखखंडनी चारुकलगंडनी कृष्णउरमंडनी मम शरण्यं ।
जयति प्रानाधिके कृष्णआराधिके हरिप्रिया साधिके मम शरण्यं ।[1]

हरिव्यास की राधा सर्व गुण गणतत्परा, मालतीवनमहकिता, नित्य नौतम-नायका, अमित रूप उजागरी, सदा रसघन वर्षनी, समरहियदुपशोपनी, सकल लोक प्रशंमनी, सदाअमृत रस भरी, वशीकरन किशोरिका, महागुंजामंजुलित, सहज सुभितकंजनी, जीव जीवनिधातिकी, द्रवकड़ावड़भागिनी, अहर्निशआधारमय, उरसदा-उन्मादनी, प्रेयसी प्रीतमवसा और हरिप्रिया स्वामिनी है ।[2]

विनोद में ही सखियाँ श्री राधाकृष्ण विवाह रच देती हैं जो सुख सर्वस्व और मंगलमूल है ।[3] दूल्हा और दुलहिन रसिक रसीले हैं ।[4] राधिका रंग में डूबी हुई हैं ।[5] ऐसे बने बनाये बन्ना और बन्नी को देखकर कामदेव की मति भी लज्जित होती है ।[6] उस अद्भुत आभा का कौन वर्णन कर सकता है। उस सहजानन्द स्वरूप आह्लादिनी की अवतार के सम्मुख मर्कतमणि और दामिनी क्या हैं। उस लाड़िली, मृगनैनी, सुकुंवारी का स्वरूप निरखिए—

विद्युत वरनी हो मृगनैनी, रूप अनूपम सब सुखदैनी ।
चन्द्रवदन नैना अनियारे, रतनारे मधि चंचल तारे ।
अंजन मनरंजन रेखा-जुत गंजन कंचन खंजन गारे ।
भौंह बनी नासा नकवेसरि अधर दसन रसना अरुनाई ।
ठोड़ी गाड़ कपोल अलक अरु कर्न कुसुम कानन छवि छाई ।
वरवेंदी वेना अरु वेनी मनहरलेनी माँग सुहाई ।

---

१. महावाणी उत्साह सुख ११७, पृ० १०२, १०३
२. „ „ ११८, पृ० १०४
३. „ „ १४१, पृ० ११०
४. „ „ „ पृ० १११
५. „ „ १४५, पृ० ११३
६. „ „ १५६, पृ० ११८

मोतिन-लर सोभा सुन्दर सखि ! लखि-लखि लोचन रहत लुभाई ।
कंठा भरन उतंग कुचन पर कसी कंचुकी अतलस गाढ़ी ।
बाजू बंध चूरी कंकन गजरा कर पान सुछवि अति बाढ़ी ॥
अँगुरिन में मुँदरी मनि-मंडित नखन-पाँति करतली सुरंग ।
उदर सुदेश सुवेश नाभि-सर वरनत मति अति होत जु पंग ॥
कटि किंकिनि लहँगा लहकारी सारी तन सुख जेहरि पायन ।
पायल-बिछिया नखन महावर अनवट गजगति चलत अदायन ॥
खाय पान मुसक्यान मनोहर जगमगाति नवजोवन जोति ।
अमित अनूप रूप श्रीहरिप्रिया चितै चखनि चकचौंधी होति ॥[1]

अति रति रंग बढ़ने लगा । दोनों रसिक और रूप के धाम हैं । श्रीकृष्ण इन्हें देखकर दिन रात जीते हैं । ये इनके जीवन की आधार, उनको आनन्द की देने वाली एवं सबकी ही सम्पत्ति हैं ।[2] वह विश्व मोहिनी है—

रूप-उजागरी सुकुमारि ।
विश्वविमोहन मोहिनी महामोह उदधि उदारि ॥
सहज सुखद सनेहिनी नवनेहिनी निरधारि ।
श्री हरिप्रिया परिमूलि कामिनि कृशोदरि दुखहारि ॥[3]

हरिव्यास देवजी ने मोहन को राजा, श्रीराधा को रानी और वृन्दावन को राजधानी बताया है । कृष्ण और राधा की जोड़ी को सदा सनातन बताया है जिसकी महिमा निगम भी नहीं जानते ।[4] मोहन मोहिनी के अधीन हैं । वे रात-

१. महावाणी—सिद्धांत सुख १६८, पृ० १२२

२. एहैं जू जीवनि हम जोकी; ए हैं जू सम्पत्ति सबहीं की ।
ए हैं जू आनन्द की दाता, इनहि देखि जीवैं दिनराता ।
महावाणी—उत्साह सुख १७८, पृ० १२६

३. महावाणी—सहज सुख १५, पृ० १५२

४. जय जय वृन्दावन रजधानी ।
जहां विराजत मोहन राजा श्रीराधा-सी रानी ॥
सदा सनातन इकरस जोरी महिमा निगम न जानी ।
श्रीहरिप्रिया हितू निज दासी रहति सदा अगवानी ॥
महावाणी—सहज सुख २१, पृ० १५

दिन आशक्त रहते हैं।[1] रंग-रँगीली राधिका प्रियतम की प्राणप्रिया और प्राणाधार हैं—

जय जय राधिका रमनी कमनी चंद्रिका वनचंद्रकी।
रँग-रँगीली छैल-छबीली हिय-हरनी चंपक-वरनी।
नवल नागरी नीरजनैनी नवनागर सुख-विस्तरनी।
अमित अलौकिक सुखकोध.मा श्रीश्यामा शोभा-सदनी।
महा मोहनी मन मोहन कीं मनमोहन वारिज-वदनी॥
अंग-अंग आभा अभरन की निरखि नैन चकचौंधी होति।
वृन्दावन की वगर वगर में जगर-मगर जगमग रहि जोति॥
कोक-कला-कुल-कोविद कुशल किशोर किशोरी जोरी ऐन।
विहरत विविध विहार उदार विहारी विहारिनि सब सुख-दैन॥
श्याम सुंदर वर रसिक पुरन्दर गुन मन्दिर गोरी कौ कंत।
छिन-छिन नव-नव भाव-तरंगनि अंग-अनंगनि के सरसंत॥
प्रिया-प्रान प्रियतम की जीवनि प्रियतम प्रिया प्रान आधार।
सदा सनातन रहत स्वतंतर रमत निरन्तर नित्य विहार॥
सखी सबै नवरङ्ग-रगीली जानत जुगल हिये को हेत।
सोइ सोइ प्रगट दिखावत अनुदिन सव भाँतिन सो सव सुख देत॥
प्रेम पयोधि परे दोउ प्यारे पल न्यारे होत न अङ्ग अङ्ग।
रंग महल में टहल करत जहाँ हितु सहचरि श्रीहरि प्रिया संग॥[2]

हरिव्यासजी का कथन है कि जिसको वेद निर्गुण और सगुण कहते हैं वही अपनी इच्छा से विस्तार कर विविध प्रकार के भेद दिखाता है। यद्यपि आप अलिप्त है परन्तु लीला रचकर ब्रह्माण्ड में करोड़ों प्रकार से विलास करता है। शुद्ध सत्व परमेश्वर सकल सुख राशि है। वह समस्त कारणों का कारण कर्ता है।

---

१. मोहन मोहिनी आधीन।
　रहे अति आशक्त अनुदिन कहा गति जल मीन॥
　नित्य नवतन-नेह नेही परस्पर रस-लीन।
　हितू श्रीहरिप्रिया रसिकन हेत विवि तन कीन॥
　　　　　　　　　　　　　　　　महावाणी—सहज सुख ३५, पृ० १५६

२. महावाणी—सिद्धान्त सुख ८, पृ० १७५-१०६

वह नित नैमित्य नियंता है। उनकी जोड़ी अमेय रस माधुर्य में परिप्लावित है।[1] राधाकृष्ण एक स्वरूप होते हुए भी उनके दो नाम हैं—

एक स्वरूप सदा द्वै नाम।
आनँद के अह्लादिनि स्यामा अह्लादिनि के आनँद स्याम॥
सदा सर्वदा जुगल एक तन एक जुगल तन विलसत धाम।
श्री हरिप्रिया निरंतर नितप्रति काम रूप अद्भुत अभिराम॥[2]

परशुराम देवाचार्य

परशुराम देवाचार्य सगुणोपासक थे, परन्तु कबीर की भाँति उनके काव्य में निर्गुण का वर्णन भी हुआ है। इनके १३ ग्रन्थों का पता चलता है इनके ग्रन्थों १. तिथि लीला २. वार लीला ३. बावनी लीला ४. विप्रमतीसी ५. नाथलीला ६.-पदावली ७. नाम रथ नाम लीला निधि ८. सोच निषेध लीला ९. हरिलीला १०. लीला समझनी ११. नक्षत्र लीला १२. निजरूप लीला १३. निर्वाण का संग्रह-का संग्रह 'परशुराम सागर' के नाम से विख्यात है।

नाभाजी ने इनके सम्बन्ध में एक छप्पय इस प्रकार लिखा है—

ज्यों चन्दन को पवन नींव पुनि चन्दन करई।
बहुत काल तम निविड़ उदयदीपक ज्यों हरई॥
श्रीभट पुनि हरिव्यास संत मारग अनुसरई।
कथा कीरतन नेम रसनि हरिगुन उच्चरई।
गोविन्द भक्ति गदरोग गति तिलक दाम सद वैद हद।
जंगली देस के लोग सब श्री परसुराम किये पारषद॥

---

१. निर्गुन सगुन कहत जिहि वेद।
निज इच्छा विस्तारि विविध विधि वहु अन वहो दिखावत भेद॥
आप अलिप्त लिप्त लीला रचि करत कोटि ब्रह्मांड विलास।
शुद्ध सत्व करके परमेस्वर जुगल किशोर सकल सुख-रास॥
अनंत शक्ति आधीश अचिंतक ऐश्वर्य्यादि अखिल गुनधाम।
सबकारन के कारन कर्ता नित नैमित्य नियंता स्याम॥

उन्होंने ज्ञान और उपासना का वर्णन सरल भाषा में किया है। उसमें राजस्थानी का मिश्रण है। उनका काव्य उपदेशात्मक है। उनके रामकृष्ण हरिनाम में कोई भेद नहीं है। उनका हरि व्यापक है जो सब में समाया हुआ है।

मैंने परशुराम सागर की एक हस्तलिखित प्रति आचार्य श्री व्रजवल्लभशरण अधिकारी श्रीजी की बड़ी कुंज वृन्दावन के पास देखी है। पोथी के पृ० १७४ पर लिखा है, 'इति श्री परसरामजी की वाणी सम्पूर्ण' पोथी को संवत् १६७७ वर्ष 'अथ श्री परसरामदेव कृत पद लिष्यते' पोथी के अन्त में लिखा है, 'इति श्री श्री श्री श्री श्री श्री स्वामी श्री परसराम देवजी कृत ग्रन्थ राम सागर सम्पूर्ण' संवत् १८३७ मिति जेष्ठवदि ॥६ बुधवासरे ॥ लिपि कृत व्यास मनसाराम पठनाथ बाई अनोपा ॥ 'इससे ज्ञात होता है कि ग्रन्थ के लिपिकाल व्यास मनसाराम ने यह ग्रन्थ संवत् १८३७ में समाप्त किया।

परशुराम देवाचार्य के इतने विशाल काव्य ग्रन्थ में राधा का वर्णन बहुत कम हुआ है। केवल थोड़े से ही पद और साखियाँ राधा संबन्धी मिलती हैं। राधिका का विरह और मिलन वर्णन देखिये—

राग सारङ्ग

'मन मोहन सौं मिलि रह्यौ सखी सो न्यारौ न रहाय री।
हरि रति मोहि मानें नहीं हूं तौ रही मनाय री ॥टेक॥
हरिमिलि पलटि गयो मन मोतें कछू तासौं न बसाय री ॥
मनि हरि मिलि, सारचौ नहीं मोही कौ लेत बुलाय री ॥१॥
बहु उपाय करि थको अबल मैं रही बहुत समझाय री ॥
हरि प्रीतम पायो जिन सजनी सो मन मोहि न पत्याय री ॥२॥
जब ही नैंक पलक मिलि ऊँघरि मोहि मिलत हरि आय री ॥
विलस्यौ प्रगट पर्म रस बसि करि सो सुष कह्यौ न जाय री ॥३॥
कहा कहूं कछु कहत न आवै सागति बहूत बनाय री।
पिय मिलने की रीति प्रीति करि कासौं कहू सुनाय री ॥४॥
हूँ सोवत जागि उठी सुपनौं लै अति आतुर अकुलाय री।
रहि न सकौं इत उत मति व्याकुल तन मन गयो सिराय री ॥५॥
हरि जी सौं भुज भरि मिली निरंतरि सा निधि उर न समाय री।
प्रगट अधर उर छाप सुकर की सो तन तें न दुराय री ॥६॥
मिलगि बसी उरि मिलि जु करी करि परि मन सौं मन लाय री।
तनु तपति की प्रीति रहो भरि पर वीचि विराय री ॥७॥

जाकौ प्रान वरनं जाही मैं ताहि न सो विसराय री।
हरि जीवनि जल हीन होय सो क्यों न मरै पछिताय री॥८॥
प्रेम सिन्धु सुष मूल सुमंगल सो कबहूं न भुलाय री।
हूँ कहा करौं कैसे रहूँ मोहि लाविन रह्यौ न जाय री॥९॥
पीव सौं प्रगट मिलन आरति करि लीनी रुचि उपजाय री।
ठाठी निकसि भुवन बाहरि नव सत सिंगार वनाय री॥१०॥
वेलि लई सब सषी सु मिलि-मिलि गुन गावत न लजाय री।
निकस चली व्रषभांन पुरै तैं नंद गांव दिसि जाय री॥११॥
चाहति पंथ तरल तरतैं तर चढ़ि आपनि हरिराय री।
पठयो देषि सब सुन मुष पति ताऽत पत्र लिषाय री॥१२॥
उमगी अति आनन्द कंद सुनि पाये स्याम सहाय री।
हेरी गावत वैंन वजावत मिले चरावन गायरी॥१३॥
बूझि लई नीकै करिकै हरि ब्योरै सौं बिगलाय री।
अति सुगौर सुंदर सषियन में राधा नाम कहाय री॥१४॥
कृस्न दरस परसत मनि मञ्जुल पाय परत सिरि नाय री।
हरि अन्तर तजि मिलत अङ्क भरि लीनी उरि लपटाय री॥१५॥
भयौ सषी सुष सिंधु समागम प्रगट प्रेम कौ भाय री।
जुगल हंस निज राज जोर परि परसा जन वलि जा री॥१६॥[1]

श्याम राधिका के साथ खेलते हैं।[2] राधिका ने मान धारण कर लिया है। हरि मनाते-मनाते हार जाते हैं और उनके आधीन हो जाते हैं, इसलिए सखि [illegible] कृष्ण मिलन की वांछा करता है—

हरि तोहि मनावत मान तजै तैं मानु गह्यो किहि कारन कौं।
हो हरि तोहि मनावत ही तैं मान गह्यो मन [illegible] कौ॥
भगवंत भये आधीन तुम्हारे री मानि [illegible] कौ।
उठि वेगि मिलो परसा प्रभु सौं अपनी मन मौज [illegible] कौ॥[3]

———

कुंवरि राधा और कृष्ण एक साथ सुशोभित है। वृषभानुसुता का शृङ्गार युत मनोहर स्वरूप निरखिये—

जाकै कुंडल कुटिल षुंभी नक वेसरि केसरि तिलक ललाट से
ब्रखभान सुता जु विराजि रही।
जु रची सिर भंग वेणी जु भुजंग गुहे विचि फूल रहे अलि भूलि
सुवास, भई॥
जाकै कज्जल नैंन वदन ससि सुंदर कंठ कपोल निहार होये
कंचुकी तनु सूं उरि लागि रही॥
कर कंकन चूरि अंगुरी मुद्रिका विचि लाल पुंची रुचि
राज कुँवारि विचारि हुई॥
प्रसराम कहै हरि नारि वानों ताकी रति पति नहीं जात कही॥[1]

परशुराम जी ने राधा का शृङ्गारिक रूप कितना सुन्दर चित्रित किया है—

राधिका जु सिंगार ठभे रुचिकैं सिर सोभित चीर वन्यौ लहंगा
नारी कुंजर पहरत प्रीति नई॥
जाकै पाय वनैं विछिया नेवरी टोडर चल तैं घन की
छवि लागि रही॥
जु चली गज रीति गहै रस प्रीति मिली हरि जाय गये
दुखदाय निहाल भई॥
प्रसराम कहै मोहे स्याम धनी राधिका सम सुंदरि
आहि नहीं॥[2]

जिस कृष्ण का मुनि ध्यान धरते और खोजते हैं उसे राधिका ने अपने वश में कर रखा है—

जाकौं अव ध्यान धरें मुनि पोजत सोई पोसि लयो वृषभान कुंवारी।
हाथि वैकंठ की सौंज चढ़ी तव तै न वदै काहू महिमा री॥
अंग वनाय लये नंदनंदन देपत देत नहीं पिय प्यारी।
प्रसराम कहै प्रभु है राधिका वसि सोरै सहस सवै पचिहारी॥[3]

---

1. परशुराम सागर—परशुराम देव—हस्तलिखित पोथी ३, पृ० ६६
2. ,, ,, ,, ४, पृ० ६६
3. ,, ,, ,, ५, पृ० ६६

रूप रसिकदेव

रूप रसिकदेव ने श्री हरिव्यास की महावाणी का प्रचार किया। इन्होंने हरिव्यास दशामृत, बृहदोत्सव मणिमाल, श्री नित्य विहार पदावली और 'लीलाविंशति' की रचना की। 'हरिव्यास दशामृत' में उन्होंने अपने गुरु श्री हरिव्यास देवजी के सम्बन्ध में लिखा है। उनके अनुसार गुरु, आचार्य, एवं श्रीहरि एक हैं। गुरु तत्त्व के प्राप्त होने पर मानव जीवन के अभीष्ट की सिद्धि हो जाती है। गुरु से ही अलौकिक वस्तु प्राप्त होती है। 'बृहदोत्सव मणिमाल' में २९९४ छन्द हैं। इसके अन्त में लिखा है—

द्वै सहस्र पसव सुसत, पुनि चौराणवें जानि।
बृहदुत्सव मणि माल की संख्या इतनी आनि॥

यह ग्रन्थ महावाणी के उत्सव सुख की भाँति लिखा गया है। परन्तु महावाणी से तत्त्व निरूपण में भिन्नता है। महावाणी में उत्सव क्रम का वर्णन श्री नित्य विहारी की नित्य केलि में ही नित्य को नैमित्त बनाकर एक विशेषानन्द के लिये किया गया है परन्तु बृहदोत्सव मणिमाल में नैमित्त प्रमुख है। इसमें वसन्त से लगाकर व्यजन द्वादशी तक के श्री भगवान् के उत्सव के पद विभिन्न राग-रागनियों में वर्णित हैं। इसमें वृषभानुनन्दिनी के जन्म, मंगल बधाई, वसन्त, होरी, झूला आदि समस्त उत्सवों का सुन्दर वर्णन है। इसमें श्रीकृष्णावतार के अतिरिक्त श्रीराम, श्रीनृसिंह, श्रीवामन आदि दशों अवतारों के प्रादुर्भाव-दिवस, मंगल बधाई, उत्सव आदि के पद हैं। अन्त में कुछ शांत रस के पद हैं। इसमें अनुप्रास और यमक के सुन्दर प्रयोग हैं। इसमें कहीं-कहीं धाम महत्त्व, नाम महत्त्व, उपदेश, चेतावनी, नीति आदि से सम्बन्ध रखने वाले दोहे भी हैं। इसके आदि में लिखा है—

प्रथम सुमिरि श्रीगुरुचरण, हरन सकल अघ जाल।
तासु कृपा बल कहत हौं, बृहदुत्सव मणि माल॥१॥
करि आरम्भ वसन्त तें, विजन द्वादशी ताऊँ।
रूप रसिक या नाम को, सो अब सत्य कहाऊँ॥२॥

'नित्य विहार' पदावली में नाना राग-रागनियों में श्रीकृष्ण के नित्य विहार के एक सौ बीस पद हैं। ग्रन्थकार ने इस ग्रन्थ के आदि में लिखा है—

इकसत बीस पदावली ताको संग्रह सार।
लिखन करत हौं रस भजन, हित पद नित्य विहार॥१॥

यह महावाणी के सिद्धांतानुसार निर्मित गम्भीर तथा चित्ताकर्षक है।

रूप रसिकदेव प्रणीत 'लीला विंशति' ग्रन्थ को मैंने व्रजवल्लभशरण जी अधिकारी श्रीजी की कुंज वृन्दावन के पास देखा है। इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति के लेखक श्री राधिकादास हैं। उनके प्रारम्भ में लिखा है, 'श्रीहरि व्यास देवाय नमः ।।चौपाई।। श्री रूपरसिक कृत बानी ।। लीला विंशति नांहि जु छानी। प्यारी प्रीतम गुन गन जानी। परा भक्ति सानी सुख खानी ।।१।। रसिक राज राजेश बखानी ।। ताकी महिमा अकथ कहानी ।। लिखत राधिकादास सुखदानी ।।२।। श्रीहरि प्रिया चरन शिर धरिकैं ।। परम सहेली कृपा जु करिकै ।। हित अलवेली हित अनुसरिकैं ।। नित्यनवेली बिनती वरिकै ।।३।। मान मंजरी की कृपा सुपाई ।। श्रीगौरांगी पद शिर नाई ।। आदि सहेली सकल मनाई ।। लीला विंशति लिखन कराई ।।४।। श्री राधिकादास सुखदाई ।। रसिक प्रवीन सुनौ चित लाई ।। श्रीमत रूपरसिक जू गाई ।। ताकी को कहि सकै बडाई ।।५।। श्री वृषभानु नगर में पाई ।। रूप रसिक बानी बहु भाई ।। मैं मति हीन नन बहुत समाई ।। लीलाविंशति लई लिखाई ।।६।। ।।दोहा।। जैं जै रूप रसिक प्रभो महाप्रेम रस रासा। तिन कृत लीला विंशती लिखत राधिकादास ।। अथ श्री लीला विंशति लिख्यते ।।

इस ग्रन्थ में लिखा है—

पंदरासैर सतासिया मासोत्तम आसोज।
यह प्रबन्ध पूरण भयो शुकला सुभ दिन द्योज ।।१।।

इससे प्रतीत होता है कि इस ग्रन्थ का समय १५८७ आसौज शुक्ला द्योज है। श्रीव्रजवल्लभशरण जी का कथन है कि लीला विंशति की एक प्रति अहमदाबाद में जैनियों के मन्दिर में उपलब्ध हुई है। श्रीव्रजवल्लभशरण जी के अनुसार इनका समय १५८७ आसौज शुक्ला द्योज ही शुद्ध है।

श्रीरूपरसिक जी ने श्री वृहदोत्सव मणिमाल में बताया है कि श्रीराधा और कृष्ण दंपति महाविचित्र रसकेलि में संलग्न हैं उनकी पुष्पों से युक्त छवि का कवि भी वर्णन करने में असमर्थ है।[1] प्राणप्रिया के साथ मनोहर रथ पर बैठे हुए कृष्ण मृदु बात कर रहे हैं। उस दंपति को देखकर कवि के नेत्र नहीं

---

१. सम्पति दंपति केलिहिं की अलवेली रही रस झेलि महारी।
मंजुल फूलनि फूल फबी सुछवि कवि पै कहि जात कहारी ।।
सौरभ मत्त मधुव्रत्त पुंज सु गुंजहि कुंज निकुंज अहारी।
'रूप-रसिक' जु है धनि जो इन लोइन ते लखि लेत लहारी ।।
निंबार्क माधुरी—वृहदोत्सव मणिमाल, पृ० १०३

अघाते।[1] स्यामा और स्याम के रूप को देखते ही जन्म-जन्म के कष्ट दूर हो जाते हैं। वह जोरी सदा सनातन और एक रस है।[2] राधा और कृष्ण के युगल रूप माधुर्य का वर्णन देखिये--

नेक विलोक री ! इक वार।
जो तू प्रीतिकरन की गाहक मोहन हैं रिझवार।
महारूप की रासि नागरी नागर नंद कुमार।
हाव, भाव, लीला ललचोही लालन नवल विहार।
मोहिं भरोसो स्याम सुंदर की करिगयो निरधार।
नेक एक पल जो अभिलाषैं 'रूपरसिक' बलिहार॥

देखो सुंदरता को सागर।
स्यामा स्याम सकल सुखदायक दोऊ रूप उजागर।
उपटत अंग-अंग की सोभा मानहुँ उठत तरंग।
नेकमल भू, लता, पात युग रुचि कपोल श्रुति संग।
नासा दीप विराजत मुक्ता मनो यहै कलहंस।
विद्रुम लता अधर दुति लाजत मधुर बचन मधु अंस॥
कंबु सुकंठ भुजंगम भुज तट मीन सुपल्लव पानि।
यह वंसी वट बीन बजावनि चपल चलनि अधिकानि॥
नखमनि मनो खान ते निकसे राखे सुधर सुधारि।
श्रीवत्स भ्रमर कलस उर अमृत वड़वा वितन विचारि॥
राजा रोम उदर लघु जलचर कटि तट नाभि गंभीर।
मनो रतन काढ़न को लुब्धिन खनी भूमि चित-धीर॥

---

१. बैठे आज मनोहर रथ पर प्रान प्रिया सँग रङ्ग बढ़ावैं।
करत जात मृदुवात परस्पर सो सुख मुख सखि ! कहत न आवैं।
रीझत भीजत मोज मनोजनि चोजनि सनि-सनि अति सचु पावैं।
'रूप रसिक' जन सम्पति दंपति देखत हो नहि नैन अघावैं॥२३॥
निंबार्क माधुरी—वृहदोत्सव मणिमाल, पृ० १०४

२. सखीरी ! स्यामा स्याम स्वरूप।
देखत ही मिटि जाय दृगन तन जनम-जनम की धूप॥
सदा सनातन एकरस जोरी उपमा को न अनूप।
'रूप रसिक' जन के सुखदायक दोऊ भावते भूप॥२५॥
निंबार्क माधुरी—वृहदोत्सव मणिमाल, पृ० १०५

जघन सु विपुल लसत मनु परवत उरू रंभ जुग खंभ।
जंघ विटप पद-पद्म राग मनु नखमनि द्युति जुत अंभ ॥
स्याम गौरवर बरन सुहावन सुधा-क्षीर-सर दोउ।
मिले मनो अनुराग हिये सजि सजन परस्पर सोउ ॥
सहजहिं चार पदारथ पावत यह छबि नैन निहारि।
'रूप रसिक' तिनको का कहिये ते राखत उरधारि ॥[1]

राधिका का कृष्ण के साथ हिंडोले पर झूलते[2] और रास में नृत्य[3] करने का भी सुन्दर वर्णन है। हरिव्यास दशामृत में रूप रसिक ने वर्णन किया है कि लाड़िली लाल की रसाल लीला का रात दिवस आस्वादन करती हुई जीवित रहती है।[4] उनके अनुसार प्रिया का अर्थ राधा है।[5] वह गर्वीली और गौर अंग वाली है जिनके विलक्षण अमित रूप हैं।[6] रूप रसिकदेव राधा के स्वरूप का चित्रण इस प्रकार करते हैं—

---

१. निंवार्क माधुरी, रूप रसिक देवजी ३२, पृ० १०७

२. अद्भुत एक हिंडोरो माई।
प्रेम डोर पटुली पन सोभित झूलत दोऊ सुख पाई ॥४१॥
प्रिय हिय झूलत हैं नित प्यारी।
रूप रसाल विसाल नैन गुन नेक न होत सुकारी ॥४२॥
निंबार्क माधुरी, पृ० १९९

३. रास में रसिक नवरंग नागर नचत।
प्रान प्यारी के संग सरसगति अति सुधंग।
अलग लग लग दाट के थाट कोऊ न वचत ॥४४॥
निंवार्क माधुरी, पृ० ११०-१११

४. भाविक वस्तु जिती जग में तिनकौं प्रवेश कछु इहिं ठाहे।
दिव्यहि सम्पति सेवत हैं सुख सम्पति के मुख को हरव चाहैं।
लाडिली लाल की लीला रसालहिं पीवत जीवत रैंन दिना हैं।
औरन को गम नाहि जहाँ हरिव्यास के दास वसैं जुतहा हैं।
हरिव्यास यशामृत दूसरी लहरी १६, पृ० १५

५. स्वयं कृष्ण हरिपद अरथ प्रिया मर्थ राधा जु।
रूप रसिक हरि प्रिया भजि, मिटे सकल बाधा जु ॥
हरिव्यास यशामृत चौथी लहरी १४, पृ० २३

६. जुठा गर्वीली गौर अङ्ग लाडगहेलि सहेलि।
जय जय जय श्री हरि प्रिया अमित रूप अलवेलि ॥
हरिव्यास यशामृत एकादश लहरी १, पृ० ५४

जय जय श्री हरि प्रिया प्रवीणा।
अंत रंगीली अन्तर हीना। सहज सकल सुखदायक स्यामा।
अग्रवर्तिनी कामा रामा ॥३॥
श्यामा वामा कृष्णा कामिनी अनुपमा।
श्रुति रूपका भागवति का माधवी असिता गुण करि भूपिका।
वल्लभा गौरांगी केशी-पुनि पवित्रा कुंकुमा।
हितू श्रीहरिप्रिया जय-जय नित्य नव तन मनुरमा ॥४॥
जय जय हरिप्रिया किशोरी।
चक्र चारू चूड़ामणि गौरी।
अद्भुत नाम रूप गुण रसदा।
अष्ट अष्ट द्वै विशदा यशदा ॥५॥
विशदा यशदा जगमगाय जगचन्द्र कोटिन भानुका।
नैन अंजन विना रंजन गंज खंजन मृगरुखा।
सुभ्र सलिता ललित उर पर मुक्त हारावलि रली।
अलक अवली रवि ललीसों मिलि चली छवि अति भली ॥६॥
जव जय श्री हरि प्रिया सलौंनी सब अङ्ग सोहै सुभग सुठौंनी।
उपमा जैतिक जग में जोहै।
नव तन आभा आगें को है ॥७॥
कोहै कोक कपोत केतकि कीर कोकिल केहरि।
कला निधि कुरू विन्द कंचन कल कमल कदली करी।
सौन्दर्य्यता माधुर्य्यता सुकुमारता मनहारिणी।
वलि रूप रसिकनि के वसी हिय व्यथा विरह विदारणी ॥८॥[1]

रूप रसिकदेव जी हरि प्रिया का वर्णन करते हुए उनके गुणों एवं शृङ्गार-स्वरूप पर इस प्रकार प्रकाश डालते हैं—

जय जय श्री हरि प्रिये सकल सुखमूल हो।
जिनको सर्व सुदेत तेव अनुकूल हो।
अग्रवर्तिनी प्रेम भक्ति रसदायनी।
करुणा सिन्धु दयाल सुविरद विधायनी ॥
जय जय श्री हरि प्रिये रंगीली रंग है।
अद्भुत अमल अलौकिक आभा अंग है ॥

१. हरिव्यास यशामृत—रूपरसिकदेव एकादशी लहरी ३, पृ० ५४-५५

वड़े नैन विराजत अंजन अंजिता।
मनरंजन छवि कंजन खँजनगज्जिता ॥३॥
जय जय श्री हरि प्रिये वदन विधु सोहही।
मध्य रदन की जोति मदन रत मोहही॥
अधर अरुण रस भरे युगल अनुराग सों।
कल कपोल श्रुति चिबुक निरख बड़ भाग सों ॥४॥
जय जय श्री हरि प्रिये रसीली रस भरी।
कण्ठ शिरी दुलरी तिलरी अंगिया हरी।
कुच उतंग पर झरे हारसी पजूमनी।
अधिक उर स्थल उपचार चौकी कंठनी ॥५॥
जय जय श्री हरि प्रिये सुवाहु विराजही।
वाजू वन्द सुचारु चुरी छवि छाजही॥
कंकरण कंचन पहुँची प्रभाकर पानकी।
अंगुरी में मुदरी मणि हेम विधान की ॥६॥
जय जय श्री हरि प्रिये कशोदरि कटि लसें।
गुरु नितम्ब किंकिणी विविध जग जटि लसें।
लहँगा ललित सुरंग अङ्ग सुहयकों।
दयो रासकिनी रीझि चतुरचित चाय सों ॥७॥
जय जय श्री हरिप्रिये पदा भूषण सजे।
मंथर चरण विहार मनोभव द्विप लजे॥
ललित लजाई तखनि वनि नख आवली।
सदा रहे हिय मांहि सु परम प्रभावली ॥८॥
जय जय श्री हरि प्रिये सुखद सुख भासनी।
मृदुल मनोहर रंग अङ्ग सारी वनी।
जरद किनारी जग मगानि चहुँ ओर की।
झमकनि वेनी पीठि सहेली डोर की ॥९॥
जय जय श्री हरि प्रिये मधुर मृदु हासिनी।
मुक्त लरनि मिली सुच्छ सू सांधो सिलभिली॥
कर्ण कुसुम की देखि द्युति तरन की।
भई विमोहित जोहत उपमा धरण की ॥१०॥
जय जय श्री हरि प्रिये मधुर मृदु हासिनी।
चमत्कारिणी कला अनेक प्रकासिनी॥

परम सहेली अलवेली आनन्दनी ।
समय समय सुख सेवा में संचारणी ॥११॥
जय जय श्रीहरि प्रिये प्रत्यङ्गा भासिनी ।
केलि कला कमनीय निकुंज निवासिनी ।
परम सहेली अलवेली आनन्द की ।
रूप रसिक वलि जाय चरण अरविन्द की ॥१२॥[1]

लीलाविंशति के सम्बन्ध में कवि ने लिखा है कि यह राधा मोहन रूपी वृक्ष की केलि मंजरी है ।[2] कृष्ण और राधा नित्य नव दूलह और दुलहिनी के समान हैं जिनके मुख की ज्योति पर करोड़ों चन्द्र न्यौछावर किये जा सकते हैं ।[3] दोनों एक दूसरे के धन हैं । उन दोनों को एक दूसरे को जीवित रखने और जीने के अतिरिक्त और कुछ भाता ही नहीं है —

प्रीतम कै धन प्यारि ए प्यारी कैं धन पीय ।
और कछू न रुचै इन्हैं इहिं विधि ज्यावन जीय ॥[4]

राधिका रंग रंगीली है और उसका अङ्ग-अङ्ग रंग से भीगा हुआ है । उसके हृदय में सहज प्रेम है । उसका तन श्रीकृष्ण के तन से और मन श्रीकृष्ण के मन से उलझा हुआ है ।[5] वह गोरी नव नागरी नव निकुंज में नव विलास करती है ।[6] दोनों किशोर और कामनीय हैं तथा नवीन स्नेह, सुख और अखण्ड अनुराग से युक्त हैं ।[7] नित्य नवीन छवि से सुशोभित हैं और उनके नये-नये अङ्गों के हाव में अगणित भाव प्रस्फुटित होते रहते हैं ।[8] दोनों एक दूसरे के प्राण-धन और जीव हैं —

१, श्रीहरि व्यास यशामृत—रूपरसिकदेव, पृ० ९९–१००
२. राधा मोहन विटप की केलि मंजरी जानि । लीलाविंशति, ८ पृ० २
३. नित नव दूलह दुलहिनी सुन्दर सहज सुदेश ।
वदन जोति पर वारिए कोटि राकेश ॥ लीलाविंशति, ३ पृ० ३
४. लीला विंशति ११ पृ० ३
५. तन तन सों रहे उरझि दोउ मन मन सौं उरझाइ ।
नैननि बैंन मिलाइ कै नैननि नैन मिलाइ ॥ ,, ,, ६ पृ० ४
६. नव नागरि गोरी प्रिये नव नागर घनश्याम ।
नवविलास विलसौं सदा नव निकुंज सुष धाम ॥ ,, ,, २ पृ० ६
७. नव किशोर कमनिय बिनि नव सुहाग नव भाग ।
नव सनेह सुख सनि रहै नव अखण्ड अनुराग ॥ ,, ,, ४ पृ० ६
८. नव नव अंग के हाव में उपजित अगनित भाव ।
नव चपला युग चखनि की चाहनि भौंह चढ़ाय ॥ ,, ,, ६ पृ० ६

दोउ दो उनके प्राण धन दोउ दो उनके जीय।
दोउ दोउन कें प्रेयसी दोउ दोउन कें पीय ॥[1]

राधिका नित्य विलास करती और हुलसती है—

श्रीराधे नित्य विलासिनी हित हुलासिनी होय।
नागरि नेह निवासिनी प्रेम प्रकाशिनि पीय ॥[2]

वह लावण्ययुक्त है—

अति सुन्दर सुकुंवारि अति अति सुठारि अवदाति।
लहलहाति लांवनि भरी महमहाति महकाति ॥[3]

राधा और कृष्ण की जोड़ी कैसी सुन्दर बनी है—

जोरी जीवनि जीय की अति सुकुंवार उदार।
नवतन वृन्दा विपिन मैं निरवधि नित्य विहार ॥[4]

तथा—

सहज सांवरी गोरी जोरी।
सुरति समुद्र झकोरी जोरी ॥
कंद्रप कोटि कला वलि जोरी।
पूरन चन्द्र प्रभावलि जोरी ॥[5]

रूप रसिकदेव ने राधा का स्वरूप इस प्रकार चित्रित किया है—

श्री श्यामा मृगनैंनी राधा। कमल नैंन सुख दैंनी राधा ॥
प्रान प्रिया पिक बैंनी राधा। चतुर लाल चित चैंनी राधा ॥[6]

× × ×

मोहन मन मृग डोरी सुन्दरि। लोचन चारु चकोरी सुन्दरि ॥
सदारङ्ग रसबोरी सुन्दरि। नागरि नित्य किशोरी सुन्दरि ॥[7]

राधा और कृष्ण वृन्दावन में सदा सनातन एक प्राण दो देह के रूप में सुशोभित होते हैं।

चैतन्य सम्प्रदाय के कवियों का राधा का स्वरूप

चैतन्य सम्प्रदाय

चैतन्यमत माध्वमत की गौड़ीय शाखा होते हुए भी दोनों के दार्शनिक सिद्धान्तों में पर्याप्त अन्तर है। माध्वमत में द्वैतवाद को प्रमुखता दी है और चैतन्य मत में अचिन्त्य-भेदाभेद सिद्धान्त को प्रमुखता दी है। चैतन्य बंगाल के निवासी थे परन्तु उनके अनुगामियों ने वृन्दावन को अपना उपासना क्षेत्र बनाया। माध्व मतावलम्बी आचार्यों में माधवेन्द्रपुरी प्रथम आचार्य थे। वे उच्चकोटि के विष्णु-भक्त थे। माधवेन्द्रपुरी के शिष्य आचार्य ईश्वरीपुरी का वर्णन 'प्रेम विलास' आदि वैष्णव ग्रन्थों में मिलता है। केशव भारती ने चैतन्य को सन्यास की दीक्षा दी। महाप्रभु चैतन्य की भक्ति से समस्त उत्तरी भारत ओत प्रोत हुआ है। आप मधुरभाव के प्रतीक और भक्ति रस की जीवित मूर्ति थे। आपकी रचनाओं में निज-प्रेमामृत-स्तोत; युगल-परिहार-स्तोत्र, शिष्याष्टक और राधा रसमञ्जरी प्रसिद्ध है। प्रियाजी के प्रति आपकी भावना देखिये—

प्रेमोद्गारिदृगन्ववीक्षणलता मर्जारयन्तीं परां।
नानाभाव विकाशिनीं सुमधुरां स्मेरातिकान्त्याननाम्॥
प्रोद्यत्प्रोद्युतिशात कुम्भलतिका देहां मनोहारिणीं।
श्रीमन्नागर-रास-रत्नजलधिं श्री राधिकामाश्रये॥[1]

प्रेम के उद्गारों को अभिव्यक्त करने वाले दृष्टिपातों से दुःख-वेदनाओं को शान्त करने वाली, अनेक प्रकार के भावों का विकास करने वाली कान्ति से पूर्ण मुखारविन्द वाली अतएव अत्यन्त मधुर चमकती हुई बिजली एवं सुवर्णलता के सदृश मनोहर देहवाली, श्री श्याममुन्दर के रास रत्नों की सागर श्री राधिकाजी का मैं आश्रय लेता हूँ।

आपके मत के सम्बन्ध में एक श्लोक है—

आराध्यो भगवान् व्रजेश तनयस्तद्धाम वृन्दावनम्।
रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
शास्त्रं भागवतं पुराणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्।
श्री चैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नो परः॥

भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन ही आराध्य हैं, सेव्यधाम वृन्दावन है और वहाँ रहकर गोपियों द्वारा प्रवृत्त की हुई प्रेमा-भक्ति ही उपासना है। भागवत समस्त शास्त्रों का सार, और प्रेम ही पुरुषार्थ है।

---

१. मञ्जरी ६

आपके दार्शनिक विचारों पर निम्नलिखित श्लोक प्रकाश डालता है—

आम्नायः प्राह तत्त्वं हरि मिहह्यखिलं सर्वशक्तिं रसाब्धि।
तस्माद्भेदांश्च जीवान् प्रकृतिकवलितान् तद्विमुक्तांश्च भावान्।
भेदाभेदप्रकाशं सकलमपि हरेः साधनं शुद्ध भक्तिं।
साध्यं तत्प्रेमदञ्चे त्वुपादिशति जनान् गौरचन्द्रः स्वयं सः॥

श्री गौराङ्गदेव ने सर्वशक्ति-सम्पन्न, रस सिन्धु श्रीहरि को उसी का अंश, उनका भेदाभेद सम्बन्ध और शुद्ध-भक्ति को साधन कहा है, प्रभु-पद-प्रेम को ही साध्य बतलाया है।

नित्यानन्द से वैष्णव धर्म के प्रचार में इन्हें बहुत सहायता मिली। बंगाल में कृष्ण-भक्ति के प्रचार का श्रेय निमाई (चैतन्य) तथा निताई (नित्यानन्द) दोनों महापुरुषों को है। इनके जीवन काल में ही इनकी कीर्ति खूब फैली। चैतन्य का आध्यात्मिक साधन भगवान् के नाम का संकीर्तन था जिससे इन्होंने जन साधारण को अपने भक्ति आन्दोलन की ओर आकृष्ट किया। अद्वैताचार्य तथा नित्यानन्द दो सन्तों ने उनके भक्ति सन्देश को जनता के हृदय तक पहुँचाया। अद्वैताचार्य शास्त्र-वेत्ता भी थे, इसलिये योग्य व्यक्तियों को ही उन्होंने दीक्षा दी परन्तु नित्यानन्द ने सबके लिये भक्ति का मार्ग खोल दिया। चैतन्य के सम्बन्ध में नरहरि सरकार ने अनेक पद बनाये और चैतन्य-पूजा के विषयों को व्यवस्थित किया। श्री निवास आचार्य, श्री नरोत्तम दत्त, श्री श्यामा नन्ददास ने चैतन्यमत का प्रचार विशेषरूप से किया। वृन्दावन में चैतन्य मत के शास्त्रीय रूप और विधि विधानों का प्रचार गोस्वामियों ने किया। इन्होंने चैतन्य मत की प्रतिष्ठा और सिद्धान्तों की व्यवस्था की

भक्ति रसामृतसिन्धु—श्री रूपगोस्वामी ने 'श्री हरिभक्ति रसामृतसिन्धु' में प्रथम श्लोक ही इस प्रकार लिखा है—

अखिलरसामृत मूर्तिः प्रसृमररुचिरुद्धतारकापालिः।
कलित श्यामा ललितो राधा प्रेयान् विधुर्जयति ॥[1]

वह कृष्ण जो समस्त रसों के सार स्वरूप हैं तथा जिनकी प्रसरणशील मनोहर कान्ति के देखने से नेत्रों की पुतलियाँ स्थिर हो जाती हैं और जो कलुषिता को आत्मसात करने से अधिक मनोहर लगते हैं अथवा श्यामा और ललिता सखियों में जिनका विलय सा हो गया है तथा जो राधा के प्रियतम हैं वे सर्वश्रेष्ठ हैं।

इसमें द्वितीय अर्थ को देखने से प्रतीत होता है कि कृष्ण ने श्यामा और ललिता को आत्म सात कर लिया है परन्तु राधा के वे प्रियतम हैं।

भक्ति रसामृतसिन्धु में मधुरा रति का वर्णन करते हुए श्री रूपगोस्वामी ने लिखा है।

राधामाधवयोरेव क्वापि भावैः कदाऽप्यसौ।
सजातीय विजातीयैर्नैव विच्छिद्यते रतिः ॥[2]

यह रति राधा और कृष्ण के सम्बन्ध में चाहे सजातीय भाव हो चाहे विजातीय कहीं भी और कभी भी विछिन्न नहीं होती।

श्री रूपगोस्वामी भक्ति-रसामृत सिन्धु में कहते हैं; कि "साधक की सात्विक मनोवृत्ति में आविर्भूत व अभिव्यक्त होकर यह रति भाव या उस मनोवृत्ति के समान हो जाता है। यह रति स्वयं प्रकाश स्वभावा है, यह मनोवृत्ति में प्रतिफलित होकर प्रकाश्य वस्तु के सदृश्य बन जाती है, किन्तु वस्तुतः यह प्रकाश्य वस्तु नहीं है बल्कि प्रकाश का चिद्रूपता ही इसका स्वरूप है। यह रति स्वयं आस्वाद स्वरूप हो जाती है, तथा इस प्रकार साधक की मनोवृत्ति में अभिव्यक्त होकर भक्त द्वारा श्री भगवान् के साक्षात्कार का सम्पादन करती है।

आविर्भूय मनोवृत्ती व्रजन्ती तत्स्वरूपताम्।
स्वयं प्रकाशरूपाऽपि भासमाना प्रकाश्यवत् ॥
वस्तुतः स्वयमास्वादस्वरूपैव रतिस्त्वसौ ॥
कृष्णादि कर्मकास्वादहेतुत्वं प्रतिपद्यते ॥[3]

१- भक्ति रसामृत सिन्धु—श्री रूपगोस्वामी पूर्वभाग प्रथम लहरी श्लोक १
२. ,, ,, ,, ,, पश्चिम विभाग पञ्चम लहरी श्लोक ५
३. ,, ,, ,, ,, पूर्व विभाग ३ लहरी श्लोक २, ३

उज्ज्वल नीलमणि

श्री रूप गोस्वामी के उज्ज्वल नीलमणि ग्रन्थ में राधा का विवरण अनेक स्थानों पर आया है। उनके राधा प्रकरण में आया है—

ह्लादिनी या महाशक्तिः सर्वशक्तिवरीयसी।
तत्सारभावरूपेयमिति तन्त्रे प्रतिष्ठिता ॥६॥
सुष्ठु कान्तस्वरूपेयं सर्वदा वार्षभानवी।
धृतषोडशशृङ्गारा द्वादशाभरणाश्रिया ॥७॥

स्थायी भाव प्रकरण में भाव का उदाहरण देते हुए राधा कृष्ण की अभिन्नता बताने वाला विवरण इस प्रकार है—

राधाया भवतश्च चित्तजतुनी स्वेदैर्विलाप्य क्रमा-
द्युञ्जन्नद्रिनिकुञ्जकुञ्जरपते निर्धूतभेदभ्रमम्।
चित्राय स्वयमन्वरं जयदिह ब्रह्माण्डहर्म्योदरे-
भूयोभिर्नवरागहिङ्गुलभरैः शृङ्गारकारुः कृती ॥१४३॥

गोवर्द्धन पर्वत के कुंजों के गजराज! शृंगार रस रूपी शिल्पी ब्रह्मांड रूपी महल के भीतर चित्र बनाने के लिए आप और राधा के चित्त रूपी लाख को स्वेद से गलाकर क्रम से बहुत अधिक अनुराग रूपी हिंगुल रंग से मिलाता हुआ स्वयं उत्कर्ष का भाजन हुआ है। उसमें भेद की प्रतीति नहीं होती।

महाभाव स्वरूपा श्री स्वामिनीजी सर्व वरिष्ठा है। उज्ज्वल नीलमणि में श्रीरूपगोस्वामी पाद ने कहा है कि, 'श्रीराधा श्रीकृष्ण की उपासना करती हैं और भगवान् श्रीकृष्ण राधा की उपासना करते हैं। गोपिकाओं में श्रीराधा सर्वश्रेष्ठ थीं क्योंकि वह स्वयं महाभाव स्वरूपिणी थीं।

श्रीरूपगोस्वामी ने उज्ज्वल नीलमणि ग्रन्थ में राधिका के अधिरूढ़ महाभाव के उदाहरण में राधिका के प्रेम का इस प्रकार उल्लेख किया है। कैलाश पर एक दिवस पार्वतीजी के पूछने पर महादेवजी राधा प्रेम का वर्णन करते हैं' हे पार्वती! प्रपंच से रहित भगवान् के जितने दिव्यधाम हैं उसमें अनन्त कोटि परिकर हैं। अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के जितने जीव हैं इन सबके तीनों काल के (भूत, वर्तमान, भविष्यत) जो अलौकिक सुख दुख हैं उन सुख दुखों को लेकर यदि पृथक्-पृथक् एकत्र किया जाय। श्रीकृष्ण के दर्शन से राधिका के प्रेम से उठे हुए आनंदानुभव तथा विरह से जो दुखानुभव, उन अनुभवों (सुख, दुख) को लेकर एकत्र पृथक् रूप से रखा

• तयोरप्युभयोर्मध्ये राधिका सर्वथाधिका।
महाभाव स्वरूपेयं गुणैरति गरीयसी॥

जाये। दोनों के तुलना करने पर राधिका के सुख दुख रूपी जो सागर है उस सागर के एक बूँद के आभास के बराबर प्राप्त नहीं हो सकेगा।[1]

इस ग्रन्थ में राधिका के मोहनाख्य भाव प्रसङ्ग में राधिका की अनुभाव क्रिया का एक उदाहरण है कि, 'एक दिवस राधिका अपनी सखी से भी कह रही है सखि! बड़वा नल राशि से महान् तीक्ष्णदाहन शक्ति वाला श्याम सुन्दर के विरह से उत्पन्न प्रौढ़ ताप को मेरा दुर्बल हृदय किस प्रकार सहता है मैं नहीं जानती। देख सखी! सुन, उस विरह-अग्नि के पराक्रम को कहना तो दूर रहा उस विरहाग्नि के धुँवा का आभास यदि किसी समय मेरे हृदय से निकल आये तो उसकी ज्वाला से अनन्त कोटि ब्रह्मांड जलकर राख हो जायें।'[2] उस राधा भाव में केवल कृष्ण सुख का ही तात्पर्य रहता है। रूपगोस्वामी ने उज्ज्वल नीलमणि में उल्लेख किया है—

पञ्चत्वं तनुरेतु भूतनिवहाः स्वांशे विशन्तु स्फुटं-
धातारं प्रणिपत्य हन्त शिरसा तत्रापि याचे वरम्।
तद्वापीषु पयस्तदीयमुकुरे ज्योतिस्तदीयाङ्गन-
व्योम्नि व्योम तदीयवर्त्मनि धरा तत्तालवृन्तेऽनिलः॥[3]

श्रीराधिका कहती है, 'हे सखी! श्रीकृष्ण विरह में उत्तप्त यह मेरा शरीर पंचत्व को प्राप्त हो। उसके पश्चात् शरीर के जो पंचभूत हैं वे अपने-अपने अंश में प्रवेश करें। इसके बाद भी मैं विधाता को मस्तक अवनत के साथ प्रणाम करके यह वर मांगू। मृत्यु के पश्चात् इस शरीर का जलतत्व उन श्रीहरि के क्रीड़ा सरोवर के जल में प्रवेश करे। उन श्रीहरि के दर्पण में ज्योति और उनके आंगन में आकाश, उनके चलने के मार्ग में पृथ्वी तत्त्व तथा उनके व्यंजन में पवन तत्त्व बने अर्थात् इस प्रकार बनकर उनकी सेवा में प्रयुक्त हो।'

---

१. लोकातीतमजाण्डकोटिगमपि त्रैकालिकं यत्सुखं
दुःखं चेति पृथग्यदि स्फुटमुभे ते गच्छतः कूटताम्।
नैवाभासतुलां शिवे तदपि तत्कूट द्वयं राधिका—
प्रेमोद्यत्सुखदुःखसिन्धुभवयोर्विन्दते विन्द्वोरपि॥
उज्ज्वलनीलमणि स्थायी भाव प्रकरणम् ॥१५७॥

२. और्वस्तोमात्कटुरपि कथं दुर्बलेनोरसा मे-
तापः प्रौढो हरिविरहजः सह्यते तन्न जाने।
निष्क्रान्ता चेद्भवति हृदयाधस्य धूमच्छटापि-
ब्रह्माण्डानां सखिकुलमपि ज्वालया जाज्वलीति॥
उज्ज्वल नीलमणि स्थायीभाव प्रकरणम् १७१

३. उज्ज्वल नीलमणि, स्थायीभाव प्रकरणम् १७२

हंसदूत—रूपगोस्वामी का दूसरा दूत काव्य 'हंसदूत' है। इसमें कुल १४२ श्लोक हैं। इसके सभी छंद शिखरिणी में है। मंगलाचरण के बाद कथा का प्रारम्भ होता है। इसमें राधा के विरह-संताप का बड़ा मार्मिक वर्णन है। राधा का विरहालाप चेतन को ही नहीं जड़ को भी रुला देता है।

अक्रूर के अनुरोध से श्रीकृष्ण के नन्द-भवन से मथुरा जाने पर श्री राधिका उनके विरह मे व्याकुल और अगाध पीड़ित हुई। अपने विरह को भुलाने के लिए राधा यमुना के किनारे पर गई परन्तु निकुंज और चिर परिचित विहार स्थल को देख उसे श्रीकृष्ण का मधुर स्मरण हो आया और वह मूच्छित हो गई। राधा को मूच्छित अवस्था में देख उसकी सखियों शीतल जल से सिक्त-पद्म-पत्रों से हवा करने लगी और राधा का कण्ठ निश्वास से कम्पित होने लगा। श्री राधा को पद्म-पत्र-मयी कोमल शैया पर विराजमान कर ललिता ने जैसे ही जल लाने के लिये यमुना की सीढ़ियों पर पैर रखा वैसे ही देखा कि एक शुभ्र हंस विलास गति से उसकी ओर आ रहा है। ललिता ने अपने मन में सोचा कि श्रीकृष्ण की सभा में उसी को दूत बनाकर अपना सन्देश लेकर भेजना चाहिये। वह हंस से प्रार्थना करने लगी कि श्रीकृष्ण हम सबको विस्मरण कर मथुरा में निवास करते हैं तुम हमारे समस्त सन्देश को उनके कर्ण गोचर करो जिससे उनके साथ हमारा मिलन होवे। वह हंस से कहती है कि तुम कृष्ण से कहना कि जिसके साथ तुम्हारा प्रेम अधिक था और जिसे तुमने 'प्रियतमा' कहकर सम्मानित किया था उसी राधा की सखी ललिता ने आपके चरणों को प्रणाम करते हुए यह निवेदन किया है कि तुम्हें उस 'दीन' राधा का नाम कभी याद आता है ?[1] जो तुम्हारे श्री चरणों मे अपना तन-मन समर्पण कर चुकी है उन गोपियों में प्रधान, अखण्ड महाभाव स्वरूपिणी त्रिभुवन में असाधारण प्रेम स्वरूपिणी, श्रीराधा इस समय दुर्भाग्य की चरम सीमा में प्राप्त होकर सामान्य नारियों की दशा में पहुँच चुकी है।[2] राधा ने राधा विरह का वर्णन इस

(हे वृन्दावन चन्द्र ! मैं अधिक क्या कहूँ, हिताहित विचार शून्य हमारी प्यारी सखी राधा अपने दोष के कारण ही विरह कातर दशा का उपभोग कर रही है एवं तुमको आज क्षणमात्र के लिए भी अपने मन से दूर करने को समर्थ नहीं है अतः उसके दुख का कारण स्वयं वही है। इसे आपकी दुर्बुद्धि के अतिरिक्त और क्या कह सकते हैं ? इस स्थान पर इतना कष्ट होते हुए भी वह श्रीकृष्ण को भूलने में असमर्थ है, यह कहने से भी राधाजी का एकनिष्ठ निरूपाधिक-प्रेम, अभिव्यक्त होता है।)

भवन्तं सन्तप्ता विदलिततमालाङ्कुर रसै-
र्विलिख्य-भ्रू भङ्गीकृत मदन कोदण्डकदनम् ।
निधास्यन्ती कण्ठे तव निजभुजावल्लरिमसौ-
धरण्यामुन्मीलज्जड़िमनिविडाङ्गी विलुठति ।।[१]

(आपके विरहानल में संतप्ता, हमारी सखी राधा, तमाल वृक्ष के अंकुरों को मर्दन कर उनके रस से, जिनकी माधुर्य-मंडित भ्रू भङ्गी काम-धनुष की शोभा को विलज्जित करती हैं, ऐसी सुन्दर आपकी मूर्ति को चित्रित करती है एवं उस मूर्ति के कण्ठ देश में ज्योंहीं अपनी बाहु-लतायें अर्पित करना चाहती है त्योंही उसका शरीर जड़ता से व्याप्त होकर पृथ्वी में गिरकर मूर्च्छित हो जाता है।)

कदाचिन्मूढेयं निविडभवदीयस्मृति मदा-
दमन्दादात्मनं कलयति भवन्तं मम सखी।
तथास्या राधाया विरहदहनाकलितधियो-
मुरारे ! दुःसाधा क्षणमति न बाधा विरमति ।।[२]

हे मुरारे ! हमारी सखी राधा मधु धारावत् अविच्छिन्न आपके प्रेमानन्द में मग्न होकर, प्रगाढ़ भाव से आपका ही चिन्तनकर करके अतिशय प्रेमानन्दवश अपने को ही श्रीकृष्ण समझने लगी है और उसकी विरह संतप्त बुद्धि क्षण-क्षण नाना विरुद्ध कल्पना करती रहती है। उसके मन की वह पीड़ा, जिसका कोई भी प्रतीकार नहीं है और एक क्षण भाव के लिए भी वह निवृत्त नहीं हो पाती है।

समक्षं सर्वेषां विहरसि समाधिप्रणयिना-
मिति श्रुत्वा नूनं गुरुतरसमाधि कलयति ।
सदा कंसाराते ! भजसि यमिनां नेत्रपदवी-
मिति व्यक्तं सज्जीभवति यमलाम्बितुमपि ।।[३]

---

१. हंसदूत—श्लोक ८४
२. ,, ,, ८५
३. ,, ,, ८७

'हे कंसरिपो ! समाधि परायण योगिजनों के निकट आप प्रत्यक्ष भाव से प्रगट होते हैं, यह बात सुनकर राधा आजकल महान् योगाभ्यास करने लगी है एवं बाह्य इन्द्रिय संयमी मानवों को आप प्रत्यक्ष रूप से नयन गोचर होते हो, इस कारण वह इन्द्रिय निग्रह करने में भले प्रकार से यत्न करती है। इससे प्रकट होता है कि वह और तो क्या यमराज अर्थात् काल को भी आलिंगन करने को उद्यत हो गई है।

विशीर्णाङ्गीमन्तर्व्रण विलुठनादुत्कलिकया–
परीतां भूयस्या सततमपरागव्यतिकराम्।
परिध्वस्ता मोदां विरमितसमरत्तालिकुतुकां–
विधो। पादस्पर्शादपि सुखय राधा-कुमुदिनीम् ॥[1]

हे गोकुलचन्द ! यह श्रीराधा अन्तर्गूढ़ विरह जनित से सन्ताप के कारण भूमि में लोटती रहने से इसका देह अत्यन्त क्षीण हो चला है एवं उत्कण्ठा महान् दीख पड़ती है। प्रगाढ़ विरह निबन्धन द्वारा सकल वस्तुओं से विराग हो चुका है, अङ्ग-कांति मलिन सी हो चुकी है, अब उसकी अङ्ग शोभा पहले की भाँति कनक समान गौर नहीं दिखलाई पड़ती उसका अब आनन्द विलीन हो गया है। सखियों के साथ के हास्य कौतुक को भूल चुकी है। ऐसी दशा में निज सुधा-किरण के स्पर्श द्वारा इस राधा-कुमुदिनी को सुखी कीजिये।

उद्धव शतक—एक दिन श्रीकृष्ण ने अपने केलि गृह की सर्वोच्च अट्टालिका पर आरोहण करके नाना प्रकार के उपवनों से सुशोभित मथुरा नगरी एवं तत्रस्थ नाना प्रकार के मनुष्यों को देखा। उससे उन्हें अपने विरह दावानल द्वारा दग्ध व्रज-वासी नाना विध भक्तों का स्मरण हुआ और वे व्याकुल हो गये। उस समय आपने अपने अन्तरङ्ग सहचर उद्धव को निकट बैठाकर व्रजवासियों को सान्त्वना देने के लिये जो उपदेश दिया वह उद्धव सन्देश कहा जाता है।

श्रीकृष्ण ने उद्धव को संदेश देते हुये राधा की विरह दशा का वर्णन इस प्रकार किया है—

इत्यं तासामनुनयकलापेशलः क्लेश हारी
सन्देशं मे कुवलयदृशां कर्णपूरं विधाय।
त्वं मच्चेतो भवनवड़भी-प्रौढ़पारावतीं तां
राधामन्तः पलमकवलितां सम्भ्रमेणाजिहीर्षाः ॥[2]

---

१. हंसदूत—श्लोक ६३
२. श्री उद्धव सन्देश—रूपगोस्वामी, श्लोक ११६

इस प्रकार उन गोपियों को प्रसन्न करने की कला में चतुर तथा उनके संतापों को दूर करने वाले तुम मेरे सन्देश को उन नीलोत्पलनयना व्रजयुवतियों के कर्णन्चूर अर्थात् उनसे कहकर मेरे चित्त रूपी भवन वड़भी (अटाली) की प्रगल्भ कपोती तथा आंतरिक सन्ताप से अभिभूत उस राधा के समीप आदर के साथ जाना।

सा पल्यङ्के किशलयदलैः कल्पिते तत्र सुप्ता
गुप्ता नीलस्तवकितदृशां चक्रवालैः सखीनाम्।
द्रष्टव्या ते कृशिमकलिताकण्ठ नालोपकण्ठ–
स्पदेनान्तर्वपुरनुमितप्राण सङ्गा वराङ्गी ॥[1]

वहाँ किसलय रचित पर्यंङ्क पर सोई हुई, अश्रुप्लुत नेत्रों वाली सखियों द्वारा सेवा की जाती हुई तथा अत्यन्त दुर्बल कंठ नाल में स्पन्दन की विद्यमानता से इसके शरीर में प्राणवायु है ऐसा अनुमान की जाती हुई वरांगी राधिका तुम्हें दिखाई देगी।

सख्युर्लक्ष्मीमुखि मतमुरीकृत्य दूरीभविष्णोः
धत्ते प्राणाननुपद विपद्विद्धचित्तापि साध्वी।
मुक्तच्छाया मुहुर सुमनाः क्षोणिपृष्ठे लुठन्ती
बद्धापेक्षं विलसति गते माधवे माधवीयम् ॥[2]

वह साध्वी माधव (वसन्त) के चले जाने पर माधवी लता की भाँति पक्षान्तर में माधव (सखा श्रीहरि) मेरे दूर चले आने पर माधवी राधा प्रतिक्षण विपदाक्रान्त चित्ता होकर प्राणों को किसी प्रकार धारण कर रही और मुक्तच्छाया अर्थात् छाया रहित (असहाया) (कृष्णपक्ष में कांतिरहित) बद्धापेक्ष अशोभन मनवाली वह पृथ्वी पर लेट रही है।

मालां मैत्रीविदुर ! मदुरः सङ्ग सौरभ्यसम्यां
वासन्तीभिर्विरचित मुर्वी पञ्चवर्णां गृहाण।
आरूढ़ायाः परिणतिदशां तादृशीं सारसाक्ष्यः
साक्षादेतत्परिमलमृते कः प्रबोधे समर्थः ॥[3]

हे सौहृदय अभिज्ञ ! मेरे वक्षःस्थल के संसर्ग से सौरभमयी, नव मल्लिका के फूलों से गूँथी गई तथा पाँच वर्णवाली इस माला को तुम ग्रहण करो। साक्षात् इस

1. श्री उद्धव सन्देश—रूपगोस्वामी, श्लोक ११७
2. „ „ „ „ ११८
3. „ „ „ „ ११९

माला की सुगन्धि के अलावा और कौन वस्तु हो सकती है जो उस कमलनयना को होश में ला सके जो इस चरम दशा को पहुँच गई है।

राधा कृष्ण गणोद्देशदीपिका—कवि ने श्री राधा-कृष्ण गणोद्देशदीपिका में में श्रीराधिका के चरणकमलों की वन्दना इस प्रकार की है—

श्री नन्दनन्दन वन्दे राधिका चरणद्वयम्।
गोपीजनसमायुक्तं वृन्दावन मनोहरम् ॥[1]

श्री वृन्दावन में मनहरणकारी, गोपीजनों से वेष्टित, श्रीनंदनंदन तथा श्रीराधिका के चरणकमल की वन्दना करता हूँ।

वसुदेव के सम्बन्ध में बताते हुए उसमें आया है कि श्रीराधिका के पिता वृषभानु महाराज इनके परम सुहृत थे।[2] अष्ट सखियों में ललिता का वर्णन करते हुए इसमें लिखा है कि ललितादेवी श्रीराधा से सत्ताईस दिन बड़ी हैं।[3] जो अनुराधा कहकर प्रसिद्ध तथा वामा और प्रखरा नायिका के गुणों से भूषित हैं। इसमें चित्रा को राधा से छब्बीस दिन छोटी, तुंगविद्या को राधिका से पाँचदिन बड़ी और इन्दुलेखा को राधा से तीन दिन छोटी बताया है।[4] रत्नलेखा श्रीराधिका की परम प्रिया है।[5]

श्रीराधा-कृष्ण गणोद्देशदीपिका के परिशिष्ट में वृन्दावनेश्वरी श्री राधिका को सब गोपांगनाओं से श्रेष्ठ और सकल माधुर्य्य से अधिक बताया है जो कि श्रुति में गन्धर्वा नाम से विख्यात हैं।[6] उसमें श्री राधिका के रूप लावण्य का वर्णन इस प्रकार हुआ है—श्रीराधिका नाना वैदग्ध में परम पण्डिता तथा सुधा-सागर रूपणी हैं। वे नवीन गोरोचना की भाँति गौरांगी हैं। उनकी प्रभा तपायमान सुवर्ण की तरह अथवा स्थिर-विद्युत के सदृश रूप की अतिशयता से परम उज्ज्वला है।

---

१. श्रीराधा कृष्णगणोद्देश दीपिका-मङ्गलाचरणम् ॥२॥

२. वृषभानुर्व्रजे ख्यातो यस्य प्रिय सहृद्वरः। श्रीराधा-कृष्ण गणोद्देश दीपिका २६

३. प्रिय सख्या भवेज्ज्येष्ठा सप्तविंशतिवासरैः ॥ ७६
अनुराधातया ख्याता वामप्रखरता गता ॥ ८०
श्री राधा-कृष्ण गणोद्देश दीपिका

४. श्री राधा-कृष्ण गणोद्देश दीपिका ८६, ८७, ८८-८६, ६०-६१।

५. ,, ,, ,, ११०-११२

६. तयोरप्युभयोर्मध्ये सर्वमाधुर्यतोऽधिका।
राधिका विश्रुति याता यद्गान्धर्व्वाख्यया श्रुतौ ॥
श्रीराधा-कृष्ण गणोद्देश दीपिका परिशिष्ट १४३

उनके विचित्र नीलवसन शोभायमान हैं। वे नाना प्रकार की मुक्ताओं से भूषित अङ्ग वाली तथा नाना पुष्पों से विराजमाना हैं। उनके केश अति लम्बायमान हैं तथा वे लावण्यरूपिणी हैं। विविध मुक्ता मालाओं से सुशोभित हैं तथा नाना पुष्प मालाओं से सुसज्जित हैं। उनकी वेणी परम उज्ज्वला है तथा भालदेश सिंदूर से परिभूषित दीप्तिमान हैं। अलकावली चित्र पत्रों से सुशोभित नाना चित्रमयी है। नील कङ्कण से शोभित सुन्दर लावण्यमय बाहुयुगल हैं। भुजलता अनङ्गयष्टि के लावण्य को मोहित करने वाली है। युगल नयन-कमल कर्णपर्यन्त शोभायमान हैं जिसकी कान्ति काजल से उज्ज्वल तथा त्रैलोक्य विजयिनी हो रही है। मुक्तावेशर से सुशोभित, तिल पुष्प कान्ति के तुल्य नसिका है। वह सुगन्धि से युक्त अति दीप्ति शालिनी है। नाना चित्रों से विनिर्मित दो रत्न तांडक है। रक्तोत्पल को जीतने वाला, सुधा सुन्दर ओष्ठाधर है। जिह्वा से परिशोभित मुक्तामाला की तरह दन्त पंक्ति है। कोटि चन्द्रमा प्रभा के तुल्य लावण्यमय मुखपद्म हैं। सुधा से भी सुन्दर, प्रेम रूप हास्य से युक्त, बिम्ब की तरह चिबुक है, जिसका सुलावण्य कन्दर्प को मोहित करने वाला है। उसमें फिर स्वर्ण-कमल में भ्रमरी की तरह लावण्यमय मसि बिंदु है। कण्ठ देश में मुक्ता-मालाओं से विभूषित चित्र रेखा है। पीठ, ग्रीवा अति सुन्दर तथा दोनों पार्श्व में मोहिनी रूप है। सुवर्णमय स्तन कुम्भों से मानो सुशोभित, काँचोली से आच्छादित, मुक्ताहारों से शोभायमान वक्षः स्थल है। लावण्य मोहनकारी सुन्दर बाहु युगल हैं, जो रत्नों के अङ्गदों तथा वलयों से परि-शोभित हैं तथा रक्त कङ्कण से दीप्तिमान् और रत्नों के गुच्छ से विराजमान हैं। रक्तोत्पल की तरह हस्तयुगल है जो कि नख चन्द्रों से अति प्रकाशमान हैं।

भृङ्ग, अम्भोज, चन्द्रकला, कुण्डल, छत्र, यूप, शङ्ख, वृक्ष, पुष्प, चामर, स्वस्तिकादिक ये सब चिन्ह शुभकारी तथा नाना चित्रों से विराजमान हैं। करां-गुलियां सुदीप्त तथा रत्न मुद्रिकाओं से विभूषित हैं। उदर मधु से भी लावण्यमय तथा गम्भीर नाभि से सुशोभित है। वह सुधारस से परिपूर्ण तथा तीन लोक को मोहन करने वाला है। मध्य में क्षीण, लावण्य के अतिशय से सुन्दर कटि देश है जो विचलीलता से वेष्टित और किङ्कणी जालों से शोभित है। उरू युगल मनोहर रम्भा की तरह है तथा कन्दर्प चित्त का मोहनकारक है। दोनों जंघा नाना केलि रस की आकर सुन्दर लावण्यरूप हैं। दोनों श्रीचरणकमल मणिनूपुर से भूषित हैं तथा लावण्यमय अंगुलियों से शोभित हैं।

शङ्ख, चक्र, हस्ति, दो यव, अंकुश, रथ, ध्वजा, डमरू, स्वस्तिक, मत्स्यादिक शुभ चिह्नों से युक्त दोनों चरण हैं।

कैशोरता से उज्ज्वल पञ्चदशवर्ष पर्यन्त अवस्था है। श्रीराधिका में गोपेन्द्र गेहिनी श्री यशोदा कोटि माता के सदृश स्निग्धा थीं। उनके पिता वृषभानु जी हैं जो कि वृषभानु राशिस्थ सूर्य की तरह परम उज्ज्वल थे। पृथ्वी में रत्नगर्भानाम से ख्याता कीर्तिदा जी माता है। पितामह महीभानु और मातामह इन्द्र है। मुखरा माता मही और सुखदा पितामही हैं। रत्नभानु, सुभानु, भानु ये पिता के भाई हैं। भद्र कीर्ति, महाकीर्ति, कीर्ति चन्द्र ये मामा है। मेनका, षष्ठी, गौरी, धात्री, धातकी ये मामी है। माता की भगिनी कीर्तिमती तथा पिता की भगिनी भानु मुद्रा है। कीर्तिमति का पति कुश और भानु मुद्रा का पति काश हैं। श्रीराधा के बड़े भ्राता श्रीदामा और कनिष्ठ भगिनी अनङ्ग मञ्जरी है। श्वसुर वृक गोप और देवर दुर्मदनाम से है। जटिला सास तथा अभिमन्यु पतिम्मन्य (अर्थात् अपने को पति का अभिमान रखने वाले) है। ननन्द कुटिला है जो कि निरंतर छिद्रानुसंधान रखने वाली थी। ललिता, विशाखा, सुचित्रा, चम्पकलता, रङ्गदेवी, सुदेवी, तुङ्गविद्या, इन्दुलेखा ये अष्टसखी समस्त गणों में अग्रिम, परमश्रेष्ठ सखी हैं।[1] राधिका के जगवासियों के नेत्ररूप, भगवान् पद्म बन्धु, सूर्यदेव उपास्य है। निज अभीष्ट समर्थी कृष्णनाम महामन्त्र जप्य है। पौर्णमासी भगवती जी समस्त सौभाग्यों को बढ़ाने वाली है।[2]

सनातन गोस्वामी के विरचित ग्रन्थ—(१) वृहद्भागवतामृत (२) हरिभक्ति-विलास की दिक् प्रदर्शिनी टीका (३) वैष्णव तोषिणी नामक दशम स्कन्ध की टिप्पणी (४) लीला स्तव व दशमचरित, रसमय कलिका तथा लघुहरिनामामृत, व्याकरण आदि है।

श्री रघुनाथ गोस्वामी सदा प्रेम विभोर होकर 'राधे-राधे' चिल्लाते रहते थे। आपके द्वारा प्रोत्साहन पाने पर कृष्णदास कविराज ने वृद्धावस्था में चैतन्य चरितामृत की रचना की। आपकी रचनायें स्तोत्र रूप में अधिक है जिनमें मुख्य हैं—विलाप कुसुमाञ्जलि, नामाष्टक, उत्कण्ठ दशक, अभीष्ट प्रार्थनाष्टक, अभीष्ट सूचना, नवांनन्द शतक आदि। आपके दानकेलि-चिंतामणि, मुक्ताचरित, स्तावली आदि ग्रन्थ भी मिलते हैं।

श्री रघुनाथ भट्ट गोस्वामी के शिष्य गदाधरभट्ट थे जिन्होंने व्रजभाषा में अनेक पदों की रचना की। आपकी रचनाएँ मधुकेलि-वल्ली, राधा-कृष्ण-स्तव और रूप-सनातन-स्तोत्र आदि है।

---

१. श्रीराधा कृष्ण गणोद्देशदीपिका—परिशिष्ट १४५-१७४
श्रीराधा कृष्ण गणोद्देशदीपिका—परिशिष्ट १७८

जीवगोस्वामी ने वृन्दावन में अपने ठाकुर श्रीराधा दामोदरजी की स्थापना की। आपके जीवन का उद्देश्य भजन और भक्ति ग्रन्थ प्रणयन ही था इन्होंने गौड़ीय वैष्णव सिद्धांतों का विवेचन अपने ग्रन्थों में किया है। आप उच्चकोटि के दार्शनिक विद्वान थे। आपके ग्रन्थों का परिचय निम्न प्रकार है—

षट्संदर्भ—इसमें भक्ति-शास्त्र के मौलिक तत्त्वों का प्रतिपादन किया गया है। यह भागवत विषयक प्रौढ़ निबन्धों का समुच्चय है। उसके ऊपर ग्रन्थकार ने ही सर्व संवादिनी नामक व्याख्या लिखी है।

क्रम संदर्भ—भागवत पुराण की पाण्डित्य पूर्ण टीका है।

दुर्गम संगमनी—रूप गोस्वामी के 'भक्ति रसामृत सिंधु' की टीका है।

ब्रह्म संहिता और कृष्ण कर्णामृत की टीकायें।

हरिनामा मृत व्याकरण—इसमें कृष्ण के नामों के सम्बंधित नये पारिभाषिक शब्दों का निर्माण हुआ है।

कृष्णार्चन दीपिका—कृष्ण पूजा की विधि विस्तार से दी गई है।

सर्व-संवादिनी, वृहत्तोषिनी आदि टीका ग्रन्थ, रसामृत शेष, गोपाल चम्पू, माधव-महोत्सव, गोपाल-विरुदावली, संकल्प कल्पद्रुम, आदि ग्रन्थ आपने लिखे। 'श्रीराधा कृष्णार्चन-दीपिका' श्रीवृन्दावन विहारी की उपासना पद्धति की मार्ग दर्शिका है।

श्री गोपालभट्ट स्वामी ने कृष्णकर्णामृत और हरि भक्ति-विलास की टीकायें लिखीं। वल्लभ मत के अष्टछाप की भांति ही चैतन्य मत के षट् गोस्वामियों की महानता है। इनकी गणना कवि और दार्शनिक दोनों में है। षट् गोस्वामियों की रचना संस्कृत में है।

दूसरी कान्ताओं का विस्तार भी कृष्ण कान्ता शिरोमणि राधिका से ही हुआ है। कृष्ण कान्ता तीन प्रकार की बताई गई हैं—प्रथम लक्ष्मीगण हैं, द्वितीय महिषीगण हैं और तृतीय ललितादि ब्रजांगनागण हैं—

लक्ष्मीगण तोर वैभव बिलासांशरूप ।
महिषीगण वैभव प्रकाश स्वरूप ।।
आकार-स्वभाव भेदे ब्रजदेवीगण ।
कायव्यूह रूप तोर रसेर कारण ।।

बहुकांता के अतिरिक्त रस का उल्लास नहीं होता है इसलिये कृष्ण को अनंत विचित्र लीला का रसास्वादन एक राधिका ही तीन प्रकार के बहुकांता के रूप में कराती है—

गोविन्दानंदिनी राधा-गोविन्द-मोहिनी ।
गोविन्द-सर्वस्व-सर्वकांता-शिरोमणि ।।
कृष्णमयी कृष्ण जाँर भितरे बाहिरे ।
जाहाँ जाहाँ नेत्र पड़े ताँहा कृष्ण स्फुरे ।।
किंवा प्रेम रसमय कृष्णेर स्वरूप ।
ताँर शक्ति ताँर सह हय एक रूप ।।
कृष्णवांछा-पूर्तिरूप करे आराधने ।
अतएव राधिका नाम पुराणे बाखाने ।।

× × ×

जगत-मोहन कृष्ण-तोहार मोहिनी ।
अतएव समस्तेर परा ठकुराणी ।।
राधा पूर्ण-शक्ति, कृष्ण पूर्ण-शक्तिमान् ।
दुइवस्तु भेदनाहि शास्त्र परमाण ।।
मृगमद तार गंध यँछे अविच्छेद ।
अग्नि ज्वालाते यँछे कभु नहे भेद ।।
राधा-कृष्ण ऐछे सदा एकइ स्वरूप ।
लीलारस आस्वादिते धरे दुइ रूप ।।

गोपियों में राधा सर्वोतम है—

सेइ गोपीगण मध्ये उत्तमा राधिका ।
रूपे गुणे सौभाग्ये प्रेमे सर्वाधिका ।।

राधिका अपनी समस्त प्रेम चेष्टा के द्वारा पूर्णानन्द और पूर्ण रस स्वरूप कृष्ण को आनन्दित करती हैं और कृष्ण सुख में ही उनकी सारी सुख चेष्टा और प्रेम चेष्टा परिणित हो जाती है। राधिका कामेश्वरी हैं उनमें श्रीकृष्ण के प्रति काम था परन्तु 'अधिरूढ़ महाभाव' रूप राधा का यह काम प्रकृत न होकर अप्राकृत विशुद्ध निर्मल प्रेम से युक्त था। उनका एक मात्र कर्त्तव्य श्रीकृष्ण सुखैक तात्पर्यमयी सेवा द्वारा श्रीकृष्ण को आनन्द पहुँचाना था।[1]

श्रीराधा पूर्ण शक्ति और श्रीकृष्ण पूर्ण शक्ति मान है। दोनों अभिन्न होते हुए भी श्रीकृष्ण लीला रसास्वादनार्थ भिन्न दिखलाई पड़ते हैं।[2] जिस प्रकार कस्तूरी और उसकी गंध, अग्नि और उसकी ज्वाला पृथक् दिखलाई पड़ने पर भी वास्तव में एक ही वस्तु है, उसी प्रकार श्रीराधा कृष्ण का स्वरूप है। श्रीकृष्ण जिस प्रकार अखण्ड रस स्वरूप हैं उसी प्रकार राधा भी अखंड रसस्वरूपा हैं। श्रीकृष्ण साक्षात् ईश्वर हैं तो राधा स्वय शक्ति स्वरूपा हैं, श्रीकृष्ण का जो कुछ सुख आनन्द है वह केवल श्रीराधा के समीप है। श्री वृषभानु नन्दिनी के शरीर में श्रीकृष्ण रसामृत परिसिंचन से ही सखीवृन्द को वास्तव सुख की प्राप्ति एवं परितृप्ति होती है। इसी-लिये 'गोपी-प्रेम' स्वाभाविक है एवं उसमें कामगन्ध का लेश भी नहीं है।[3] रसराज श्री श्यामसुन्दर की सम्पूर्ण वासनाओं को एक मात्र श्री स्वामिनी जी निरतर पूर्ण करती रहती हैं क्योंकि श्रीजी ही श्रीकृष्ण के विशुद्ध प्रेम रत्न की आकार स्वरूपा हैं।[4]

चैतन्यदेव के सम्बन्ध में बङ्गाल प्रांत के प्रसिद्ध विद्वान और प्रतिष्ठित लेखक श्री दिनेशचन्द्र सेन का कथन है, 'यदि चैतन्यदेव न जन्म लेते तो श्रीराधा का जलद-जाल को देखकर नेत्रों से अश्रु बहाना कृष्ण का कोमल अङ्ग समझकर कुसुमलता का आलिङ्गन करना, टकटकी बाँधकर मयूर-मयूरी के कण्ठ को देखते रह जाना और नव परिचय का सुमधुर भावावेश कवि की कल्पना बन जाता। एवं भाव के उच्छ्वास से उत्पन्न हुई उनकी विभ्रममय आत्म-विस्मृति आजकल के असरस युग में कवि कल्पना कहीं जाकर उपेक्षित होती। किन्तु चैतन्यदेव ने श्रीमद्भागवत और वैष्णव

---

१. कृष्ण वाञ्छा पूर्ति रूप करे आराधने। अतएव राधिका नाम पुराणे वाखाने॥
चै० चरितामृत

२. राधा पूर्णशक्ति कृष्णपूर्ण शक्तिमान। दुई वस्तु भेद नाहि परमाण॥
चै० चरितामृत

३. काम गन्धहीन स्वाभाविक गोपी-प्रेम। निर्मल उज्ज्वल शुद्ध येन दग्ध हेम॥
चै० चरितामृत

४. कृष्णेर विशुद्ध प्रेम रत्नेर आकर। अनुपम गुण गण पूर्ण कलेवर॥
चै० चरितामृत

गीतों की सत्यता प्रमाणित कर दी। उन्होंने दिखलाया कि यह विराट् शास्त्र भक्ति की भित्ति पर अचल भाव से खड़ा है। इस शास्त्र के शोभा सर्वस्त्र पूर्व राग, विरह सम्भोग, मिलन इत्यादि से सम्बंध रखने वाली, जितनी ललित लीलाओं की सरस धारायें यहीं है, वे कल्पित नहीं है। उनका आस्वादन हुआ है आँखें आस्वादन योग्य हैं। प्रेम की अद्भुत स्फूर्ति से चैतन्यदेव की देह कदम्ब पुष्प के समान रोमाञ्चित बनती, उन्हें समुद्र की लहरें यमुना की लहरें जान पड़तीं, चरक पर्वत गोवर्द्धन प्रतीत होता और उनके लिये पृथ्वी कृष्णमयी हो जाती। इसी अपूर्व भक्ति और प्रेम की सामग्री के आधार से श्रीमती राधिका सुंदरी सृष्ट हुई हैं। उनके विरह जन्म कष्ट की एक कणिका धारण करे, अथवा उनके सुख की एक लहरी का अनुभव कर सके इस प्रकार का नारी चरित्र पृथ्वी तल की काव्योद्यान में नहीं पाया जाता।"[1] चैतन्य प्रभु के चैतन्य चरितामृत देखने से प्रतीत होता है कि श्रीराधा की अध्यात्म मूर्ति का महिमामय पूर्ण प्रकाश इन्होंने किया।

प्रबोधानंद सरस्वती ने कई शतक लिखे। इनकी अन्य रचनायें "चैतन्य-चंद्रामृत, 'सङ्गीत माधव', आश्चर्य रास प्रबंध, कामगायत्री-व्याख्या, वेदस्तुति टीका आदि हैं। कवि कर्णपूर द्वारा विरचित ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—

१—श्री चैतन्य चंद्रोदय नाटक २—आनंद वृन्दावन चम्पू ३—श्री चैतन्य महाकाव्य ४—गौरगणोद्देशदीपिका ५—कृष्णान्हिक कौमुदी ६—अलङ्कार कौस्तुभ ७—आर्य्याशतक।

श्री विश्वनाथ चक्रवर्त्ती—श्री विश्वनाथ चक्रवर्त्ती प्रगाढ़ पंडित, महादार्शनिक, परमभक्त, श्रेष्ठकवि, वैष्णव चूड़ामणि और तत्कालीन गौड़ीय वैष्णवों के अध्यक्ष थे। आपके नाम की व्युत्पत्ति के सम्बंध में निम्नलिखित श्लोक प्रसिद्ध है—

विश्वस्य नाथरूपोऽसौ भक्तिवर्त्मप्रदर्शनात्।
भक्त चक्रे वर्तितत्वात् चक्रवर्त्याख्यया भवेत्॥

अर्थात् भक्तिमार्ग दिखाने के कारण विश्व का नाथ रूप तथा भक्ति चक्र में वर्तित रहने के कारण चक्रवर्त्ती उनका नाम पड़ा। उनके द्वारा रचित मूल ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—१—श्रीकृष्णभावनामृत २—श्रीगौराङ्ग लीलामृत ३—ऐश्वर्य कादम्बिनी ४—माधुर्य्य कादम्बिनी ५—स्तवामृतलहरी ६—भक्ति रसामृत सिन्धु बिन्दु ७—उज्वली नीलमणि किरण ८—भागवतामृतकण ९—रागवर्ता चंद्रिका १०—गौरगण चंद्रिका ११—चमत्कार चंद्रिका १२—प्रेमसम्पुट १३—व्रजरीति चिन्तामणि १४—क्षणदागीत चिन्तामणि। उनके टीका ग्रंथ निम्नलिखित हैं—

---

[1] ब्रजभाषा और साहित्य, पृ० २४३, २४४

१–समस्त श्री भागवत की "सारार्थदर्शिनी" २–गीता की सारार्थवर्षिणी ३–उज्ज्वलनीलमणि की "आनंद चंद्रिका" ४–भक्ति रसामृत सिंधु की भक्ति सार प्रदर्शिनी ५–गोपाल तापनी की "भक्त हर्षिणी" ६–ब्रह्मसंहिता की टीका ७–दानकेलि कौमदी की "महती" टीका ८–आनंद वृन्दावन चम्पू की "सुख वर्त्तिनी" ९–अलङ्कार कौस्तुभ की सुबोधिनी १३–हंसदूत की टीका ११–श्री चैतन्य चरितामृत की टीका १२–प्रेमा भक्ति-चंद्रिका की टीका इत्यादि।

परकीया भाव को आपने ही अधिक महत्ता दी। श्री गौड़ीय-वैष्णवों में श्रीकृष्ण के साथ श्रीराधा जी के परकीया-भाव के समर्थकों में आप अग्रगण्य हैं।

प्रेम सम्पुट—श्री विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ने प्रेम सम्पुट में राधा का विशद चित्रण किया है। इसकी रचना के सम्बन्ध में अन्तिम श्लोक में आया है कि १६०६ शब्द के फाल्गुण मास में श्रीराधा कुण्ड, श्याम कुण्ड के तट पर बैठकर किसी ने प्रेम सम्पुट काव्य की रचना की।[1] किसी दिन प्रभात के समय श्रीकृष्ण मनोहर रमणी का वेश धारण कर अरुणवर्ण वसनांचल से अपना वदन कमल ढ़ाँक नयन नीचे किये हुए श्रीमती राधिकाजी के भवन के प्रांगण में सहसा आकर उपस्थित होते हैं। वहाँ उपस्थित होने पर रमणी रूपधारी श्रीकृष्ण और राधा में परस्पर वार्तालाप होने लगता है। राधा रमणी-सखी से हास परिहास करती है। देवांगना वेशधारी श्रीकृष्ण उनसे कहते हैं—

नर्म्मतिनुध्व सखि नर्मणि का जयेत्ताम—
प्राणस्त्वभूस्त्वमयि मे कियदेव सख्यमे।
त्वं मानुषी भवसि किन्त्वमराङ्गणास्ता—
मूद्धुनैव ते गुणकथा पुणतीर्नमन्ति ॥[2]

सखि, तुम परिहास करो, इस परिहास कला में कौन तुम्हारी समानता कर सकता है। हे राधे तुम्हारे साथ मेरी प्रीति है। इससे अधिक क्या तुम तो मेरे प्राण के समान हो। तुम मानुषी हो किन्तु वे देव सुंदरियाँ पवित्र होने के लिए तुम्हारी लीला, गुण कथाओं को प्रणाम करती है।)

सखी के यह कहने पर कि श्रीकृष्ण में धर्म, लोक लज्जा तथा दया का अभाव है, राधिका कहती है—

गांधर्त्यिकाह सुभगे त्वयि कापि शक्ति—
राकर्षिणी किल हृदाविव नंततास्ति।

---

१. प्रेम सम्पुट—श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती, श्लोक १४१
२. ,, ,, श्लोक ३४

लिए सज्जन-भक्तगण उसी केलिरत्न के श्रवण-चिंतन द्वारा परमानंदित होकर निरंतर काम को पराजित कर सकेंगे।)

प्रेमसम्पुट में राधा के विरह का सुंदर चित्रण हुआ है।

बलदेव विद्याभूषण—बलदेव विद्याभूषण के ब्रह्म सूत्रों पर गोविंद भाष्य लिखा। इसमें अचिंत्य भेदाभेद सिद्धांत का समर्थन किया गया है। आपने निम्नलिखित ग्रंथों की रचना की–सिद्धांत रत्न भाष्य पीठक, वेदांतस्यमंतक, प्रमेय-रत्नावली, सिद्धांतदर्पण, साहित्य कौमदी, छंद–कौस्तुभ, ऐश्वर्य–कादम्बिनी, आदि। आपने निम्नलिखित टीकायें लिखीं—षट् संदर्भ (तत्व), लघुभागवतामृत, श्यामानंद–शतक, नाटक चंद्रिका, समग्र–भागवत, गोपाल–तापिनी, स्तव–माला आदि।

गदाधर भट्ट

श्रीगदाधर भट्ट राधा कृष्ण के अनन्य भक्त थे। आप चैतन्य महाप्रभु के समसामयिक थे। आपकी रचना बड़ी सरस होती थी। आप संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे इसलिए संस्कृत के शब्दों पर आपका पूर्णाधिकार था। आपकी कविता में संस्कृत गर्भित भाषा प्रयुक्त हुई है। भट्टजी के पदों में त्याग, अनुराग और भक्ति समन्वित है। श्रीगदाधर भट्टजी की वाणी बाबा कृष्णदास ने हरि मोहन प्रिंटिंग प्रेस जयपुर से प्रकाशित की है जिसमें उनके जहां तहां हस्तलिखित पुस्तकों से मिले फुटकर पद एकत्र हैं।

राधिका की वंदना करते हुए उनके स्वरूप का चित्रण श्री गदाधर भट्ट ने इस प्रकार किया है—

जयति श्री राधिके सकल सुख साधिके
तरुनि मनि नित्य नवतन किशोरी।
कृष्ण तनु लीन घन रूप की चातकी
कृष्ण मुख हिय किरन की चकोरी॥
कृष्ण हग भृङ्ग विश्राम हित पद्मिनी
कृष्ण दृग मृगज बंधन सुडोरी।
कृष्ण अनुराग मकरंद की मधुकरी
कृष्ण गुन गान रस सिंधु बोरी॥
एक अद्भुत अलौकिक रीत मे लखी,
मनसि स्यामल रंग अंग गोरी।
और आश्चर्य कहूँ मैं न देख्यो सुन्यो,
चतुर चौंसठिकला तदपि भोरी॥

विमुख परचित ते चित्त जाको सदा
करत निज नाह की चित्त चोरी।
प्रकृति यह गदाधर कहत कैसे बनें,
अमित महिमा इतै बुद्धि थोरी।।[1]

गदाधर भट्ट ने राधिका के अद्भुत रूप का वर्णन इस प्रकार किया है—

राधे, रूप अद्भुत रीति।
सहज जे प्रतिकूल तो तन, रहे छाँड़ि अनीति।।
कचनि रचना राहु ढिगही, मुदित वदन मयङ्क।
तिलक बान कमान दृग मृग, रहैं निपट निसङ्क।।
रतन जतननि जटित जुग ताटेक रवि रहे छाज।
तदपि दूनी जोति मोंतिन, मराडलो उडुराज।।
अधर सुधर सुपक्व विम्बा, सुभग दसन अनार।
धीर धरिकै कीर नासा, करत नहि संचार।।
नील पट तम जोन्ह तन छवि, संग रङ्ग रसाल।
कोक जुगल उरोज परसत नाँहि भुजा मृनाल।।
निकट कटि केहरी पै, गज गति मेटी जाति।
प्रगट गज गतिजहा जंघा, कदलि रुचि हुलसाति।।
गदाधर वलि जाइ बूझत, लगत है मन त्रास।
इति संपति सहित क्यों पिय, देत नाँहि मवास।।[2]

गदाधर भट्टजी ने राधा के मुख की शोभा का वर्णन इस प्रकार किया है—

राधे जू के वदन की शोभा।
जाहि देख मयङ्क थाक्यो कृष्ण मन लोभा।।
सीस फूल सिर ऊपर सोहे भाल कुमकुम विंदु।
मानो गिरि सुमेरु उपर वस्यो रवि अरु इंदु।।
दिये आड कुरंगमदकी मलय केसर सीच।
मानो सुरगुरु उदय कीनो हेमगिरि के बीच।।
तनक तरोना श्रवन सोहे कनक रत्न जराय।
मानों रवि को किरण पसरी रही भूपर छाय।।

चंचल नयन कुरंग मानों सजल जलद जल एन।
चिते बांकी चितवनी में उभय भारे मैंन ॥
सुभग नासावेसर सोहे स्वाति सुत राजें।
निरख मुक्तन ये ही शोभा असुर गुरु लाजें॥
अधर दशन तंबोल राजत सहज विहसत बाम।
मानों दामिनि दशोदिश की बसत एक ही धाम॥
निरख प्रिया तन की यह शोभा चिबुक शांवल चिंद।
मानो छविकी जाल में पर्यो अलिसुत फंद॥
अङ्ग-अङ्ग सो प्रेम बरखत सकल सुख की मूरि।
राधे जू के चरण की रज गदाधर सिर भूरि॥[1]

लाड़िली किस प्रकार गिरिधर को आनंद देती है देखिये—

लाड़िली गिरिधरन पिया पिय नैंननि आनन्द देति री।
अति अनुपम गुन रूप माधुरी बरबस सरबसु लेति री ॥ध्रु॥
वदन सदन सोभा को सोहै उपमा को कोउ नाहि री।
चन्द आनन्द लाज अर चितापरी कलंक मिसि छोह री॥
कच रचना में मांगा मोतिन की उपमा कहो विचारि री।
अपनेहि बल भनहु निसाकर करत राहु विदारि री॥
कनक दण्ड केसरि कोटि को लटकति लट भलि भांति री।
मानहु सुभग सुहाग भाग की विजै धुजा फहराति री॥
भौंह मोहनी यन्त्र लिख लिपि कवि काहू बन बखानि री।
जाके निरखत मन मोहन कर मुरली गिरत न जान री।
अंजन रञ्जित नैंन सलोने सोभा हरिमन लागी री।
स्याम रूप के पिवत पिवत नित सरस श्यामता लागी री॥
नासारुचिर खारी सोहै उपमा अन अब रेखि री।
लरत चकोर चंपल लोचन ढिग पावक कनका देखि री।
हसन लसन अधरण अरुणाइ अति छवि बढ़ी अपार री।
मनहुं रसाल मृदुल पल्लव पर बगरायो घन सार री॥
रचि अवतेस रसाल मञ्जरी फबी कपोल सुजात री।
मानहुं मैंन मूर बैठ्यो करि हरि मन मृग को घात री॥
कुटिला घुमी जराइ जग मगत मो पै जात न भाति री।
मनहु मार हथियार आपनें एक ठोर धरि राखेरी॥

१. वाणी—श्री गदाधरभट्ट जी, पृ० २७-२८

कंठ कपोत पोति पुंजनि मे मनि मनि आं रंग राते री।
मानहुँ उतरि धरनि सुत यमुना नीर अन्हाते री॥
कंटकी सिरी दुलरी वरग्रीवां अति सुख सोभा साररी।
नलिनी दलके जलज्यों झलकत गज मोतिन के हार री॥
चौंकि चमक कंचुकी सारी कारी राते रंग री।
अरुन किरनि रही छाइ उदधिते निकसत प्रात पतंग री॥
अंगद वलय मुद्रिका नख छवि सोभित भुजा सुढार री।
जनु आचूल मूलत फूली कनक लता की डार री॥
पीन उरोज कुंभ रोमावलि राजति ता अति सुंड री।
मानहु मदन मतुंग धस्यो है नाभि अमृत के कुंड री॥
उपमा एक ओर मन आवत बुधिबल करत विचार री।
मानहु सैल सिधुतें निकिसी नील यमुन जल धार री॥
गुरु नितंब किंकिनीं कनक की रुनझुन रावरी।
मानहु मिले करत कोलाहल कलविकनिके सावरी॥
सुनियति मनि मंजीर धीर धुनि उपमा न आवै हाथ री।
मन मोहन कों जनु गुनियत मोहन गाथरी।
अरुण चरण पंकज नख दीपति जावक चित्र विचित्र री॥
फूली सांझ मांझ मानो जे झलकत विमल नक्षत्र री॥
अद्भुत अखिल लोक की सोभा रोम-रोम रहि पूरि री।
गति विलास हिय हारिमानि गज डारत सिर पर धुरि री॥
करि साहस यह कहत गदाधर सहि कवि कुल उपहास री।
आपनें प्राननाथ मिलि स्वामिनि मोमन करहु निवास री॥[1]

प्रेम में पगी राधिका प्रभु के हृदय से लगकर उनके अङ्ग-अङ्ग को सुख देने वाली हैं।[2] कवि मानिनी राधा से वर्जना करता है कि वह श्याम से मान न करे। लाल गोपाल तेरा ध्यान ही नहीं धरते प्रगट तेरा नाम भी रहते हैं—

मानिनी कीजियै मानु नहिं स्याम सों।
सफल किन करहि निज दिव्य दामिनि प्रभा नीलनवजलद अभिराम सों॥
देखि उर आपने ज्यों बिम्ब जीत इन्दु नीलमनि कल धौत दाम सों।
मुख सखीजन जुगलजगमगत जोडजि होइ अति आरति काम सों॥

१. वाणी—श्री गदाधरभट्ट जी, पृ० २८, २९, ३०
२. प्रेम पागि उरलागि रही गदाधर प्रभु के पिय अग अंग सुखदैनी।
वाणी श्री गदाधरभट्ट जी पृ० ३१

लाल गोपाल मन ध्यान तेरो धरें रसन रट प्रगट तव नाव सों।
अनुख यह मोहि दक्षन विचल नाहु नेह नागरि प्रकृति वाम सों॥
कहत बड़ी बेर भई अर्ध जामिनि गई आइ रह्यो मोर युग याम सों।
अब धरनि धर पाइ वूले गदाधर जाइ मानि रुचि कुंज नव धाम सों॥[1]

संगीत रस कुशल नृत्य आवेश युक्त रास मंडल मध्य विहारिणी राधा का स्वरूप देखिये—

संगीत रस कुशल नृत्य आवेस वश
लसति राधा रास मंडल विहारिणी।
दिव्य गति चरण चारण चक्रवर्त्तिनी
कुवर श्यामल मनोहरण मन हारिणी॥१॥
लोचन विलास मृदुहास मन उल्लास
नन्द नन्दन मनसि मोद विस्तारिणी।
मृदुल पद विन्याज चलति वलयावली
किंकिणी मंजु मंजीर झनकारिणी॥२॥
रूप अनूपम कांति भांति जाति न वरनी
पीहरि आभ-रण षोडश सुश्रृङ्गारिणी।
मृदङ्ग वीना तारस्वर पंच संचार
चारुता चातुरी सार अनुसारिणी॥
उघट मुख सबदपीयूष वर्षित मनी
सीचि पीयं श्रवणतन पुलक कुल कारिणी॥३॥
कहि गदाधर जु गिरिराज धर्त्तं अधिक
विदित रस ग्रन्थ अद्भुत कला धारिणी॥४॥[2]

गदाधर भट्टजी ने राधा नन्दकिशोर के साथ नृत्य करने का वर्णन इस प्रकार किया है—

निर्त्तत राधानन्द किशोर
ताल मृदङ्ग सहचरी बजावत बिच बिच मोहन मुरली कलघोर॥
उरप तिरप पग धरत धरणि पर मंडल फिरत भुजन भुज जोर।
शोभा अमित विलोक गदाधर रीझ रीझ डारत तृण तोर॥[3]

---

१. वाणी–श्री गदाधरभट्ट जी, पृ० ३१
२. ,, ,, पृ० ३३, ३४
३. ,, ,, पृ० ३५

दूल्हा श्याम और दुलहिनि किशोरी की जोड़ी का वर्णन इस प्रकार है—

दुलह सुंदर श्याम मनोहर दुलहिनि नवल किशोरी जू।
मंगल रूप लोक लोचन कौं रचो विधाता जोरी जू।।
रास विलास ब्याह विधि नित्य प्रति थिर चरमन आनंदा जू।[1]

वृषभान की लाड़िली के होली खेलने का वर्णन इस प्रकार किया है—

रङ्ग हो हो हो होरी खेले लाड़िली वृषभान की।
गोरे गात समात न शोभा मोहनी स्याम सुजान की।।
अरगजा भरी फबी सारी अति कंचुकी परम सुहावनी।
वेणी सरस गुही मृगनयनी प्रीतम हित उपजावनी।।
वारों मृग खंजन अंजन युत नयन बने अनि यारे।
जिनकी तनक कटाक्ष भये वश्य गिरिधर रूप उजारे।।
विद्रुम अधर मधुर मृदु मुसकन बोलन हित रस भीना।
लोल कपोल अमोल अचक झलकत पुलकित अति झीनी।।
श्री मोहन जू के सुख के हित नखसिख भूषण कीनें।
कंचन मणि रत्नन सों खचित शोभा प्रति अगन दीनें।।[2]

गदाधरभट्ट जी ने श्यामा का श्याम के साथ हिंडोरना झूलने का सुन्दर वर्णन किया है। उन श्यामा के रसिक सदा आधीन हैं—

निज सुख पुंज वितान कुंज हिंडोरना झुलत स्यान सुजण्न।
संग स्यामा जू परम प्रवीन, जाकें सदां रसिक आधीन।।[3]

राधिका जी झूलती हुई गिरिधरणलाल के गुण गाती हैं—

राधे जू झुलत रमक रमक।
मणि कंचन को सुरंग हिंडोरो तामध्य दामिनि चमक चमक।।
गावत गुण गिरिधरण लाल के उठत दशन छवि दमक दमक।
बाढ्यो रंग गदाधर प्रभु जहां गयो है मदन सब तमक तमक।।[4]

---

१. वाणी—श्रीगदाधरभट्ट जी, पृ० ३५
२. ,, ,, पृ० ५१
३. ,, ,, पृ० ६१
४. ,, ,, पृ० ६२

सूरदास मदनमोहन

सूरदास मदनमोहन के १०५ पदों का एक संग्रह बाबा कृष्णदास कुसुम सरोवर ने राजस्थान प्रेस जयपुर से प्रकाशित किया है। श्री सूरदास मदनमोहन ने 'श्री जू की बधाई' इस प्रकार गाई हैं—

प्रगट भई सोभा त्रिभुवन की भानु गोप के आइ।
अद्भुत रूप देखि बृज बनिता रीझी लेत बलाइ ॥
नहिं कमला नहिं सची नहीं रति उपमाहू न समाइ।
जा हित प्रगट भये बृज भूषण धन्य पिता धनि माइ ॥
जुग जुग राज करो दोऊ जन इत तुव उत नंदराइ।
उनके मदनमोहन तेरे स्यामा श्री सूरदास बलि जाइ ॥[1]

उन्होंने वृषभानु सुता का वर्णन इस प्रकार किया है—

मैं देखी सुता वृषभान की।
जननी संग आई बृजरानी सोभा रूप निधान की ॥
नैन सुभाय ते भ्रकुटि टेढ़ी वेनी सरस कमान की।
नेक कटाक्ष हरत चितवनि निपट अजान की ॥
पग जेहरि कंचन रोचन सी तनक सी पोहोची पान की।
ग्वगवारी गले दोयलर मोती तनक तरवनी कानकी।
लै बैठी हँसि गोद जसोदा मर्म में ऐसी बान की।
श्री सूरदास मदनमोहन हित जोरी सहज मान की ॥[2]

उन्होंने मदन गोपाल और राधा नव दुलहिन का वर्णन इस प्रकार किया है—

दूलह मदन गोपाल राधा नव दुलही।
मानो तरु तमाल मिलि नऊ तन कनक वेलि उलही ॥
रूप भूप युवराज विराजत वंस किसोर वेक तुलही।
मदनमोहन प्रभु सूर सुजीवनिज जोय माँहि हूती सुलही ॥[3]

उन्होंने राधा और वल्लभ की एकता का वर्णन इस प्रकार किया है—

---

१. वाणी—सूरदास मदनमोहन पद ४, पृ० ३
२. ,, ,, पद ६, पृ० ३
३. ,, ,, पद २५, पृ० ६

माई री राधा वल्लभ, वल्लभ राधा ।
वे उनिमै उनिमै वे बसत ।।
घाम छाँह घन दामिनी कसौटी लीक ज्यों कसत ।
दृष्टि नैन स्वास बैन नैन सैन दोऊ लसत,
सूरदास मदनमोहन सनमुख ठाढ़े ही हसत ।[1]

सूरदास मदनमोहन ने कुंजों के बीच विराजती हुई राधा और श्याम की जोड़ी का वर्णन इस प्रकार किया है—

कुंजन मांझ विराजत मोहन राधिके सुंदर श्याम की जोरी ।
तैसे ये सुंदर स्याम अनुपम तैसी है सुन्दर राधे जु गोरी ।।
गोपी ग्वाल संग लीने मधुर मुरलिस्वर बाजत थोरि ।
सूरदास प्रभु मदनमोहन पिय चिरजीयो
नवलकिशोर नवलकिशोरी ।।[2]

उन्होंने राधा और कृष्ण की क्रीड़ा के भी बड़े सुन्दर चित्र चित्रित किए हैं—

अरूझ्यो कुंडल लट बेसर सो पीतपट बनमाल बीच आन
उरझे है दोऊ जन ।
नैनन सों नैन प्रानन सों प्रान उरझि रहे चटकीली छवि देखि
लटपटात स्यामघन ।
होड़ा होड़ी निरत करें, रीझ रीझ अंकभरें, ततथेई ततथेई
रटन मगन तन ।
श्री सूरदास मदनमोहन रास मण्डल में प्यारी को अंचल लै लै
पोंछत है श्रमकन ।।[3]

उन्होंने यमुना के किनारे विनोद का चित्र इस प्रकार चित्रित किया है—

नवल किसोर नवल नागरिया ।
अपनी भुजा स्याम भुज ऊपर स्याम भुजा अपने उर धरिया ।।
करत विनोद तरनि तनया तट, स्यामा स्याम उमगि रस भरिया ।
यों लपटाई रहे उर अंतर मरकत मणि कंचन ज्यों जरिया ।।

---

१. वाणी—सूरदास मदनमोहन पद २६, पृ० ६
२. ,, ,, पद ५६, पृ० १७
३. ,, ,, पद ३०, पृ० १०

उपमा को घन दामिनि नाहीं कंदरप कोटि कोटि वारने करिया।
श्री सूरदास मदनमोहन वलि जोरी नंदन दन वृषभान दुलरिया ॥[1]

कवि का कथन है कि राधा के सदृश राधा ही है—

जैयसो मोहि अपनपौ न लागत तैयसी तुम मोको भामति प्यारी।
तनसोहै सेत सारी फीकी लागै उजियारी तोसी तुही वृषभानु दुलारी ॥
तुमँहू न चाहत आपको एतो मन जेतौ हौं चाहौं यों कहत बिहारी।
श्रीसूरदास मदनमोहन राधे ये बातैं सुनि सुनि मुसकि निहारी ॥[2]

कवि का कथन है कि श्याम कुंजभवन में राधा के गुण गाते हैं, राधा का ध्यान धारण करते हैं और राधा के कारण ही उनका नाम राधारमण पड़ा है—

तू सुनि कान दै री मुरली तेरे गुन गावैं स्याम कुंजभवन।
सनमुख होइ करि ताहि को ओंकों भरैं सोतन परसि आवैं जो पवन ॥
तेरोई ध्यान धरत उर अंतर नैन मूंदि निकसत उर डरपत तेरोई
आगम सुनि श्रवनन।
श्री सूरदास मदनमोहन सों तू चलि मिलि तोहि तें पायो नाम
राधारमन ॥[3]

श्याम के निकट स्वर्ण और मणि के आभूषण पहने राधा इस प्रकार बैठी है—

स्याम निकट बैठी सनमुख है
स्यामा जू कंचन मनि आभूषण पहिरें।
यो प्रतिबिंबित सांवल तन में
जनु स्नान करत बैठी जमुना में गहिरें ॥
अंग अंग आभास तरङ्ग गौर
स्यामता सुन्दरता शोभा की लहरें।
श्री सूरदास मदनमोहन पिय हिय जिय माहि
रहि समुझाय मोपैं कहति न जाय मेरी दृष्टि न ठहरें ।[4]

श्यामा अपने रूप को देख प्रसन्न होती है और अपनी छवि को देख तन मन को प्रेम पर न्यौछावर कर पति के चरणों में पड़ती है—

१. वाणी—सूरदास मदन मोहन पद ३६, पृ० १२
२. ,, ,, पद ५६, पृ० १७
३. ,, ,, पद ६६, पृ० १८
४. ,, ,, पद ७४, पृ० २१

स्यामा जू अपने रूप देख देख
रीझि रीझ दर्पन दुरिन करत।
अपनी छवि जू निहारति तन मन की
वारत प्रेम विवस भई पति के पाइन परत।
कहूँ स्याम की सकुचि मानि जिय मह अनमानत
वासों प्रीति करत इहि डर डरत॥
श्री सूरदास मदनमोहन दुरि देखत
दृष्टि न इत उत टरत॥[1]

सूरदास मदनमोहन ने श्यामा और श्याम के झूलने का वर्णन इस प्रकार किया है—

झूलत हैं री स्यामा स्याम रच्यौ डोल मंडपनि कुंज में।
उपमा कही न जाई छवि की छवि अंग प्रति कोटिक काम॥
ललितादिक सखी सारंग नैनी गावति सारंग सुर विश्राम।
अलि समूह पिक कीर धीर मिलि मिलवत मुरली अभिराम॥
कंधबाहु धरे जू परस्पर आलस बस जागे निसि याम।
श्री सूरदास मदनमोहन पिय की उपमा नाहिन रति भाम॥[2]

उनकी राधा छबीली, नागरी, रूप की आगरी और मन विमोहित करने करने वाली है[3]—

वल्लभ रसिक

श्री गदाधरभट्ट जी के दो पुत्र श्री रसिकोत्तंस तथा वल्लभ रसिक थे। दोनों पिता से दीक्षित होकर भगवत सेवा परायण तथा रसिक समाज-सेवी हुए। श्री रसिकोत्तंस जी ने 'प्रेम-पत्तन' ग्रन्थ की रचना की और वल्लभ रसिक ने व्रजभाषा में अनेक पद लिखे। बाबा कृष्णदास ने इनकी वाणी का संग्रह प्रकाशित किया है।

वल्लभ रसिक की वाणी में राधा शब्द स्पष्ट रूप से तो दृष्टिगोचर नहीं होता परन्तु अन्य शब्द ऐसे प्रयुक्त हुए हैं जिनका अभिप्राय राधा से ही प्रतीत होता है। कवि ने राधा का बड़ा सजीव वर्णन किया है। राधा के शृङ्गारिक वर्णन पर रीतिकालीन कवियों की सी झलक दिखाई देती है। कवि का कथन है कि राधा के अंगों को इतराने की बान पड़ गई है—

---

१. वाणी—सूरदास मदन मोहन पद ७५, पृ० २१
२. ,,   ,,   पद ८५, पृ० २६
३. छबीली नागरी अहो रूप की आगरी मेरो मन मोहि लियो।
वाणी-सूरदास मदनमोहन पद १०३, पृ० ३७

नैननि में बैन देन लैन वस नैननि में
नैननि में हिलन मिलन सरसानि की।
भौंहनि में हँसनि लसनि पुनि भौंहनि में
मैन की वसनि सुं वसनि चित आंनि की।
जोवन के जोरनि में मोर की मरोरनि में
कहँन करोरनि में गति अलसानि की।
वल्लभ रसिक कों विकान होकीवान परी
प्यारी तेरे अंगनि कों वानि इतरान की ॥[१]

राधिका के अङ्गों का वर्णन करते हुए कवि का कथन है कि दोनों रसिकों को यही विदित नहीं रहता कि किधर दिवस है और किधर रात्रि है—

उरज उतंग अति भरित भरे से अंग
अधर सुरंग सों रँगी सी मति जाति हैं।
ऊँची गुही वैंणी सों तनेनी भौंह भाइ भरी
आइ भरी छवि हँसि लसि इतराति हैं।
वल्लभ रसिक दोऊ सनमुख सुख सनें
चकित थकित कित द्योस कित राति हैं।
नैननि सिहानि ललचानि मुसक्यानि
तरसानि सरसानि आनि आनि दरसाति है ॥[२]

अनेक रमणियों के मध्य का सौन्दर्य ही प्यारी के अंगों का सौन्दर्य है—

आई सुघराई ही सों गाई सुघराई ही
सों तान सुघराई हीं सों हरी सुघराई है।
मदन छकाई की छकाई चलि फेरि जु
छकाई पिय मति सुन फिरि उछकाई है।
वल्लभ रसिक की वनाय विधि ले वनाई
किही विधि ले वनाई यामें जु वनाई है।
निकाई निकाई येती तियनि की निकाईनि
मांझ तें निकाई यह प्यारी की निकाई है ॥[३]

श्री वल्लभ रसिक ने कृष्ण और राधा दोनों के रतिकेलि का वर्णन इस प्रकार किया है—

---

१. वाणी—श्री बल्लभ रसिक जी की कवित्त ५, पृ० ५१
२. ,, ,, ,, सवैया ७, पृ० ५१
३. ,, ,, ,, ,, १२, पृ० ५३

श्री माधुरी जी

श्री माधुरीजी के निम्नलिखित ग्रन्थ प्राप्त हैं—उत्कण्ठा माधुरी, वंशावट विलास माधुरी, केलि माधुरी, वृन्दावन विहार माधुरी, दानमाधुरी, मानमाधुरी, होरीमाधुरी, प्रिया जू की बधाई। वंशीवट विलास माधुरी तथा वृन्दावन विहार माधुरी का नामान्तर वंशीवट माधुरी व वृन्दावन माधुरी है। अनुमान किया जाता है कि इनके अतिरिक्त और भी इनके अनेक पद हैं।

उत्कंठा माधुरी में ३ कवित्त व २०३ दोहे हैं। वंशीवट माधुरी में ३६ कवित्त ५ सवैया १४ रोला ३२ चौपाई १ सोरठा व २२० दोहे हैं। वृन्दावन माधुरी में १२ कवित्त २ सवैया ३१ चौपाई ३ सोरठा और ४५ दोहा हैं। केलि माधुरी में ६ कवित्त, ८२ चौपाई, १ छन्द, १ सवैया, ११ सोरठा, १ छप्पय, १५ दोहा और ६ रोला हैं। दानमाधुरी में १७ कवित्त, ३ सोरठा और १६ दोहे हैं। मानमाधुरी में १६ कवित्त १५ सवैया, १६ सोरठा और ८ दोहे हैं। होरी माधुरी में ६ पद तथा प्रिया जू की बधाई सम्बन्धी २ पद हैं।

उत्कण्ठा माधुरी में असहनीय विरह वेदना, तीव्र अनुराग, उत्कण्ठामयी कामना की झलक दिखाई देती है। वह करुणरस से ओतप्रोत है। ऐसा प्रतीत होता है कि उत्कण्ठा माधुरी की रचना श्री रघुनाथ दास गोस्वामी द्वारा रचित विलाप कुसुमाञ्जली के आधार पर हुई है। वंशीवट विलास माधुरी में वृन्दावन तथा यमुनातट की शोभा का वर्णन करते हुए प्रिया प्रियतम के वंशीवट में विविध विलास रस वर्णित है। केलि माधुरी में प्रिया प्रियतम के दिव्य केलि का अलौकिक वर्णन है। दान माधुरी में श्रीकृष्णजी स्वयं दानी बनकर श्रीजी और ललितादिक सखियों से दान की याचना करते हुए हास परिहास करते हैं। मानमाधुरी में श्री राधिका अपने प्राणाधार प्रियतम श्रीकृष्ण के श्यामल अंग की कोटि दामिनी चमक में अपने अङ्ग का प्रतिबिम्ब देख अन्य नायिका भ्रम से मान करती हैं। बरसाना तथा नन्द गाँव के मन्दिर में रंगीली के समय होरी माधुरी के पद गाये जाते हैं। ब्रज में माधुरीजी की होली प्रसिद्ध है। ब्रज के प्राचीन भजनानन्दी महात्माओं के पास हस्तलिखित माधुरी वाणी देखने को मिल जाती है। बाबा कृष्णदास कुसुम सरोवर ने माधुरीदास जी की रचनाओं का संग्रह माधुरी वाणी के नाम से किया है। माधुरी वाणी का प्रत्येक पद श्री रूपादिक षट् गोस्वामियों द्वारा रचे श्लोकों के आधार पर आधारित है।

श्री माधुरीदास जी ने प्रिया जी की बधाई इस प्रकार गाई है—

आजु हिये आनन्द न समाई।
श्रीवृषभानुराय के मन्दिर राधा रसनिधि प्रगटी आई।।
मुदित भये तन तरु-वल्ली सब वृन्दावन कुसुमित बहुताई।
सारस हंस कोकिल कूजत नाचत मोर मधुर सुर गाई।।
जसुमति सुनत परम हरषित भई अपनौं सर्वस दीयो लुटाई।
बाजत गावत नंदी सुर ते चले नंद मन में मुसिकाई।।
मंगल सोंज लिये घर घर तें बहु विध मंगल कलस भराई।
मंगल दीप दूब दधि मंगल मंगल थार विचित्र बनाई।।
आनि जुरे वृषभानु पौरि में दौरि मिले सन्मुख सब जाई।
गोपी-गोप प्रेम अति आतुर रहत परसपर गर लपटाई।।
दुंदुभि झांझ मृदङ्ग झालरी आवज सेज मुरज सहनाई।
छिरकति हरदि दही जुवती मिलि रह्यौ कुलाहल सों ब्रज छाई।।
एक धाइ अकुलाइ विवश ह्वै लगीं जाइ कीरति जू के पांई।
यह मुख चन्द्र उदै जिन तें भयो धनि धनि धन्नि पिता धनि माई।।
एक रही मुख चाहि चकित ह्वै एक छिन ही छिन लेत बलाई।
बरषानें बरषत सुख दिन दिन निरखि माधुरी नैन सिराई।।[1]

तथा

जनम द्यौस वृषभान कुंवरि को सब घर बजी बधाई री।
ताल मृदङ्ग झांझि झालरि धुनि लागति परम सुहाई री।।
मङ्गल साज किये तन शोभित बानिक सरस बनाई री।
नाचति गावति सकल जुवति वृषभान भवन में आई री।।
कंचन थार चौक मुकतन के रच्यो विचित्र बनाई री।
कंचन कलस भरे दधि सौं सिर देत सबन कें नाई री।।
नर नारी कछु सुधि न परै मिल मुदित कंठ लपटाई री।
बरषाने रस विवस भयो सुख कहत कह्यौ नहीं जाई री।।
हीरा हेम रतन मणि माला दिये सबनि मन भाई री।
नंदरानी तन अति आनंदित भीतर भवन बुलाई री।।
कीरति रानी जसुमति दोऊ मिलत मनहि मुसिकाई री।
उत नंदलाल इतहि राधिका ए चिर जियो सदाई री।।
यह बानिक मन समझि माधुरी फूली अङ्ग न समाई री।।[2]

1. श्री माधुरी वाणी–श्री प्रिया जू की बधाई, पृ० ९३–९४
2. ,, ,, ,, पृ० ९४

माधुरीदास ने उत्कंठा माधुरी में राधा के स्वरूप का चित्रण इस प्रकार किया है—

अहो लड़ेती लाड़िली, अलखि लड़ी सुकुमारु।
मन हरनी तरुनी तनक दिखरावहु मुख चारु ॥
गुणनि अगाधा राधिका, श्रीराधा रस धाम।
सब सुख साधा पाइये, आधा जाको नाम ॥[1]

वंशीवट विलास माधुरी में एक आस्वादनीय विषय का वर्णन है। यमुना में नौका विहार करने के समय नाव पर श्री प्रिया जू के कोमल कर्णफूल पर मुग्ध होकर एक भ्रमर गुंजारता हुआ घूमने लगा, भयातुर स्वामिनी जी ने उसे सुकुमार भुज-लता द्वारा उड़ाने की चेष्टा की परन्तु वे असफल रहीं तब श्री लाल ने अपने हस्त-कमल से भौरे को उड़ाकर कहा—

सावधान हूजे प्रिये विकल होत केहि काज।
मधुसूदन तौ गृह गयौ लीने सङ्ग समाज ॥

इतनी सुनकर वे इस प्रकार उच्च स्वर में विलाप करने लगी कि क्या मेरे प्राणनाथ अन्तर्द्धान हो गये, हाय हाय! मैं अभागी हूँ। हे मधुसूदन! आप कहाँ चले गये।

वंशीवट माधुरी में प्रिय प्रिया के समान और प्रिया प्रिय के समान हैं। दोनों मिलकर एक स्वरूप हो गये हैं—

दोहा—उपमा दई अनेक सखि, लागी नहि कोऊ एक।
पिय प्यारी सों प्रिय प्रिया यही गहो जिय टेक ॥१४३॥
चौ०—जोलों मन उपमा को दीजै। तोलों रूप देखिवो कीजै ॥
श्यामा श्याम सेज सुख सोए। अङ्गन में सब अङ्ग समोए ॥
मुख सों मुख सुख सों लपटाने। नैननि में दोऊ नैन समाने ॥
उर सों उर भुज सों भुज जोरें। प्रेम बंध छूटक नहीं छोरें ॥
दोहा—सुरझाये सुरझै नहीं, उरझ रहे यह रूप।
अरस परसि एसे मिले, ह्वै भे एक सरूप ॥१४८॥[2]

केलि माधुरी में दोनों का एक मन, एक तन और एक चिह्न वर्णित है—

दोहा—एकै मन एकै सुतनु, एकै चिन्ह चिन्हार।
प्रिया पीय के पिय प्रिया, कछू न होत विचार ॥२१॥[3]

---

१. श्री माधुरी वाणी—उत्कंठा माधुरी दोहा ३५, ३६, पृ० ४
२. ,, वंशीवट माधुरी, पृ० ३३
३. ,, श्री केलिमाधुरी, पृ० ५१

श्यामा और श्याम का नवीन पुष्पों की सेज पर बैठे शृंगार देखिये—

श्यामा श्याम बैठे नव फूलनि की सेज पर,
अरस परस दोऊ करत सिंगार हैं।
फूलन सों बेनी गुही शीश फूल फूलनि के
फूल रहे फूल तन फूलन के हार हैं॥
फूलन के रसन दसन तन फूलन के
नख सिख फूले मानों फूलन के डार हैं।
फूलन को भार न सम्हारो जात काहू भाँति
प्यारी पिय फूल हूँते अति सुकुवार हैं॥२६०॥[1]

कवि ने श्यामा और श्याम के सेज पर शयन का वर्णन इस प्रकार किया है—

श्यामा श्याम सोए सेज सुमन सुगंधि पर
रंध्रिन लगी सहेली करत विचार हैं।
प्यारी जू कों प्यारो तन मन में सिंगार मानों
प्यारे जू के प्यारी उर मोतिन को हार हैं॥
तन सुख वसन लसत नाना मोतिन के
लसत परस्पर शोभा कौन पार है।
देखे न अघात छिन छिन ललचात अति
माधुरी के नैनन को ऐसो हिय हार हैं॥२६४॥[2]

केलि माधुरी में प्रिया प्रियतम के दिव्यकेलि का अलौकिक वर्णन है।[3] होली माधुरी में वृषभानु दुलारी के होली खेलने का सुन्दर वर्णन है। होली खेलने के अवसर पर ललिता प्रिया और प्रिय की गाँठ भी जोड़ देती है। यह गठबंधन एक प्रकार से क्रीड़ा में ही उनके विवाह का आभास देता है—

राग सारङ्ग

करतारी दै दै नाच ही बोलें सब हो होरी हो॥टेक॥
सङ्ग लिए बहु सहचरी वृषभानु दुलारी हो।
गावत आवत साज सों इतने गिरिधारी हो॥1॥
दोऊ प्रेम आनन्द में उमगे अति भारी हो।

1. श्री माधुरी वाणी—वंशीवट माधुरी, पृ० ४७
२. ,, ,, पृ० ४८
३. ,, श्री केलिमाधुरी पो० १, २, ३, पृ० ५०

माधुरीदास ने उत्कंठा माधुरी में राधा के स्वरूप का चित्रण इस प्रकार किया है—

अहो लड़ैती लाड़िली, अलबिल लड़ी सुकुमार।
मन हरनी तरुनी तनक दिखरावहु मुख चारु॥
गुणनि अगाधा राधिका, श्रीराधा रस धाम।
सब सुख साधा पाइये, आधा जाको नाम॥[1]

वंशीवट विलास माधुरी में एक आस्वादनीय विषय का वर्णन है। यमुना में नौका विहार करने के समय नाव पर श्री प्रिया जू के कोमल कर्णफूल पर मुग्ध होकर एक भ्रमर गुंजारता हुआ घूमने लगा, भयातुर स्वामिनी जी ने उसे सुकुमार भुज-लता द्वारा उड़ाने की चेष्टा की परन्तु वे असफल रहीं तब श्री लाल ने अपने हस्त-कमल से भौरे को उड़ाकर कहा—

सावधान हूजे प्रिये विकल होत केहि काज।
मधुसूदन तौ गृह गयौ लीने सङ्ग समाज॥

इतनी सुनकर वे इस प्रकार उच्च स्वर में विलाप करने लगी कि क्या मेरे प्राणनाथ अन्तर्द्धान हो गये, हाय हाय! मैं अभागी हूं। हे मधुसूदन! आप कहाँ चले गये।

वंशीवट माधुरी में प्रिय प्रिया के समान और प्रिया प्रिय के समान है। दोनों मिलकर एक स्वरूप हो गये हैं—

दोहा—उपमा दई अनेक सखि, लागी नहि कोऊ एक।
पिय प्यारी सों प्रिय प्रिया यही गहो जिय टेक॥१४३॥
चौ०—जौलों मन उपमा को दीजै। तौलों रूप देखिवो कीजै॥
स्यामा श्याम सेज सुख सोए। अङ्गन में सब अङ्ग समोए॥
मुख सों मुख सुख सों लपटाने। नैननि में दोऊ नैन समाने॥
उर सों उर भुज सों भुज जोरें। प्रेम बंध छूटक नहीं छोरें॥
दोहा—सुरझाये सुरझै नहीं, उरझ रहे यह रूप।
अरस परस एसे मिले, ह्वै भे एक सरूप॥१४८॥[2]

केलि माधुरी में दोनों का एक मन, एक तन और एक चिह्न वर्णित है—

दोहा—एकै मन एकै सुतनु, एकै चिन्ह चिन्हार।
प्रिया पीय के पिय प्रिया, कछू न होत विचार॥२१॥[3]

---

१. श्री माधुरी वाणी—उत्कंठा माधुरी दोहा ३५, ३६, पृ० ४
२.　　,,　　वंशीवट माधुरी, पृ० ३३
३.　　,,　　श्री केलिमाधुरी, पृ० ५१

श्यामा और श्याम का नवीन पुष्पों की सेज पर बैठे शृंगार देखिये—

श्यामा श्याम बैठे नव फूलनि की सेज पर,
अरस परस दोऊ करत सिंगार हैं।
फूलन सों बेनी गुही शीश फूल फूलनि के
फूल रहे फूल तन फूलन के हार हैं॥
फूलन के रसन वसन तन फूलन के
नख सिख फूले मानों फूलन के डार हैं।
फूलन को भार न सम्हारो जात काहू भांति
प्यारी पिय फूल हूंते अति सुकुवार हैं ॥२६०॥[1]

कवि ने श्यामा और श्याम के सेज पर शयन का वर्णन इस प्रकार किया है—

श्यामा श्याम सोए सेज सुमन सुगंधि पर
रंध्रिन लगी सहेली करत विचार हैं।
प्यारी जू कों प्यारी तन मन में सिंगार मानों
प्यारे जू के प्यारी उर मोतिन को हार हैं॥
तन मुख वसन लसत नाना मोतिन के
लसत परस्पर शोभा कौन पार है।
देखे न अघात छिन छिन ललचात अति
माधुरी के नैनन को ऐसो हिय हार हैं ॥२६४॥[2]

केलि माधुरी में प्रिया प्रियतम के दिव्यकेलि का अलौकिक वर्णन है।[3] होरी माधुरी में वृषभानु दुलारी के होरी खेलने का सुन्दर वर्णन है। होली खेलने के अवसर पर ललिता प्रिया और प्रिय की गांठ भी जोड़ देती है। यह गठबंधन एक प्रकार से क्रीड़ा में ही उनके विवाह का आभास देता है—

राग सारङ्ग

करतारी दै दै नाच ही बोलें सब हो होरी हो ॥टेक॥
सङ्ग लिए बहु सहचरी वृषभानु दुलारी हो।
गावत आवत साज सों इतते गिरिधारी हो ॥1॥
दोऊ प्रेम आनन्द में उमगे अति भारी हो।

---

1. श्री माधुरी वाणी—वंशीवट माधुरी, पृ० ४७
2. ,, ,, पृ० ४८
3. ,, श्री केलिमाधुरी चौ० १, २, ३, पृ० ५०

चितवनि भरि अनुराग की छुटैं पिचकारी हो ।
मृदङ्ग ताल ढफ बाजहीं उपजै गति न्यारी हो ।
झूमि कै चैतव गावही दै मीठी गारी हो ॥३॥
लाल गुलाल उड़ावही सौधैं सुखकारी हो ।
लाड़िली मुख लपटावही मेरो ललन बिहारी हो ॥४
हरैं हरैं आई दुरीं करि अबीर अंध्यारी हो ।
घेरि ले गई श्याम को भरि के अङ्कवारी हो ॥५॥
काहू गहि बेनी गुही काहू माँग सँवारी हो ।
काहू अंजन सों आंजी अँखिया अन्यारी हो ॥६॥
कोउ सौधें सौं सनी पहिरावत सारी हो ।
करते वंशी हरि लई हँसि कै सुकुवाँरी हो ॥७॥
तब ललिता मिलि के कछू इक बात विचारी हो ।
प्रिया बसन पिय को दये पिय के दये प्यारी हो ॥८॥
मृगमद केशरि घोरि के नखशिख ते डारी हो ।
हटि कै गेंठजोरो कियो हँसि मुसकी निहारी हो ॥९॥
याही रस निवहो सदा यह केलि तिहारी हो ।
निरखि माधुरी सहचरी छवि पै बलिहारी हो ॥१०॥[1]

हरिदासी सम्प्रदाय के कवियों का राधा का स्वरूप

टट्टी स्थान की आचार्य परम्परा

'निम्बार्क माधुरी' में टट्टी स्थान की आचार्य परम्परा इस प्रकार दी :

१ स्वामी श्री हरिदास जी सं० १५६२ से १६३२ तक ये निंबार्क सम्प्रदाय श्री आशुधीरदेव जी के शिष्य थे, इन्होंने करुआ, गूदरी इत्यादि प्रचलि तिलक परिवर्तन नहीं किया ।

२ श्री विट्ठलदेव जी सं० १६३२ से १६३२ तक ।

३. श्री विहारिनदेव जी सं० १६३२ से १६५८ तक । इन्होंने श्री विहारीजी स्व श्री हरिदासजी द्वारा प्रगट ठाकुर को जगन्नाथ नामक पंजाबी सारस्वत ब्राह्म को दे दिया जो इनका गृहस्थ शिष्य सेवकों में से था ।

४. श्री सरसदेव जी सं० १६५८ से १६८३ तक ।

५. श्री नरहरिदेव जी स० १६८३ से १७४१ तक प्रसिद्ध महाकवि सतसई का श्री बिहारीलाल जी इनके ही शिष्य थे ।

---

१. श्री माधुरी वाणी—वंशीवट माधुरी, पृ० ९२-९३

६. श्री रसिकदेव जी सं० १७४१ से १७५८ तक, इन्होंने रसिक विहारी जी का मंदिर बनवाया।
७. श्री ललित किसोरीदेव जी सं० १७५८ से १८२३ तक, इन्होंने टट्टी स्थान बनवाया।
८. श्री ललित मोहनीदेवजी सं० १८२३ से १८५८ तक, इन्होंने टट्टी स्थान में महन्ताई प्राप्त की और अर्द्ध नासिका से पूर्णनासिका पर्यंत तिलक बढ़ाया। श्री भगवत रसिक जी इन्हीं के शिष्य थे।
९. श्री चतुरदास जी सं० १८५८ से १८६६ तक।
१०. श्री ठाकुरदास जी सं० १८५६ से १८६८ तक, गुलजारन्तमन कार शीतलदासजी इन्हीं के शिष्य थे।
११. श्री राधिकादासजी सं० १८६८ से १८७८ तक।
१२. श्री सखीशरण देवजी १८७८ से १८६४ तक, इन्होंने सरस मंजावली और ललित-प्रकाश नामक ग्रन्थ निर्माण किया।
१३. श्री राधाप्रसाद देवजी सं० १८६४ से १६४४ तक।
१४. श्री भगवानदासजी सं० १६४४ तक।
१५. श्री रणछोरदास जी।
१६. श्री राधाचरणदासजी-वर्तमान।[1]

स्वामी हरिदास

स्वामी हरिदास माधुर्यभाव के अनन्य रसिकाचार्य थे। उन्होंने कृष्ण-गोपी-प्रेम भक्त के भावना लोक का वर्णन किया है। उसमें लौकिकता को कोई स्थान नहीं। इनका एक मात्र उद्देश्य परब्रह्म श्रीकृष्ण और व्रजगोपियों-विशेषकर श्री राधिकाजी को लेकर प्रेम तत्व की विस्तृत अभिव्यंजना करना है। भक्तों का मत है कि स्वयं ललिता सखी ही हरिदासजी के रूप में धराधाम पर दिव्य प्रेम मार्ग का उपदेश देने के लिये अवतरित हुईं। गायनाचार्य तानसेन और बैजू बावरा, ये दो स्वामीजी के शिष्य प्रसिद्ध हैं। श्री स्वामीजी का आराध्य विग्रह श्री बांकेविहारीजी कहे जाते हैं। इनके दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं जिनमें एक तो सिद्धांत के पद कहे जाते है जिनमें १८ पद हैं। दूसरा ग्रन्थ 'केलिमाल' है जिसमें ११० पद हैं और श्री राधा कृष्ण के नित्य विहार का वर्णन है।

हरिदासजी ने प्रिया-प्रीतम श्रीराधा कृष्ण की एक रूपता की स्थापना की। उनकी राधिका कृष्ण को देखना ही चाहती है और वे इसकी सुन्दर युक्ति इस प्रकार बताते हैं—

---

१. निम्बार्क माधुरी–विहारीशरण, पृ० ३४०, ३४१

श्यामा की छवि बड़ी अनुपम है। यदि करोड़ों कवि भी मिलकर श्यामा और श्याम की शोभा का वर्णन करें तो भी न कर सकेंगे—

आजु की वानक प्यारे तेरी प्यारी,
तुम्हारी वरनी न जाय छवि।
इनकी स्यामता तुम्हारी गोरता जैसे सित,
असित वेंनी रही ज्यों भुवंगम दवि।
इनको पीताम्बर तुम्हारी नील निचोल,
ज्यों शशि कुन्दन जेव रवि।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजविहारी की शोभा,
वरनो न जाय जो मिले रसिक कोटि कवि ॥[1]

राधा के मुख की शोभा का वर्णन भक्त, गायक कवि ने इस प्रकार किया है—

प्यारी तेरो वदन अमृत की पङ्क तामें वीँधे नैन द्वै।
चित चल्यौ काढ़न कों विकन्त सन्धि सम्पुट रह्यौ भ्वै ॥
वहोत उपाइ आहिरी प्यारी पै न करत स्वै।
श्री हरिदास के स्वामी श्याम कुन्जविहारी एसें हीं रहो ह्वै ॥[2]

राधा और कृष्ण की ऐसी विचित्र जोड़ी न कहीं देखी न कहीं सुनी है।[3] जैसी राधा है वैसी ही उनकी जोड़ी है। राधिका के मुख को देखकर चन्द्र भी लज्जित होता है।[4] श्याम कृष्ण और गोरी राधा की जोड़ी ऐसी है जैसे घन में दामिनी चमक रही हो। उनके अङ्ग-अङ्ग में उजराई, गुघराई और सौन्दर्य भरा हुआ है—

---

१. केलिमाल—स्वामी हरिदास पद २६, पृ० १३
२. ,, ,, पद ७, पृ० ७
३. ऐसी तो विचित्र जोरी वनी।
ऐसी कहूं देखी सुनी न भनी ॥
केलिमाल—स्वामी हरिदास पद ३१, पृ० १४
४. जैसी ये तैसो मिली जोरी, प्रिया जू को मुख देखें चन्द्र लजात।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा, को नृत्य देखत काहि न भावत ॥
श्री केलिमाल, स्वामी हरिदास पद १२, पृ० ८

माई री सहज जोरी प्रगट भई रंग की गौर श्याम घन दामिनि जैसें।
प्रथम हूं हुती अवहू आगे हूं रहि हैं न टरि है तैसे ॥
अङ्ग-अङ्ग की उजराई सुघराई, चतुराई सुन्दरता ऐसें।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा, कुञ्जविहारी समवैस वैसे ॥[1]

राधा और कृष्ण की उठने के छवि विचित्र है। ऐसा प्रतीत होता है मानों दिवस और रात्रि एक स्थान से विलग न हुए हों। अस्त व्यस्त बाल लड़ते हुए भौरों के समूह के सादृश्य हैं अथवा कमलों के पत्रों पर खंजन की विचित्र शोभा है। श्यामा और कुंजविहारी श्याम पर करोड़ों कामदेवों और ब्रह्मांडों को न्योछावर किया जा सकता है।[2] हरिदास ने राधिका और श्याम को दुलहिन और दूल्हा के रूप में चित्रित करते हुए उनके झूलने के भी चित्र प्रस्तुत किये हैं।[3] एक अन्य स्थान पर राधिका को नवीन दुलारी और कृष्ण को नागर बताया है।[4] राधा का फाग खेलने का भी वर्णन मिलता है।[5] राधा की बाट श्री विहारीलाल जोहते हैं फिर भी राधा की समाधि नहीं छूटती और उन्हें लेशमात्र भी नहीं देखना

---

१. श्री केलिमाल—स्वामी हरिदास पद १, पृ० ६

२. प्रीया पीय के उठवे की छवि वरनी न जाइ सवतें न्यारे।
मानों द्यौस रैन एक ठौरतें ये न भये न भये न्यारे ॥
वार लटपटे मानों भँवर यूथ लरत,
परस्पर कमल दलन पर खंजरीट सोभा न्यारे।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजविहारी पर कोट,
कोटि अनंग कोटि ब्रह्मांड वारकीये न्यारे ॥
श्री केलिमाल—स्वामी हरिदास जी पद ८६, पृ० २६

३. डोल झूलत दुलहिनी दुलहु।
उड़त अवीर कुंमकुमा छिरकत खेल परस्पर मूलहु।
श्री केलिमाल—स्वामी हरिदासजी पद ४८, पृ० १६

४. झूलत डोल श्री कुञ्जविहारी,
दूसरी ओर रसिक राधावर नागर नवल दुलारी।
श्री केलिमाल—स्वामी हरिदास जी पद १०८, पृ० ३६

राधा रसिक कुञ्जविहारी खेलत फाग।
श्री केलिमाल—स्वामी हरिदास जी पद ११५, पृ० ३५

चाहती।[1] श्रीकृष्ण उनके प्रेम में बँधे हैं। ज्यों-ज्यों उन्हें विलम्ब होता है उनकी व्यथा बढ़ती जाती है। वे राधा से मान मोचन के लिए कहते हैं—

राधे दुलारी मान तजि।[2]
प्रान पायो जात हैरी मेरो री सजि।
मेरे माथे अपनो हाथ धरि अभयदान दै बजि॥
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुञ्जविहारी कहत,
प्यारी बलि बलि रंग रचि सौं सजि॥[3]

विट्ठल विपुलदेवजी

विट्ठल विपुलदेवजी द्वारा रचित कुल चालीस पद ही प्राप्त हैं। इन पदों के द्वारा उन्होंने स्वसंप्रदायान्तर्गत परम्परागत रस सिद्धांत एवं उपास्यतत्व की परिपुष्टि की। इन पदों में स्वामी हरिदास के केलिमाल का सार निहित है। इनमें यमक और अनुप्रास का सुन्दर प्रयोग तथा राधाकृष्ण का नित्य विहार सम्बन्धी वर्णन सुन्दर बन पड़ा है। इनके पदों में झूला, होड़ और परस्पर की नोंक-झोंक का अति ललित वर्णन है। श्री किशोरशरणजी बिहारीजी का बगीचा वृन्दावन के पास हरिदासी परम्परा के सन्त कवियों का एक हस्तलिखित संग्रह देखने का अवसर लेखक को मिला है उनकी राधिका विपुल प्रेम से पूर्ण है इसलिये विट्ठल विपुलदेवजी उसका वर्णन करने में असमर्थ है ?

राधिका के नेत्र अति विचित्र हैं[1]—

प्यारी तेरे नैननि पर त्रिन टूटत।
मानों कुंद कली पर भोंरा हित अमृत रस घूँघट ॥
कहा री कहौं इन वांन विसेषे इन लागत उत फूटत।
श्री वीठल विपुल विनोद विहारिनि पिय को सर्वसु लूटत ॥[2]

सहेलियों के साथ श्यामा और श्याम झूला झूल रहे हैं। कभी प्रियतम राधा को झुलाते हैं कभी प्रिया कृष्ण को झुलाती हैं।[3]

राधा मोहन के साथ क्रीड़ा करती है। कुंजविहारी उसके रस के वश में है। राधा दुलहिन और कृष्ण दूल्हा हैं। सघन लता गृह मण्डप है। कोयल और भौंरे गान कर रहे हैं। वहाँ पर भांवर पड़ेंगी इसलिये मेघ मृदङ्ग बजा रहे हैं।[4] राधा को भामिनी कहकर कवि ने लाल के साथ सुख सेज पर लिटाकर सुरत रंग में मग्न उसके अङ्गों का वर्णन इस प्रकार किया है—

---

१. राग सारङ्ग
प्यारी तेरे नैना री अति वांके।
ललित त्रिभङ्ग विहारी नागर तें अपने करि आंके।
कहि धों कुवरि किसोरी कोक गुन सिषये इनहि कहाँ के।
श्री वीठल विपुल विनोद विहारी पिय प्राननि में ढांके ॥
विट्ठलविपुलदेव की बानी—हस्तलिखित ग्रन्थ पद १०, पृ० २३

२. " " पद ११, पृ० २३

३. राग सारङ्ग
डोल झूलें स्यामा स्याम सहेली।
नव निकुंज नव रंग पिया संग विहरत गर्व गहेली ॥
कवहूँक प्रीतम रमकि झुलावत कवहूँ प्रिया नवेली।
श्री वीठल विपुल पुलक ललितादिक देषत आनंद केली ॥
विट्ठल विपुलदेव की बानी—हस्तलिखित ग्रन्थ पद १, पृ० २२

४. राग कान्हरो
मिलि येलि मोहन सों करि मन भायो।
कुंजविहारीलाल रस बस विलसत मेरे तन मन फूल अपनों करि पायो ॥
तुम दिन दुलहिनि ए दिन दूलहु सघन लता ग्रह मंडप छायो।
कोकिल मधुपगन परैंगी भांवरि तहाँ वीठल विपुल मेघ मृदङ्ग बजायो ॥
विट्ठल विपुलदेव की बानी—हस्तलिखित ग्रन्थ, पद २, पृ० २३

राग कान्हरो

रसिक लाल के अङ्ग सङ्ग सुख सेज पौढ़ी भामिनी ।
सुरत रंग वर चपल अङ्ग-अङ्ग लज्जित नव घन दामिनी ।।
सुंदरता की रासि किशोरी नहि उपमा कों कामिनी ।
श्री विठल विपुल विनोद विहारी सों इहि रस विलसत जामिनी ।[१]

रात्रि में जगी कामकेलि रस में पगी राधिका का सौन्दर्य वर्णन देखिये—

राग विलावल

प्रिया स्यांम संग जागी है ।
सोभित कनक कपोल ओप पर दसन छाप छवि लागी है ।।
अधरनि रग छूटी अलक वलि सुरत रंग अनुरागी है ।
श्री वीठल विपुल कुंज की क्रीड़ा कामकेलि रस पागी है ।।[२]

राधिका ने लाल को विमोहित कर लिया है ।[3] लाल उसके ही आधीन हैं । यदि राधिका जल हैं तो वे मीन—

राग सारङ्ग

लालन तेरेई आधीन ।
सुनि री सखी हौं सांचि कहति हौं तू जल ये मीन ।
तेरे रस वस श्यामसुंदर वर जाचत ह्वै ज्यों दीन ।
श्री वीठल विपुल विनोद विहारी होत मनावत लीन ।।[४]

यही नहीं लाल उनके गुण गान भी करते हैं । कवि का कथन है कि हे राधिका ! यदि तुम्हें विश्वास न हो स्वयमेव अपने श्रवणों से सुन आओ ।[५] यही नहीं यहां श्यामा का राज्य है और व्रज के सिरताज उनके आधीन हैं—

---

१. विट्ठल विपुलदेव की वानी—हस्तलिखित ग्रन्थ पद ६, पृ० २४
२. ,, ,, पद २, पृ० २०-२१
३. तै मोह्यौ प्यारी मेरौ लाल ।
जिहि गुण सबंस चोर लियो नागरि ते गुण अब प्रतिपाल ।
विट्ठल विपुलदेव की वानी—हस्तलिखित ग्रन्थ पद १६, पृ० ५
४. ,, ,, पद १८, पृ० १६
५. लाल करत तेरे गुण गानैं ।
जो न पत्याहु सपन नहि मानत चलि सुनि अपने कानैं ।।
विट्ठल विपुलदेव की वानी—हस्तलिखित ग्रन्थ, पद १६, पृ०

राग मलार

हमारे माई स्यामा जू को राज।
जाके आधीन सदाई साँवरो या व्रज को सिरताज॥
यह जोरी अविचल वृन्दावन नाहि आन सो काज।
श्री बीठल विपुल विहारिनि के बल बिन जलधर संग गाज॥[1]

स्वामी विहारिनदास

स्वामी विहारिनदास ने लगभग सात सौ दोहों और तीन सौ पदों की रचना की। आपने भक्ति, ज्ञान, नीति, उपदेश, वैराग्य, आचार्य निष्ठा, शृङ्गार आदि विभिन्न विषयों पर लिखा है। आपकी रचनाओं में निर्भीकता, प्रत्यक्षानुभूति, तन्मयता एवं लालित्य है।

विहारिनदास ने अपनी उपासना के सम्बन्ध में स्पष्ट लिखा है, 'है हम हूँ रस रीति उपासी।'[2] इनके किशोर 'अजन्मा' हैं, जो एक प्राण दो तन में विहार करते हैं—

मेरे नित्य किसोर अजन्मा,
बिहरत एक प्रांन द्वै तन्ना॥
कुंज कुटी क्रीडत पिन-पिन मां।
संतत बास बसत बन घन मां।[3]

सुकुमार स्यामा और स्याम के अलङ्कार भार और अनुपम शोभा के वर्णन में पद लालित्य निखर पड़ा है—

स्यामा स्याम सुकुँवार अङ्ग-अङ्ग अलंकार
सब ही को सोभा सब सोभा वारि डारियै।
जो न पहिरयौ सुहाइ ताहि पहिरै बलाइ
पहिरि जु बहुरि उतारि ग्रस कारियै॥
इनको भजन मन रंजन सज्जन मिलैं अंजन
भंजन सखी सोऊ न सँभारियै।
श्री विहारिनिदासि यौं कहति सुघ सार
विहार में सिंगार भार काहे कों सिंगारियै॥[4]

---

१. विट्ठल विपुलदेव की बानी—हस्तलिखित ग्रन्थ, पद २५, पृ० ७
२. हस्तलिखित वाणी संग्रह—किशोरवरशरण का संग्रहालय विहारीजी का बगीचा, वृन्दावन, पद ८३, पृ० ८०
३. " " " पद ४४, पृ० ३३
४. " " " पद २७, पृ० ८६

उनकी राधिका की कोई समता नहीं कर सकता। किशोरी और किशोर एक वयस के हैं और अगाध रस सिंधु में परिप्लावित हैं—

राग नट

को सरि करै हमारी राधा।
जदपि नाम महातम सेवत और वेस या रस में बाधा ॥
अङ्ग सङ्ग नवल किसोर किसोरी एक वैस रस सिंधु अगाधा।
जागत अनुरागत निसि वासर लगत न नैन निमेष न आधा ॥
नित्य विहार अधार हमारे एक प्रेम निज नाम (नेम) आराधा।
श्री विहारीदास विपुल बल सब अभिलाष मिली सुष साधा ॥[१]

राधिका की छबि का वर्णन नहीं हो सकता उसके समान वही सुशोभित हो रही है—

गोरैं तन तनसुख की सारी सूही सिर अतिही सोहति मन मोहत री।
अङ्ग अङ्ग में झलक, लाल के मन ललक, नैंकु न लागै पलक,
निरखि निरखि मुख तामैं स्यांम कंचुकी चुहचुही ॥
आए कुंज में रहसि रस ही रस परसि पूजी मन आस—
अरु वासना जिय जुही।
श्रीविहारिनि दासि वलि वलि या वांनिक पर और न सुहाइ।
बहु-भांति बरनत कवि यह छवि फबत तोसी तुही ॥[२]

राधिका सर्वोपरि हैं, प्रीतम के प्राणों में समाई हुई हैं और उसकी अद्भुत छवि का तो वर्णन ही नहीं हो सकता—

धनि सुहाग अनुराग तेरौ तू सर्वोपरि राधे जू रानी।
नख सिख अङ्ग अङ्ग बांनी प्रीतम प्रान समानी
रसिक किसोर सुरति सुख दानी ॥
को जानै बरनैं बपुरा कवि अद्भुत छवि न जात बखानी।
श्रीविहारीदास पिय सौं रति मोनी मैं जानी सयानी
तोहि सब निसि सुख सिरानी ॥[३]

१. हस्तलिखित वाणी संग्रह—विशेश्वरशरण का संग्रहालय विहारीजी का बगीचा
वृन्दावन पद ३८, पृ० १२३
२. „ „ „ पद १, पृ० १४६
३. „ „ „ पद ६, पृ० १३१

राधा और कृष्ण रूप निधि हैं। उनकी समानता अन्य किसी से नहीं दी जा सकती उनके समान तो वे ही हैं। उनके ऊपर विहारिनदासजी करोड़ों कामदेवों को उनके सुख पर करोड़ों ब्रह्मांडों के सुख को और उनकी छवि पर करोड़ों चन्द्रमाओं को न्यौछावर कर देते हैं।[1] रंगीले लाल के साथ रंग रंगीली राधिका सुशोभित है। विहारी विपिन में राधिका के ही रस के वश में होकर बसते हैं। दोनों एक दूसरे के शृंगार हैं—

राग मलार

तू राग रंग रंगीली रंगीले लालन सङ्ग सोहति सुहाग री।
तेरे रस विवस बसत विपिन विहारी तू ही—
घन प्रान प्यारी तौसौं प्रेम परनि परी ॥
तू इनकौ सिगार ए तिहारौ सिगार प्यारी—
तैसीयै तू उमंगि अंग अंग ढरी।
श्री विहारिनदासि हरिदासि दुलरावैं दिन देषि देषि—
जीवति तुव मुष कुंजररी ॥[2]

कृष्ण राधिका के बिना और राधिका कृष्ण के बिना रह नहीं सकती, इसीलिये विहारिनदास राधिका को कृष्ण से मान करने के लिए वर्जित करते हैं।[3] विहारिनदासजी की कामना है कि—

---

१. सघन मगन वन सुष के सदन कुंज,
घेलत चतुर राधे चतुर सुजान सौं।
गुन रूप निधि दोऊ नागर इनसे ऐऊ पटतर
देवे को न वनें काहू आन सौं॥
वारौं कोटि अनङ्ग ब्रह्मांड कोटि कोटि सुष
और वारौं कोटि छवि ससि सतभान सौं॥
जै श्री विहारिनदासि रास गावत प्रेम विलास
पावत सुष निवास रागिनी रंगान सौं॥
हस्तलिखित वाणी संग्रह—विशेश्वरशरण का संग्रहालय विहारीजी का बगीचा, वृन्दावन, पद २३, पृ० ८४

२. ,, ,, ,, पद ७, पृ० १४०

३. सुनि नव नागरी जू पिय सौं तू काहे कौ मान बढ़ावति।
रहि न सकत तुम बिनु तुम इन बिनु देषं दुष पावत॥
हस्तलिखित वाणी संग्रह—विशेश्वरशरण का संग्रहालय विहारीजी का बगीचा, वृन्दावन, पद ३, पृ० २४७

दूलहु दुलहिनि दिन दुलराऊँ ।
कुंमकुंम मुष मांडो मॅंडवा-तर नवल निकुंज बसाऊँ ।
विविध वरन गुहि सुरंग से हरे रसिकनि सिरसु बधाऊँ ।
कोंवल पीठि दीठि करि ईठनि दीठि मिलै बैठाऊँ ।।
पानि परसि हँसि वचन निरुचि अंचल चंचलहि गहाऊँ ।
परम नरम रस-रीति प्रिया जू की प्रीति निरंतर गाऊँ ।।
उत्कंठित जाँचत जुवतिन हित केलि वेलि वरपाऊँ ।
श्री विहारीदास हरिदासी के संग देषि दुहुँनि सच पाऊँ ।।[1]

कृष्ण और राधा की जोड़ी बड़ी अद्भुत बनी है—

राग केदारो

जोरी अद्भुत आज बनी ।
वारों कोटि काम नख-छवि पर उज्ज्वल नील मनी ।।
उपमा देत सकुच निर-उपमित घन-दामिनि-लजनी ।
करत हास परिहास प्रेम जुत सरस विलास सनी ।।
कहा कहौं लावन्य रूप गुन सोभा सहज घनी ।
'विहारिनिदासि' दुलरावत श्री हरिदास कृपा बरनी ।।[2]

राधा और कृष्ण दोनों एक साथ विहार करते हैं तथा दोनों एक क्षण भी पृथक् नहीं रह सकते। कवि ने दोनों का दम्पति चित्रण इस प्रकार किया है—

विहरत दोऊ अति रंग भारे ।
अंसनि पर भुज दियें विलोकत वदन ज्योति रति होत परस्पर-
निरखि कोटि मदन मद हारे ।।
अति अनुराग सुहाग भए बस रहि न सकत निमिष न दोऊ न्यारे ।
'विहारिनदासि' दम्पति गमत मन्दिर निकुंजनित सुंदर-
सुघर सुकुमारे ।।[3]

...लिखित वाणी संग्रह–विशेश्वरशरण का संग्रहालय विहारीजी का बगीचा,
वृन्दावन पद १५, पृ० १५३

...णी माधुरी—ब्रह्मचारी विहारीशरण, पृ० २९३

" " "

नागरीदास

नागरीदास अनन्य रसिक थे एवं नित्य केलि उपासना में दृढ़ निष्ठावान थे। आपका साहित्य बड़ा मधुर एवं सरस है। आपके आदर्श चरित्र की प्रशंसा में अनेक छन्द मिलते हैं। इनके कुछ पदों की हस्तलिखित प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित है। मैंने श्री विशेश्वरशरणजी विहारीजी का बगीचा वृन्दावन के पास एक हस्तलिखित वाणी संग्रह देखा है जिसमें इनके पद भी संग्रहीत हैं।

नागरीदासजी ने रस-रीति से प्रेम बढ़ने और कुंज-केलि की नव वेल बढ़ते रहने के सम्बन्ध में लिखा है—

कुंज की केलि नववेलि बाढ़त रहै प्रेम को नेम अनुराग-
मन छायो है।
सुखद रस रीति सों प्रीति वाढ़ी सुदृढ़ सांच सों सांच-
अनुसंग मन भायो है॥
सुकुंवारी सहज जो है स्याम को मन मोहै अंग सों-
अंग मिलि रंग बरषायो है।
प्यारी पिय कौ विहँसि परस्पर कौ रहसि जै-
श्री बरु विहारिनिदासि हरषि जसु गायो है॥[1]

राधिका नागरी है और समस्त गुणों का भंडार है। उसने नागरीदासजी का मन मोह लिया है। वह इनकी तन, मन, धन और जीवन प्राण है—

ए नव नागरी सब गुन आगरी मेरो मन मोहि लियो।
रूप रंग रुचि माधुरी निरखि छके छवि नैन॥
बचन रचन सुर सुनत श्रवन रसन विसरे वैन॥
मुकलित पुहुप पराग अंग नासिका मत्त सुवास।
नव जोवन उर मंजरी रस छाके मधुप मकरंद हुलास॥
मेरे तू तनु मनु धनु लाड़िली तू मम जीवन प्रान।
श्री नागरिदास कहै कुंजविहारिनि नेह निदान॥[2]

वह मोहन की मनमोहनी उनके तन-मन में बसी हुई उनकी जीवनी, प्राण एवं सर्वस्व है—

---

१. हस्तलिखित वाणी संग्रह—श्री विशेश्वरशरणजी विहारीजी का बगीचा, वृन्दावन सवैया ३४, पृ० १८५

२. ” ” ” पद १, पृ० २०८

प्यारी सहज मन हरि लेत।
तू मन मोंहनी मोहन हेतु॥
तुम अति प्रेम प्रवीन हो सुघर सिरोमनि जान।
मन क्रम वचन विलासनी मेरे तुम बिनु गति नहीं आन॥
तू तन तू मन में बसी तू मम जीवनि प्रान।
तू सरवसु धन माननी दे मोहि मान रति दान॥[1]

नागरी श्यामा का शृङ्गारिक रूप देखिए—

स्यामा नागरी हो प्रवीन।
सकल-गुन-निधान राजत नागरि नेह-नवीन॥
नख सिख छवि रूप की रासि सोभित मोतिन मंग।
अलक झलक देखत छवि मोहे लाल अनंग॥
कबरी कुसुम ग्रथित कच तिलक बिंदुली भाल।
वंक भृकुटि मोहन मन चपल नैन विसाल॥
अति दुति ताटंकनि छबि भ्राजत लाल कपोल।
अधर दसन मुसक्यन-छबि मधुरे-मधुरे बोल॥
सुभग नासा सोभित अति बेसरि भलि लाल।
मुक्ता बहु भांतिन लसे चिबुक बिंदु रसाल॥
कंठ पदिक छूटी लरैं मिहि जङ्गाली पोत।
हेम जटित चौकी छबि जगमगै अति जोति॥
कुच जुग स्याम कंचुकी यों राजत मोतिन हार।
उर अम्बर उडुगन मनो कीनो है उदगार।
भुज मृनाल जुगल वलय झाबिन फौंदा सुढार।
पहुप सुरंग फूलैं मनों मदन-विटप की डार॥
त्रिबली-नाभि कटि-नितम्ब किंकिन सुरतार।
कदली-जंघ जेहरि छुभी छवि नूपुर झनकार॥
जुगल-कमल अरुन चरन राजैं बहु भांति।
नग-मनि-गन देखत छवि मोहन मन सांति॥
पचरङ्ग ढिग अरुन सारी लहँगा पीत दुकूल।
गोरतन मोरे मन देखत जोहँ लाल फूल॥

१. हस्तलिखित वाणी संग्रह—श्री किशोरशरणजी, बिहारीजी का बगीचा, वृन्दावन, पद १, २, पृ० २१०

निरखत छबि अंग अंग मोहे स्याम प्रवीन।
चक चौंधी लागी नैनन लाल भए अधीन॥
कुंज-कुंज डोलनि वहु लीने सखी संग।
मुदित मोर नृत्यन देखि दामिनी घन रंग॥
दम्पति रति सोहत अति विलसत सुख सार।
ललितादिक देखत दिनहिं सर्वस प्रान अवार॥
जय श्रीवरविहरिनिदासि कृपा सेज्ज सुखरासि।
छिन-छिन प्रति वलि-वलि नवल नागरीदासि॥[1]

वह लाड़िली राधिका सुख की राशि, अनूप रूप लिये हुए, मनमोहिनी और सहज छबीली है। उसके अङ्गों में प्रेम सुख छाया हुआ है, मन में प्रसन्नता है और वह श्याम के साथ सुशोभित है।[2]

नागरीदासजी ने कुंवर और किशोरी राधिका की दम्पति छवि को निरखा है और डोल पर श्याम और गोरी प्रिया के झूलने और होली खेलने का सुन्दर चित्रण इस प्रकार किया है—

झूलत डोल नवल स्याम प्रिया इत गोरी।
नव निकुंज नव रंग महल अति विचित्र बनी यह जोरी॥
भृकुटी कटाच्छि निहारत नैंननि बैंन वदत चित चोरी।
गावत तान तरंग अनंगनि रीझि कहत हो हो होरी॥
डांडी छाडि पेल करत परिरम्भन चुंवन देत निहोरी।
कच कुच कर कंचुकी रस परसत विहरत कुंवरी किसोरी॥
नव सहचरी अति अनुराग उडावत बूका वंदन ऐरी।
निरखि नागरीदासि दंपति छवि विपुल प्रेम मई भोरी॥[3]

सौरभ-सुख सेज पर बैठी हुई राधिका का शृङ्गार वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है—

१. निम्बार्क माधुरी—विहारीशरण, पद ५०, पृ० २७६
२. विहारिनि लाड़िली सुख रासि।
रूप-अनूप महा-मनमोहनि सहज छबीली हासि।
अंग सु प्रेम सुख रंग स्याम संग विलसत मनहि हुलासि।
यह रस मत्त मगन अनुदिन वलि जाहि नागरीदास॥
निम्बार्क माधुरी, पद ४०, पृ० २७७
३ हस्तलिखित वाणी संग्रह— विशेश्वरशरणजी, पद ८, पृ० १६३

छबीली नागरी हो, सारी सुवन सीस फूल राजै मोतिन संग सुरंग ।
कवरी कुसुम करनफूल झलमलै अङ्ग अङ्ग ॥१॥
आननि अलकावली छबि वेंदी भृकुटी भाल ।
अरुन अधर दसननि दुति लोचन लोल विसाल ॥२॥
नासा मनि चिवुक चारु कण्ठ जंगाली पोति ।
कुच कमल कंचुकी चित्र द्वै लर मोतिन जोति ॥३॥
वाहु वलया लसै लहंगा कटि नूपुर रव रसाल ।
लटकि चलै पग प्रेम प्रिया मोहे मत्त मराल ॥४॥[1]

नागरीदास ने वन-वन के नव निकुंज में नवलदास, नवल सुख सेज नवल-कामिनी कंत के नवल विहार, नवल प्रीति की रसरीति का वर्णन इस प्रकार किया है—

नव वन नव निकुंज सदन सुप नवल परस्पर हासि ।
नवल प्रिया पिउ नवल प्रेम वलि नवल नागरी दासि ॥२॥
नवल सेज सुप लीजै नवल नेह नव ष्याल ।
नवल केलि फूले करत हरत मन नवल लाडिली लाल ॥३॥
नवल येक रसवैस नवल नेह सपी नवल कामिनी कंत ।
नवल विहार विलोकि नवल सपी नव आनन्दहि न अंत ॥४॥

× × ×

नवल प्रेम को नेम नवल नित नवल सहज आनंदु ।
नवल प्रीति रस रीति नवल दोऊ दिन दूलहु मकरंदु ॥६॥
नवल कमल मुप नैन नवल अलि पियत नवल मकरंदु ।
नवल लाडिली लाल नवल सुप (नव) रति आनन्द कंदु ॥११॥
नवल सेज सुप सुल सहचरी नव निकुंज कल छाह ।
नवल प्रेम प्रिया पोपि नवल दोऊ लै रापे उर मांह ॥१६॥[2]

अलबेली नव रंग छबीली के अङ्ग स्नान के साथ सुरत-केलि के कारण शिथिल हो जाते हैं—

---

1. हस्तलिखित वाणी संग्रह—किशोरवरशरण जी पद ८, पृ० १६३
2. " " पृ० १८८ व १८६

अलक लड़ी अलबेली नव रंग छबीली ।
सुरत रंग अंग सिथिल अलबेले लाल संग पेली ।।
अलबेली मौज विलोकें विहारी विहारिनि नेह नवेली ।
श्री नागरीदास नव कुंज महल अलबेली संग सहेली ।।

श्रीराधा सुख की राशि है और उन्हें अनुपम रूप प्राप्त है—

विहारिनि लाडिली सुष-रासि ।
रूप अनूपम महा मन मोंहनी सहज छबीली हासि ।।
अंग अंग अनंग रंग स्याम संग विलसत मननि हुल
इहि रस मत्त मगन अनुदिन वलि जाइ नागरीदा

सरसदास

सरसदास की आचार्योपासना एवं माधुर्य भाव में दृढ़ प्रीति वाणी अष्टाचार्यों की वाणी के साथ मिलती है। श्रीराधिका कृष्ण के हुई है। उनके अङ्ग-अङ्ग पर अनेक प्रकार की छवि सुशोभित है—

लाडिली लालन रंग भीने अंग अंग छवि बहु भाँती ।
सांवल गौर वदन अंबुज पर बिथुरी अलक अलि पांती ।।
अरुन नैन अनियारे अंजन पीक पलक अलसाती ।
वचन रचन रुचि दसन दमक दुति अरुन अधर मुसकाती ।
पुलकि पुलकि प्रीतम उर लागति प्रिया लटकि लपटाँती ।
छके सुरति रस विवस विलोकत सरसदास उरसाती।।

राधा और कृष्ण की नई जोड़ी नव निकुंज में किस प्रकार होती है—

राजत नव निकुंज नव जोरी ।
सुंदर स्याम रसीले अंग अंग नवल कुंवरि तन गोरी ।।
वदन माधुरी मदन सदन सुख सागर नागर कुंवरि किशोरी ।
'सरसदास' नैनन सचु पावत कौतुक निपट निवोरी ।।[४]

अलबेली राधिका देखिये किस प्रकार सुशोभित हो रही है—

---

१. हस्तलिखित वाणी संग्रह—विशेश्वरशरणजी, पद ६, पृ० १६१
२. ,, ,, पद ३, पृ० १६५
३. हस्तलिखित वाणी संग्रह—सरसदास–विशेश्वरशरणजी, विहारीजी का बगीचा, वृन्दावन, पद २, पृ० २१८
४. निम्बार्क माधुरी–पद ५१, पृ० २६१

राजति अलक लडी अलबेली ।
सिथिल अंग रति रंग संग पिय जीवनि प्रांन नवेली ॥
लटकि-लटकि उर सांवल तन मन मिलि मदन मुदित वस वेली ।
सरसदास नेंननि सचु पावत विहरत गर्व गहेली ॥[1]

वह अपने मुख की आभा से मोहन को अपने वश में कर लेती है—

वदन-झलक मोहन वस कीने ।
तामें मृदु मुसक्यात छबीली बिथुरी अलक नैन रंग भीने ॥
रीझि-रीझि वारत मन छवि पर विवस भए अकों भरि लीने ।
तन मन मगन भए पिय प्यारी 'सरसदास' सुखरासि नवीनें ॥[2]

लाल प्रिया का शृङ्गार करते हैं—

लाल प्रिया को सिंगार वनावत ।
कोमल कर कुसुमन कच गूंथत मृगमद आड़ रचित सुख पावत ॥
अंजन मन-रंजन नख वर करि चित्र वनाइ रिझावत ।
लेत वलाइ माइ नव उपजत रीझि रसाल माल पहिरावत ॥
अति आतुर आशक्त दीन भए चितवत कुंवरि कुंवर मन भावत ।
नैनन में मुसक्यात जानि पिय प्रेम विवस हँसि कण्ठ लगावत ।
रूप रंग सीवों ग्रीवा भुज हँसत परस्पर मदन लड़ावत ।
'सरसदास' सुख निरखि निहाल भए गई निसा नव गुन उपजावत ॥[3]

विहारी प्यारी के तो खिलौना ही हैं—

श्री विहारी प्यारी को खिलोंना ।
नाना रूप रंग रति अंग अंग प्रति अति रस रसिक सनोंना ॥
अति आसक्त रहत सु छविली छैल छविलै सों तन मन रोंना ।
परस लाडिलो लाल प्याल को काहू परति पगोंना ॥[4]

क्योंकि कृष्ण उनके इतने वशीभूत हैं कि वे उनके चरण भी चापते हैं—

---

१. हस्तलिखित वाणी संग्रह—सरसदास–विशेश्वरशरणजी पद २, पृ० २०२
२. निम्बार्क माधुरी—सरसदास, पद ३४
३ ,, ,, पद २६
४. हस्तलिखित वाणी संग्रह—सरसदास, श्री विशेश्वरशरण, पद २, पृ० २१८

छबीले छबि सों चांपत पाय ।
दो लर वर तमाल लाल की सोभा कही न जाय ॥
अति कोमल कर प्रसन्न मनोहर राषत कंठ लगाय ।
वारत मन वलि जाय निरषि मुष फूल्यौ अंग न समाय ।
आनन्द मगन लाड़िली जीवनि सुष निधि मृदु मुसकाय ॥
लीनों अंक आपनों वल्लभ राष्यौ उर लपटाय ॥
करत केलि सुषरासि परस्पर चोंप गढ़ी चित चाय ।
सुरति रंग विहरत मिलि अंग-अंग उपजत नव नव भाय ॥
ललिता ललित माधुरी गावत ललना लाड लडाय ।
सरसदासि सुषराषि सहचरी देषत हियों सिराय ॥[1]

सरसदासजी ने राधाकृष्ण के झूलने, पौढ़ने आदि का भी सुन्दर वर्णन किया है। राधा-कृष्ण की परस्पर क्रीड़ा सम्बन्धी एक सरस पद में उनके एक प्राण होने पर भी रसवश दो होने का आभास मिलता है—

सरस छबीले वदन विवि विगसत सरस सनेह ।
सरस रंग रसवस भये एक प्रान द्वै देह ॥[2]

नरहरिदास

नरहरिदास जी नित्य केलि के सुदृढ़ उपासक और विधि निषेध आदि झंझटों से दूर थे। नरहरिदासजी ने मानिनी राधिका का सुन्दर चित्र-चित्रित किया है। उनकी राधिका में पल पल नवीन प्रीति बढ़ती है—

किहू वेर कही मानत न मान गहि हियो कठिन कछू और ई ठई री ।
पाइ गहि मनाइ आधीन कीये माई तुम एक प्यारी माननि भई री ॥
जव देषयो अपनों रूप और न कोई त्रिया अनुप मान की छरक हिए गई री ।
हँसि वोली सुष की रासि मन भाई श्री नरहरिदासि पल पल चाढ़ी प्रीति नई री ॥[3]

नरहरिदासजी ने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण सुन्दर किया है। उन्होंने अपने काव्य में हास्य को भी स्थान दिया है। एक सखी राधा के धोखे में कृष्ण की वेनी गुहने लगती है। राधा मोहन की ओर निरखकर हँस देती हैं। राधा के हास में कैसी स्वाभाविकता है—

---

१. हस्तलिखित वाणी संग्रह—सरसदास—श्री विशेश्वरशरण, पद ५, पृ० २२३
२. " " " पद २, पृ० २१८
३. " " " पद १०, पृ० २३१

एक सखी राधा के भोरें गुहत स्याम की बेंनी।
भूषन वसन सँवारत अंग-अंग चकृत भई मृग नेंनी॥
राधा हँसि मोहन तन चितवत सखिन दई कर सैंनी।
श्री नरहरिदासि पिय मन में क्रीडत लियें लाल कर लैंनी॥[1]

उनकी राधिका प्रिय के मन की बात जानने में बड़ी चतुर है[2]—

श्री राधा और कृष्ण दोनों के अङ्ग-अङ्ग अनुराग से पूर्ण हैं और दोनों प्रेम-केलि रस में परिप्लावित हैं--

प्रिया पिय सुरति-सेज उठि जागे।
घूमत नैन अरुन अलसाने मनहु समर सर नागे॥
शिथिरे अंग छूटी सिर अलकें वदन स्वेद कन लागे।
मानहु विधि कुसुमन कर पूज्यौ अङ्ग-अङ्ग अनुरागे।
चितें परस्पर क्रीड़त दोऊ प्रेम केलि रस पागे।
'नरहरिदास' अङ्ग छवि निरखत गंड पीक सौं लागे॥[3]

पीताम्बरदेव

पीताम्बर देव ने १. रस के पद २. शृङ्गार के पद ३. केलिमाल की टीका ४. सिद्धान्त की साखी और ५. शृङ्गार की साखी की रचना की। पीताम्बर-देवजी का कथन है कि श्री स्वामिनीजी नित्य सिद्ध हैं। स्वामिनीजी ही नहीं दास और परिकर भी नित्य हैं--

नित्य सिद्धि श्री स्वामिनी नित्य सिद्ध ए दास।
नित्य सिद्ध परिकर सबै सेवत नित्य विलास॥[4]

उनके रोम-रोम में लाड़िली और लाल पगे हुए हैं।[5] वे कृष्ण और श्रीराधा को गुरु नाम मानते हैं। श्रीकृष्ण और राधा लीला के लिए प्रगट हुए हैं परन्तु उनका विहार नित्य है--

---

१. निम्बार्क माधुरी–पद ६, पृ० २६६
२. हस्तलिखित वाणी संग्रह--नरहरिदास–श्री किशोरवरशरण पद १६, पृ० २३०-२३१
३. निम्बार्क माधुरी—पद ३, पृ० २६५
४. हस्तलिखित वाणी संग्रह—पीताम्बरदेव–दोहा २३, पृ० ५
५. हमारी गति मति हरि लई रसिक कृपाल दयाल।
रोम-रोम में पगि रहे आप लाड़िलो लाल॥
हस्तलिखित वाणी संग्रह--पीताम्बरदेव-दोहा ३०, पृ० ७

श्री गुरु नाम कृष्ण श्री राधा।
लीला के हित प्रगट भए है आप सहचरी करन समाधा॥
आपुहि विपिन लता द्रुम वेली मनि मंडप वन छायौ।
रचना कुंज भवन बहु विधि सों अद्‌भुत सुष उपजायौ॥
जोरी गौर स्याम वपु एकै आप समान सषी।
एक एक ते रूप आगरो गुन उन विविधः लषी॥
नित्य विहार निरंतर विहरत नित्य सहचरी देषो।
श्री गुरु रसिक कृपा पीतांबर और निज करौं परेषौ॥[१]

वे युगल के प्रति गुरु भावना के सम्बन्ध में लिखते हैं--

हमारे श्री गुरु जुगल भए।
तन करि रसिक विहारी एके मन राधा मिलि गए॥
गुरु तन हरि मन राधा सहचरि भोगी भोग नए।
'पीताम्वर' पर ओट ओट ते एकत वचन लए॥[२]

पीताम्वर देवजी की उपास्य देवी श्रीजी हैं। वह संसार में भ्रमण करते रहे बहुत दुख पाया और राधिका के चरणों को चित्त में न धारण किया, अब कहाँ जाये? वे जहाँ भी जाते हैं सब नाम पूँछते हैं कि कौन है? कहाँ से आया है? उन्हें बताते हुए लज्जा आती है। इसलिये उनका कथन है कि श्रीजी! तुम कृपा करो अपने कृत्य को आप ही सँभाल लो।[३]

प्रायः अन्य सभी भक्त कवियों ने राधा और कृष्ण को एक प्राण और दो देह लिखा है परन्तु पीताम्वरदेवजी ने सहचरी को भी उसी में सम्मिलित करके एक प्राण और त्रिय देह लिखा है--

१. हस्तलिखित वाणी संग्रह--पीताम्वरदेव-पद १०, पृ० ८२
२. निम्बार्क माधुरी-पद ११, पृ० ३०२
३. अब तो श्रीजी कृपा करो।
भ्रम्यो बहुत दुख पाय जगत में चरन न चित्त धरो॥
जानि अजान शरन मोहि दीन्हीं खोटो करो खरो।
अपने कृत्य को आप सम्हारो अब कित देखि डरो?
जाऊँ कहां सब नाम पूछि है कौन कहां ते आयो?
मोहि कहत अति लाज लागि है जेहैं नाम लजायो॥
सुनि हैं सकल लोग पुरवासी हांसी सब को आवै।
'पीताम्वर' श्री रसिकराय को काहे को दुख पावै॥
निम्बार्क माधुरी-पद २, पृ० ३००

अति सुघराई पिय सदा वर्षत सेज सनेह।
सहचरी प्रीतम प्रान द्वै एक प्रान त्रय देह ॥[१]

उन्होंने राधिका की आराधना इस प्रकार की है—

जय राधा जय राधा जय राधा जय जय जय राधा।
गौरांगी नीलाम्बर भूषित भूषण ज्योति अगाधा॥
सहचरि संगी स्याम धामिनी पुरवति मन की साधा।
श्री रसिक-विहारिनि कृपा निहारनि 'पीताम्बर' आराधा ॥[२]

जिनके ऊपर श्री हरिदासजी दीवाने थे, जिनको श्री विट्ठलविपुलदेवजी ने माना, जिनके रूप पर सरसदेव और नरहरिदेवजी लुभा गये वे श्याम और राधिका उनके राजा और रानी हैं।[३] निगमादि स्वामिनीजी को अगम्य कहते हैं तथा तन्त्र और पुराण भी वहाँ तक पहुँचने में असमर्थ हैं—

निगम नेति कहि अगम गम ना तंत्र पुरानहि दूरि धामिनी।
ऋषि मुनि पंथ ग्रन्थ दुरि देखत कृपा रसिक सुख सहज स्वामिनी॥
जिनकी आज्ञा विपिन युगलवर नव रस विलसत काम कामिनी।
नित्य सिद्ध अविरुद्ध सवनि ते पीताम्बर' धरि भामिनी ॥[४]

पीताम्बरदेवजी ने प्रिया के मुख और नेत्रों का वर्णन इस प्रकार किया है—

प्रिया वदन अमृत को पंक।
उभय नैन गज मस्त फबे पिय विलसत नाँहि निशंक।
जैसे भ्रमत सम्पुटी मुद्रत मानत निज तन रंक।
सहचरि श्रीहरिदास कहति सुख लिख्यो तिहारे अंक॥

राधिका पीली साड़ी पहने हुए हैं कृष्ण उन्हें देखकर प्रेम-प्रवाह में पड़ सोचने लगते हैं कि यह पीतांबर नारि कौन है—

---

१. हस्तलिखित वाणी संग्रह—पीताम्बरदेव-श्री विशेश्वरशरण, दोहा ९०, पृ० ३८
२. निवार्क माधुरी-पद २० पृ० ३०४
३. राजा स्याम राधिका रानी।
जिनके श्री हरिदासि दिवानी॥
श्री वीठल विपुल विहारनि मानी।
सरस नरहरी रूप लुभानी॥
हस्तलिखित वाणी संग्रह-पीतांबरदेव-श्री विशेश्वरशरण चौपाई १८, पृ०२४
४. निवार्क माधुरी-पृ० ३०१
५. ,, पृ० ३१२

पीरी सारी पहरें प्यारी।
अंगिया, लहँगा तिही रङ्ग की पीरी तापर जरद किनारी॥
पियरे ही भूषन कुसुमनि के कर गेंदुक लिये फूल हजारी।
प्रीतम प्रेम प्रवाह परे लखि यहै कौन पीतांबर नारी॥[1]

पीतांबरदेव ने राधिका का देवी की उपासना करने का भी वर्णन किया है। वह देवी की उपासना के समय श्याम मंत्र मुख से गाती है।[2]

रसिकदेव

'मिश्र बन्धु विनोद' में इनके द्वारा रचित अनेक ग्रन्थों के नाम उद्धृत हैं परन्तु विहारीशरणजी ने निम्वार्क माधुरी में इनके ग्यारह भावपूर्ण सरस ग्रन्थों के नामों का उल्लेख किया है—

१. भक्तसिद्धांतमणि, २. पूजा विलास, ३. सिद्धांत के पद ४. रस के पद, ५. रस सिद्धांत की साखी, ६. कुंज कौतुक, ७. रससार, ८. गुरु-मंगल यश, ९. वाल लीला, १०. ध्यान लीला, ११. वाराह संहिता।

रसिकदेव ने रस की साखियों में एकता के भाव का प्रदर्शन इस प्रकार किया है—

मेरे जिय में पिय बसें मैं पिय के जिय माँहि।
ऐसी अधिकी कौनि है जो जुगल चित्र पगि जाँहि॥[3]

उनका कथन है कि मन शीशी है और राधा इत्र है जिसे देखकर कृष्ण विमोहित हो जाते हैं—

मन सीसी राधा अतर नव सिप भरी बनाइ।
ताहि देषत मोह्यौ सांवरो भंवरवास लपटाइ॥[4]

रसिकदेव को न श्वास का खटका है न किसी से प्रेम है उनका मन तो गौर श्याम में लगा है—

खटकौ नहीं उसास कौ ना काहू सों भाव।
गौर स्याम मन में अरे लप आवहु लष जाव॥[5]

---

१. हस्तलिखित वाणी संग्रह—पीतांबरदेव की वाणी, पद ३३, पृ० १३२
२. ,, ,, पद ६४, पृ० ११६, ११७
३. हस्तलिखित वाणी संग्रह—रसिकदासजी की वाणी—रस की साखी
विशेश्वरशरणजी—दोहा ४, पृ० ३३६,
४ ,, ,, ,, ,, दोहा ६, पृ० २३८
,, ,, ,, ,, दोहा १०, पृ० २३८

उन्होंने राधा के स्वरूप के दर्शन इस प्रकार कराये हैं—

स्वर्न मुकुर रूप राधा मीन-कमल-दल नैनी।
सीस फूल मांग मोतिन की रत्न जटित आभूषण वेनी ॥[1]

श्याम और श्यामा दोनों का जी एक दूसरे से मिला हुआ है। श्यामा श्याम को और श्याम श्यामा को भाते हैं—

स्यामां प्यारी मेरी तेरी जीय क्यों हूं मिलि जाइ।
तू मोकों हूँ तोंको भावत रहें परस्पर हियें समाइ ॥
सुरत सनेह जिय अन्तर पारें तापर मेरी कछु न वसाइ।
नव नव केलि-रूप रस राचे रापत प्रानति लाड लडाइ ॥
श्री रसिक विहारी यह सुष विलसत एक टक नैना रहे लगाइ।
यातें त्रिपत होत नहीं कवहूं उपजत अगनित भाइ ॥[2]

कुंज महल में श्यामा और श्याम अकेले हैं। श्यामा-श्याम के रूप-रस को चखनी हैं।[3]

कृष्ण और राधा दोनों एक दूसरे के प्राणों में समाये हुए हैं तथा कुंजमहल में परस्पर क्रीड़ा करते हैं—

रसिक विहारी प्यारी के संग रस भीने षेलत वसंत ।
रस सों भीनी तन सुष सारी छवि के उठे तरग ॥
रस भीने सब अङ्ग विराजत सौभा को नहिं अन्त ।
रस भीनी सब सषी विराजत सब अङ्ग भरे रस रङ्ग ॥
रस की तांन लेत नाना गति उपजत तान तरङ्ग ।
रस भीनी सब द्रुम वेली सौरभ उडत सुरङ्ग ॥
रस सों भीनों सब वृन्दावन रस भोर भामिनि कंत ।
श्री रसिक बिहारी रस वस कीने सौभा कौ कंत ॥[1]

ललित किशोरीदेव

ललित किशोरीदेव ने लगभग ४०० दोहा और पदों की वाणी की रचना की, जो टट्टी स्थानीय अष्टाचार्य की वाणी में सम्मिलित है। किसी को कुछ भी रुचे परन्तु ललित किशोरीदेव का कथन है कि उन्हें प्रिया लाल ही रुचते हैं—

कोऊ काहू को रुचै, मोहि रुचै प्रिया लाल।
ललित-केलि तन, मन मिले कीने रसिक निहाल ॥[2]

उनके प्राण ही लाड़िली हैं—

प्रान हमारे लाड़िली देहि विपिन को आहि।
ललित-केलि निरखैं सदा छिन-छिन वाढ़े चाहि ॥[3]

उनके प्रिया लाल का स्वरूप देखिये—

तन रूपो तो महल है मन-रूपो प्रिया लाल।
ललित-केलि विहरैं सदा कीने रसिक निहाल ॥[4]

गौर श्याम नित्य ही आनन्द से रहने वाले हैं—

गौर स्याम सुख-रासि के अति ही आनन्द नित्त।
ललित-रंग में रंगि रहे एक प्रान द्वै मित्त ॥[5]
एक प्रान द्वै मित्त हैं अद्भुत रूप अपार।
विलसत तन, मन रंग सों महा प्रेम सुख सार ॥[6]

---

१. हस्तलिखित वाणी संग्रह—पद २. पृ० २३५
२. निम्बार्क माधुरी—दोहा २० पृ० ३३१
३. ,, दोहा २२, पृ० ३३१
४. ,, दोहा २१ पृ० ३३१
५. ,, दोहा २५, ,,
६. ,, दोहा ४०, पृ० ३३३

राधा कृष्ण भी नित्य हैं और उनका विपिन-विलास भी नित्य है—

नित ही राधा कृष्ण हैं नित ही विपिन-विलास।
कोटि-कोटि गोलोक नों एक पत्र परकास ॥[1]

उनका कथन है कि प्रिया-नाम-आधार महासुख का देने वाला और समस्त सारों का भी सार है—

महासुख प्रिया नाम-आधार।
अति आनन्द रूप निधि सकल सार कौ सार ॥
जाकी रसना भूलि हू निकसै हार प्रिया उर हार।
'ललित' रसिकवर को निज जीवन अद्भुत नित्य विहार ॥[2]

उनकी प्रवीण राधिका नवीन प्रीति से समन्वित है—

मेरी राधिके प्रवीन।
अपनेई हित में नित राखत छिन-छिन प्रीति नवीन।
मिलत-मिलत आनन्द अति बाढ्यो पाए जल ज्यों मीन।
'ललित' केलि प्राननि मिलि विहरत आप वरोवरि कौन ॥[3]

उनके लिये राधिका ही सर्वस्व है—

स्यामा प्यारी राधिके सुष रासि हमारी।
रोम रोम तन मन मिली अति ही हितकारी ॥
अद्भुत प्रेम प्रकासिनी निज प्रीतम प्यारी।
ललित किसोरी प्रान है यह जीव पियारी ॥[4]

ललित मोहिनीदेव

ललित मोहिनीदेव ने श्री राधिकाजी की वन्दना इस प्रकार की है—

जय जय कुंज विहारिनि प्यारी।
जय जय कुंज महल सुखदायक जय जय लालन कुंज विहारी।
जय जय वृन्दावन रस सागर जय जय जमुना सिंधु सुग्वारी।
जय जय 'ललित मोहिनी' धनि-धनि सुखदायक सिरमौर हमारी ॥[5]

उन्होंने श्रीराधा और कृष्ण के प्रेम का वर्णन इस प्रकार किया है—

१. निम्बार्क माधुरी—दोहा ४८, पृ० ३३२
२. ,, पद १२, पृ० ३३५
३. ,, पद १५, पृ० ३३६
४. सखी सम्प्रदाय के भक्तों की वाणी—हस्तलिखित प्रति-विशेषवरणरस पद १०१
५. निम्बार्क माधुरी—विहारीशरण पद १०, पृ० ३४२

प्रान प्रिया सखी । आज बनी ।
ओढ़ि नीलाम्बर-सारी विहरत प्रेम-पुंज-रस माँहि ठनी ।।
उमगि-उमगि मिलि गौर-स्याम सो औरि ठान ठनी ।
'ललित मोहिनी' लाड़ लड़ावत त्यों-त्यौ बरषत प्रेम घनी ।।[1]

भगवत रसिक

भगवत रसिक ने वैराग्य, सिद्धांत और श्रृङ्गार का सुन्दर वर्णन किया है। इनकी कविता त्याग और अनुभूति पूर्ण है। इन्होंने १२५ पद छप्पय, कवित्त, ८३ कुण्डलियां, ५२ दोहे और एक मंजरी की रचना की।[1] इनके पाँच ग्रन्थ बताये जाते हैं-- १. अनन्यनिश्चयात्मक, २. श्री नित्यविहारी युगल ध्यान, ३. अनन्य रसिकाभरण, ४. निश्चयात्मक ग्रन्थ उत्तरार्ध, ५. निर्बोध मन रंजन। इनका काव्य संग्रह 'भगवतरसिकदेव की वाणी' के नाम से प्रकाशित हुआ है।

सखी सम्प्रदाय की निजी उपासना के सम्बन्ध में इनका कथन है--

आचारज ललिता सखी, रसिक हमारी छाप ।
नित्य किशोर उपासना जुगल मंत्र को जाप ।।
जुगल मंत्र को जाप, वेद रसिकन की बानी ।
श्री वृन्दावन धाम, इष्ट स्यामा महरानी ।।
प्रेम देवता मिले बिना सिधि होइ न कारज ।
'भगवत' सब सुखदानि, प्रगट भे रसिकाचारज ।।[2]

कोई राधा को स्वकीया कहता है, कोई परकीया, परन्तु इनका कथन है कि दोनों में स्वकीया, परकीया भाव न होकर सहज प्रेम है--

कोउ सुकिया कोउ परकिया कलप किये मत-वादि ।
जोरी भगवत रसिक की नित्य अनन्त अनादि ।।
नित्य अनन्त अनादि लोक तें रीति विलक्षण ।
श्रुति स्मृति चिलगाय देखि अनुभव के अक्षण ।
सहज प्रेम माधुर्य रहत अनुरागे दोऊ ।
ललिता सखी प्रसाद बिना तहँ जात न कोऊ ।।[3]

इन्होंने राधा की वन्दना इस प्रकार की है--

राग आसावरी

जयति नव नागरी रूप गुन आगरी सर्व सुख सागरी कुंवरि राधा।
जयति हरि भामिनी स्याम घन दामिनी केलि कल कामिनी छबि अगाधा।।
जयति मन मोहनी करी दृग बोहनी दरस दे सोहनी हरो बाधा।
जयति रस मूररी सुरभि सुर भूररी भगवत रसिक प्रान साधा।।[1]

उनकी महारानी श्रीराधा रानी सदैव सहायता करने वाली, सर्वोपरि और सुख देने वाली हैं—

मेरी महारानी श्री राधा रानी।
जाके बल में सबसों तोरी लोक वेद कुल कानी।।
प्रान जीवन धन लाल बिहारी को वारि पियत नित पानी।
भगवत रसिक सहायक सब दिन सर्वोपरि सुखदानी।।[2]

भगवत रसिक का कथन है कि श्याम और श्यामा का विहार नित्य है, उनके गुण गूढ़ हैं और उनका भेद किसी ने भी नहीं जाना है—

ऐसेहि नित्य विहार स्याम-स्यामा सुखदानी।
'भगवत' रसिक अनन्य गूढ़ गुण गावत बानी।।[3]

× × ×

'भगवत रसिक' अनन्य स्याम-स्यामा अवगाहू।
रही हृदन भरिपूर भेद जानों नहिं काहू।।[4]

उनके प्राणधन श्याम और राधिका हैं। उनका समान रस-रूप और वयस है—

मेरे प्रान धन स्वामिनि स्याम राधे।
एक रस रूप समवैस वारिज वदन छके रहें प्रेम यह नेम साधे।।
करत केलि विपरीत परस्पर बिछुर नहिं जान कहुं पलक आधे।
नैन की सैन वर बैन भगवत रसिक देत सुख सेन सहचरि अगाधे।।[5]

उनकी लाड़िली अलबेली है—

1. भगवत रसिकदेव की वाणी–३७, पृ० ८
२. " ३८, पृ० ६
३. निम्बार्क माधुरी–दोहा ८४, पृ० २७३
४. " " ८५, पृ० २७४
५. श्री भगवत रसिक देव की वाणी–पद ७, पृ० १०

मोतिन सँभारी माँग सोहत सुहाग भरी,
मोहत विहारी मन मधुप परयौ फंद ।
दीपति उज्यारी तैसें नील पट झीनी सारी,
मेचक कचकारी चन्द्रिका लसै अमंद ।।
मृगमद बेंदी भाल रुचि कें बनाई बाल,
कजरारे नैन ज्यों खंजन नचै सुछंद ।
भगवत चकोर नैन देखि पावै चैन,
प्यारी तेरो आनन सहस कला को चंद ।।[१]

राधिका के चरणों की शोभा भी अपूर्व है उससे भक्त का हृदय सौन्दर्य से परिपूर्ण हो जाता है—

जावक जुत जुग चरन लली के ।
अद्भुत अमल अनूप दिवाकर मानस कंज कली के ।।
मंजुल मृदुल मनोहर सुखनिधि सुभग सिंगार निकुंज गली के ।
सुरतरु कामधेनु चिंतामनि भगवत रसिक अनन्य अली के ।।[२]

छबीली रस भरी राधा का स्वरूप देखिये—

आज तो छबीली राधे रस भरी डोलहीं ।
साँवरे पिया के संग भीजी है मदन रंग,
मोद की उमंग अंग गुन गथ खोलहीं ।।
जैसे दामिनि घन माही ऐसे भामिनी तनु माहीं,
लखि आपनी परछाही हँसि बोलहीं ।
भगवत लाल बिहारी पाई है कहा वर नारी,
गुन रूप बैस हमारी करत कलोलहीं ।।[३]

भगवत रसिक के हेतु श्यामा और श्याम ऐसे हैं जैसे कामी के लिये प्रिय कामिनी और लोभी के लिए दाम—

कामी के पिय कामिनी, लोभी कें पिय दाम ।
ऐसे हि भगवत रसिक कें पिय श्री स्यामा स्याम ।।[४]

---

१. श्री भगवत रसिक देव की वाणी–कवित्त ३६
२. „ „ पद ३३, पृ० ७
३. „ „ पद ३, पृ० ४१
४. „ „ पद ७, पृ० ४५

मोतिन सँभारी माँग सोहत सुहाग भरी,
मोहत विहारी मन मधुप परचौ फंद।
दीपति उज्यारी तैसें नील पट झीनी सारी,
मेचक कचकारी चन्द्रिका लसै अमंद॥
मृगमद वेंदी भाल रुचि कें बनाई बाल,
कजरारे नैन ज्यों खंजन नचैं सुछंद।
भगवत चकोर नैन देखि पावै चैन,
प्यारी तेरो आनन सहस कला को चंद॥[१]

राधिका के चरणों की शोभा भी अपूर्व है उससे भक्त का हृदय सौन्दर्य से परिपूर्ण हो जाता है—

जावक जुत जुग चरन लली के।
अद्भुत अमल अनूप दिवाकर मानस कंज कली के॥
मंजुल मृदुल मनोहर सुखनिधि सुभग सिंगार निकुंज गली के।
सुरतरु कामधेनु चिंतामनि भगवत रसिक अनन्य अली के॥[२]

छबीली रस भरी राधा का स्वरूप देखिये—

आज तो छबीली राधे रस भरी डोलहीं।
साँवरे पिया के संग भीजी है मदन रंग,
मोद की उमंग अंग गुन गथ खोलहीं॥
जैसे दामिनि घन माही ऐसे भामिनी तनु माहीं,
लखि आपनो परछाही हँसि बोलहीं।
भगवत लाल बिहारी पाई है कहा वर नारी,
गुन रूप वैस हमारी करत कलोलहीं॥[३]

भगवत रसिक के हेतु श्यामा और श्याम ऐसे हैं जैसे कामी के लिये प्रिय कामिनी और लोभी के लिए दाम—

कामी के पिय कामिनी, लोभी कें पिय दाम।
ऐसे हि भगवत रसिक कें पिय श्री स्यामा स्याम॥[४]

---

१. श्री भगवत रसिक देव की वाणी—कवित्त ३६
२. " " पद ३३, पृ० ७
३. " " पद ३, पृ० ४१
४. " " पद ७, पृ० ४५

भगवत रसिक ने राधा और कृष्ण का सम्बन्ध इस प्रकार स्थापित किया है—

परस्पर दोउ चकोर दोउ चंदा ।
दोउ चातक दोउ स्वाति दोउ घन दोउ दामिनी अमंदा ।।
दोउ अरविंद दोऊ अलि लम्पट दोउ लोहा दोउ चुंबक ।
दोउ आसक महबूब दोऊ मिलि जुरे जुराफा अंबक ।।
दोऊ मुदार दोउ मोर दोऊ मृग दोऊ राग रस भीने ।
दोउ मनि विसद दोउ वर पन्नग दोऊ वारि दोउ मीने ।।
भगवत रसिक विहारनि प्यारी रसिक विहारी प्यारे ।
दोउ मुख देखि जियत अधरामृत पियत होत नहिं न्यारे ।।[1]

उन्होंने राधा और कृष्ण की एकता के सम्बन्ध में लिखा है—

जहाँ कृष्ण राधा तहाँ जहँ राधा तहँ कृष्ण ।
न्यारे निमिष न होत दोउ समुझि करौ यह प्रस्न ।।
समुझि करौ यह प्रस्न दोउ घन दामिनि जैसे ।
सहज सुनाय सुतंत्र निरन्तर विहरत तैसे ।।
भगवत रसिक अनन्य विना कोइ जात नहीं तहँ ।
दंपति संपति सहित मदन रस रंग भरे जहँ ।।[2]

उनका प्रभु सब का पोषण करता है, भक्त से सन्तुष्ट रहता है—

नहीं द्वैताद्वैत हरि नहीं विसिष्टाद्वैत ।
बंधे नहीं मतवाद में ईश्वर इच्छा द्वैत ।।
ईश्वर इच्छा द्वैत करें सब ही को पोषन ।
आप रहें निर्लेप भक्त सौं मानें तोषन ।।
भगवत रसिक अनन्य सदा दोनों मनचाहीं ।
करें मनोरथ सिद्धि उचित अनुचित कछु नाहीं ।।[3]

राधा वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों का राधा का स्वरूप

हित हरिवंश

हित हरिवंश ने प्रचलित कर्मकाण्ड और वाह्याचार की अनेक परिपाटियों को स्वीकार न कर विधि-निषेध की न्यूनता के साथ प्रेम को रस के रूप में अपनाकर अपना नवीन सम्प्रदाय चलाया। श्री हरिवंशजी ने वृन्दावन में साधना के निमित्त मानसरोवर, सेवाकुंज, रास मंडल और वंशीवट चार सिद्ध-केलि स्थलों का प्राकट्य किया। सेवाकुंज नामक स्थान पर श्री हरिवंशजी ने राधा वल्लभजी के विग्रह की सर्व प्रथम प्रतिष्ठा की। हित हरिवंशजी के सम्बन्ध में नाभादासजी ने भक्तमाल में लिखा है—

श्री राधाचरन प्रधान हृदय अति सुदृढ़ उपासी।
कुंज केलि दम्पती तहाँ की करत खवासी॥
सर्वसु महाप्रसाद प्रसिद्ध ताके अधिकारी।
विधि निषेध नहि दरसि अनन्य उत्कट व्रतधारी॥
श्री व्यास-सुवन पथ अनुसरै सोई भलें पहिचानि है।
हरिवंश गुसाई भजन की रीति सकृत कोउ जानि है॥

श्री हितहरिवंश रचित 'राधा सुधा निधि' तथा 'यमुनाष्टक' संस्कृत ग्रन्थ हैं तथा विट्ठलनाथजी को लिखे गये दो गद्य-पत्र हैं। इनके 'हित चौरासी' और 'स्फुट वाणी' हिन्दी ग्रन्थ हैं। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में हस्तलिखित पुस्तकों के विवरण में 'प्रेमलता' नामक एक ग्रन्थ का रचयिता श्री हितहरिवंश को बताया है।[१] 'राधा सुधानिधि' मूल रूप में २७० श्लोकों का स्तोत्र-काव्य है। 'राधा-सुधानिधि' ग्रन्थ में राधा ही इष्टाराध्या के रूप में वर्णित हुई हैं। श्री हितहरिवंशजी की इष्टाराध्या राधा ही हैं इसलिए उन्हीं की पूजा-उपासना, वन्दना-प्रशस्ति के लिये उन्होंने इनकी रचना की है। इस स्तोत्र-काव्य का

---

१. संख्या १५५ ए प्रेमलता-रचयिता—हितहरिवंश, कागज देशी पत्र ३६ आकार १०×६ इंच, पंक्ति प्रति पृ० २४, परिमाण अनुष्टुप ६१८, रूप प्राचीन, लिपि-नागरी लिपि, काल.सं० १८२४, ईशवी १७६७। प्राप्ति स्थान दीनानाथ पाठक, ग्राम पचोली, डा० जनेसर जि० एटा, हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का चौदहवां वार्षिक विवरण (सन् १६२६-१६३१) सं० डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल।

प्रमुख ध्येय राधा को इष्टाराध्या के रूप में प्रस्तुत करना है। 'राधा-सुधानिधि' की पद-रचना समास विरल, सरस एवं पदावली कोमल कान्त है। 'यमुनाष्टक' यमुना की वन्दना में लिखा हुआ आठ श्लोकों का प्रशस्ति काव्य है। राधा वल्लभ सम्प्रदाय का मूल ग्रन्थ 'हित चौरासी' है इसमें चौरासी पदों का संग्रह है। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्ट में इसका नाम 'हरिवंश-चौरासी' तथा दूसरा नाम 'हित चौरासी धनी' भी है। कुछ विद्वानों के अनुसार चौरासी योनियों में चक्कर काटने वाले प्राणी को मुक्त करने के लिए चौरासी पदों का संकलन किया गया है। 'हित चौरासी' एक मुक्तक पद रचना है जिसका विषय मुख्य रूप से अन्तरग भावना से सम्बन्ध रखता है। 'स्फुट वाणी' के पद मुक्तक या प्रकीर्णक हैं परन्तु इसे स्वतन्त्र ग्रन्थ का सा स्थान प्राप्त हो गया है। श्री हितहरिवंशजी ने अपने शिष्य विट्ठलदास को जो जूनागढ़ में दीवान थे दो कुशल पत्र पद्य में लिखे थे।

राधा सुधा निधि

चरणारविन्दों की कृपा से साधक को इस लोक और परलोक में सब कुछ प्राप्त हो जाता है। राधा-सुधा-निधि में राधाकृष्ण का दाम्पत्य भाव से वर्णन है परन्तु राधा का स्थान कृष्ण से ऊपर है। श्रीकृष्ण भी राधा के प्रेम की आकांक्षा से उसकी चाटुकारी करते हैं। अनेक श्लोकों में श्रीकृष्ण का स्थान राधा से छोटा बताया है। श्रीकृष्ण राधानुवर्ती हैं। राधा-सुधा-निधि में राधा-कृष्ण के प्रगाढ़ प्रेम सम्बन्ध का वर्णन अत्यन्त शृङ्गारिक है। राधा और कृष्ण पारस्परिक हाव-भाव और विलास करते हुए रतिक्रीड़ा में आत्म विभोर हो जाते हैं और उन्हें चारों ओर की सुधि-बुधि नहीं रहती। नित्य विहार सम्बन्धी पदों में शृङ्गारिक भावना का प्राधान्य है।[1] श्रीराधा सुधा निधि के प्रारम्भ में ही हितहरिवंशजी ने वृषभानु नन्दिनी की वन्दना इस प्रकार की है—

यस्याः कदापि वसनाञ्चल खेलनोत्थ,
धन्यातिधन्य पवनेन कृतार्थमानी।
योगीन्द्र दुर्गम गतिर्मधुसूदनोऽपि,
तस्या नमोस्तु वृषभानु भुवो दिशेऽपि ॥[2]

किसी समय जिनके नीलाञ्चल के हिलने से उठे हुए धन्यातिधन्य पवन को स्पर्श करके योगीन्द्रों के लिए अति दुर्गम गति मधुसूदन ने भी अपने आपको कृतकृत्य माना, मैं उन्हीं श्री वृषभानु नन्दिनी की दिशा को प्रणाम करती हूं।

वृषभानु नन्दिनी के चरण ब्रह्मा, शंकर आदि के लिए भी अत्यन्त दुरूह हैं और उनकी कृपा-रस-भीनी दृष्टि समस्त अर्थों के भी सार रस का वर्षण करती हैं—

ब्रह्मेश्वरादि सुदुरूह पदारविन्द,
श्रीमत्पराग परमाद्भुत वैभवायाः।
सर्वार्थसार रस वर्षिकृपार्द्र दृष्टे—
स्तया नमोस्तु वृषभानु-भुवो महिम्ने ॥[3]

अनन्त-शक्ति चूर्ण श्रीराधिका चरण-रेणु से श्रीकृष्ण तत्काल वश में हो जाते हैं—

यो ब्रह्मरुद्र शुक नारद भीष्म मुख्यै—
रालक्षितो न सहसा पुरुषस्य तस्य।
सद्योवशीकरण चूर्णमनन्तशक्ति—
तं राधिकाचरणरेणुमनुस्मरामि ॥[4]

---

१. राधा सुधा निधि—श्लोक सं० २००
२. ,, ,, १
३. ,, ,, २
४. ,, ,, ३

(जो परम पुरुष श्रीकृष्ण, ब्रह्मा, शंकर, शुकदेव, नारद और भीष्म जैसे प्रमुख (भागवतों) को भी सहसा आलक्षित नहीं होते, उन्हीं श्रीकृष्ण को तत्काल वश में करने वाले अनन्त-शक्ति पूर्ण श्रीराधिका चरणरेणु का मैं अनुस्मरण करता हूँ।)

राधिका आनन्द विहार करते हुए मोद में सारी रात्रि जागकर व्यतीत करती है—

उज्जागरं रसिक नागर सङ्ग रङ्ग
कुंजोदरे कृतवती नु मुदा रजन्याम् ।
सुस्नापिता हि मधुरैव सुभोजिता त्वं
राधे कदा स्वपिषि मत्कर लालिताङ्घ्रिः ॥[1]

(हे श्रीराधे ! तुमने अपने प्रियतम रसिक नागर श्रीलालजी के साथ कुञ्ज भवन में आनन्द विहार करते हुए मोद में ही सारी रात्रि जागकर व्यतीत कर दी है तब प्रातः काल मैं तुम्हें अच्छी तरह से स्नान कराके मधुर-मधुर भोजन कराऊँ और सुखद शैया पर पौढ़ाकर अपने कोमल करों से तुम्हारे ललित चरणों का संवाहन करूँ। मेरा ऐसा सौभाग्य कब होगा ?)

राधा के गुणों का वर्णन हितहरिवंशजी ने इस प्रकार किया है—

(हे श्रीराधे ! आपके गौर-अङ्गों की मृदुलता, मन्द मुसकान की माधुरी, नेत्राञ्चलों की दीर्घता, उरोजों की पीनता, कटि प्रान्त की क्षीणता, पाद-न्यास की धीरता, नितम्ब देश की स्थूलता, भ्रूलताओं की कुटिलता, अधर-बिम्बों की रक्तिमा एवं आपके हृदय की रसावेश-जन्य जड़ता मेरे ध्यान में प्रगट हो।)

राधा का स्वरूप वर्णन हितहरिवंश ने इस प्रकार किया है—

गात्रे कोटि तडिच्छवि प्रविततानन्दच्छवि श्रीमुखे,
बिम्बोष्ठे नव विद्रुमच्छवि करे सत्पल्लवैकच्छवि।
हेमाम्भोरुह कुड्मलच्छवि कुच-द्वन्द्वेऽरविन्देक्षणं,
वन्दे तन्नव कुञ्ज-केलि-मधुरं राधाभिधानं महः ॥[1]

(जिसके गात्र में कोटि-कोटि दामिनियों की छवि है, जिसके मुख से मानो आनन्द-रूप छवि का ही विस्तार हो रहा है। बिम्बोष्ठ में नव-विद्रुम की छवि तथा करों में सुन्दर नवीन पल्लवों की छवि जगमगा रही है। जिसके युगल कुचों में स्वर्ण-कमल की कलियों की छवि है, उसी अरविन्द-नेत्रा, नव-कुञ्ज-केलि-मधुरा राधा-नामक ज्योति की मैं वन्दना करता हूँ।)

राधा के अङ्गों का शृङ्गार वर्णन इस प्रकार किया है—

प्रेमणः सन्मधुरोज्वलस्य हृदयं शृङ्गारलीलाकला ।
वैचित्री परमावधिर्भगवतः पूज्यैव कापीशता ॥
ईशानी च शची महासुख तनुः शक्तिः स्वतन्त्रा परा ।
श्री वृन्दावन नाथ पट्टमहिषी राधैव सेव्या मम ॥[1]

जो मधुर और उज्ज्वल प्रेम की प्राण-स्वरूपा, शृंगार लीला की विचित्र कलाओं की परम अवधि, भगवान् श्रीकृष्ण की आराधनीया कोई अनिर्वचनीया शासन-कर्त्री है। जो ईश्वर रूप श्रीकृष्ण की शची है तथा परम सुखमय वपु-धारिणी परा और स्वतंत्रा शक्ति है। वे श्री वृन्दावननाथ श्रीलालजी की पट्टरानी श्रीराधा ही मेरी सेव्या-आराधनीया हैं।

हित हरिवंश के हिन्दी काव्य में राधा

श्री हितहरिवंश की हिन्दी में लिखी 'श्रीहित चौरासी' नामक पुस्तक चौरासी पदों का संग्रह है। ये पद भिन्न-भिन्न चौदह रागों में विभक्त हैं। किस राग के अन्तर्गत कितने आये हैं उनका वर्णन एक फल स्तुति के कवित्त में इस प्रकार है—

छै पद विभास मांझ सात हैं बिलावल में,
टोडी में चतुर आसावरी में हैं घनें।
सत हैं धनाश्री में जुगल बसंत केलि—
देवगंधार पंच दोय रस सों सनें।
सारङ्ग में चौदह हैं चार ही मलार—
एक गौड़ में सुहायो नव गौरी रस में भनें।
षट कल्यान निधि कान्हरे केदारे वेद
बानी हित जू की सब चौदह राग में गनें।[2]

चुनकर स्वसम्मिलित, चिन्मय स्वरूपिणी शक्ति से श्रीहित रूप में अपने को प्रकट किया। श्रीहित के अन्तः पुर में आह्लाद एवं आह्लादिनी शक्ति नित्य क्रीड़ा करते हैं। श्रीहित ने दया करके, रसिकों के प्राणों में रसमय गति का संचार करने के लिए अपने अन्तःपुर में नित्य क्रीड़ा करने वाली श्री रासेश्वरी श्रीराधा को सामने रखकर स्तुति रूप में गान किया। श्री सुधा निधि जी की तरह श्री यमुनाष्टक, श्री स्फुट वाणीजी और श्री चतुराशीजी भी श्रीहित हृदय की क्रीड़ा है।[1]

हितहरिवंश के राधा वल्लभीय सम्प्रदाय की सर्वोच्च साधना राधा-कृष्ण की कुंज-लीला का ही ध्यान है। इनके अनुयायियों ने इसे 'परम रस माधुरी' कहा है। सिद्धान्त निरूपण इनका लक्ष्य नहीं है इसलिए एकाध पद में ही इसकी चर्चा मिलती है। वर्णन विषयक पदों में वृन्दावन, मोहन व वंशी सम्बन्धी पदों से राधा का वर्णन करने वाले पद ही सुन्दर बन पड़े हैं। हितहरिवंश राधा कृष्ण के युगल रूप के ही साधक थे इसलिये इन्होने काव्य में भी युगल-प्रेम का ही गान गाया है और राधा की प्रधानता स्थापित की है। उन्होंने श्री राधा के चरणों को ही हृदय में धारण कर युगल-कुंज केलि और दर्शन का आस्वादन किया है। हित चौरासी के प्रथम पद में राधा वल्लभीय प्रेम सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ है। इसमें तत्सुखी भाव की स्थापना के साथ जल-तरङ्ग के समान अद्वैतभाव के साथ रहने वाले प्रिया प्रियतम के प्रगाढ़ प्रेम का वर्णन है—

जोई जोई प्यारो करै सोई मोहि भावै।
भावै मोहि जोई सोई करै प्यारे॥
मोकों तो भांवती ठौर प्यारे के नैननि में,
प्यारो भयो चाहै मेरे नैननि के तारे॥१॥
मेरे तन मन प्राण हूं ते प्रीतम प्रिय,
अपने कोटिक प्राण प्रीतम मोसों हारे।
जै श्री हित हरिवंश हंस हंसनी सांवल गोर,
कहो कौन करै जलतरङ्गनि न्यारे॥[2]

हरि रसना राधा राधा रट।
अति अधीन आतुर यद्दपि पिय कहियत है नागर नट ॥
संभ्रम द्रुम, परिरंभन कुञ्जन, ढूंढत कालिंदी तट।
बिलपत, हँसत, विषीदत, स्वेदित सतु सींचत अँसुवन वंशीवट ॥
अंगराग परिधान वसन, लागत ताते जु पीत पट।
जै श्री हितहरिवंश प्रशंसित श्यामा दै प्यारी कंचन घट ॥[1]

वासुदेव गोस्वामी का कथन है कि, 'श्रीकृष्ण की कृपा के लिए राधिकाजी का अनुग्रह अनिवार्य मानकर निकुंज-सेवा के अनन्य रसिक मार्ग का पथ प्रदर्शन का श्रेय श्री हिताचार्यजी को है।'[2] राधा की कृपा से ही वृन्दावन के अनन्त प्रेम की विचित्र लीला में प्रवेश किया जा सकता है। राधा वृषभानु गोप की बेटी है। उसे मोहन ने हँसकर भेंटा है। जिसको विरंचि और उमापति भी सिर नवाते हैं, उन पर ही राधिका ने वन फूल बिनवाये। जिसके रस को श्रुतियों ने नेति-नेति कहा है उसके ही अधर सुधा रस को राधा चखती है, इसीलिए राधिका की प्रधानता है। उसके रूप का भी वर्णन नहीं किया जा सकता।[3]

हितहरिवंश ने थोड़े शब्दों में राधा का व्यापक और सर्वाङ्ग पूर्ण चित्रण किया है। राधाकृष्ण का सुन्दर नख-शिख वर्णन निम्नलिखित पद में देखिये—

ब्रजनवतरुणि कदम्ब मुकुटमणि श्यामा आजु बनी।
नख सिख लौं अङ्ग-अङ्ग माधुरी मोहे श्याम धनी ॥१॥
यों राजत कबरी गूंथित कच, कनक कंज बदनी।
चिकुर चंद्रिकनि बीच अर्ध विधु मानो ग्रसित फनी ॥२॥

---

१. श्रीहित स्फुटवाणीजी, पद २१
२. भक्त कवि व्यासजी—वासुदेव गोस्वामी, पृ० १२८
३. सुनि मेरो वचन छबीली राधा।
तैं पायो रस सिंधु अगाधा ॥१॥
तू वृषभानु गोप की बेटी।
मोहनलाल रसिक हँसि भेंटी ॥२॥
जाहि विरंचि उमापति नाये।
तापैं तैं बन फूल बिनाये ॥३॥
जो रस नेति-नेति श्रुति भाख्यो।
ताको तैं अधर सुधारस चाख्यो ॥४॥
तेरो रूप कहत नहिं आवै।
जै श्री हित हरिवंश कछुक जस गावै ॥५॥
श्री हित चौरासी—पद १८

सौभग रस शिर श्रवत पनारी, पिय सीमन्त ठनी।
भृकुटि काम कोदंड, नैंन सर, कज्जल रेख अनी ॥३॥
तरल तिलक, ताटंक गंड पर, नासा जलज भनी।
दसन कुंद, सरसाधर पल्लव प्रीतम मन शमनी ॥४॥
चिबुक मध्य अति चारु सहज सखि, सांवल बिंदु कनी।
प्रीतम प्राण रतन संपुट कुच, कंचुकि कसिव तनी ॥५॥
भुज मृनाल बल हरत वलय जुत परस सरस श्रवनी।
श्याम शीश तरुमनी मिड़वारी रची रुचिर रवनी ॥६॥
नाभि गंभीर मीन मोहन मन खेलत कौं ह्रदनी।
कृश कटि, पृथु नितम्ब किंकिणि व्रत, कदलिखंभ जघनी ॥७॥
पद अम्बुज जावक जुत, भूषन प्रीतम उर अवनी ॥
नव नव भाय विलोभि भाम इम विहरत वर करनी ॥८॥
जै श्रीहित हरिवंश प्रशंसित श्यामा कीरत विशद घनी।
गावत श्रवनन सुनत सुखाकर विश्व दुरित दमनी ॥९॥[1]

उन्होंने इस पद में एक ही उपमान के द्वारा उपमेय को चमत्कृत किया है और शिख से लेकर नख तक के समस्त अङ्गों का वर्णन किया है। यह नख शिख वर्णन संक्षिप्त होते हुए भी सर्वाङ्गपूर्ण है।

हितहरिवंश की राधिका बड़ी चतुर है। वह मृगनैनी, गोरी और मन को आकर्षित करने वाली है। उसके स्तन श्रीफल (बिल्व) के समान, शरीर कंचन का सा और कटि केहरि की सी है। वह गुणों की समुद्र है। उसकी बेनी भुजङ्ग के समान, मुख चन्द्र के समान, जंघा केले के समान और गति हंस के समान है।[2]

किशोरी राधा चतुरता की राशि है—

---

१. श्रीहित चौरासीजी–पद २९

२. अति नागरि वृषभानु किशोरी।
सुनि दूतिका चपल मृगनैनी आकर्षत चितवत चित गोरी ॥१॥
श्री फल उरज कंचन-सी देही, कटि केहरि, गुण सिंधु झकोरी।
बेनी भुजंग, चन्द्रसत बदनी, कदलि जंघ जलचर गति चोरी ॥२॥
सुनि हरिवंश आज रजनी मुख बन मिलाइ मेरी निज जोरी।
यदपि मान, समेत भामिनी सुनि कत रहत भली जिय भोरी ॥३॥
श्रीहित चौरासीजी–पद ४३

नागरता की रासि किशोरी ।
नव नागरकुलमौलि सांवरो बरवस कियौ चितै मुख मोरी ॥१॥
रूप रुचिर अंग-अंग माधुरी, बिनु भूषण भूषित ब्रज गोरी ।
छिन-छिन कुशल सुधंग अग में, कोक रमस रस सिंधु झकोरी ॥२॥
चंचल रसिक मधुप मोहन मन राखे कनक कमल कुच कोरी ।
प्रीतम नैन जुगल खंजन खग बांधे विविध निबंधन डोरी ॥३॥
अवनी उदर नाभि सरसी में मनों कछुक मादिक मधु घोरी ।
जै श्री हित हरिवंश पिवत सुन्दर वर सींव सुदृढ़ निगमनि की तोरी ॥४॥[1]

राधिका सुन्दरता की तो सीमा है। उस नागरी को देख नवीन कदम्ब वृक्ष भी नीचे को गर्दन झुका देते हैं। यदि कोई करोड़ों कल्प तक जीवे और उसे करोड़ों जिह्वायें प्राप्त होवें तब भी वह सुन्दर मुखारविन्द की शोभा का वर्णन नहीं कर सकता। उसके अंग-अंग की सहज माधुरी की समता किसी से भी नहीं की जा सकती। जिसके भ्रू विलास के वशीभूत हो रस-सागर कृष्ण साधारण पशु के सदृश दिन व्यतीत करते हैं।[2] श्यामा-श्याम का नया नेह, नवरङ्ग और नया रस देखिये—

नयो नेह नव रंग नयो रस नवल श्याम वृषभानु किशोरी ।
नव पीताम्बर नवल चूनरी नई-नई बूंदन भीजत गोरी ॥१॥
नव वृन्दावन हरित मनोहर नव चातक बोलत मोर-मोरी ।
नव मुरली जु मलार नई गति श्रवन सुनत आये घन घोरी ॥२॥
नव भूषण नव मुकुट विराजत नई-नई उरप लेत थोरी-थोरी ।
जै श्रीहित हरिवंश असीस देत मुख चिरजीवी भूतल यह जोरी ॥३॥[3]

---

१. श्रीहित चौरासी–पद ८२
२. देखो माई सुन्दरता की सींवां ।
ब्रज नव तरुनि कदंब नागरी निरखि करत अध ग्रीवां ॥१॥
जो कोऊ कोटि कलप लगि जीवै, रसना कोटिक पावै ।
तऊ रुचिर वदनारविंद की शोभा कहत न आवै ॥२॥
देव लोक, भू लोक, रसातल सुनि कवि कुल मति डरिये ।
सहज माधुरी अङ्ग-अङ्ग की, कहि कासौं पटतरिये ॥३॥
जै श्रीहित हरिवंश प्रताप, रूप, गुण, वय बल श्याम उजागर ।
जाकी भ्रू विलास बस, पसुरिव दिन विथकित रस सागर ॥४॥
श्रीहित चौरासीजी–पद ५२
३. श्रीहित चौरासीजी–पद ५४

हितहरिवंश की राधिका का किशोरी वधू के रूप में षोडश शृंगार से युक्त-स्वरूप देखिये—

रुचिर राजत वधू कानन किशोरी ।
सरस षोडश किये, तिलक मृगमददिये,
मृगज लोचन, उबटि, अङ्ग शिद खोरी ॥१॥
गंड पंडीर मंडित, चिकुर चंद्रिका-
मेदिनी कवरि गूंथित सुरंग डोरी ।
श्रवन ताटङ्क कै, चिबुक पर बिंदु दै-
कसूंमि कंचुकि दुरै उरज फल कोरी ॥२॥
वलय कंकन दोति, नखनि जावक जोति,
उदर गुन रेख, पट नील, कटि थोरी ।
सुभग जघनस्थली, क्वनित किंकिनि भली,
कोक संगीत रस सिंधु झक-झोरी ॥३॥
विविध लीला रचित रहसि हरिवंश हित,
रसिक सिर मौर राधारमन जोरी ।
भृकुटि निर्जित मदन, मंद सस्मित वदन,
किये रस-विवस घनश्याम पिय गोरी ॥४॥[1]

हित हरिवंश ने सुकुमारी, चतुर शिरोमणि, रूप की राशि, वृषभानु दुलारी का शृंगारिक वर्णन इस प्रकार किया है—

आवति श्री वृषभानु दुलारी ।
रूप राशि अति चतुर शिरोमनि अंग-अंग सुकुमारी ॥१॥
प्रथम उबटि, मज्जन करि, सज्जित नील-बरन तन सारी ।
गुंथित अलक, तिलक कृत सुंदर, सेंदुर मांग संवारी ॥२॥
मृगज समान नैं अंजन जुत, रुचिर रेख अनुसारी ।
जटित लवंग ललित नासा पर, दसनावलि कृतकारी ॥३॥
श्री फल उरज, कसूंभी कंचुकी कसि, ऊपर हार छवि न्यारी ।
कृस कटि, उदर गंभीर नाभिपुट, जघन नितम्बनि भारी ॥४॥
मानो मृनाल भूषन भूषित भुज श्याम अंस पर डारी ।
जै श्रीहित हरिवंश जुगल करनी गज विहरत बन पिय प्यारी ॥५॥[2]

मोहन के हेतु वृषभानु नन्दिनी विविध प्रकार के भूषण वस्त्र पहनकर साज-सजाती हैं। उसके हाव भाव, लावण्य, भृकुटि तथा लट युवती समूह के गर्व का अपहरण करते है। नूपुर तथा किंकिणी बजकर ताल भेदों के स्वर की सूचना देते है।[1] गोवर्द्धनलाल को भी राधिका का ही ध्यान है। वह श्याम तमाल पर उलझी हुई कनक लता सी सुशोभित होती है। गौरी गान से वह गोपाल को रिझाती है। उसे कंचन का शरीर मिला है।[1] राधा और मोहन की कैसी सुन्दर जोड़ी बनी हुई है—

बनी श्री राधा मोहन की जोरी।
इन्द्रनीलमणि श्याम मनोहर, सात कुम्भ तनु गोरी ॥१॥
भाल विशाल तिलक हरि, कामिनि चिकुर चंद्र बिच रोरी।
गज नायक प्रभु चाल, गयंदनि गति वृषभानु किशोरी ॥२॥
नील निचोल जुवति मोहन पट पीत अरुण शिर खोरी।
जै श्रीहित हरिवंश रसिक राधापति सुरत रंग में बोरी ॥३॥[2]

नागरी राधिका और कृष्ण की जोड़ी सुन्दर लगती है। उनके अंग-प्रंग में माधुर्य छाया हुआ है। मंडली जुरी हुई है, सरस रास में लास नृत्य हो रहा है। वे कृष्ण से गले मिलकर और बाहुदंड से अंस स्पर्शकर क्रीड़ा कर रही है। नूपुर और किंकिणी के सुन्दर शब्द हो रहे है और उनकी चाल बड़ी सुन्दर है। कनक अंग वाली राधा और श्याम द्युति वाले कृष्ण सुन्दर कुञ्ज में विशद वेश धारण कर विहार कर रहे है। राधा कृष्ण के साथ ऐसी प्रतीत होती है मानों रात्रि के समय शरद की चन्द्रिका छाई हुई हो। वह अरुण और पीले वस्त्र धारण किए हुए, अनुपम अनुराग में सनी हुई है। सुगंधित, शीतल मंद पवन के सदृश उनकी चाल है।

---

१. तेरोई ध्यान राधिका प्यारी गोवर्द्धन धर लालहि।
कनक लता सी क्यों न विराजत अरुझी स्याम तमालहि॥
गोरी गान सुतान तान गहि रिझवत क्यों न गुपालहि।
यह जोबन कंचन तन ग्वालिनि गरब होत यह कालहि॥
श्री स्फुट पदावली–पद १७

२. श्रीहित चौरासी–पद ८

वह कोमल पत्तों से शैया की रचना करती है, प्रिय के लिये चाटुकारी वचन बोलती है और प्रतिक्षण मान युक्त है।[1]

शरद-रात्रि की चन्द्रिका में सुन्दर कुञ्ज में श्याम के साथ क्रीड़ा करते हुए राधिका के रूप को देखिये—

आज बन क्रीडत श्यामा श्याम।
सुभग बनी निशि शरद चांदनी रुचिर कुञ्ज अभिराम ॥१॥
खंडन अधर करत परिरम्भन ऐंचत जघन दुकूल।
उर नख पात तिरीछी चितवनि, दंपति रस समतूल ॥२॥[2]

राधिका के नेत्र चंचल हैं और कनक तन में यौवन का पदार्पण है, ओठ निरंग, बाल बिखरे हुये और कपोल पीक से रंगे हैं। उसके ऊपर पीत वस्त्र धारण कर रखा है। दोनों स्तनों पर नख रेख ऐसी प्रतीत होती है मानो शंकर के मस्तक पर चन्द्र रेखा हो। उनके वचन आलस युक्त है।[3] हितहरिवंशजी ने विविध

---

१. मंजुल कल कुञ्ज देश, राधा हरि विशद वेश,
राका नभ कुमुद बंधु शरद जामिनी।
श्यामल दुति कनक अङ्ग, विहरत मिलि एक संग,
नीरद मणि नील मध्य लसत दामिनी ॥१॥
अरुण पीत नव दुकूल, अनुपम अनुराग मूल,
सौरभयुत शीत अनिल मंद गामिनी।
किसलय दल रचित सैन, बोलत पिय चाटु बैन,
मान सहित प्रति पद प्रतिकूल कामिनी ॥२॥
मोहन मन मथत मार, परसत कुच नीवि हार,
वेपथुयुत नेति नेति वदति भामिनी।
नर वाहन प्रभु सुकेलि, बहुविधि भर भरत झेलि,
सौरत रस रूप नदी जगत पावनी ॥३॥
श्रीहित चौरासीजी–पद ११

२. श्रीहित चौरासीजी–पद ३२

३. राधा प्यारी तेरे नैन सलोन।
तें निज भजन कनक तन जोवन लियो मनोहर मोल ॥१॥
अधर निरंग, अलक लट छूटी, रंजित पीक कपोल।
तू रस मगन भई नहिं जानत, ऊपर पीत निचोल ॥२॥
कुच जुग पर नख रेख प्रगट मानो शंकर सिर शशि टोल।
श्री हित हरिवंश कहत कछु भामिनि अति आलस सों बोल ॥३॥
श्रीहित चौरासीजी पद–२३

अंगों के वर्णन के साथ ही नेत्र वर्णन बहुत सुन्दर किया है जिनकी समता सूर के नेत्र वर्णन से की जा सकती है। राधिका के नेत्र खंजन, मीन और मृगज के भी मान को मर्दन करने वाले हैं वे बंक, निशंक, चपल, अनियारे, अरुण, श्याम और श्वेत हैं।[1] राधा कृष्ण के साथ केलि करती और झूलती है।[2] राधिका व्रज युवतियों के समूह में रूप, चतुराई, शील, शृंगार और गुण में सबसे श्रेष्ठ है।[3] सुजान राधिका के हेतु श्याम कालिन्दी तट पर रास रचते हैं।[4] राधा नृत्य करती है।[5] वृषभानु नन्दिनी के नन्दनन्दन के मन में मोद उपजाते हुए, नृत्य सागर को भरते हुए विविध प्रकार के हाव-भाव देखिए—

---

१. खंजन, मीन, मृगज मद मेटत कहा कहौं नैनन की बातैं।
सुनि सुन्दरी कहाँ लौं सिखई मोहन वसन करन की घातैं॥१॥
बंक, निशंक, चपल, अनियारे, अरुण, स्याम, सित रचे कहाँ तैं।
डरत न हरत परायो सर्वस मदु मधु मिय मादिक दृग पातैं॥२॥
श्रीहित चौरासीजी-पद ७३

२. झूलत दोऊ नवल किशोर।
रजनी जनित रंग गुन सूचत अङ्ग-अङ्ग उठि भोर॥१॥
श्रीहित चौरासी-पद ३५

३ आज नीकी बनी राधिका नागरी।
ब्रज जुवति जूथ में रूप अरु चतुरई सील
सिंगार गुन सबन तें आगरी॥१॥
कमल दक्षिण भुजा, बाम भुज अंस सखि,
गावती सरस मिलि मधुर स्वर राग री।
सकल विद्या विदित रहसि हरिवंश हित—
मिलत नव कुंज वर स्याम बड़ भागरी॥२॥
श्रीहित चौरासीजी-पद ३५

४. बनहि राधिके सुजान, तेरे हित सुख निधान,
रास रच्यो स्याम तट कलिंद नंदिनी।
श्रीहित चौरासीजी-पद १७

नृत्यत नागर नवल किशोरी।
श्रीहित चौरासी-पद १८

है।[1] हितहरिवंश ने राधिका और कृष्ण को दम्पति रूप में भी चित्रित किया है। यह दम्पति युगल रंग के रस में ही नहीं पगे अपितु कंधों पर भुजा दिये हुए एक दूसरे के नैनों की ओर चकोर की भाँति देखते हैं। युगल रङ्ग और हाव भाव से अङ्ग-अङ्ग से भरी, माधुर्य तरंग से भी करोड़ों कामदेवों को मथने वाली, अति उदार कुँवरि राधिका कोक कला में प्रवीण निकुंज भवन में नवीन पत्तों से शैया रचती है। कवि ने कोमल कमल के पत्तों की सेज पर मधुर मिलन का स्वरूप इस प्रकार चित्रित किया है—

नवल नागरि, नवल-नागर-किशोर मिलि,
कुंज कोमल कमल दलनि सिज्या रची।
गौर स्यामल अंग रुचिर तापर मिले
सरस मणि नील मनों, मृदुल कंचन खची ॥१॥
सुरत नीवी निबन्ध हेत प्रिय मानिनी प्रिया की
भुजनि में कलह मोहन मची।
सुभग श्रीफल उरज पानि परसत रोष
हुँकार गर्व दृग भंगि भामिनि लची ॥२॥
कोक कोटिक रभस रहसि हरिवंश हित
विविध कल माधुरी किमपि नाहिन बची।
प्रणय मय रसिक ललितादि लोचन चषक
पिवत मकरंद सुख राशि अंतर सची ॥३॥[2]

कवि उसको मान मोचन के लिए मनाता है। दीन, सुन्दर, सुघर, नवीन

---

१ नागरि निकुंज ऐन, किसलय दल रचित सैन,
कोक-कला-कुशल कुँवरि अति उदार री।
सुरत रंग अङ्ग-अङ्ग, हाव भाव भृकुटि भंग,
माधुरी तरङ्ग मथत कोटि मार री ॥१॥
श्रीहित चौरासी-पद ७६

२. श्री हित चौरासी—पद ५९

प्राण वल्लभ उनके वचनों के अधीन हो इतना क्यों करते हैं। प्रतिक्षण हरि उसके नाम को जपते हैं और मन से उसके ध्यान को एक क्षण भी नहीं टालते।[1]

श्रीहित हरिवंश ने राधा का शृङ्गारिक, केलिमग्न, रसमय स्वरूप चित्रित किया है परन्तु उसके मधुर-मिलन में एकत्व की भावना है। श्यामल कृष्ण और गौर राधा में वे कोई अन्तर नहीं मानते। जो कुछ कृष्ण करते हैं वही राधा को भाता है और जो राधा को भाता है वही कृष्ण करते हैं। श्री हितहरिवंश का राधा का नेत्र वर्णन एवं विविध अङ्ग वर्णन ही सुन्दर नहीं बन पड़ा अपितु षोडश शृङ्गार में भी उनका चित्त रमा है। उनकी नागरी राधिका कृष्ण के साथ कुञ्ज में विहार एवं क्रीड़ायें ही नहीं करती रंग में भी भरी है। वह कृष्ण के साथ सुशोभित है। राधा कृष्ण का युगल रूप कवि को भाता है। राधा कृष्ण के साथ झूला झूलती, गाती, नृत्य करती और रास रचाती है। वह सुरत रंग में रंगी, कामकला-प्रवीण, कोमल किसलयों से शैया रचती और कृष्ण वल्लभ के साथ अलौकिक रूप से रमण कर रसानन्द लेती है। कृष्ण उसके आधीन हैं। वह कृष्ण से विलग नहीं, दोनों एक ही स्वरूप हैं। वे जल और तरंग के समान एक है। इस प्रकार उन्होंने दोनों की एकता स्थापित कर, युगल रूप के सौन्दर्य का पान करा, राधा को ही प्रधान बताया है।

श्री सेवक जी (दामोदरदास जी)

राधावल्लभ सम्प्रदाय की अनेक वाणियों में सेवकजी का वर्णन मिलता है परन्तु भगवत मुदित ने तथा श्री उत्तरदास ने 'अपने रसिक अनन्यमाल' तथा प्रियादास ने अपने 'सेवक चरित्र' में विस्तृत वर्णन किया है। श्री भगवत मुदित ने ६७ पदों में विस्तार से सेवकजी के जीवन पर प्रकाश डाला है और उत्तमदासजी ने २१ पदों में समस्त जीवन का वर्णन किया है। सेवकजी ने हित को अपना मानस गुरु बना लिया था। उन्होंने श्रीहित चौरासीजी के पदों के गूढ़ मर्म को समझा और

---

१. छाँड़ि दै मानिनी मान मन धरिबौ।
प्रणत, सुंदर, सुघर, प्राण वल्लभ नवल,
वचन अधीन सौं इतौ कत करिबौ ॥१॥
जपत हरि दिवस तव नाम प्रति पद विमल,
मनसि तव ध्यान तें निमिष नहिं टरिबौ।
धरत पल-पल सुभग सरद की जामिनी—
भामिनी सरस अनुराग दिसि ढरिबौ ॥२॥
श्रीहित चौरासी–पद ८३

श्री हरिराम व्यास

व्यासजी का वर्णन नाभाजी के भक्तमाल, भगवत् मुदित के 'रसिक अनन्य-माल' तथा उत्तमदासजी के 'रसिक माल' में विस्तृत रूप से मिलता है। व्यासजी संस्कृत भाषा के भी पंडित थे। इनके नाम से दो संस्कृत ग्रन्थ 'नवरत्न' और 'स्वधर्मपद्धति' विख्यात हैं। हिन्दी में 'रागमाला' नामक एक संगीत शास्त्र ग्रन्थ है। यह अप्रकाशित है इसमें ६०४ दोहे हैं। व्यासजी की व्यास वाणी प्रकाशित है। व्यास वंशीय श्रीराधाकिशोर गोस्वामी ने समस्त व्यास वाणी को दो भागों में विभक्त किया है—सिद्धान्त-रस-विषय तथा शृङ्गार-रस-विषय। सिद्धांत-रस विभाग को ३७ प्रकरणों में बाँटा है और शृङ्गार रस-विभाग को ७१ प्रकरणों में बाँटा है। श्रीहित राधा वल्लभीय वैष्णव महासभा द्वारा प्रकाशित व्यासवाणी पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भागों में मुद्रित हैं। पूर्वार्द्ध में 'सिद्धांत रस' सम्बन्धी पद हैं। इसमें २९४ पद और १४६ साखी (दोहे) हैं। उत्तरार्द्ध में शृङ्गार रस विहार सम्बन्धी पद हैं जिनकी संख्या ३०१ है। इस व्यास वाणी की भूमिका में पद-संख्या एक सहस्र तक लिखी है। श्रीवासुदेव गोस्वामी के 'भक्त कवि व्यासजी' नामक ग्रन्थ में तीसरी व्यासवाणी प्रकाशित है। इसके कुल पदों की संख्या ७५७ है। रास पंचाध्यायी के ३० पद पृथक हैं। साखी के १४८ दोहे भी इनसे पृथक् हैं। डा० विजयेन्द्र स्नातक का कथन है, 'व्यासजी का समस्त उपलब्ध साहित्य दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम भाग में उनकी समस्त माधुर्य-परक सैद्धांतिक पदावली को स्थान मिलेगा जिसमें राधा, कृष्ण, सहचरी, वृन्दावन, निकुंज लीला, नित्य विहार, राधावल्लभ जुगलकिशोर उपासना आदि का वर्णन है। इसमें ही हम उन पदों को स्थान देंगे जिनके लिए शृङ्गार रस नाम व्यवहृत किया गया है। यथार्थ में व्यासजी की शृङ्गार भावना नायक-नायिका भेद की लौकिक शृङ्गार रचना नहीं है, उनका शृङ्गार तो माधुर्य भक्ति का तात्त्विक विवेचन है जिसे हम सिद्धांत या रसदर्शन का प्रधान अङ्ग मानते हैं। दूसरे भाग में उनके वे पद या साखियाँ आती हैं जिनमें उन्होंने जीवन के व्यवहार पक्ष का आकलन करते हुए सांसारिक दृष्टि से वस्तुओं का विश्लेषण-विवेचन किया है। इनमें व्यवहार पक्ष की प्रधानता है। सूक्ष्म, सैद्धांतिक अवगाहन से दूर रहकर लौकिक धरातल पर ही व्यासजी ने अपनी बात कही है।'[1]

राधावल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी श्रीहरिराम व्यासजी ने राधा को सम्पूर्ण तत्त्वों का सार माना है। उनका कथन है कि राधा नाम की महिमा का पार पाने

१. राधा वल्लभ सम्प्रदाय सिद्धांत और साहित्य—डा० विजयेन्द्र स्नातक, पृ० ३८५

के लिए कृष्ण ने अनेक लीलायें की इसलिए ही व्यासजी ने उस परम ध
श्रीमद्भागवत में गोपनीय ही रखा। उन्होंने राधा नाम की स्तुति इस
की है—

परम धन राधा नाम अधार।
जाहि स्याम मुरली में टेरत, सुमिरत बारम्बार।
जंत्र, मंत्र अरु वेद-तन्त्र में, सबै तार कौ तार।
श्री सुक प्रकट कियौ नहिं यातें जानि सार कौ सार॥
कोटिन रूप धरें नन्दनन्दन, तौऊ न पायौ पार।
'व्यासदास' अब प्रगट बखानत, डारि भार में भार॥[1]

ऐसी वैभवशालिनी राधा की कृपा पाकर व्यासजी को किसी का
नहीं। परमधन के गर्व के कारण उन्होंने लोकाचार, विधि-निषेध और
को छोड़कर मुक्ति का भी अनादर किया—

राधिका सम नागरी प्रवीण की नवीन सखी,
रूप, गुन, सुहाग, भाग आगरी न नारि।
ताके बल गर्व भरे, रसिक 'व्यास' से न डरे,
लोक, वेद, कर्म धर्म, छांड़ि मुकुति चारि॥[2]

राधा और कृष्ण सहज सनेही हैं। उनके दो देह होते हुए भी प्राण
उनके अङ्ग-अङ्ग में सहज माधुर्य छाया हुआ है और ऐसी सहज जोड़ी को
की व्यासजी की कामना है। कृष्ण राधा के प्रति नैसर्गिक रूप से आकृष्ट
राधा भी कृष्ण को सहज भाव से चाहती है—

राधा-मोहन सहज सनेही।
सहज रूप, गुन सहज लाड़िले, एक प्रान द्वै देही॥
सहज माधुरी अङ्ग-अङ्ग प्रति, सहज रची बन-गेही,
'व्यास' सहज जोरी सों मन मेरे, सहज प्रीति कर लेही॥[3]

एक प्राण और दो देह होते हुए भी गोरी राधा और श्यामल श्य
दोनों के वर्णन के साथ ही नेत्र वर्णन बहुत सुन्दर किया है जिनकी समता सूर ने

अङ्ग-अङ्ग में प्रेम-रंग समाया हुआ है।[1] एक प्राण और दो देह होते हुए भी उनका सहज स्नेह दुग्ध और जल के सादृश है। उनका कहना, रहना, गति, मति, रति एक हैं और प्रीति की रीति का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता।[2] राधा के मन में कृष्ण के प्रति और कृष्ण के मन में राधा के प्रति जो अनुराग है उनमें किसी प्रकार की स्वार्थ, कामना या वासना नहीं है।

दो शरीर और एक प्राण ही नहीं, प्रिया कृष्ण का जीवन है।[3] शृङ्गार धारण किए हुए राधा की उपमा किसी भी तरुणी से नहीं दी जा सकती।[4] व्यासजी राधाकृष्ण के स्वरूप की एकता स्थापित करते हुए बताते हैं कि राधा ने कृष्ण के प्रति कहा कि यदि तुम बड़े जीव हो तो मैं जीविका हूँ, यदि तुम नेत्र हो तो मैं उनकी पुतली हूँ, यदि तुम मन हो तो मैं उनकी मनसा हूँ। यदि तुम चित्त हो तो मैं चिन्ता हूँ। यदि तुम शरीर हो तो मैं अन्तर्यामी हूँ। यदि मैं धन हूँ तो तुम रखवाले हो। यदि मैं विषय हूँ तो तुम विषयी हो। यदि मैं भोग हूँ तो तुम भोगता हो। यदि मैं चन्द्रिका हूँ तो तुम चकोर हो। यदि मैं घन हूँ तो तुम चातक हो। यदि मैं कमल हूँ तो तुम भ्रमर हो। यदि मैं जल हूँ तो तुम मेरे आधीन मीन हो—

कबहुँ अब न रुसिहौं प्यारे।
सदा तूठि हौं सुख दै प्रीतम, कृतिहिं न मानत कारे॥
तुम बड़ जीव, जीविका हौं, पिय ! तुम अंखियां, हौं तारे।
तुम मन, हौं मनसा, तुम चित, हौं चिंता प्रान-पियारे॥
तुम सरीर, हौं अन्तर जामी, हौं धन, तुम रखवारे।
तुम विषई, हौं विषय, भोगता तुम, हौं भोग सलारे॥

१. एक प्रान द्वै देही, सहज सनेही, गोरे-सांवरे।
प्रीत-रंग अंग-अंग रचे हो, ज्यों हरदी-चूनो मिलि अरु रचत आंवरे॥
भक्त कवि व्यासजी—वासुदेव गोस्वामी, पद ३८२

२. हम तन एक प्रान द्वै देही, सहज सनेही ज्यों पय पानी।
कहनि, रहनि, गति, मति, रति एकै, प्रीति-रीति क्यों जाति बखानी।
भक्त कवि व्यासजी—वासुदेव गोस्वामी, पद ४५६

३. पिया उरची जानि वपु दो, प्रान एक सहज सदा।
भक्त कवि व्यासजी—वासुदेव गोस्वामी, पद ४५६

४. एक प्रान द्वै देह रीति यह, प्रीति सबनि सों तोरी जु।
सहज सिंगार लाड़िली सुंदरि, उपमा नागरि को है जु।
भक्त कवि व्यासजी—वासुदेव गोस्वामी, पद ४५४

हौं चाँदिनी, चकोर तुम हौ, हम घन, तुम चातक वर न्यारे ।
हौं जलरुह, तुम अलि, हौं जल, तुम मीन अधीन हमारे ॥
हम-तुम वृन्दावन की संपत्ति, दंपति सहज सिंगारे ।
'व्यासदासि' रस-रासि हमारी, लूटत कोटि बिसारे ॥[1]

श्रीराधा कृष्ण के हृदय से नहीं टलती । उनके अङ्ग रूप की राशि हैं ।[2] वह हरि की जीवन-धन है और उसके बिना उन्हें कहीं शरण नहीं है ।[3] उनके दर्शन के लिए ही कृष्ण बहुत अकुलाते है । कुञ्जों में भटकते हुए उनकी रात्रि नहीं व्यतीत होती और बिलपते हुये समय नहीं व्यतीत होता । श्रीराधा और कृष्ण की वंदना करते हुए व्यासजी का निवेदन है कि उनके तन और मन एक हैं तथा रागिनी और राग की भाँति अनेक रंग भरे हुए हैं—

वंदों श्री राधा-हरि का अनुराग ।
तन मन एक, अनेक रंग भरे, मनहु रागिनी राग ॥[4]

जिस राधा को गौड़ीय सम्प्रदाय में आवेग की उत्कर्षता के लिये परकीया भाव से माना है उसे ही व्यासजी ने स्वकीया रूप में ग्रहण किया है । व्यासजी का स्पष्ट शब्दों में कथन है कि जो राधा श्याम की दुलहिन है और जिसका वृन्दावन के समान घर है उसकी उपमा किससे दी जावे ।[5] उन्होंने राधा को श्याम की दुलहिन बनाया है—

सहज दुलहिनी श्रीराधा, सहज सांवरो दूलहु ।
सहज व्याह वृन्दावन, निरखि-निरखि किनि फूलहु ॥[6]

लाड़िली दुलहिन लाल को करोड़ों प्राणों से भी प्रिय है—

---

१. भक्त कवि व्यासजी—वासुदेव गोस्वामी, पद ५५४
२. पिय के हियतें तू न टरति री ।
   ×   ×   ×
   यद्यपि रूप-रासि तेरे अंग, निरखत आँखि जरति री ।
   भक्त कवि व्यासजी—वासुदेव गोस्वामी, पद ४७६
३. तू जीवन-धन भूषन हरि के तो बिन सरन न आन ॥
   भक्त कवि व्यासजी—वासुदेव गोस्वामी, पद ५२८
४.   ,,   ,,   पद ३०२
५. स्यामहिं उपमा दीजे काकी ।
   वृन्दावन सो घर है जाको, राधा दुलहिन ताकी ॥
   भक्त कवि व्यासजी—वासुदेव गोस्वामी पद ३६

विहरत वृन्दा विपिन विहारी।
दूलहु लाल, लाड़िली दुलहिन, कोटि प्रान तें प्यारी ॥[1]

दूलह और दुलहिन एक साथ सुशोभित होते हैं।[2] रथ पर चढ़कर आते हुये नन्दलाल और वृषभानु-नन्दिनी नवीन रूप धारण किये हुए हैं—

रथ चढ़ आवत गिरिधर लाल।
नव दुलहिन वृषभान-नन्दिनी नव दूल्हे नन्दलाल ॥
× × ×
नव दुलही वृषभान-नन्दिनी (नव) दूल्हे नंद-कुमार ॥[3]

श्याम और राधा दोनों दम्पति स्वरूप में वृन्दावन में क्रीड़ा करते हैं—

दंपति को सो रूप-भेष धरि, द्वै सहचरि वृन्दावन खेलति।
एक स्याम, दूजी राधा ह्वै, मनसिज-बस कंठनि भुज मेलति ॥[4]

गोपिकाओं की सहचरि राधा वृन्दावन की रानी है[5]—

श्री वृषभानु किसोरी सुंदरि, वृन्दावन की रानी जू।
चन्द वदन चंपक-तन गोरे, 'स्याम-घरनि' जग जानी जू ॥[6]

व्यासजी ने पाँच सौ उनतालिसवें पद में राधा-कृष्ण की विवाह लीला का वर्णन किया है। इस पद में नंद और वृषभानु के बीच सगाई सम्बन्ध की चर्चा से लेकर विवाह की समस्त लौकिक एवं वैदिक रीतियों का उल्लेख एवं कंकण खोलने तक का पूर्ण वर्णन है। राधा रसिकों की निधि है।[7] जब राधा मोहन के सन्मुख हो भृकुटि की ओर निहारती है तो उस छवि का कोई वर्णन नहीं कर सकता।[8] वह

---

१. भक्त कवि व्यासजी—वासुदेव गोस्वामी, पद ५६८
२. राजत दुलहिनि-दूलह संग।
भक्त कवि व्यासजी—वासुदेव गोस्वामी, पद ६४३
३. ,, ,, पद ७४८
४. ,, ,, पद ४८६
५. श्री राधा रानी, सहचरि गोपी, सुख पुंजनि बरषत।
भक्त कवि व्यासजी—वासुदेव गोस्वामी, पद ७३
६. ,, ,, पद ५६५
७. छबि छिन रसिकनि की निधि राधा, 'व्यासहिं' सुख दिखरावति।
भक्त कवि व्यासजी—वासुदेव गोस्वामी, पद ६६६
८. वह छवि को कवि कहा कहै।
जब राधा मोहन सन्मुख ह्वै, भृकुटि-विलास लहै। पद [illegible]

नागरी राधा सौन्दर्य की राशि है जिसे देखते ही नेत्र शीतल हो जाते हैं। जब वह प्रसन्न होकर बात करती है तो उसके अङ्गों पर करोड़ों कामदेवों को न्यौछावर किया जा सकता है।[1] उसके अंग अतीव सुन्दर हैं।[2] राधा के रूप वर्णन करने में व्यासजी असमर्थ हैं। उनका कथन है कि यदि रोम-रोम में वे जिह्वा प्राप्त करें तो उनके गुणों का गान कर तृप्त होवें।[3] राधिका के समान और कोई नहीं है।[4] राधा के स्वरूप को देखिये—

जयति नव-नागरी, कृष्न-सुख-सागरी,
सकल गुन-आगरी, दिनन भोरी।
जयति हरि-भामिनी, कृष्न-घन-दामिनी,
मत्त गज-गामिनी, नव किसोरी ॥
जयति पिय-केलि हित, कनक नव वेलि सम,
कृष्न कल कलप निसि मिलि विलासिनी।
जयति वृषभान-कुल-कुमुद-बन-कुमुदिनी,
कृष्न-मुख हिमकर निरख प्रकासिनी ॥
जयति गोपाल मन-मधुप नव मालती,
जयति गोविंद–मुख–कमल–भृङ्गी।
जयति नंदनंदन-उर परम आनंद-निधि,
लाल गिरिधरन पिय-प्रेम-रंगी ॥
जयति सौभाग्य-मनि, कृष्न-अनुराग-मनि,
सकल तिय मुकट–मनि सुजस लीजे।
दीजियै दान यह 'व्यास' निज दास कौं,
कृष्न सौं बहुरि नहि मान कीजै ॥[5]

---

१. सुंदरता की रासि नागरी, देखत नैन सिरात।
अंगनि कोटि अनङ्ग वारियतु-विहँसि कहत जब बात ॥
भक्त कवि व्यासजी—वासुदेव गोस्वामी, पद ४२६

२. सुनि राधे तेरे अंगनि पर सुंदरता न बची। ,, पद ४२५

३. रूप तेरो री, मोपै बरन्यो न जाइ।
रोम-रोम जो रसना पावौं, तौ गाऊं तेरो गुन अघाइ ॥ ,, पद ४२४

४. तेरे रूप-रंग-रस चितु चहूंद्यो, तो सी कौन जाहि मन दीजे।
तो सी तुही तातें 'व्यास' की स्वामिनि, कंठ लागि अधरामृत पीजे ॥
भक्त कवि व्यासजी—वासुदेव गोस्वामी, पद ४१८

,, पद ३०१

चन्द्रिका शीतल और सुख देने वाली है जिसे नंदकिशोर पीने नहीं अघाते।[1] उनके सब अङ्ग कोमल होते हुए भी उरज कठोर हैं।[2] जो सब अङ्गों के नायक हैं।[3] कवि ने उनके काले होने का कारण यह बताया है कि ये पिय के नेत्रों में बसते हैं और पिय के नेत्रों के तारे हैं।[4] गोरी राधा के चरण भी गोरे हैं जिन्हें श्याम काम-वश हाथ में पकड़कर कंठ से लगाते हैं।[5] राधा का समस्त शरीर ही सुन्दर है।[6] उनका मुख ऐसा सुन्दर है कि मानों समस्त उपमाओं का रूप और शृङ्गार छुड़ा लिया हो।[7] कृष्ण राधा का शृङ्गार भी करते हैं। राधा का आलंकारिक षोडश शृंगारिक स्वरूप देखिए—

आजु बनी वृषभानु दुलारी।
अङ्गराग भूषन पट रचि रुचि, मोहन अपने हाथ सिंगारी॥
चिकुरनि चंपकली गुहि बैनी, डोरी रोरी माँग सँवारी।
मृगज बिंदुजुत, तिलक इन्दु छवि, झलकत अलक, मनहु अलिनारी॥
स्रवननि खुटिला खुभी झलमली, नैननि अंजन-रेख अन्यारी।
नासापुट लटकनि नकबेसरि, भौंह तरङ्ग भुजङ्गनि कारी॥
मंदहास बसि बलि दामिनि, जलधर-अधर कपोल सुदारी।
कंठ पोति, उर-हास, चारु कुच, गुरु नितम्ब जघनि अति भारी॥

---

१. राधा बदन चंद्रमा की जुन्हाई, सीतल सुखदाई।
नंदकिसोर-चकोर पियतु हू, अजहू पूजी न अघाई॥
भक्त कवि व्यासजी—वासुदेव गोस्वामी, पद ३५०

२. सर्व अङ्ग कोमल उरज कठोर। ,, ,, पद ३५०

३. सब अङ्गनि के हैं कुच नाइक। ,, ,, पद ३५५

४. याही तें माई कुचनिके और भये कारे।
ये पिय के नैननि में बसत, इनकों पिय के तारे॥
,, पद ३५६

५. सुभग गोरी के गोरे पाइ।
स्याम काम-बस जिनहिं हाथ गहि, राखत कंठ लगाइ॥ ,, पद ३६०

६. आजु अति सोभित सुंदर गात। ,, पद ३६३

७. देखि सखी, राधा मुख चारु।
मनहुँ छिड़ाइ लियौ इनि सब उपमनि कौ रूप-सिंगारु॥
भक्त कवि व्यासजी—वासुदेव गोस्वामी पद ३६६

क्रीडत कुंज कुटीर किसोर ।
कुसुम-पुंज रचि सेज हंस मिलि बिछुरि न जानत भोर ।।
स्याम काम बस-तोरि कंचुकी, करजनि गहि कुच-कोर ।
स्यामा मुंच-मुंच कहि, खण्डित गंड अधर की ओर ।।
नागर नीवी-बंधनि मोचत, चरन गहि करत निहोर ।
नागरि नेति-नेति कहि, कर सों कर पेलत गहि डोर ।।
मत्त-मिथुन मैथुन दोऊ प्रगटत, बरबट जोबन-जोर ।
'व्यास' स्वामिनी की छवि निरखत, भये सखि लोचन चोर ।।[1]

इन्होंने माधुर्य-भाव की भक्ति को विशेष रूप से अपनाया इसलिए शृंगार-रस सम्बन्धी पदों का बाहुल्य है । इनके पदों में शृंगार रस की अभिव्यंजना सुन्दर रूप से हुई है । इन्होंने राधा और कृष्ण को आश्रय-आलम्बन बनाकर शृङ्गार रस के समस्त उपादान प्रस्तुत किए हैं—

राधा और कृष्ण के रूप वर्णन में उत्प्रेक्षा और रूपक अलङ्कारों की भरमार है । इन्होंने राधा और कृष्ण के क्रीड़ा सम्बन्धी सुन्दर रूपक बाँधे हैं—

राधा हौं आधीन किसोर ।
गौर अङ्ग के रंग-सिंधु को, पावत नाहिन हरि आदि-ओर ।।
महामाधुरी अधर-सुधा-विधु-पियत, जियत उर चामुये कोर ।
मेघ सुदेस केसकुल देखत, नाचत गावत मोहन-मोर ।।
मान सरोवर ऊपर-निवसतु लाल-मराल कमल-कुच कोर ।
स्वेद-सलिल-सरिता महं विहरत, मीन मनोहर चंचल चोर ।।
बरषत मेह सनेह बूंदि चुनि, हरि-चातक मधु जोबन-जोर ।
'व्यास' नैन-चख लूटत दोऊ, छूटत नाहिन जानत भोर ।।[3]

राधिका कृष्ण के साथ सुन्दर लवंग लता की गलियों में वसन्त खेलतीं और सखियों की ओट से कृष्ण पर पिचकारी छोड़ती है ।[5] राधा के हृदय में कृष्ण के साथ रमते हुए कैसी अमोल प्रीति बढ़ रही है—

---

१. भक्त कवि व्यासजी—वासुदेव गोस्वामी, पद ५६७
२. ,, ,, पद ५५८
३. ,, ,, पद ४३६
४. खेलत राधिका-मोहन मिलि माई, आई री वसंत पंचमी ।
भक्त कवि व्यासजी—वासुदेव गोस्वामी, पद १७४ ।
५. वसंत खेलत विपिन-विहारी ।
ललित लवंग-लता-वीथिन में, संग बनी वृषभान-दुलारी ।।
ललित ओट दै कुंवरहिं छिरकति, राधा भरि पिचकारी ।
भक्त कवि व्यासजी— वासुदेव गोस्वामी, पद १५२

'तन सों तन, मन सों मन उरझ्यो, बाढी प्रीति अमोल।[1]

इस प्रकार व्यासजी ने राधा के कृष्ण के साथ होली खेलने, पुष्प रचना करने, जल क्रीड़ा करने तथा विहार करने के चित्र-चित्रित किये हैं जिनमें राधा के बाल क्रीड़ा भाव के साथ ही यौवन के रति भाव के भी दर्शन होते हैं। राधा के संयोग वर्णन में मानवती और खंडिता राधा के स्वरूप चित्रित किये हैं। राधा ही नहीं कृष्ण भी कामी हैं।[2] वन कुञ्जों में क्रीड़ा करते हुए श्यामा श्याम के साथ इन बेलियों की सेज पर विराजती है।[3] निविड़ निकुञ्ज के कुसुम पुंजों पर राधिका का श्याम के वाम पार्श्व में लेटते हुए स्वरूप निरखिए—

वाम कुंजधाम स्याम सुंदरी ललाम,
ललन विहरत अभिराम काम, भाग-भामिनी।
आनन्द कंद मंद पवन, सरदचन्द ताप-दवन,
जमुनाजल कमल विमल, जाम-जामिनी॥
सुरंग कुच, उतङ्ग अङ्ग, माधुरी तरंग रंग,
सुरत रंग, मान-भंग, काम-कामिनी।
मंदहास, भ्रू-विलास, मधुर बैन, नैन-सैन,
विवस करत पियहिं, 'व्यासदास' स्वामिनी॥[4]

अनुगामी है। डा० विजयेन्द्र स्नातक का कथन है, 'व्यासजी ने भी अपने पदों में नित्य किशोरी राधा और नित्य किशोर कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया है। राधा के रूप चित्रण में व्यासजी की पदावली अत्यधिक अलंकृत तथा अभिव्यंजना रीतिकालीन कवियों के समान हैं। रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि का सारा प्रपंच उसी शैली पर पल्लवित हुआ है। इस प्रसंग में राधा का नखशिख भी व्यासजी ने शृंगार पद्धति पर विशद विस्तार से उपस्थित किया है।'[1] व्यासजी ने राधा-वल्लभ सम्प्रदाय के अनुसार राधा को स्वकीया परकीया भेद विवर्जित माना है। नित्य मिलन के कारण हम कह सकते हैं कि उनकी राधा परकीया न होकर स्वकीया है। उन्होंने नित्य विहार की किसी स्थिति में विरह-भाव को ग्राह्य नहीं समझा। व्यास वाणी में संयोग शृंगार का ही विस्तृत चित्रण हुआ है। व्यासजी ने राधा माधव के प्रेमातिशय का वर्णन करने में अभिसार, मिलन, शय्याविहार, विहार, विपरीत रति, सुरत-केलि आदि के सुन्दर चित्र-चित्रित किए हैं—

चतुर्भुजदास

ध्रुवदास का कथन है कि इनकी भक्ति से समस्त देश पवित्र हो गया—

स्वामी चतुर्भुजदास की बानी अति गम्भीर।
परम भागवत अति भये भजन माँहि दृढ़ धीर॥[2]

चतुर्भुजदासजी का चरित्र श्री भगवत मुदित ने 'अनन्य रसिक माल' में १७५ पदों में लिखा है। श्री चतुर्भुजदासजी के ग्रन्थों का संग्रह 'द्वादश यश' है। इसकी हस्तलिखित पोथियाँ उपलब्ध हैं। इसमें बारह पृथक्-पृथक् यश हैं। इन्होंने फुटकर पद भी लिखे हैं। श्री बाबा बंशीदासजी (हित आश्रम वृन्दावन) के पास चतुर्भुजदास के पदों का एक विशाल संग्रह है। आपके द्वादश यश की टीका संस्कृत में भी हुई है। द्वादश यश में दसवाँ 'राधा सु प्रताप यश' है। इस यश में राधा के माहात्म्य का वर्णन है। राधा के नाम के स्मरण से परमसुख, अभयदान और परमधाम प्राप्त होता है।[3] राधा का निवास सदैव वृन्दावन में है। कृष्ण और राधा फणि मणि, जल और तरंग, सूर्य और धूप, छाया और वृक्ष के समान सदैव साथ रहते हैं। राधा का सामीप्य बड़ी कठिनता से प्राप्त होता है। महा प्रलय के समय हरि के शेष शैया ग्रहण करने पर वेदों ने स्तुति की और प्रभु ने उनकी

१. राधा वल्लभ सम्प्रदाय सिद्धांत और साहित्य—डा० विजयेन्द्र स्नातक, पृ० ३८६
२. भक्त नामावली लीला—ध्रुवदासजी कृत (ब्यालीस लीला) पृ० ३१
३. जो सुमिरै राधावर नाम, सब सुख सिन्धु बसै निज धाम॥

रसानन्द में राधा के रूप की मदिरता का वर्णन बड़ी आलंकारिक भाषा में है। व्रजलीला में कृष्ण राधा के मिलन का वर्णन है। जुगल-ध्यान में श्रीकृष्ण और राधा के बाह्यशृङ्गार का सम्मिलित रूप से वर्णन है। नृत्य विलास में राधा की नृत्य कामना का वर्णन है। मानलीला में राधा कृष्ण के प्रेम में सूक्ष्म मान का बोध कराया गया है। दान लीला में कृष्ण ने दीनता पूर्वक राधा से प्रार्थना की और राधा ने उन्हें रतिदान दिया। डा० विजयेन्द्र स्नातक ने अपने ग्रन्थ 'राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य' में ध्रुवदास जी के ग्रन्थों का पर्यालोचन करते हुए संक्षेप में उनका मूल्यांकन इस प्रकार किया है—

१. ध्रुवदास जी की वाणी राधावल्लभ सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का उद्घाटन करने वाली सबसे समर्थ और व्यापक वाणी है। परवर्ती महानुभावों ने आपकी वाणी के अनुशीलन द्वारा ही सैद्धान्तिक मर्म को हृदयगम किया। हितहरिवंश के भाष्यकार और व्याख्याकार के रूप में ध्रुवदास जी का स्थान मूर्धा पर है।

२. ध्रुवदास जी की वाणी में काव्य-सौष्ठव इतनी प्रचुर मात्रा में है कि कहीं-कहीं रीतिकालीन शृङ्गारी कवियों का साम्य परिलक्षित होता है। हित शृङ्गार लीला आदि ग्रन्थों में जो कवित्त और सवैये लिखे हैं उनका बाह्य-अभिधेयार्थ रीतिकाल के कवियों के समकक्ष ही है। शब्द-शक्ति, अलंकार, काव्य-गुण और भाषा का प्रवाह यह बताता है कि ध्रुवदास जी ने साहित्य-शास्त्र को विधिवत् परायण किया था। काव्य रूढ़ियों का भी आपकी वाणी में निर्वाह है। नायिका-भेद, नख-शिख, ऋतुवर्णन आदि रूढ़-परम्परा में ही लिखे गये हैं। दोहा—कवित्त, सवैया, छप्पय, कुण्डलियाँ और गेय पद-रचना पर आपका असाधारण अधिकार परिलक्षित होता है।

रसानन्द में राधा के रूप की मदिरता का वर्णन बड़ी आलंकारिक भाषा में है। व्रजलीला में कृष्ण राधा के मिलन का वर्णन है। जुगल-ध्यान में श्रीकृष्ण और राधा के बाह्यशृङ्गार का सम्मिलित रूप से वर्णन है। नृत्य विलास में राधा की नृत्य कामना का वर्णन है। मानलीला में राधा कृष्ण के प्रेम में सूक्ष्म मान का बोध कराया गया है। दान लीला में कृष्ण ने दीनता पूर्वक राधा से प्रार्थना की और राधा ने उन्हें रतिदान दिया। डा० विजयेन्द्र स्नातक ने अपने ग्रन्थ 'राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य' में ध्रुवदास जी के ग्रन्थों का पर्यालोचन करते हुए संक्षेप में उनका मूल्यांकन इस प्रकार किया है—

१. ध्रुवदास जी की वाणी राधावल्लभ सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का उद्घाटन करने वाली सबसे समर्थ और व्यापक वाणी है। परवर्त्ती महानुभावों ने आपकी वाणी के अनुशीलन द्वारा ही सैद्धान्तिक मर्म को हृदयगम किया। हितहरिवंश के भाष्यकार और व्याख्याकार के रूप में ध्रुवदास जी का स्थान मूर्धा पर है।

२. ध्रुवदास जी की वाणी में काव्य-सौष्ठव इतनी प्रचुर मात्रा में है कि कहीं-कहीं रीतिकालीन शृङ्गारी कवियों का साम्य परिलक्षित होता है। हित शृङ्गार लीला आदि ग्रन्थों में जो कवित्त और सवैये लिखे हैं उनका वाह्य-अभिधेयार्थ रीति-काल के कवियों के समकक्ष ही हैं। शब्द-शक्ति, अलंकार, काव्य-गुण और भाषा का प्रवाह यह बताता है कि ध्रुवदास जी ने साहित्य-शास्त्र को विधिवत् परायण किया था। काव्य रूढ़ियों का भी आपकी वाणी में निर्वाह है। नायिका-भेद, नख-शिख, ऋतुवर्णन आदि रूढ़-परम्परा में ही लिखे गये हैं। दोहा—कवित्त, सवैया, अरिल्ल, कुण्डलियाँ और गेय पद-रचना पर आपका असाधारण अधिकार परिलक्षित होता है।

३. नित्य विहार के मर्म को विशद विस्तार के साथ सर्वप्रथम ध्रुवदास ने ही प्रस्फुटित किया। निकुंज लीला का अन्य लीलाओं से भेद करने वाले भी आपही है।

भाषा और शैली वैविध्य की दृष्टि से इनकी रचना पर विचार किया जाय तो निस्सन्देह ये रीतिकालीन और भक्तिकालीन कवियों की शृंखला जोड़ने वाले स्म सिद्ध माने जायेंगे।"[1]

ध्रुवदास जी ने श्री राधिका की चरण वन्दना इस प्रकार की है—

कुँवरि किशोरी लाड़िली, करुनानिधि सुकुमारि।
बरनो वृन्दा विपिन को, तिनके चरन समारि॥[2]

नवल किशोरी और कुँवरि साथ नहीं छोड़ते, वे और किसी की ओर नहीं देखते। उनके दो तन होते हुए भी एक प्राण और मन हैं। उनका प्रेम नेत्रों के के सादृश है जैसे वे पृथक्-पृथक होते हुए भी एक ही रीति से देखते हैं—

नवल किशोरी कुँवरि की, सहजहि ऐसी बान।
ताको सङ्ग न छोड़ही, नेक सरन गहे आन॥
प्रीतम हू के प्राण यहे, प्रीति के बस ह्वै जाहि।
कोटि धर्म किन करो कोउ, तिन तन चितवत नाहिं॥
एक प्रान मन दोउ तन, अँखियन की सी प्रीति।
यद्यपि न्यारी रहत हैं, देखत एकहि रीति॥[3]

गौर और श्याम तन और मन से रंगे हुए हैं।[4] ध्रुवदास जी की राधिका सर्वोपरि है—

सर्वोपरि राधा कुँवरि, पिय प्रानिन के प्रान।
ललितादिक सेवत तिनहि, अति प्रवीन रस जानि॥[5]

लाड़िली और लाल दोनों नित्य है—

नित्य लाड़ली लाल दोउ, नित वृन्दावन धाम।
नित्य सखी ललितादि निज, सेवत श्यामा श्याम॥[6]

---

१. राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य
—डा० विजयेन्द्र स्नातक, पृष्ठ ४७४

२. श्री वृन्दावन सत लीला—ध्रुवदास, पृष्ठ १३

३. मन शिक्षा लीला—ध्रुवदास, पृष्ठ ११

४. गौर स्याम तन मन रंगे, प्रेम स्वाद रस सार।
निरखत नहिं छिन ऐकैं, अटके सरस बिहार॥
वृन्दावन लीला—ध्रुवदास, पृष्ठ १५

५. वृहद् वामन पुराण की भाषा लीला—ध्रुवदास, पृष्ठ २८

६. वृहद् वामन पुराण की भाषा लीला—ध्रुवदास, पृष्ठ ४१

श्री कृष्ण और श्री राधा की प्रीति के समान न तो ध्रुवदास जी ने प्रीति देखी है न सुनी है। दोनों की एक ही गति हो गई है वे दोनों लेश मात्र भी पृथक् नहीं है—

प्यारे जू की जीवन है नवल किशोरी गोरी,
तैसी भांति प्यारी जू की जीवनि विहारी है।
जोई-जोई भावे उन्हें सोई-सोई रुचे इन्हें,
एकै गति भई ऐसी रञ्च को न न्यारी है॥
छिन-छिन देखि-देखि छवि की तरङ्ग नाना,
प्रीतम दुहूँनि सुधि देह की बिसारी है।
हित ध्रुव रीझि-रीझि रहे रति रस भीजि,
प्रीति ऐसी अब लगि सुनी न निहारी॥[1]

उनकी आराध्य देवी राधिका हैं जिनकी आराधना लाल बिहारी भी करते हैं—

आराधहि मन राधा दुलहिनि जिहिं आराधन लाल विहारी।
कुंज-कुंज डोलत संग लागे कृपा कटाक्ष करैं सुकुमारी॥[2]

श्री कृष्ण और राधा के एक प्राण, एक वेश और एक स्वभाव का चित्रण इस प्रकार किया है—

प्रीतम किशोरी गोरी रसिक रंगीली जोरी,
प्रेम ही के रङ्ग बोरी शोभा कही जाति है।
एक प्राण एक वेस एक ही सुभाव चाव,
एक बात दुहुनि के मनहि सुहाति है॥
एक कुञ्ज एक सेज एक पट ओढ़े बैठे,
एक-एक बीरी दोऊ खंडि-खंडि खात है।
एक रस एक प्राण एक दृष्टि हित ध्रुव,
हेरि-हेरि बढ़ै चोंप पर्यो है न अघाति है।[3]

उनके एक से भूषण पट हैं और एक सी ही छवि है—

नवल रसिक पिय एक मन एक हिय, एकै बात है सुहात दुहुंनि के मन को।
एक वेस एक ओर एक से भूषण पट, एक सी छबीली छवि राजत है तन को॥

1. अथ कुसिप शृंगारना प्रारम्भ—ध्रुवदास, पृष्ठ ६१
2. ध्रुवदास की पदावली, पृष्ठ ३६, १०१
3. भजन कुनिय शृंगारना लीला—ध्रुवदास, पृष्ठ ६३

सिधे। स्यामा। श्यामा। भामा। भाँवती। जुवतिन जूथ तिलका। वृन्दावन चंद्र चंद्रिका। हाँस परिहास रसिका। नवरगिनी। अलकावलि छवि फंदिनी। मोहन मुसिकनि मंदिनी। सहज आनन्द कंदिनी। नेह कुरंगिनी। महा मधुर रस कंदिनी। नैंन विशाला। चंचल चित आकर्षिनी। मदन मान खंडिनी। प्रेम रंग रंगिनी। वंक कटाक्षिनी। सकल विद्या विचछने। कुँवर अक विराजनी। प्यार पट निवाजिनी। सुरत समर दल साजिनी। मृगनैंनी। पिकबैंनी। सलज्ज अञ्चला। सहज चंचला। कोक कलानि कुशला। हाव भाव चपला। चातुर्ज चतुरां। माधुर्य मधुरा। बिन भूषन भूषिता। अवधि सौंदर्य्यता। प्राणवल्लभा। रसिक रवनी। कामिनी। भामिनी। हंसकल गामिनी। घनस्य म अभिरामिनी। चंदविपिनी। मदन दवनी। रसिक खनी। केलि कमनी। चित्तहरनी। ललन उर पर चरन धरनी। छविकंज वदनी। रसिक आनंदिनी। रूप मंजरी। सौभाग्य रस भरी। सर्वांग सुन्दरी। गौरांगी। रतिरस रंगी। विचित्र कोक कला अंगी। छबिचंद वदनी। रसिक लाल वंदिनी। रसिक रस रंगिनी। सखिनुसभा मंडिनी। आनंद कंदिनी। चतुर अरु भोरी। सकल सुख रासि सदने ॥[1]

श्री ध्रुवदास जी की आराध्य देवी श्री राधिका है। उनका कथन है कि श्री राधा को भजना चाहिए—

श्री राधावर भज श्री राधावर भज। और सकल धर्मनि कौं तू तज ॥१॥
होइ अनन्य एक रस गाहो। रसिकनि संग जु सदा निवाहो ॥२॥
आन धर्म व्रत नेम न कीजै। युगल किशोर चरण चित्त दीजै ॥३॥
श्री वृन्दावन घन कुंज निहारौ। हित ध्रुव तेहि ठा वास विचारौ ॥४॥[2]

उनकी किशोरी और किशोर नित्य हैं—

नित्य किशोरी नित्य किशोर। नित वृन्दावन नित निशि भोर ॥१॥
नित्य सहचरी नित्य विनोद। नित्य आनन्द वरसत चहुँ कोद ॥२॥[3]

श्री कृष्ण दूल्हा और श्री राधा दुल्हिन का रूप निरखिये—

दुलहिनि दूलहु किशोर इक जोर दोऊ, भूषन सहाने वागे बने अङ्ग-अङ्ग री।
चंचल नैना विशाल अंजन बन्यो रसाल कर पद से सो हैं मेहेंदी को रङ्ग री॥
सहज सहानी कुञ्ज रची है सहानी सेज, लिये लाल बैठे हैं लड़ैती को उछंग री।
हित ध्रुव छिन-छिन बढ़त सहानो नेह, रोम-रोम उपजत छवि के तरङ्ग री॥[4]

---

१. श्री प्रिया जी की नामावली—ध्रुवदास, पृ. १८३-१८४
२. श्री ध्रुवदास की पद्यावली ९४ राग भैरों, पृ. ३४
३. श्री ध्रुवदास की पद्यावली राग धनाश्री ९५, पृ. ३४
४. भजन द्रुतिय शृङ्खला लीला, पृ. ९४

राजति राधा नागरी सुन्दरता की रासि ।
निरखत पिय मोहे सखी सहज मन्द मृदुहासि ।
हो रसिक रंगीली सोहनी मेरी नवल छबीली मोहनी ॥
अंग - अंग भूषण बने सुन्दर नील निचोल ।
रतन कनक कुण्डल खचे तरलित रुचिर कपोल ॥१॥
लटकत ललित सुहावनी वेंनी गूंथिन केश ।
मृगमद तिलक जु अति लसै वेंदा मध्य सुदेश ॥२॥
नैन चपल अति सोहई उज्वल स्याम सुरंग ।
चितवन पर वारौं सखी खंजन मीन कुरंग ॥३॥
अलक जलद छवि ऊनई दसन बीज चमकांत ।
अधर स्वांति रस बरषई पिय चातिक न अघात ॥४॥
नासा पुट वेशरि बनी झलकत जलज सरूप ।
दसन बसन प्रतिविम्ब ते सोभित सुरंग अनूप ॥५॥
चिबुक स्याम विंदु सहज ही निरखत अति सुख देत ।
मनो मधुप मन पीय कौ बदन कंज रस लेत ॥६॥
कंठ वृन्द मुक्तावली सोभित नग मणि लाल ।
कर बलया कटि किंकिनी अंगद बाहु मृनाल ॥७॥
त्रिवली उदर तरंगनी नाभि रूप रस ऐन ।
नवल रसिक पिय लाड़ि सौं करत पान दिन रैन ॥८॥
जेहर पायल अति बनी नूपुर दुति अभिराम ।
चलत रुचित सुनि राव पर बंशी वारत स्याम ॥९॥
इंदु कोटि नख सम नहीं कहाँ लग कहौं बखान ।
सहज सुगमता अंग की बनत न उपमा आन ॥१०॥
चरण चारु बिधि सोहने चित्रित जावक रंग ।
हित ध्रुव नैननि में बसो सो छवि दिनहि अभंग ॥११॥[1]

ध्रुवदास की शृङ्गार सत लीला की तीन शृङ्खलाओं में प्रथम शृङ्खला में श्री रूप का वर्णन है। उन्होंने राधिका के रूप का वर्णन इस प्रकार किया है—

श्री राधिका वल्लभ प्यारी फुलवारी मांझ ठाड़ी,
फूल कारी सारी तन शोभित बनाव की ।

---

[1] श्री ध्रुवदास की पदावली, पृ. १२

लोचन विशाल बांके अनियारे कजरारे,
प्रीतम के प्रान हरें हेरनि सुभाव की ॥
चूरी मखतूल नील मनिन की कर बनी,
वेसर सुदेश उर अंगिया कटाव की ।
कुन्दन की दुलरी अरु मोतिन के हार हिये,
हित ध्रुव चारु चौकी लसत जड़ाव की ॥

जरकसी सारी तन जग मग रही फबि,
छवि की छलक मनोपरी है रसाल री ।
उज्वल सुरंग अनियारी कोर नैननिधी,
सीस फूल बेंदी लाल सोहै वर भाल री ॥
रतन जटित नील मनि चौकी झलमलै,
हित ध्रुव लसै उर मोतिन की माल री ।
पानिप अनूप पेखें भूलो है निमेषै देखें,
मन्द - मन्द वेसर के मुक्ता की हाल री ॥[1]

काकरेजी सारी तन गोरे फबी शोभियत,
पीत अतरौटा सो दुरङ्ग छवि न्यारी है ।
मुख की पानिप अति चंचल नैननि गति,
देखें ध्रुव भलो मति उपमा को हारी है ॥
बेंदी लाल नथ सोहैं बन्यो मोती मन मोहैं,
वस भये पिय सुधि देह की बिसारी है ।
गहे द्रुम डारी एक रहि गये ताको टेक,
ऐसे वेस जबते किशोरी जू निहारी है ॥[2]

सुरंग कसूंमी सारी पहिरे रंगीली प्यारी ।
आली अलवेली भांति रंग मांहि ठाढी है ।
केसरी सुरंग भीनी सोंधे सगवगी कीन्हों,
सोहे उर अंगिया कसनि अति गाढ़ी है ॥
फैलि रही अरुनाई तैसी ध्रुव तरुनाई,
मानो अनुराग रूप में झकोर काढ़ी है ।

१. भजन शृङ्गार सतलीला—ध्रुवदास, पृ० ७८-७९
२. भजन शृङ्गार सतलीला—ध्रुवदास, पृ० ७९

वदन झलक पर परी है अलक आड़,
देखि पिय नैनन ललक अति बाढ़ी है ॥[1]

छवि भी रीझिकर राधिका के चरणों में पड़ गई है—

फूलि-फूलि रहे सब फूल फुलवारी में के,
रीझि-रीझि छवि आइ पाइनि में परी है।
लाड़िली नवेली अलबेली सुख सहज ही,
निकसि निकुञ्ज तें अनूप भाँति खरी है ॥
नखशिख भूषन लावण्य ही के जगमगै,
दीठ सों छुवत सुकुमारता हू डरी है।
हित ध्रुव मुसकानि हेरत बिकाइ रहे,
दामिन की दुति अरु हीरन की हरी है ॥[2]

व्रजलीला में राधा का बाह्य सौन्दर्य वर्णन इस प्रकार है—

तिन में नवल किशोरी सोहैं। मोहन मन लाये छवि जोहैं ॥२८॥
पहिरे नील बरन तन सारी। मोतिन माँग बनाइ सँवारी ॥२९॥
अति विशाल लोइन अनियारे। उज्वल अरुन सहज कजरारे ॥३०॥
फगुवा सुभग सुरंग विराजै। तापर मृगमद बेंदी राजै ॥३१॥
झलकि रह्यो बेसरि को मोती। फीके भये धरे जे जोती ॥३२॥
ईखद हँसन दसन अति झलकं। छुटि रही कहुँ-कहुँ मुख पर अलकैं ॥३३॥
चंचल चितवनि परम सुहाई। मुख पानिप कछु कही न जाई ॥३४॥
सहज नवेली अति अलवेली। तैसी सोभित संग सहेली ॥३५॥
सखियनि खेल रच्यौ सुखकारी। एकतें एक रहैं दुरि न्यारी ॥३६॥
चली दुरन तिहिठाँ सुकुँवारी। बैठे है तहाँ कुञ्जविहारी ॥३७॥[3]

रास मण्डल में राधिका के रूप का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है—

कोटि-कोटि रसना जो रोम-रोम प्रति होइ,
प्यारी जू के रूप को न प्रमान कह्यौ जात है।
अति ही अगाध सिंधु पार नहिं पावै कोऊ,
थोरी बुद्धि सीप मांझ कैसे कै समात है ॥

---

१. भजन शृङ्गार सतलीला—ध्रुवदास, पृ० ८०
२. भजन शृङ्गार सतलीला—ध्रुवदास, पृ० ८१
३. व्रजलीला प्रारम्भ—ध्रुवदास, पृ० २५७

छिन-छिन नई-नई माधुरी तरंग रंग,
देखें नग चन्द्रकनि चन्द हू लजात हैं।
हित ध्रुव अङ्ग-अङ्ग बरषत छवि स्वाति नैना,
पिय चातिक तौ पेखें न अघात हैं ॥[1]

ध्रुवदास जी ने संयोग के भी सुन्दर चित्र चित्रित किये हैं। कृष्ण और राधा का अनुराग पूर्ण फाग खेलन का भी सुन्दर चित्रण हुआ है।[2] ये दोनों मदन मद में मोद करते हैं तथा दर्श एवं स्पर्श करने भी नहीं अघाते हैं—

मदन मोद मद रस मगन, रहत मुदित मन माँहि।
दरसत परसत उरज उर, लपटत हू न अघाँहि ॥[3]

श्रीकृष्ण रंग महल में राधा का शृङ्गार इस प्रकार करते हैं—

रंग महल में बैठे प्रीतम करत सिंगार प्रिया को माई।
रचि-रचि मंग सुरंग तिलक बिच बेंदी लाल अनूप बनाई ॥१॥
रतन खचित ताटंक श्रवन युग नासा पुट मृदु बेसरि बानी।
चिबुक कपोल स्याम बिंदु दीनों तापर अलक भेद सौं आनी ॥२॥
चंचल नैननि अंजन दै पिय अनी रेख रचि पचिर्के कीनी।
निरखि मुकर हँसि रीझि प्रिया तब नवल लाल मुख बीरी दीनी ॥३॥
नख सिख लों भूषण पहिराए चरण चित्र जावक के कीने।
हित ध्रुव सीस परसि पद कमलनि निरखत रूप मुदित रस भीने ॥४॥[4]

ध्रुवदास जी ने पद्यावली में राधा के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया है—

राजत बदनारबिंद लसत चिबुक चारु बिंद,
निरखि सरस हास मंद हियो सिरांतरी।
भूषण दुति अंग-अंग मनहु रूप दधि तरंग,
अधरनि तें भये सुरंग दसन पांतरी ॥१॥
गूंथित अति रुचिर केश लटकत बेनी सुदेश।
सुन्दर छवि सहज वेश कहि न जाति री।

---

१. सभा मण्डल लीला—ध्रुवदास, पृष्ठ १३८
२. खेलत फाग भरे अनुराग सों लाड़िली लाल महा अनुरागी।
भजन तृतीय शृङ्खला लीला पृ० १०४, ध्रुवदास
३. रंगहुलास लीला—ध्रुवदास, पृ० २२०
४. श्री ध्रुवदास जी की पद्यावली पृष्ठ ६ राग आसावरी १८

चंचल लोचन विशाल कुण्डल मणि जटित लाल,
गंडनि पर बनी रसाल तरल काँति री ॥२॥
झलकत आनन्द रूप नासा छवि जलज भूप,
डोलत अति ही अनूप रुचिर भांति री ।
हित ध्रुव अलि लाल नैन पायो सुख कमल ऐन,
वसत अहरु रैन होत छिनन हांत री ॥३॥[1]

राधा और कृष्ण के रूप और अंग माधुर्य में अनेक प्रकार से समता है—

राधा दुलहिनि दूलहु लाल ।
तैसिये रूप माधुरी अंग-अंग तैसेई दुहुंनि के नैन विशाल ॥१॥
तैसिये लटकनि लपटनि अटकनि तैसिये हंस हंसनी चाल ।
तैसिये चतुर सखी चहुं ओरैं गावत राग सुहाग रसाल ॥२॥
यह रस जो सुनि है अरु गावै मन लावै सब काल ।
हित ध्रुव धन्य-धन्य तेई जन भजन दीप मणि दिपै जिहिं भाल ॥३॥[2]

ध्रुवदास जी का राधा-कृष्ण शैया विहार वर्णन भी सुन्दर बन पड़ा है—

प्रीतम किशोरी गोरी रसिक रंगीली जोरी,
प्रेम ही के रंग बोरी शोभा कही जाति है।
एक प्राण एक वेस एक ही सुभाव चाव,
एक बात दुहुनि के मनहि सुहाति है ॥
एक कुञ्ज एक सेज एक पट ओढ़े बैठे,
एक-एक बीरी दोऊ खंडि-खंडि खात है ।
एक रस एक प्राण एक दृष्टि हित ध्रुव,
हेरि-हेरि वदै चौंप क्यों हूँ न अघाति है ॥[3]

कृष्ण और राधा दोनों प्रेम में इतने लवलीन हैं कि कृष्ण अपने को प्रिया और राधा अपने को प्रिय समझ लेती है—

एक समै भ्रम प्रेम कौ, वढ्यौ दुहुनि के हीय ।
पीय कहत हौं ही प्रिया, प्रिया कहत हौं पीय ॥

---

१. श्री ध्रुवदास की पद्यावली, राग सारङ्ग ३३, पृ० १०
२. श्री ध्रुवदास की पद्यावली, राग गौरी ६६, पृ० २३
३. भजन द्वितिय श्रृङ्खला लीला—ध्रुवदास, पृ० ६३

अटपटी चाल है प्रेम की, को समुझै यह बात।
रंगे परस्पर एक रंग, अदल बदल ह्वै जात ॥[1]

ध्रुवदास की राधा में जितनी आलंकारिता, काल्पनिक विलक्षणता, रूप-माधुर्य, अनुपम लावण्य और असीम भक्ति भावना है उतनी ही स्वाभाविकता भी है।

श्री वृन्दावनदास (चाचा जी)

श्री वृन्दावनदास जी का समय यद्यपि भक्तिकाल के बाद ठहरता है परन्तु इनके विपुल साहित्य और राधावल्लभीय सम्प्रदाय में एक प्रमुख स्थान होने के कारण इनके काव्य का संक्षिप्त वर्णन करना अनिवार्य है। चाचा वृन्दावनदास जी की रचनाओं की संख्या परिमाण की दृष्टि से सर्वाधिक है। राधावल्लभ सम्प्रदाय की प्रकाशित ग्रन्थ सूची 'साहित्य रत्नावली' में इनके ग्रन्थों की संख्या १५८ बताई है। इसमें अष्टयान, समय प्रबन्ध तथा छोटी मोटी वेलियाँ भी सम्मिलित हैं। जन-साधारण में इनके सवालाख पद की बात प्रसिद्ध है। राधावल्लभीय भक्त लोग इनके से चार लाख पद बताते हैं। यह प्रसिद्ध है कि इन्होंने ३६० अष्टयाम लिखे परन्तु इनके १४ अष्टयाम ही उपलब्ध हैं। श्री राधाचरण गोस्वामी ने इनके लिखे चार लाख पद बताये हैं। इनकी लक्षाधिक पद रचना की बात ठीक प्रतीत होती है। इनकी आठ दस बेलियाँ प्रकाशित हुई हैं। इनके द्वारा रचित 'लाड़ सागर' और 'ब्रज प्रेमानन्द सागर' प्रकाशित हुए हैं। इनके यदि छोटे-छोटे संकलनों को ग्रन्थ माना जाये तो दो सौ से ऊपर ग्रन्थों का पता चलता है। इनके ग्रन्थों की तालिका डा० विजयेन्द्र स्नातक ने अपने ग्रन्थ 'राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य' में दी है जिसमें ७१ ऐसे ग्रन्थों का उल्लेख किया है जिनमें संवत दिये हैं तथा २७ ऐसे ग्रन्थों का उल्लेख किया है जिनमें संवत् नहीं दिये हैं। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त ८० ग्रन्थों की सूचना 'साहित्य रत्नावली' में है। लाड़ सागर में चाचा जी की आराध्या राधा के शैशव से लेकर किशोरावस्था तक श्रीकृष्ण के प्रति प्रगट किये गये प्रेम का वर्णन है। इसमें श्री राधा का मोहक चित्र अंकित हुआ है। इसके दस प्रकरण इस प्रकार हैं—

१–राधा बाल विनोद	२–कृष्ण बाल-विनोद-विवाह उत्कंठा
३–कृष्ण सगाई	४–कृष्ण प्रति जसुमति शिक्षा
५–विवाह मंगल	६–लाड़िली जू कौ गौनाचार
७–लाल जू कौ महिमानी कौ बरसाने जाइवे —श्री विनोद	८–राधा छबि सुहाग
९–जसुमति मोद प्रकाश	१०–राधा लाड़ सुहाग

1. अनुराग लता लीला—ध्रुवदास, दोहा ४०-४१, पृ० २३९

चाचा जी का 'व्रजप्रेमानन्द सागर' विविध रसों में परिपूर्ण, महाकाव्य शैली के अनुरूप, दोहा चौपाई शैली में लिखा विशाल ग्रन्थ है। लेखक को 'व्रज प्रेमानन्द सागर' की हस्त लिखित प्रति श्री विशेश्वरशरण के पास श्री जी की कुंज वृन्दावन में देखने का अवसर मिला है। इस प्रति में ४२८ हस्त लिखित पृष्ठ हैं। इसमें ६८ लहरी हैं।

युगल 'स्नेह पत्रिका' में १५४ सांझ और ६ दोहे हैं। इसमें श्याम-श्यामा के दिव्य प्रेम का वर्णन है। इसमें राधा कृष्ण प्रेम के विविध रूपों का माहात्म्य वर्णित है। इसमें राधा का सौन्दर्य और कृष्ण का अनुराग देखने को मिलता है। 'कृपा अभिलाष' वेली में भक्त राधा की कृपा का अभिलाषी है। भक्त श्री राधा से नाना प्रकार से अनुनय विनय करता है। 'लाड़ सागर' में राधा की शैशवावस्था की क्रीड़ाओं के स्वाभाविक और मोहक चित्र अंकित किये हैं। लाड़सागर में वृषभानु कीर्ति और नन्दयशोदा का राधा और कृष्ण के प्रति लाड़ है। लाड़सागर में प्रिया प्रीतम को, बाल पौगण्ड, किशोर सभी अवस्थाओं के लाडों से दुलराया है परन्तु किशोर लीला, विवाह, गौनाचार आदि का अधिक वर्णन है। लाड़ सागर के ग्रन्थ कर्ता के संक्षिप्त परिचय में लिखा है, "श्री सूरदास जी ने श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं को मानवीय जीवन के अधिक से अधिक निकट लाकर उसको परम आस्वाद्य बना दिया है तो चाचा जी ने श्री कृष्णाराध्या श्री राधा जी की बाल-लीलाओं की अभूत और अभिनव रस-सुधा का वितरण किया है और प्रेम की शृंगारमयी लीला को साधारण जीवन की मधुर अनुभूतियों के साथ मिलाकर उनको सुगम एवं सुबोध बनाया है। 'लाड़ सागर' उसका उत्तम उदाहरण है इसमें प्रधानतया श्री वृषभानु नन्दिनी एवं नन्दनन्दन के विवाह का वर्णन है जो लोक में प्रचलित विवाह की रीति से किया गया है।"[1]

बनी गुन आगरी को सम बैठ सताइ ।
वदन रतन निर्मोल मजूषा घूँघट धर्यो है छिपाइ ।

× ×

वृन्दावन हितरूप अपमित क्यों मति सीप समाइ ॥[1]

वृन्दावनदास जी ने छवि की आगरी राधा नव-दुलहिन ... का वर्णन इस प्रकार किया है—

अहा बरनौं कहा कीतिया बदन कमनी जोति है ।
नंद मंदिर गगन उदित कलाधर मनु गोत है ॥
लसत सहाने लसत मुदित बारिज मुखी ।
छवि चाँद ने नस्यौ तिमर भइ जसुमति सुखी ॥
भरी सुभग सेंदूर माँग मोतिन रची ।
वेनी पाछें रूरति भीर सोभा मची ॥
मची सोभा भीर अति चन्द्रिका सीस सुफूल है ।
सिर धरें ससि मनु सुधा घट भये राहु सौ अनुकूल है ॥
वंदनी मनुकर जोरि ठाढ़े तरौंना रवि संग है ।
अरिभाव मेटन हियँ मानौं भरे अधिक उमंग हैं ॥

श्री राधिका महारास लीला में राधिका के रूप और अंगों का वर्णन ... एवं पठनीय है—

छबि सुख सींव उजागरि राधा । निज रस मत्त सकल सुख साधा ॥

× × ×

नख तरुवनि की मंजुलताई । हिम के टूक-टूक विस्तरैं ॥
मोतिन छल्ला छलत सब मनकों । देखि दशा भूलत है तन कों ॥[2]

'नेही सांमली लीला' में राधा का वर्णन इस प्रकार आया है—

झूलति प्रिया सभागी मुरली धरन की ।
वल्लभ राज दुलारी गोरे बरन की ॥[3]

दुलहिनि राधा परम सौभाग्य शालिनी है—

परम सभागिनि दुलहिनि राधा ।
रस की लबधि लहत दिन दूलह मिटति मदन हिय ...

१. लाड़सागर—हितवृन्दावनदास पद १८१, पृ० २१७
२. रास छद्म विनोद, श्री राधिका महारास लीला पृ० २३७
३. रास छद्म विनोद, नेही सांमली लीला पृ० १२८-१२६
४. लाड़सागर पद ६३, पृ० २६१

राधा हरि के अनुराग में इस प्रकार पगी है कि वह समस्त कार्यों को भूल जाती है—

काम धाम भूली सबै उर और न भावै ।
राधा हरि अनुराग में दिन रात बितावै ॥[1]

राधा के सादृश लोक में कोई दुलहिन नहीं है—

लोक में को दुलहिनि ऐसी ।
भई न ह्वै है रूप आगरी श्याम वरी है जैसी ॥[2]

राधा दुलहिन के समान कोई नहीं बताया जा सकता ।[3] उनके समान किसी घर में दुलहिन नहीं है—

राधा किहि घर दुलहिनि तोसी ।
चौना तोरि अगह फल लावै यों प्रापति तू मोसी ॥[4]

दुलहिनि के नेत्र कौतिक उपजाते हैं जब देखो उनकी शोभा नवही बढ़ जाती है—

दुलहिनि दृग कौतिक उपजावैं ।
जब देखौं तब सोभा औरि रसना कहत न आवैं ॥[5]

कवि वृषभानुजा से करुणा करने के लिये अभ्यर्थना करता और उनकी आराधना इस प्रकार करता है—

जयति वृषभानुजा कुंवरि राधे ।
सच्चिदानन्द घरन रसिक सिर मौर वर सकल वांछित सदा रहत साधे ॥
निगम आगम सुमृति रहे बहु नाधि जहां कह नहीं सकत गुन गन अगाधे ।
जय श्री रूपलाल हित पर करो करुणा प्रिये देहु वृन्दाविपिन नित अवाधे ॥[6]

---

१. लाड़सागर पद ८८, पृ० २६६
२. लाड़सागर, पृ० २७१
३. दुलहिनि सम बताऊँ कौन ।
सारदा बरनन अरबरत देखि धरि रहे मौन ॥—लाड़सागर, पृ० २९८
४. लाड़सागर पद १३, पृ० ३०१
५. लाड़सागर पद २०, पृ० ०३
६. रास छद्म विनोद, स्फुट पद संग्रह पद ५, पृ० २६१

ब्रजप्रेमानन्द सागर

राधावल्लभ अवतारियों के अवतार हैं। नित्य केलि वृन्दावन धाम में श्यामा श्याम विराजते हैं—

श्री राधावल्लभ कुंजविहारी। सब अवतारनि के अवतारी।
नित्य केलि वृन्दावन धाम। जहाँ विराजत श्यामा श्याम ॥१६॥[1]

राधा की जन्मतिथि के सम्बन्ध में आया है—

तिन हित श्री श्यामाँ सुख धामाँ। हित कूँखि प्रगटी अभिरामा।
भादों सुदि अष्टमी जु वरनी। जन्मी राधा मंगल करनी ॥३१॥
अरुन उदय जु नक्षत्र बिसाखा। तात मात पुजई अभिलाषा ॥३२॥[2]

तथा

श्री राधा सर्वेश्वरी, निंदति दुतिधरं गोत।
ता आगें पाछें सखी, रसमय कला उदोत ॥२॥
भादों सुदि हीं कौ जनम, वरन्यौ ग्रन्थनि माँहि।
तिहि विधि व्यारौ करि कहौं, अपनी बुद्धि बल नाँहि ॥३॥[3]

राधा कीरति रानी की सुता है—

श्री वृषभान भूप रजधानी, महा सुलक्षन कीरति रानी।
श्री राधा यह तिनकी सुता, तोरति फूल सखिनु संजुता ॥७५॥[4]

भादों शुक्ला अष्टमी को राधा की वर्षगाँठ का भी वर्णन ब्रजप्रेमानन्द सागर में आया है।[5] राधा रूप-पुंज हैं और उसके सादृश उपमा किसी की नहीं है—

सकट सोहनौ रचना जामें। कीरति रानी राजति तामें।
श्री राधा तिन आगें सोहै। रूप पुंज सम उपमा को है ॥१७॥[6]

ब्रह्मादिकों में भी जो राधा अलक्ष्य है वह रावल ग्राम में प्रत्यक्ष खेलती हैं—

---

१. ब्रजप्रेमानन्द सागर—श्री हित चाचा वृन्दावनदास जी, पृ० २
२. ,, ,, ,, ,, पृ० ४
३. ,, ,, ,, ,, पृ० ७२
४. ,, ,, ,, ,, पृ० १६१
५. बरस गांठि राधा कुँवरि, तिथि अति परम पुनीत।
भादौं सुकला अष्टमी, माइ गवावति गीत ॥१८॥
—ब्रजप्रेमानन्द सागर पृ० ७३
६. ब्रजप्रेमानन्द सागर—श्री हित चाचा वृन्दावनदास जी, पृ० १८-१८६

वृन्दारण्य सुधामिनी, ब्रह्मा दिकनि अलक्ष्य ।
सो या रावलि नगर में, खेलति हैं परतक्ष्य ॥६०॥
जो आनन्द को निकर है, ताहू आनन्द दैन ।
भान वंश की महामनि, अमृत बरषनि बैन ॥६१॥[1]

वृषभान की राजधानी रावल में यमुना के तट पर क्रीड़ा करते हुए राधा को आह्लादिनी बताया है—

रजधानी वृषभान की, रावनि रविजा तीर।
खेलति हरि अह्लादिनी, तहां सखियन लिये भीर ॥६४॥[2]

राधावल्लभ सम्प्रदाय के अनुसार कृष्ण राधा के आधीन है। राधा के दुलहिन बनकर आने के उपरान्त कृष्ण के द्वारा उनके चरण दबाने का आभास ब्रजप्रेमानन्द सागर में इस प्रकार मिलता है—

ऐसी दुलहिनि ब्याही आवै। मोहन तुम पै पाइ दबावै।
जाके आगे नाचत रहि हौ। कबहू बढ़ि-बढ़ि बात न कहि हौ ॥[3]

सब राधा के प्राण सम और राधा सब की प्राण है—

सब राधा के प्रांन सम, राधा सबके प्रांन।
परिकर नित्य अनादि जो, कन्या भइ कुल भान ॥६७॥[4]

राधा लोक उजागरी एवं यशोदा की समस्त कामनाओं के पूर्ण करने वाली है—

लोक ऊजरी है श्री राधा। जिन जसुमति की पुजई साधा ॥
बना सुलक्षन लोकनि मांहि। उपमा जाकी छुवत न छांही ॥[5]

ब्रजपति के समान दूल्हा और राधा के समान दुलहिनि नहीं है—

दिन दूलह ब्रजपति सुत सोहै। श्री राधा सम दुलहिनि को है ॥
रूप कलपतरु इत उत दोऊ। देखि अचर्ज मानत सब कोऊ ॥८४॥
जो न वेद आगम लखि परी। गोपिन ग्रेह अस लीला करी।
अति कमनीय गोप जस रूरी। बरनौं मंगल महा गरूरी ॥८५॥[6]

---

१. ब्रजप्रेमानन्द सागर—श्री हित चाचा वृन्दावनदास जी, पृ० १२०
२. ,, ,, ,, ,, पृ० ११४
३. ,, ,, ,, ,, पृ० ३४
४. ,, ,, ,, ,, पृ० १३८
५. ,, ,, ,, ,, पृ० ४२०
६. ,, ,, ,, ,, पृ० ४५७

यह बात लोकों में विदित है कि राधा सी बेटी जगत में नहीं है।[1] कृष्ण और राधा को एक प्राण दो देह बताया है—

कहत-कहत मुख वचन पुनि, उभत्ये हिये सनेह ।
रावलि पति गोकुल जु पति, एक प्रान द्वै देह ॥६४॥[2]

राधा नित्य है, अनादि है तथा उनकी ब्रजलीला का कौतिक कहा नहीं जाता—

नाते की उरझनि अधिक, अधिक परस्पर नेह ॥
नन्द सुवन श्रीदांम मनु, एक प्रांन द्वै देह ॥११५॥[3]

तथा

नित्त अनादि अहिलादिनी, भांन वंश जस दैंन ।
ब्रज लौकिक लीला रची, कौतिक कहत बनें न ॥१०२॥[4]

राधा के बाल्यकाल का सुन्दर मनोवैज्ञानिक स्वरूप चाचा वृन्दावनदास जी ने चित्रित किया है। राधा ने देहली नाघना प्रारम्भ कर दिया है, वह अपना नाम समझने लगी है तथा इस प्रकार आभूषण धारण करती है—

देहरि नाखी भानु दुलारी, जननी मांन्यौ मंगल भारी ।
राधा नाम माइ कहि बोलें । भरें हुँकरा पुनि मुख खोलें ॥१९॥
नाम आपुनौ समझनु लगी । जो टेरें तित आवें भगी ।
कनक घूंघरू भनकें खरें । कर पग चूरा हंगुली गरें ॥२०॥
श्रवन भूमिका शोभित महा । नथुली की छवि बरनों कहा ।
इन्दु नील मणि कठुला लसें । ज्यौं उर ररकें त्यौं लखि हँसें ॥२१॥
दिन-दिन अति लडि भई सयानी । मुख ते निसरें मीठी बानी ।
तात देखि मन उपजै मोद । दौरि जाइ कें बैठी गोद ॥२२॥[5]

राधा के कंकन खोलने का वर्णन ब्रजप्रेमानन्द सागर में आया है जिसमें कंकन खोलने के पूर्व राधा का शृङ्गार इस प्रकार किया गया है—

कंकन छोरन की जु विचार । दुलहिनि को कीजतु सिंगार ॥७॥
अतलस अतरौटा छवि भारी । सूही सारी कनक किनारी ।
सुरंग दरयाई कंचुकी बनी । तासौं सुन्दर तनी ॥८॥

---

१. राधा सी बेटी जग नांहि । बात विदित यह लोकनि मांहि ॥३०॥
ब्रजप्रेमानंद सागर—चाचा हित वृन्दावनदास, पृ० ४६१

२. ब्रजप्रेमानंद सागर—चाचा हित वृन्दावनदास पृ० २८०
३. ,, ,, ,, ,, पृ० ५३४
४. ,, ,, ,, ,, पृ० ५४४
५. ,, ,, ,, ,, पृ० ४१

लै ककही जु संवारे केश । मोतिनु सों भरि मांग सुदेस ।
कवरी गूथी भल्ली फूल । चोटी रतन भरी मखतूल ॥९॥
बेंना जलज रतन चंदवनी । सीस फूल चन्द्रका जु बनी ।
मणि ताटंक तेज अति नीको । मृग मद तिलक जराऊ टीको ॥१०॥
सुन्दर मांग रची विधि भली । मन हुँ धार अनुराग जु चली ।
केशर मंडित सुन्दर भाल । मकर पत्रिका बनी विसाल ॥११॥
लोचन ललित विराजत अंजन । इहि छवि वारौ कोटिक खंजन ।
नथ बेसरि सुठि नासा सोहे । चिवुक स्याम बिन्दु उपमा को है ॥१२॥
गोल कपोल स्याम तिल लोना । कनक कमल वस्यो मनु अलिछौना ।
इहि विधि राजति त्रिवली ग्रीवा । मनहु रची सोभा की सींवा ॥१३॥
दुलरी तिलरी अरु सतलरा । रतन धुक धुकी मोतिन हरा ।
मणि चौकी पत्रानि हमेल । करैं सुक कनक संग मनु रेल ॥१४॥
चम्पकली पुन हीरावली । सुन्दर उर पर सोभित भली ।
पुनि सुहाग मणि राजति पोति । बाजू बन्ध जटित नग जोति ॥१५॥
नील मणिनु की चुरी विराजैं । पहुँची कंकन कर वर राजै ।
मेंहदी रचे जु सुंदर हाथ । मणि मूँदरी जग मगैं साथ ॥१६॥
रतननि जटित आरसी बनी । नख सिख पंकति जोति जु घनी ।
नाभि अमृत की सरसी मानों । त्रिवली उदर गहर छवि जानों ॥१७॥
कटि पर वारौं कोटिक केहरि । बनी किंकनी की तिहि सरवरि ।
रतन जटित झगिया सम कोरी । सुन्दर पाट गुहाई डोरी ॥१८॥
पाइल पर सुन्दर गूजरी । जटित अमोल नगनि ऊजरी ।
रच्यौ महावर नाइनि चाइनु । चित्र विचित्र विराजत पाइनु ॥१९॥
नख सिख यों दुलहिनि जु सिंगारी । मनु फूली सोभा फुलवारी ।
तरवनि लसति ललाई महा । ता सम उपमा देऊँ सु कहा ॥२०॥
पुनि सिंगारी सजनी सबैं । छवि जु आलौकिक दरसी तबैं ।
नव दुलहिनि राजति तिन मांझ । फूली मनहुँ अलौकिक सांझ ॥२१॥
राधा के तारुण्य एवं शरीर द्युति का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—
तन उलही नव तरुनता, अति लउ रावलि भूप ।

सप्तम अध्याय

रीतिकाल और आधुनिक काल में राधा का स्वरूप

रीतिकाल

कृपाराम ने संवत् १५६८ में थोड़ा बहुत रस निरूपण किया। लगभग उसी समय चरखारी के मोहनलाल मिश्र ने शृङ्गार सम्बन्धी 'शृङ्गार-सागर' ग्रन्थ की रचना की। करनेस कवि ने 'कर्णाभरण', 'श्रुति भूषण' और 'भूप-भूषण' अलंकार सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना की। परन्तु केशव की 'कविप्रिया' के लगभग पचास वर्ष उपरान्त रीति ग्रन्थों की परम्परा चली। चिन्तामणि त्रिपाठी ने हिन्दी रीतिग्रन्थों की परम्परा चली। उन्होंने संवत् १७०० के लगभग 'काव्य विवेक', 'कविकुल-कल्पतरु' और 'काव्य प्रकाश' तीन ग्रन्थ लिखकर काव्य के समस्त अंगों का निरूपण किया। उन्होंने छन्दशास्त्र पर भी ग्रन्थ की रचना की। रीतिकालीन कवियों की परिपाटी थी कि पहले छन्दों में अलंकार, छन्द या शास्त्रीय सिद्धान्तों के लक्षणों का विवेचन करते थे और फिर उदाहरण प्रस्तुत करते थे। इन कवियों ने तीन श्रेणियों के ग्रन्थों की रचना की—

१. नाना प्रकार की प्रेम-क्रीड़ाओं को बतलाने वाले काम शास्त्र का।
२. उक्ति वैचित्र्य का विवेचन करने वाले अलंकार शास्त्र का।
३. नायक नायिकाओं के विभिन्न भेदों और स्वभावों का विवेचन करने वाले रस-शास्त्र का।[1]

रीतिकालीन कवियों ने रस और अलंकार के विभेदों के सरस और हृदय-ग्राही उदाहरण प्रस्तुत किये। उन्होंने अलंकारों के साथ नायिका भेद का विशद वर्णन किया। नखशिख वर्णन पर कितनी ही पुस्तकों की रचना हुई। कवित्त और सवैया ही इस काल के प्रिय छन्द रहे। इस काल में वीर और शृङ्गार दोनों रसों में प्रधानता शृङ्गार की ही रही। इस समय के कवि राजा महाराजाओं के आश्रय में रहते थे। राजा महाराजाओं को प्रसन्न करने और उनकी रुचि के अनुसार काव्य प्रणयन करने के कारण अनेक कवियों के शृङ्गार रस के वर्णन अश्लीलता की सीमा तक पहुँच गये।

रीतिकालीन ग्रन्थों में शृङ्गार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का सम्यक निरूपण मिलता है। संयोग के अन्तर्गत नायक-नायिका (आलम्बन) सखी, दूती

१. हिन्दी साहित्य, पृ० २६६—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी

एवं षट्ऋतु (उद्दीपन) और उसके अनुभाव, सात्विक भाव, नायिकाओं के स्वभावज अलंकार आदि का मनोहर वर्णन विस्तार के साथ हुआ है। वियोग पक्ष में पूर्वानुराग, मान, प्रवास आदि विभिन्न भेद, पूर्वानुराग के श्रवण, चित्र-दर्शन, प्रत्यक्ष-दर्शन आदि साधन, मानमोचन के अनक उपाय और वियोग जन्म काम दशाओं का वर्णन है। रीतिकालीन कवियों की वृत्ति वियोग की अपेक्षा संयोग में ही अधिक रमी। इस काल के कवियों की रस-वृत्ति का अन्य प्रसंगों की अपेक्षा नारी के रूप भेदों से अधिक सीधा सम्बन्ध रहा, इसलिये इन्होंने नायिका भेद को अधिक महत्व दिया। रस का सारा वैभव कवियों ने नायिका-भेद में दिखाया। न जाने कितने ही ग्रन्थ केवल नखशिख-वर्णन के लिये ही लिखे गए।

श्रृङ्गार रस के अन्तर्गत प्रेम-भक्ति की कविता आती है। प्रेम और भक्ति के नायक श्रीकृष्ण हैं। वह परमात्मा हैं परन्तु प्रेम भक्ति में उनका पद दूल्हा का है। यही श्रीकृष्ण श्रृङ्गार रस के देवता हैं इसीलिये श्रृङ्गार रस की कविता में श्रीकृष्ण नायक और राधिका नायिका हैं। डा० नगेन्द्र ने रीतिकालीन धार्मिकता और भक्ति के स्वरूप के सम्बन्ध में लिखा है, "वास्तव में यह भक्ति भी उनकी श्रृङ्गारिकता का ही एक अंग थी। जीवन की अतिशय रसिकता से जब वे लोग घबरा उठते होंगे तो राधा-कृष्ण का यही अनुराग उनके धर्म-भीरु मन को आश्वासन देता होगा। इस प्रकार रीतिकालीन भक्ति एक ओर सामाजिक कवच और दूसरी ओर मानसिक शरण-भूमि के रूप में इनकी रक्षा करती थी। तभी तो ये किसी न किसी तरह उसका आंचल पकड़े हुए थे। रीतिकाल का कोई भी कवि भक्ति-भावना से हीन नहीं है—हो ही नहीं सकता था, क्योंकि भक्ति उसके लिये एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी। भौतिक रस की उपासना करते हुए भी, उनके विलास-जर्जर मन में इतना नैतिक बल नहीं था कि भक्ति रस में अनास्था प्रकट करते या उसका सैद्धान्तिक निषेध करते। इसलिये रीतिकाल के सामाजिक जीवन और काव्य में भक्ति का आभास अनिवार्यत: वर्तमान है और नायक नायिका के लिये बार-बार 'हरि' और 'राधिका' शब्दों का प्रयोग किया गया है।"[१]

ब्रजभाषा की श्रृङ्गार रस की कविता में अधिकतर राधा कृष्ण की प्रेम-लीलाओं का वर्णन है। रीतिकालीन कवियों ने भी इसी को अपनाया है। श्रृङ्गार रस का सर्वश्रेष्ठ आलम्बन विभाव राधा कृष्ण हैं। रीतिकाल की प्राय: सभी श्रृङ्गारात्मक पद्यों का विषय श्री कृष्ण और गोपियों का प्रेम है। उन्हीं की केलि कथाओं और अभिसार लीलाओं का वर्णन इसमें किया गया है। इस काल में

१. रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० १६५—डा० नगेन्द्र

अलंकारों और नायिकाओं के भेदों के विवेचन के लिये राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं को उदाहरण के रूप में लिया। गोपियों की विभिन्न प्रकृति के साथ रसराज श्रीकृष्ण के प्रेम-भाव के विविध रूपों का चित्रण किया गया। राधारानी और गोपाल लाल घूम फिर कर सभी प्रकार की शृङ्गार चेष्टाओं के विषय बन गये। शृङ्गार भावना को उन्होंने भक्ति का आवरण दिया—

आगे के सुकवि रीझिहैं तो कविताई—
न तो राधिका गोविन्द सुमिरन को बहानो है।

डा० शिवलाल जोशी का अभिमत है कि, "रीति कालीन साहित्य में हमें जो मांसलता, नग्नता तथा विलास प्रियता मिलती है उसे परोक्षोन्मुख कदापि नहीं कहा जा सकता, केवल राम सीता अथवा कृष्ण-राधिका के नामों के उल्लेख मात्र से रीति कालीन साहित्य को परोक्षोन्मुख नहीं कहा जा सकता। उसकी ऐन्द्रियता स्पष्ट है।" १

समस्त रीतिकालीन साहित्य में राधिका की प्रधानता है। गोपियों का जहाँ तक सम्बन्ध है ललिता, विशाखा और चन्द्रावली का नाम भूले भटके यत्र तत्र आ जाता है। रीतिकाल की राधिका चंचला, निःशंका, रसिका, मुखरा, विलासिनी और बाल तरुणी है। वह कृष्ण के साथ गलबहियाँ डाल गली से निकल जाती है, कृष्ण के साथ बतरस के लिए उत्पात करती है, और पनघट पर हाथापाई करती है। वह कभी हँसती, कभी मचलती और कभी छिपती है। उसमें हमें कैशोर-प्रेम का साक्षात् स्वरूप देखने को मिलता है। उसे न परलोक बनाने की चिन्ता है न लौकिक उत्तरदायित्व का ध्यान है। वह तो अल्हड़ किशोरी है।

डा० शिवलाल जोशी लिखते हैं, "यही कारण है कि जब कृष्ण भक्ति के अन्तर्गत हिन्दी काव्य में प्रेमतत्त्व का समावेश हुआ तो राधा तथा कृष्ण के वर्णन में भी ऐन्द्रिय कलुष ही रीतियुग के कवि ने प्रकट किया। उर्दू तथा फारसी का ऐन्द्रिय प्रभाव निश्चय ही इसके लिये उत्तरदायी है। उर्दू के प्रभाव के कारण राधिका और कृष्ण साधारण नायक और नायिका ही रह गये और उनमें केवल (राधा और कृष्ण में) इतना ही सम्बन्ध रह गया कि—

तो पर वारौं उरबसी, सुनि राधिके सुजान।
तू मोहन के उरबसी, ह्वै उरबसी समान॥ —बिहारी

इतना ही नहीं रीतियुग के कवि के हृदय में यदि कभी पुनीत भावों का उन्मेष हुआ भी तो उसकी बहिरंग दृष्टि से उसे सीता, सावित्री, राधिका जैसी देवियों

१. रीतिकालीन साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ १२० —डा० शिवलाल जोशी

केसोदास सो विलास करहु कुँवरि राधे,
　　इहि विधि मोहन शृंगारन शृंगारिबो ॥[1]

केशवदास ने राधा के रूप का वर्णन इस प्रकार किया है—

नहिं मोहिनि मोहि सकै न सची चपला चल चित्त बखानत है।
रति कीरति क्यों हूँ न कान करैं छवि चंद कला घटि जानत है॥
कहि केशव और कि बात कहा रमणीय रमा हू न मानत है।
वृषभानु सुता हित मत्त मनोहर औरहि ढोंढन आनत है॥[2]

केशवदास ने राधा के विरह के चित्र भी उपस्थित किये हैं। राधा-विरह सम्बन्धी एक चित्र भी देखिए—

मोरिनि ज्यों साथन रहत बन वीथिकान,
　　हंसिनि ज्यों मृदुल मृणालिका चहति है।
पीउ पीउ रटत रहत चित चातकी ज्यों,
　　चन्द चितै चकई ज्यों चुप ह्वै रहति है॥
हिरनी ज्यों हेरनि केशरि के कानन को,
　　केका सुनि व्याली ज्यों बिलान ही चहति है।
केशव कुँवरि कान्ह बिहरति हारे ऐसी,
　　सुरति न राधिका की सूरति गहति है॥

उन्होंने वृषभानु-सुता का वर्णन इस प्रकार किया है—

केसोदास बाल बैस दीपत तरल तेरी,
　　बाली वधु बरसन बुद्धि परमान की।
कोमल अमल उर कठोर जाति अबला पै,
　　बलवीर　बन्धन　विधान की॥
चंचल चितौन चित अचल स्वभाव साधु,
　　सकल सनाथ भाव काम की कृपान की।
बेचत फिरत दधि लेत निन्हें मोल लेत,
　　अद्भुत रस भरी बेटी वृषभान की॥

केशव की राधा कृष्ण सम्बन्धी शृंगारी प्रवृत्ति का प्रभाव रीतिकालीन अन्य अनेक कवियों पर भी लक्षित होता है।

१. रसिकप्रिया तृतीय प्रकाश, कवित्त ४४।

बिहारीलाल

बिहारी भक्त न होकर कवि थे इस हेतु उनके भक्ति के उद्‌गार कवित्व के रूप में प्रस्फुटित हुए हैं। इनका काव्य शृङ्गारी है इसलिए इनके काव्य में सामान्यतः कृष्ण और राधा साधारण नायक-नायिका के रूप में हमारे सम्मुख आये हैं। बिहारी ने राधा की वन्दना अपनी सतसई के प्रारम्भिक मंगलाचरण के दोहे में इस प्रकार की है—

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँईं परैं, स्यामु हरित-दुति होइ ॥[1]

कवि श्री कृष्ण और राधा की तन-द्युति में अनुराग करने के लिये इसलिये कहता है, क्योंकि उससे ब्रज-केलि निकुंजों के मग में पग-पग पर प्रयाग हो जाता है—

तजि तीरथ, हरि राधिका-तन-दुति करि अनुरागु।
जिहि ब्रज-केलि-निकुंज-मग पग-पग होतु प्रयागु ॥[2]

बिहारी का कथन है कि वे हरि और राधा के प्रसाद से ही संवादों से परिपूर्ण सतसई की रचना कर सके—

हुकुम पाइ जयसाहि कौ, हरि-राधिका-प्रसाद।
करी बिहारी सतसई, भरी अनेक संवाद ॥[3]

राधा ने बतरस लालच से लाल की मुरली छिपाकर रख दी है। बिहारी ने राधा और कृष्ण के विनोद का सुन्दर स्वरूप इस प्रकार चित्रित किया है—

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करैं भौंहनु हँसै दैन कहैं नटि जाइ ॥[4]

श्री कृष्ण और राधा के एक साथ गमन का चित्रण बिहारी ने इस प्रकार किया है—

निसि परछाहीं जोन्ह सौं रहे दुहुन के गात।
हरि राधा इक संग ही चले गली महिं जात ॥[5]

राधिका हरि का और हरि राधिका का रूप धारण कर संकेत स्थल पर आकर किस प्रकार विपरीत रति का सुख लेते हैं—

१. बिहारी रत्नाकर, दोहा १
२. " " दोहा २०१
३. " " दोहा ७१३
४. " " दोहा ४७२
५. " " दोहा ३७४

राधा हरि, हरि राधिका बनि आए संकेत।
दंपति रति-विपरीत-सुख सहज सुरत हूँ लेत ॥[1]

बिहारी ने विरहिणी राधा का सुन्दर स्वरूप चित्रित किया है। राधा यमुना के तीर को देखती हुई, स्याम की स्मृति करके अश्रुओं से तरौंस (तट के निकट) का जल क्षण भर में खारा कर देती है—

स्याम-सुरति करि राधिका, तकति तरनिजा-तीरु।
अँसुवनु करति तरौंस कौ, खिनकु खरौ हौं नीरु ॥[2]

बिहारी ने एक दोहे में राधा को स्याम से महत्वशालिनी बनाया है। उनका कथन है कि हे मोर चन्द्रिका ! तू श्याम के शीश पर चढ़कर क्यों गर्व करती है। तू शीघ्र ही चरणों पर लुढ़कती देखी जावेगी क्योंकि राधा का मान सुना गया है—

मोर चन्द्रिका स्याम-सिर, चढ़ि कत करति गुमानु।
लखिबी पाइनु पर लुठति, सुनियतु राधा-मानु ॥[3]

वे एक अन्य दोहे में श्री कृष्ण और राधा की जोड़ी को चिरजीवी होने की कामना करते हैं क्योंकि उन दोनों में कोई घटकर नहीं है इसलिये उनमें गहरा स्नेह क्यों न जुड़े—

चिर जीवौ जोरी, जुरै क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि, ए वृषभानुजा, वे हलधर के बीर ॥[4]

मतिराम

मतिराम अपने समकालीन कवियों की भाँति वैष्णव ही थे और राधा-कृष्ण की स्तुति सम्बन्धी पर्याप्त रचनायें इनके ग्रन्थों में उपलब्ध होती है। डा० महेन्द्रकुमार का अभिमत है कि, "वास्तव में वे कृष्ण-भक्त वैष्णव ही थे और उनकी विचारधारा पर मुख्यत: आचार्य वल्लभ के 'शुद्धाद्वैत' का प्रभाव रहा है। पर उन्होंने वल्लभ-सम्प्रदाय का कट्टरता के साथ अनुसरण न कर अन्य सम्प्रदायों से भी प्रभाव ग्रहण किया है।[5] अत: ब्रजभाषा के शृङ्गार रस के कवियों की भाँति इन्होंने भी राधा-कृष्ण की प्रेम-लीलाओं का वर्णन किया है। ब्रह्मा ने

---

१. बिहारी रत्नाकर दोहा १५५
२. ,, ,, दोहा २६२
३. ,, ,, दोहा ६७६
४. ,, ,, दोहा ६७७
५. मतिराम कवि और आचार्य—डा० महेन्द्रकुमार, पृ० १५५

बड़े कौशल से राधिका का मुख मण्डल रचा। चन्द्र को अब तक अपने सौन्दर्य का गर्व था, पर अब उनके यशोल्लास का अवसर आया। उन्होंने अपनी पूर्व मर्यादा बनाये रखने के लिये चोरी का महापातक अपने सिर पर ओढ़ा। रात को चुपके-चुपके अपने कर इसलिये फैलाए कि राधा का सौन्दर्य चुरा लें परन्तु पकड़े गये। ब्रह्मा के दरबार में इन पर निशिचर चोर होने का अभियोग प्रमाणित हो गया। कमलासन ने क्रोध करके इनके लिये अपना जनक दंड की व्यवस्था कर दी। तब से यह अपने मुख पर कलंक रूपी कालिमा लगाये दिन-रात अमरालय के चारों ओर पहरा दिया करते हैं—

सुन्दर-वदन राधे, सोभा को सदन तेरो
वदन बनायो चार-वदन बनायकै;
ताकी रुचि लैन को उदित भयौ रैन-पति,
मूढ़ मति राख्यो निज कर बगराय कै।

× × ×

मुख मैं कलंक-मिस कारिख लगाय कै।[1]

राधा कृष्ण को एकान्त स्थल में ले जाना चाहती है। वह कृष्ण से खोये हुए बछड़े को ढुढ़वाने के लिये इस प्रकार निवेदन करती है—

आई ह्वै निपट साँझ, गैया गई घर माँझ,
होतै दौरि आई कहै मेरो काम कीजिए।
हौं तो हौं अकेली, और दूसरो न देखियत,
वन की अँध्यारी सों अधिक भय भीजिए।
'कवि मतिराम' मन मोहन सों पुनि-पुनि,
राधिका कहति बात साँची कै पतीजिए।
कब की हौं हेरति, न हेरे हरि पावति हौं,
बछरा हिरान्यो हो, हिराय नैक दीजिए।[2]

मतिराम ने 'सतसई' में राधा की वन्दना इस प्रकार की है—

मो मन-तम-तोमहिं हरौ राधा कौ मुख-चन्द।
बढ़ै जाहि लखि सिंधु लौं नंद-नंदन-आनन्द॥[3]

---

१. मतिराम ग्रन्थावली, पृ० ६२
२. मतिराम ग्रन्थावली, पृ० १८३
३. मतिराम सतसई दोहा 1

कवि की राधा-मोहन के प्रेम में विशेष आस्था है इसलिए जिसे राधा मोहनलाल का प्रेम नहीं भाता मतिराम ने उसकी भर्त्सना इस प्रकार की है—

राधा मोहन-लाल को जाहि न भावत नेह।
परियो मुठी हजार दस ताकी आँखिनी खेह ॥[1]

राधा और कृष्ण के नवल नेह का वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है—

नवल नेह में दुहुनि को लखौ अपूरब बात।
ज्यों सूरति सब-देह है त्यों पानिप अधिकात ॥[2]

राधा कृष्ण के साथ इस प्रकार सुशोभित होती है—

सुबरन बेलि तमाल सौं घन सौं दामिनि - देह।
तू राजति घनस्याम सौं राधे सरिस सनेह ॥[3]

राधा का विरह-स्वरूप देखिए—

दसा हीन राधा भई सुन यै नंदकिसोर।
दीप सिखा लौं देखियत बारि-बयारि-झकोर ॥[4]

किन्हीं स्थलों पर मतिराम ने कृष्ण से राधा की वरीयता भी सिद्ध की है—

ब्रज ठकुराइनि राधिका ठाकुर किए प्रकास।
ते मन-मोहन हरि भए अब दासी के दास ॥[5]

देव

देव को कृष्ण-लीला में विशेष आनन्द आता था इसलिए उन्होंने कृष्णपरक काव्य की अधिक रचना की। राधामाधव शृङ्गार रस के सर्वश्रेष्ठ आलम्बन विभाव हैं। देव ब्रजाधीश श्री कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द एवं वृषभानुनन्दिनी के उपासक थे इसलिए उन्होंने अपने काव्य का सारा शृङ्गार ब्रजाधीश को ही समर्पित कर दिया। डा० नगेन्द्र का अभिमत है कि देव के ग्रन्थों में राधा के प्रति झुकाव नहीं है। वे लिखते हैं, "परन्तु उनके काव्य की आत्मा और विभिन्न ग्रन्थों के मंगलाचरणों में इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि वे वैष्णव थे और उनके इष्टदेव राधा-कृष्ण ही थे। कुछ विद्वानों ने उनकी भक्ति-भावना को और भी संकुचित कर उन्हें गो० हितहरिवंश की शिष्य-परम्परा में राधावल्लभीय सम्प्रदाय का अनुयायी

१. मतिराम सतसई दोहा ४
२. ,, ,, दोहा १२
३. ,, ,, दोहा १२६
४. ,, ,, दोहा १५५
५. ,, ,, दोहा ३९५

बताया है, परन्तु इसका न तो कुछ वहिःसाक्ष्य ही मिलता है और न अन्तःसाक्ष्य ही। राधा के प्रति उनके ग्रन्थों में कोई निश्चित झुकाव नहीं मिलता। जो थोड़ा बहुत है भी वह इस कारण है कि देव का काव्य शृङ्गारिक है, और राधा स्त्री है, अतएव शृङ्गार की सार-प्रतिमा नायिका के साथ राधा का तादात्म्य करने में उन्हें सरलता रही है। वैसे जो छन्द शुद्ध भक्ति-भाव से प्रेरित हैं वे कृष्ण को लक्ष्यकर रचे गये हैं।"[1] किसी रूप में भी राधा का वर्णन हुआ हो परन्तु यह निश्चित है कि देव के काव्य में भी राधा के स्वरूप का सुन्दर चित्रण हुआ है।

देव की निम्नलिखित उक्ति राधा के प्रति ही प्रतीत होती है—

जबते कुँवर कान रावरी कला निधान,
कान परी वाके कहूँ सुजस कहानी-सी,
तब ही ते 'देव' देखी देवता-सी, हँसति-सी,
खीझति-सी, रीझति-सी, रूसति-रिसानी सी।
छोही-सी, छली-सी, छीनि लीनी-सी, छकी-सी-छीन,
जकी-सी, टकी-सी लगी थकी थहरानी-सी;
बीधी-सी, बधी-सी, विष बूड़ी-सी, विमोहित-सी,
बैठी वह बकति बिलोकति बिकानी-सी॥[2]

राधिका कुंजविहारी रस में मग्न हैं। श्यामा श्याम की पाग की सराहना करती है और श्याम श्यामा की साड़ी की सराहना करते हैं—

आपुस में रस में रहसें, विहँसै वन राधिका कुंजविहारी।
स्यामा सराहति स्याम की पागहि, स्याम सराहत स्यामा की सारी।
एक ही दर्पन देखि कहै तिय, नीके लगौ पिय प्यौ कहै प्यारी।
'देव' सुबालम बाल के साथ, त्रिलोक मई बलि है बलिहारी॥[3]

देव के काव्य में विनोद-परिहास भी प्रस्फुट हुआ है। एक दिन सभी गोपियों ने मिलकर कृष्ण को छकाने की सोची। वे राधा को कंस का प्रतिहारी बनाकर मधुवन के कुंजों में कृष्ण के पास ले आयीं; और कड़कती हुई बोली, "चलिए, महाराज कंस आपको बुलाते हैं, आप किसकी आज्ञा से दधि का दान लेते हैं?" कृष्ण के साथी डर कर भाग गए। कृष्ण सटपटाते से अकेले खड़े रह गए। तुरन्त उनको पकड़कर राज प्रतिहारी के हाथ में दे दिया गया; बस यहीं

१. देव और उनकी कविता—डा० नगेन्द्र, पृष्ठ १२३
२. हिन्दी नवरत्न मिश्रबन्धु, पृष्ठ ३२५ भवानीविलास
३. देवदर्शन, पृष्ठ ६८, अष्टजाम ७—श्री हरदयालुसिंह

आकर भेद खुल गया। प्रतिहारी की दृष्टि छल को छिपाये रखने में असमर्थ हो गई। भौंहों ने ढीली पड़कर सारा भेद खोल दिया—

राज पौरिया के रूप राधे कों बनाइ लाई,
गोपी मथुरा ते मधुवन की लतानि में।
टेरि कह्यो कान्ह सों, चलो हों कंस चाहे तुम्हें,
काहू कहे लटत सुने हो दधि दान में॥
संग के न जाने, गए डगरि डराने 'देव',
स्याम ससवाने से पकरि करे पानि में।
छूटि गयो छलसों छबीली की बिलोकनि में,
ढीली भई भौंहे वा लजीली मुस्कानि में॥

देव ने राधा को सिद्धि की साधिका, साधु समाधिका और व्रजराज की रानी बताया है—

श्री विधि बानी जु वेद बखानी, पुराननि जो सिव संग भवानी।
जो कमला कमलापति के संग, 'देव' सचीस सची सुखदानी॥
दीपसिखा बृज मन्दिर सुन्दरि, जागति ज्योति चहूँ युग-जानी।
सिद्धि की साधिका साधु समाधिका, सो बृजराज की राधिका रानी॥[1]

देव ने राधा के स्वरूप का चित्रण इन प्रकार किया है—

कैसो किसोरी को केसरि सो तनु, केश बड़े-बड़े नीर निचोवैं।
हाँसी सुधा सी सुधानिधि सो मुख, माँग के मोतिन मैल मिलोवैं॥
कान अहो धरि राखो न होय, हनें हू नखो जो सुने सुख खोवैं।
राधे सी रूप उजागरि नागरि, सो गुन आगरि गागरि ढोवैं॥[2]

नंदकुमार भी सुन्दरी राधा की वंदना करते हैं—

ईंगुर सो रंग ऐड़िन बीच, भरी अँगुरी अति कोमल तायनि।
चन्दन-बिन्दु मनों दमकै, नख 'देव' चुनी चमकैं ज्यों सुभायनि॥
वंदत नंदकुमार तिहारेई, राधे वधू व्रज की ठकुरायनि।
नूपुर-संजुत मंजु मनोहर, जावक रंजित कंज से पायनि॥[3]

देव ने स्तम्भ-स्मरण का बड़ा ही रोमांचकारी वर्णन किया है। स्तम्भ-स्मरण की समता योग से दी है। राधा का स्वरूप योगासन पर बैठी हुई योगिनी के समान चित्रित किया है—

१. देवदर्शन, पृ० १०२, भवानी विलास १—श्री हरदयालुसिंह
२. देवदर्शन, पृ० १७६, कुशल विलास १७—श्री हरिदयालुसिंह
३. देवदर्शन, पृ० १८७, स्फुट कविता ६—श्री हरदयालुसिंह

शृङ्गारी ही रही है। पद्माकर ने राधा के संयोग और वियोग के सुन्दर चित्र चित्रित किए हैं। राधा कृष्ण सम्बन्धी आपके कवित्त तथा सवैये अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखते हैं। राधा और कृष्ण दोनों पर अनंग का नवीन रंग और तरंग छाई हुई है और दोनों को एक दूसरे के शरीर की कान्ति सुन्दर लगती है—

ये वृषभानु किसोरी भई इतै उहाँ वह नंद किसोर कहावैं।
त्यों 'पद्माकर' दोउन पै नवरंग तरंग अनंग की छावैं॥
दौरीं दुहूं दुरि देखिबे कों दुति देह दुहूंकी दुहून पै भावैं।
ह्यां इनके रसभीने बड़े दृग ह्वां उनके मसि भीजति आवैं॥ [1]

एक सखी ने राधा से श्यामल कृष्ण के रूप सौन्दर्य के सम्बन्ध में कहा। उसी दिन से राधा को कुछ नहीं सुहाता उनके नेत्र नीर-भरे घन की घटा के समान हो गये। जब कृष्ण के रूप-सौन्दर्य के सम्बन्ध में सुनकर ही राधा की ऐसी दशा होगई तो जब वह कृष्ण को देखेगी तो उनकी क्या दशा होगी—

राधिका सों कहि आई जु तू सखि सांवरे की मृदु मूरति जैसी।
ता दिन ते 'पद्माकर' ताहि सुहात कछू न बिसूरति वैसी॥
मानहु नीर-भरी घन की घटा आंखिन में रही आनि उनै-सी।
ऐसी भई सुनि कान्ह-कथा जु बिलोकहिगी तब होइगी कैसी॥ [2]

राधा आधे वचन कहकर ही ब्रजराज को अपने वशीभूत कर लेती है—

आधे - आधे दृगनि रति, आधे दृगन सुलाज।
राधे - आधे वचन कहि, सुवस किये ब्रजराज॥ [3]

उन्होंने राधा-कृष्ण का सम्बन्ध इस प्रकार स्थापित किया है—

मन मोहन - तन घन सघन, रमनि राधिका मोर।
श्री राधा मुखचंद को, गोकुलचंद चकोर॥ [4]

उन्होंने राधा और श्याम की एकता इस प्रकार स्थापित की है—

ये इत घूंघट घालि चलैं उत बाजत बांसुरी की धुनि खोलैं।
त्यों 'पद्माकर' ये इतै गोरस लै निकसैं यों चुकावत मोलैं॥
प्रेम के पंथ सु प्रीत की पैंठ में पैंठत हो है दसा यह जोलैं।
राधामयी भई श्याम की सूरति स्याम मई भई राधिका डोलैं॥ [5]

---

१. पद्माकर पंचामृत, सवैया ३४—विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।
२ पद्माकर पंचामृत, सवैया ३२५—विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।
३. पद्माकर पंचामृत, दोहा २१—विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।

शृङ्गारी ही रही है। पद्माकर ने राधा के संयोग और वियोग के सुन्दर चित्र चित्रित किए हैं। राधा कृष्ण सम्बन्धी आपके कवित्त तथा सवैये अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखते हैं। राधा और कृष्ण दोनों पर अनंग का नवीन रंग और तरंग छाई हुई है और दोनों को एक दूसरे के शरीर की कान्ति सुन्दर लगती है—

ये वृषभानु किसोरी भई इतै वहाँ वह नंद किसोर कहावैं।
त्यों 'पद्माकर' दोउन पै नवरंग तरंग अनंग की छावैं॥
दौरौं दुहूं दुरि देखिवे कों दुति देह दुहूँकी दुहून पै भावैं।
ह्याँ इनके रसभीने बड़े दृग ह्वां उनके मसि भीजति आवैं॥ [१]

एक सखी ने राधा से श्यामल कृष्ण के रूप सौन्दर्य के सम्बन्ध में कहा। उसी दिन से राधा को कुछ नहीं सुहाता उसके नेत्र नीर-भरे घन की घटा के समान हो गये। जब कृष्ण के रूप-सौन्दर्य के सम्बन्ध में सुनकर ही राधा की ऐसी दशा होगई तो जब वह कृष्ण को देखेगी तो उसकी क्या दशा होगी—

राधिका सों कहि आई जु तू सखि सांवरे की मृदु मूरति जैसी।
ता दिन ते 'पद्माकर' ताहि सुहात कछू न बिसूरति वैसी॥
मानहु नीर-भरी घन की घटा आंखिन में रही आनि उनै-सी।
ऐसी भई सुनि कान्ह-कथा जु विलोकहिगी तब होइगी कैसी॥ [२]

राधा आधे वचन कहकर ही ब्रजराज को अपने वशीभूत कर लेती है—

आधे - आधे दृगनि रति, आधे दृगन सुलाज।
राधे - आधे वचन कहि, सुवस किये ब्रजराज॥ [३]

उन्होंने राधा-कृष्ण का सम्बन्ध इस प्रकार स्थापित किया है—

मन मोहन - तन घन सघन, रमनि राधिका मोर।
श्री राधा मुखचंद को, गोकुलचंद चकोर॥ [४]

उन्होंने राधा और श्याम की एकता इस प्रकार स्थापित की है—

ये इत घूंघट घालि चलैं उत बाजत बासुरी की धुनि खोलैं।
त्यों 'पद्माकर' ये इतै गोरस लै निकसैं यों चुकावत मोलैं॥
प्रेम के पंथ सु प्रीत की पैंठ में पैठत ही है दसा यह जोलैं।
राधामयी भई श्याम की सूरति स्याम मइ भई राधिका डोलैं॥ [५]

१. पद्माकर पंचामृत, सवैया ३४—विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।
२ पद्माकर पंचामृत, सवैया ३२५—विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।
३. पद्माकर पंचामृत, दोहा २१६—विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।
४. पद्माकर पंचामृत, दोहा २८८—विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।
पद्माकर पंचामृत, सवैया ४२६—विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।

पद्माकर काव्य में उभय पक्षीय प्रेम के वर्णन होते हैं। राधा को माधव की जिस प्रकार रट लगी हुई है उसकी कल्पना है कि माधव को भी इसी प्रकार राधा की रट लगी रहे—

जैसी छवि श्याम की पगी है तेरी आँखिन में,
ऐसी छवि तेरी श्याम-आँखिन पगी रहै।
कहै 'पद्माकर' ज्यों तान में पगी है त्यों ही,
तेरी मुसकानि कान्ह - प्रान में पगी रहै॥
धीर धर धीर धर कीरति किशोरी, भई,
लगन इतै - उतै बराबर जगी रहै।
जैसी रट तोहि लागी माधव की राधे वैसी,
राधे - राधे - राधे रट माधवै लगी रहै॥[1]

राधा कृष्ण के रंग में मग्न है। उन्हीं के साथ राधा को अगाध आनंद है। परन्तु कृष्ण उनका मान देखना चाहते हैं। एक पल कृष्ण के विलग होने पर राधा के मान करने पर कृष्ण के वंशी वादन करने पर पुनः वह मग्न स्वभावा राधा रीझ उठती है—

काहू के रंगी है रंग काहू के पगी है मग,
काहू के लगी है संग आनँद - अगाधा को।
कहै 'पद्माकर' न चाहु नीकि नेकु हग,
तातें तें न्यारो कियो एक पल आधा को॥
काहू पै गोपाल कछु फिरै ख्याल खेलत है,
मान मोरिबे को रीझिबे को करि साधा को।
काहू पै बजाइ कछ प्रथम रिझावै टेरि,
बाँसुरी बजाइ कै रिझाइ लेत राधा को॥[2]

इस तरह पद्माकर ने राधा के संयोग शृंगार के सुन्दर चित्र चित्रित किए हैं।

---

१. पद्माकर पंचामृत कवित्त ११४—विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।
२. पद्माकर पंचामृत कवित्त ११०—विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।

आधुनिक काल में राधा का स्वरूप

राधास्वामी का मत

आगरा निवासी लाला शिवदयालसिंह साहब राधास्वामी मत के प्रवर्त्तक थे। उनके अनुयायी उन्हें परम गुरु स्वामी जी महाराज कहते हैं। उनका जन्म संवत् १८७५ में हुआ और गृहस्थाश्रम में रहकर जीविका के लिये उन्होंने अध्यापन कार्य किया। उन्होंने घर के एक कमरे में बैठ कर १५ वर्ष तक 'सुरत-शब्द-योग' का अभ्यास किया और संवत् १९१७ की वसन्त पंचमी से सतसंग कार्य आरम्भ किया। घर पर ही वे जिज्ञासुओं को उपदेश देते और धर्म चर्चा करते थे। उनसे शास्त्रार्थ करने के हेतु दूर दूर से विद्वान आते थे। यह सतसंग सत्रह वर्ष तक चलता रहा और उससे प्रभावित होकर लगभग तीस हजार व्यक्तियों ने उनसे दीक्षा ली। स्वामी जी महाराज ने पूर्ववर्ती सन्तों की भांति सत्य-नाम का उपदेश दिया। उन्होंने 'सार वचन' नामक पुस्तक पद्य में लिखी। यह पुस्तक इस मत का प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। उनका निधन संवत् १९३५ की आषाढ़ कृष्ण प्रतिपदा को हुआ।

इस मत के उत्तराधिकारी द्वितीय गुरू हजूर साहब (राय शालग्राम साहब बहादुर) पोस्ट मास्टर जनरल के उच्च पद को सुशोभित करने वाले प्रथम भारतीय थे। वे उच्च और आदर्श कोटि के भक्त थे। उन्होंने 'राधास्वामी' नाम को प्रकट किया जिसका आधार कबीर का निम्नलिखित वचन है—

"कबीर धारा अगम की, सतगुरु दई लखाय।
ताहि उलटि सुमिरन करो, स्वामी संग लगाय ॥"

नौकरी करते समय और पेनशन पाने के बाद भी वे अपना अधिक से अधिक समय प्रियतम हजूर राधास्वामी दयाल की भक्ति में ही लगाते थे। वे लगभग २० वर्ष तक गुरु रहे और उन्होंने ग्यारह पुस्तकें लिखीं। उनका निधन ६ दिसम्बर १८९८ ई० को हुआ।

पं० ब्रह्मशंकर मिश्र 'महाराज साहब' तीसरे गुरू ने सिर्फ ६ वर्ष १९०१–१९०७ सन् तक कार्य भार सँभाला। उन्होंने अंग्रेजी में डिसकोर्सेज आन राधास्वामी फेथ (Discourses on Radha Swami faith) पुस्तक की रचना की। उनकी मृत्यु संवत् १९६४ की आश्विन शुक्ल पञ्चमी है।

मूल गद्दी के अतिरिक्त लगभग ९० वर्ष के अन्दर सात गद्दियाँ और स्थापित हो गई, जिनमें मुरार, जिला शाहाबाद (विहार) के बक्सी कामताप्रसाद उर्फ 'सरकार साहब' द्वारा संचालित गद्दी बहुत प्रसिद्ध हुई। उनके बाद इस गद्दी के

सर आनन्दस्बरूप उर्फ 'साहब जी' गुरु ने आदि गुरु शिवदयाल साहब बहादुर की जन्मभूमि आगरा के पास 'दयाल बाग' नामक संस्था स्थापित की। मीलों के घेरे में स्थिति दयाल बाग में स्कूल और कालिजों के साथ-साथ भिन्न-भिन्न उद्योग धन्धे भी हैं। यहाँ पर अनेकों सत्संगी भी रहते हैं। राधास्वामी मत के प्रवर्त्तक परम गुरु 'स्वामी जी महाराज' का संगमरमर का समाधि मन्दिर बन रहा है। इसकी कारीगरी अद्भुत है और बनने पर यह आगरे के ताजमहल का प्रतिद्वन्दी होगा।

इस मत के प्रवर्त्तक और समस्त गृहस्थ गद्दीधारी आत्मोन्नति के साथ-साथ कर्मयोगी की भाँति जगत का धार्मिक और आर्थिक कल्याण भी कर रहे हैं। इस मत का यथेष्ठ साहित्य है। सार बचन, शब्द संग्रह, संतबानी संग्रह, प्रेम समाचार, आदि पुस्तकें हिन्दी में उपलब्ध हैं। इस मत में गुरुवाणी के पाठ करने की प्रथा है। इस मत की पुस्तकों में कबीर, नानक, पलटू, दादू आदि की अनेक वाणी सम्मिलित हैं। राधास्वामी मत संत मत कहलाता है।

राधास्वामी मत में साधन और अभ्यास पर अधिक बल दिया जाता है। 'बचन सार' पुस्तक में इस साधन के सम्बन्ध में इस प्रकार वर्णन है, "राधास्वामी मत को संत मत भी कहते हैं। पिछले वक्तों में यह मत निहायत गुप्त रहा और चूँकि इसका अभ्यास शुरू में प्राणायाम के साथ किया जाता था, इस सबब से बहुत कम लोग वाकिफ थे और न किसी से इसका अभ्यास बन सकता था। क्योंकि प्राणायाम करने में समय और परहेज सख्त दरकार है और खतरे भी बहुत कम हैं। इस सबब से यह काम इस कदर मुश्किल था कि कोई इसमें कदम भी नहीं रख सकता था। अब हुजूर राधास्वामी ने ऐसी सहज मुक्ति और आसान तरीका सुरत शब्द योग का अपनी दया से प्रगट किया है कि जो कोई सच्चा शौक रखता हो तो वह आसानी से इसका अभ्यास कर सकता है। ख्वाह वह मर्द हो या औरत, ख्वाह जवान हो या बूढ़ा।"[१]

यह मत केवल अन्तरमुखी बनाने का प्रबन्ध करता है। राधास्वामी मत में तीन बातों को अत्यन्त आवश्यक माना है। पोथी सार बचन की भूमिका में लिखा है, "राधास्वामी मत में तीन चीजें दरकार हैं, एक गुरु, दूसरा नाम और तीसरा सत्संग।" "और यही तीन चीजें वसीलिये[२] उद्धार यानी निजात[३] की

१. शिव-बचन सार वर्ष २ तरङ्ग ७, पृ० २५-२६
२. सहायक
३. मुक्ति

हैं।" "अव्वल गुरु पूरा और सच्चा होना चाहिए यानी संत सतगुरु। वंशावली (खानदानी) गुरुओं से काम नहीं निकल सकता। दूसरे नाम भी सबसे ऊँचा और सच्चा और पूरा और असली यानी जाती चाहिए, सब भेद नामी या मुसम्मा[1] के कृत्रिम यानी सिफाती नामों से काम नहीं बनेगा। तीसरे सत्संग भी सच्चा चाहिए और उसकी दो किस्में हैं। एक सत्संग अंतरीय व दूसरा सत्संग बाहरी। अन्तरी सत्संग कि जब अभ्यासी अपनी सुरत यानी जीवात्मा या रूह को अन्तर में चढ़ाकर सत्पुरुष यह है राधास्वामी के चरणों में लगावे या उस तरफ को मुतवज्जह करे। और दूसरा यह कि जब उसको दर्शन और संग सत्पुरुष का जोकि सच्चे व पूरे संग व साधु हैं, नसीब होवे और यह उनके वचन सुने और दर्शन करे और जो सेवा बन सके करे। इन दोनों किस्म के सत्संग से कोई दिनों में हालत बदलती हुई साफ मालूम होगी।"[2] अभ्यासी बाह्य सत्संग में सन्तों और साधुओं का दर्शन तथा उपदेश प्राप्त करता है और आभ्यन्तर सत्संग में अपनी सुरत अथवा जीवात्मा को अन्तरतम में चढ़ाकर सत्पुरुष राधास्वामी के चरणों में लगाता है। तीर्थ, व्रत, मन्दिर, मूरति पोथियों का पाठ, जप और सुमिरन को व्यर्थ और परमार्थी काम माना है इनसे अहंकार आ जाता है।[3]

वेदान्त में जिसे आतमा अथवा जीवात्मा और सूफी में जिसे रूह कहा गया है संत मत अथवा राधास्वामी मत में उसे ही 'सुरत' कहागया है। शरीर की वास्तविक शक्ति 'सुरत' या पिंडी आतमा में है। राधास्वामी मत वास्तव में प्रेम-मार्ग और भक्ति पंथ है जिसमें गुरु से प्रेम किया जाता है। यह गुरु आध्यात्मिक क्षेत्र में सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा हुआ योग्य और अनुभवी संत या साधु होना चाहिए। ऐसे गुरु के सत्संग और दीक्षा के बिना जिज्ञासु आध्यात्मिक उन्नति नहीं कर सकता। यह एक मात्र गुरु पूजा (मुर्शिद परस्ती) का मार्ग है। "राधास्वामी मत मौखिक बोलचाल या शुद्ध फिलोस्फी (दर्शन शास्त्र) का मार्ग नहीं है। यह

१. नाम वाला

२. शिवबचनसार वर्ष २ तरङ्ग ७, पृ० ३४-३५

३. "और जो काम परमार्थी किस्म के हैं मसलन तीर्थ, व्रत और मन्दिर और मूरति और पोथियों का पाठ और जप और सुमिरन सिफ़ाती नाम का, इन कामों की करनी से जरा भी हालत नहीं बदलती, क्योंकि इन कामों में निज-मन और जीवात्मा यानी रूह जिसको संत सुरत कहते हैं शामिल नहीं होते और इसी सबब से इन कामों का असर ज़ाहिर नहीं होता। अलबत्ता ज़ाहिरी अहंकार वग़ैरा दिल में आ जाते हैं।"—पोथी सार वचन

अमल (करनी) का मार्ग है। यहाँ यह नहीं कहा जाता कि "आओ और कहो। वल्कि यहाँ यह मंत्रणा दी जाती है कि 'आओ और कर देखो।"[1] राधास्वामी मत की वास्तविक पुस्तक मानव शरीर है। सत्संग से उसी के अध्ययन की रुचि पैदा की जाती है।

इस मत के अनुयायियों को 'सुरत-शब्द-योग' जिसे हम 'अन्तर्नाद योग' भी कह सकते हैं का उपदेश दिया जाता है। इसकी युक्ति जिज्ञासुओं को दीक्षाकाल में बताई जाती है और यह योग-साधन एक विशेष आसन पर बैठकर किया जाता है। इस मत में प्राणायाम तथा हठयोग का कोई स्थान न होकर मूलमंत्र 'राधा सो आयी' है जिसे 'आदिनाद' बताया गया है जो अभ्यासी को सफलता के मार्ग में सुनाई पड़ता है। इसमें न निर्गुण की उपासना की जाती है न सगुण की परन्तु इन दोनों से परे जो है उसकी उपासना की जाती है और वर्त्तमान सद्गुरु के रूप की पूजा तथा उन्हीं के स्वरूप का ध्यान किया जाता है। इसमें जाति-पाँति, पण्डित पुरोहित, श्राद्धादि कर्मों का वहिष्कार और योग मत का सुधार है।

राधास्वामी मत के अनुसार सृष्टि के तीन मुख्य भाग हैं—१. पिण्ड २. ब्रह्माण्ड ३. दयालदेश। इनके अन्तर्गत १८ भाग है। प्रथम अवस्था में सांसारिक विषय प्रधान और धार्मिक विषय गौण रहता है, द्वितीय अवस्था में धार्मिक विचार प्रधान और सांसारिक वासनायें गौण रहती हैं तथा तृतीय अवस्था में सांसारिक भावनाओं का पूर्णनाश हो जाता है और एक मात्र पूर्ण शुद्ध धार्मिक भावना जागृत रहती है। इसके अनुसार प्रभु के चरणों में प्रेम, प्रीति और प्रतीत ही उपासना है और वास्तविक सन्त, सन्तपुरुष तथा परब्रह्म में कोई भेद नहीं है।

राधास्वामी मत में राधा का स्वरूप

राधास्वामी मत और उसका अभ्यास उन लोगों के लिये है जिनको सच्चे मालिक से मिलने की कामना है और जिनको अपने जीव के कल्याण और उद्धार की चिन्ता है। सार वचन नामक ग्रन्थ में लिखा है, "संत मत में वही कायदा जारी है जो और तरीकत यानी उपासना वालों के मत में जारी है और वह यह है कि सतगुरु पूरे यानी मुरशिद कामिल में और मालिक कुल में भेद नहीं करते और इसी सबब से उनको उसी नाम से पुकारते हैं जो कि असली नाम उस मुकाम यानी पद का है जहाँ से कि वह आये हैं। राधास्वामी नाम सुरत और असली लहर, शब्द और उसकी धुन, प्रेमी और प्रीतम इन सबका मतलब एक ही है।"[2]

१. शिव मासिक वर्ष २ तरङ्ग ७ सितम्बर १९५९
२. सार वचन, पृ० १०

राधास्वामी मत में शब्द चैतन्य का प्राकट्य माना जाता है। इसी पर सृष्टि की उत्पत्ति निर्भर है। इस मत में इस आदि शब्द को स्वामी कहते हैं। शब्द का प्राकट्य धार के रूप में होता है। "आदि शब्द से जो धार निकली उसी की उल्टी व गोलधार को राधा कहते हैं। जिस तरह स्वामी आदि शब्द था उसी तरह यह राधा आदि सुरत कहलाई। उनके मेल से यह जगत रचा गया और शब्द से सुरत और सुरत से शब्द का क्रम चल निकला।"[1] इस सुरत और शब्द ने अपने-अपने मंडल बनाकर उसमें स्थित हुए और उनके बीच भिन्नता की सूरतें कायम हुई। राधा के सम्बन्ध में सार वचन की भूमिका में इस प्रकार लिखा है, "मालूम होवे कि आदि शब्द कुल का कर्त्ता और स्वामी है, और आदि सुरत यानी उसके अव्वल जहूर का नाम राधा है। इन्हीं का नाम सुरत और शब्द है, और जब इनकी धार नीचे आई तब इसी आदि शब्द से और शब्द, और आदि सुरत से सुरत और शब्द से सुरत और सुरत से शब्द, बराबर प्रगट होते आये और अपने-अपने मुकाम पर कायम हुए।"[2]

'सार वचन' ग्रन्थ में राधास्वामी नाम की सिफत बतलाई है। उसमें दूसरी सिफत इस प्रकार बताई है—

राधा धुन का नाम सुनाऊँ। स्वामी शब्द भेद बतलाऊँ ॥२॥
धुन और शब्द एक कर जानो। जल तरग सम भेद न मानो ॥३॥

तीसरी सिफत में लिखा है—

राधा प्रीति लगावन हारी। स्वामी प्रीतम नाम कहारी ॥२॥
यह भी सिफत बताय दई री। राधास्वामी सुरत शब्द गायारी ॥३॥

चौथी सिफत में लिखा है—

राधा आदि सुरत का नाम। स्वामी आदि शब्द निज धाम ॥१॥
सुरत शब्द और राधास्वामी। दोनों नाम एक कर जानी ॥२॥[3]

राधा की महिमा अत्यधिक है।[4] राधा का दर्शन बड़ी आपत्तियों के उपरान्त होता है।[5] गोपी और कृष्ण विहार का वर्णन करते हुए सार वचन में आया है कि मन कृष्ण है गोपी इन्द्रियाँ हैं। भोग विकार लीला है। कामादिक

१. शिव मासिक राधास्वामी योग प्रथम भाग वर्ष २ तरङ्ग ७ सितम्बर १९५६
२. सार वचन की भूमिका, पृ० ६
३. सार वचन, पृ० १६-१७
४. हे राधा तुम गति अति भारी ॥१॥ सार वचन, पृ० १०६
५. राधा दरस कठिन गहरारी ॥६॥ सार वचन, १०७

ग्वालवालों के साथ वृन्दावन तन में खेल करते हैं। आनन्द स्वरूप पिता अपने त्रिकुटी द्वार को छोड़कर अनहद शब्द के स्थान को छोड़कर नौ द्वार वाले शरीर में आ फँसा। कंस रूप अज्ञान निशाचर इस मन के साथ पड़ गया। नाद ज्ञान को लेकर चढ़ाई करके कंस गँवार को मार लिया। जिस मन को राधा सुरत मिल गई वही दस द्वार वाला कृष्ण पहुँच गया।[1]

सार वचन में, "चढ़ना सुरत का व लीला मुलाकात की प्रसंग में आया है कि, "शब्द की धुनें और शब्द सुनती हुई, जो कि गोपी और ग्वाल हैं सुरत गूजरी यानी इन्द्रियों को जलाने वाली ऊपर को चढ़ती चली जाती है। गोपी और ग्वाल यानी मन इन्द्री वगैरह विलास और शोर करते हुए और आकाश में से दधि यानी चेतन्य को समेटते और छाँटते हुए मगन हो रहे हैं। और सब चारों तरफ से अपने प्रीतम शब्द गुरु को पुकारते हैं और राधा यानी सुरत चलने वाली इस विलास को देखकर मगन होती है।"[2]

राधा की शोभा के सम्बन्ध में लिखा है—

बैठक स्वामी अद्‌भुती, राधा निरख निहार।
और न कोई नख सके, शोभा अगम अपार ॥३१॥
गुप्त रूप जहाँ धारिया, राधास्वामी नाम।
बिना मेहर नहिं पावई, जहाँ कोई बिसराम ॥३२॥[3]

राधास्वामी मत में आदि सुरत या जीव का नाम राधा है। साधक धारा को अपने साधन से उलटकर राधास्वामी को प्राप्त होता है।

---

१. कहूँ अब गोपी कृष्ण बिहार।
मन है कृष्ण इन्द्रियाँ गोपी। लीला भोग विकार ॥१॥
कामादिक सब ग्वाल बाल संग। बिन्द्राबन तन करत खिलार ॥२॥
नन्द अनन्द रूप पित अपना। छोड़ तिरकुटी द्वार ॥३॥
नाद धाम तज जक्त सम्हारा। आय फँसा नौ बार ॥४॥
कंस रूप अज्ञान निशाचर। पड़ गया इस मन लार ॥५॥
नाद ज्ञान ले करी चढ़ाई। मारा कंस गँवार ॥६॥
राधा सुरत मिली जिस मनको। वहीं कृष्ण पहुँचा दस द्वार ॥७॥
—सार वचन, पृ० ४४५-४४६

२. गोपी धुन और शब्द ग्वाल मिल। सुरत गूजरी आई चल-चल ॥१०॥
खेलत कूदत शोर मचावत। दधि आकाश सब मथ-मथ लावत ॥११॥
पी-पी चहुँ दिस होत पुकारा। सुन-सुन राधा मगन बिहारा ॥१२॥
स्वामी-स्वामी धुन अब जागी। उमँग हिये में छिन-छिन लागी ॥१३॥
सार वचन, पृ० ८१७

३. सार वचन, पृ० ८१७

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काव्य में दोहों के साथ पदों का लालित्य भक्तिकालीन कृष्ण भक्त कवियों की भांति ही दृष्टि गोचर होता है। उनका कृष्ण और राधा-स्वरूप चित्रण अष्टछाप कवियों की भावना पद्धति से प्रभावित है। राधा की छवि, शोभा, रास, झूलना, वसंत एवं फाग के वैसे ही वर्णन हमें देखने को मिलते हैं। भारतेन्दु ने राधा के स्वरूप का चित्रण भक्ति कालीन कृष्ण भक्त कवियों की भांति ही किया हैं। राधिका की छटा के प्रकाश से पापी भी प्रेमी बन जाते हैं।[१] घनश्याम के सीधे पार्श्व में चन्द्रावली और वाम पार्श्व में राधा सुशोभित हैं।[२] राधा व्रज को प्रकाशित करने वाली और हरि के मन को प्रसन्न करने वाली हैं।[३] यह अष्ट सखियों के साथ निवास करती हैं इसी लिये कृष्ण के चरणों के निकट नवकोन का चिह्न है।[४]

भारतेन्दु जी ने राधा के चरणों में विभिन्न चिह्नों के भाव का वर्णन किया है। उनके चरणों में ध्वज चिह्न, लता-चिह्न, पुष्प-चिह्न, कंकण-चिह्न, कमल-चिह्न, ऊर्ध्व रेखा-चिह्न, अर्धचन्द्र-चिह्न, अंकुश-चिह्न, यव-चिह्न, पाश-चिह्न, गदा-चिह्न, रथ चिह्न, वेदी चिह्न, कुण्डल-चिह्न, मत्स्य चिह्न, पर्वत चिह्न, शंख चिह्न, छत्र-चिह्न, और चक्र आदि चिह्न हैं।[५] राधा छवि की राशि है—

"प्यारी छवि की रासि बनी।
जाहि विलोकि निमेष न लागत थी वृषभानु - जनी॥
नंद - नंदन सौ बाहु मिथुन करि ठाड़ी जमुना - तीर।
करन होत सोतिन के छवि लखि सिह कमर पर चीर॥[६]

राधा बहुत ही सुन्दर हैं। कृष्ण उसकी नथ में कुसुमकली पिरोते हैं। उसने महीन वस्त्र पहिन रखे हैं, और केश बिखरे हुए हैं।[७] शृंगार से छवि फबी हुई है। बिना कंचुकी और बिना करों में कंकणों के ही अपार शोभा है। तनमुख की सारी

---

१. भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा खण्ड पृष्ठ ५ दोहा १।
२. ,, ,, ,, पृष्ठ ५ दोहा ५।
३. ,, ,, ,, पृष्ठ ५ दोहा ६।
४. ,, ,, ,, खण्ड १४ दोहा ५।
५. ,, ,, ,, पृष्ठ २६ से ३० तक।
६. ,, ,, ,, पृष्ठ ४५ पद ९।
७. ,, ,, ,, पृष्ठ ५१ पद २०।

शरीर में चोली की झिलक नहीं है और सुगंधित केश युक्त हैं।[१] उसके सिर पर बालों का जूड़ा ऐसा प्रतीत होता है मानो अंधकार के ऊँचे शिखर पर चन्द्रमा शोभायमान हो।[२] वृषभानु कुमारी राधा के नखों पर करोड़ों चन्द्रमाओं को न्योछावर किया जा सकता है। वह यशोदा के नंद की दुलारी, सुख देने वाली और ब्रज की रानी है।[२] वह राधा महारानी तीन लोक के ठाकुर की ठकुरानी, समस्त ब्रज की सिरताज, लाड़िली, सखियों को सुख देने वाली और कृपा की खानि है।[३] वह कुंज की नायिका, कीर्ति के कुल की उजाली, तरुणियों में श्रेष्ठ और सखियों में सुकुमारी है। वह मोहन को प्राणों से भी प्रिय है। वह निशदिन गलबाही देकर मोहन के साथ विहार करती है। वह कृष्ण का जीवन-मूल ही नहीं उन्हें उसने अपने वश में भी कर रखा है। उसके भाव से कृष्ण भी भयभीत है।[४] बरसाने में प्रगट होकर उन्होंने जन समुदाय की बाधा को नष्ट कर प्रेम-पंथ की साधना की है।[५] यदि वे रूप न धारण करतीं तो कौन प्रेम-पंथ को प्रगट कर पुष्टिमार्ग की स्थापना करता—

---

१. फबी छवि थोरे ही सिंगार।
बिना कंचुकी बिनु कर कंकन सोभा अड़ी अपार॥
खसि रहे तन ते तनसुख सारी खुलि रहे सोंधे बार।
"हरिचन्द" मन - मोहन प्यारो रिझवो है गिरधार॥
भारतेन्दु ग्रन्थावली, प्रेम मालिका, पृष्ठ ६१।

२. भारतेन्दु ग्रन्थावली प्रेम मालिका पृष्ठ ५१ पद २२।

३. राधा जी हो वृषभानु - कुमारी।
कोटि कोटि ससि मुख पर वारों कीरति दृग उजियारी॥
सब ब्रज की रानी सुखदानी जसुदानन्द दुलारी।
'हरीचन्द' के हिये विराजो मोहन - प्रान - पियारी॥
भारतेन्दु ग्रन्थावली प्रेमतरंग पृ० १७६।

४. हमारी श्री राधा महारानी।
तीन लोक को ठाकुर जो है ताहू की ठकुरानी॥
सब ब्रज की सिरताज लाड़िली सखियन की सुखदानी।
'हरीचन्द' स्वामिनि पिय कामिनि परम कृपा की खानी॥
भारतेन्दु ग्रन्थावली, वर्षा विनोद, पृ० ४६६ पद ३५।

५. भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ ४४६ पद ३३।

६. ,, ,, ,, ४५१ पद ३८।

सांचहि दीप सिखा सी प्यारी।
धूम केश तन जगमगाति द्युति दीपति भई दिवारी ॥[1]

वृषभानु के यहाँ राधा के प्रकट होने से ही त्रिभुवन की बाधा दूर हो गई, कोई भी कवि उसकी छवि का वर्णन नहीं कर सकता। वह दुख दूर कर आनन्द को प्रगट करने वाली हैं।[2] वह मंगल की नवीन वेलि हैं।[3] राधा कृष्ण के साथ इस प्रकार रमण करती हैं—

रासे रमयति कृष्ण राधा।
हृदि निधाय गाढ़ालिंगन कृत हृत विरहातप-बाधा ॥
आश्लिष्यति चुम्बति परि रम्भति पुनः पुनः प्राणेशं।
सात्विक भावोदय शिथिलायति मुक्ताऽकुंचितकेशं ॥
भुज लतिका बन्धनमाबद्धं काम कल्प तरु रूपं।[4]

प्रेमाश्रु वर्णन के २३, ३२, ४१, ४२ और वर्षा विनोद के १०५ वें पद में राधा के भूला भूलने का वर्णन आया है। राधा गोपाल के साथ वसंत खेलती हैं। वह ब्रजबालाओं को साथ लेकर और गोपाल ग्वालबालों को साथ लेकर बुक्का गुलाल उड़ाते हुए खेल रहे हैं।[5] भारतेन्दु ने मधुमुकुल पद ५६ और पद ७१ में राधा के सखियों को साथ लेकर कुंजविहारी के साथ होली खेलने के चित्र उपस्थित किये हैं।[6]

भारतेन्दु ने मनमोहन और वृषभानु किशोरी की जोड़ी की युग-युग तक जीने की कामना ही नहीं की अपितु नित्य नवीन विवाह रचाया और सुख का आभास कराया है। ये दोनों समान रूप और वयस के चन्द्र तथा चकोर के सादृश हैं।[7] दुलहिन राधा के स्वरूप का दर्शन कीजिये—

---

१. भारतेन्दु ग्रन्थावली पृ. ८६ पद २५
२. वही, पृ. ५१४, पद ७७
३. वही, पृ. ४७२, पद १०३
४. वही, पृ. २६४, पद ५७
५. वही, पृ ३६४, पद ३
६ वही, पृ. ४२६, पद ७१
७. चिर जीवो यह जोरी जुग-जुग चिर जीवो यह जोरी।
श्री जसुदानन्दन मन मोहन श्री वृषभानु किशोरी ॥
नित-नित ब्याह नित्य ही मंगल नित-नित सुख अति होई।
श्री वृन्दावन सुख सागर का पार न पावे कोई ॥
एक रूप दोउ एक वयस दोउ दोऊ चन्द्र चकोरी।
'हरीचंद' जब लौं ससि सूरज तब लौं जीयो जोरि ॥—वही, पृ. ४४५

चलो सखी मिलि देखन जैये दुलहिन राधा गोरी जू ।
कोटि रमा मुख छबि पै वारौं मेरी नवल किसोरी जू ॥
चंपई लाल अरकसी सारी सोंधे भीनी चोली जू ।
मरवट मुख में सिर पै मौरी मेरी दुलहिन भोरी जू ॥
नकबेसर बन फूल बन्यो है छबि कापै कहि आवै जू ।
अनवट बिछिया मुँदरी पहुँची दुलह के मन भावै जू ॥
ऐसो बना बनी दोऊ लखि अपनो तन मन वारो जू ।
सब सखियाँ मिलि मंगल गावत 'हरीचन्द' बलिहारी जू ॥[1]

वह अपने प्राणपति के लिये अपने करों से कुंज में फूलों की सेज रचती है।[2] भारतेन्दु ने राधा के मान के भी सुन्दर चित्र चित्रित किये हैं—

प्यारे जू तिहारी प्यारी अति ही गरब भरी ।
हठ की हठीली ताहि आजु ही मनाइए ॥
नेकहू न मानै सब भाँति हौं मनाय हारी ।
काहुहि चलिए ताहि बात बहराइए ॥
रिस भरि बैठि रही नेकहू न बोले बैन ।
ऐसी जो मानिनि तेहि काहे को रिसाइए ॥
'हरीचंद' जाने माने करिए उपाय सोई ।
जैसे बने तैसे ताहि पग परि लाइए ॥[3]

भारतेन्दु की राधा में भक्तिकालीन कृष्ण भक्त कवियों एवं रीतिकालीन शृंगार परक कवियों की भावना का सम्मिश्रण है। उन्होंने पौढ़ने के ही नहीं कामकेलि कला के रूप भी चित्रित किये हैं। कृष्ण और राधा दोनों पौढ़े हुए किस प्रकार बातों के रस में भीने हुए हैं—

पौढ़े दोउ बातन के रस भीने ।
नींद न लेत अलसन्हि रहे दोउ केलि कथा चित दीने ॥
लेटत सीतल सेज बिछाई सखि बिजन कर लीने ।
'हरीचंद' आलस भरि सोए जोड़ि के पट भीने ॥[4]

प्रेम रस में पगी हुई राधा और रसिक राज कृष्ण दोनों ही हारते और जीतते हैं। इस प्रकार केलि में मग्न वे रात्रिभर जागरण करते हैं।[1]

जगन्नाथदास रत्नाकर

जगन्नाथदास रत्नाकर ने "उद्धव शतक" में भ्रमरगीत परम्परा के अनुकूल निर्गुण भक्ति का खंडन कर सगुण भक्ति का प्रतिपादन किया है। रत्नाकर की गोपियों में तर्क शक्ति है, कृष्ण के प्रति अनुपम, सूक्ष्म और अनन्य प्रेम है। उद्धव-शतक में उभयपक्षीय प्रेम इंगित होता है। उसमें कृष्ण भी राधा के लिये व्याकुल दिखाई देते हैं। कृष्ण की दशा देखिये—

पाइ बहे कंज में सुगन्ध राधिका को मंजु।
ध्याए कदली - बन मतंग लौं मताए हैं ॥[2]

राधा-मुख का ध्यान करते ही उनका विरहाग्नि से ऊर्ध्व श्वास चलने लगता है, विचार हार जाते हैं, धैर्य खो जाता है और मन डूबने लगता है।[3] गोपिकाओं को यह कदापि इष्ट नहीं है कि उद्धव की कहानी बरसाने में फैल जावे और उद्धव की निर्गुण उपासना सम्बन्धी वाणी राधिका के कानों में पड़ जावे। यदि उसे यह ज्ञात हो गया कि कृष्ण अब नहीं आ रहे हैं तो उसके कृष्ण-सौन्दर्य-प्यासे नेत्रों से ऐसा जल उमड़ेगा जो तीनों लोकों में उपद्रव मचा देगा और शिव को भी कैलास के साथ डुबा पाताल में पहुँचा देगा।[4]

इसी भय से रत्नाकर ने अपनी राधिका को उद्धव से दूर ही रखा है। गोपिकाओं की कृष्ण के विरह में ऐसी बुरी दशा है इससे ही आभास हो जाता है कि राधिका की विरह में क्या दशा होगी।

रत्नाकर की राधिका में कितनी मर्यादा, कितना धैर्य, कितनी आत्मनिष्ठा, कितना संयम और कितना सन्तोष है कि वह अन्य गोपिकाओं की भाँति उद्धव के

---

१. बाजी नैनन में लागी।
रसिकराज इत उत श्री राधा परम प्रेम रस पागी ॥
दोऊ हारे दोऊ जीते आपुस के अनुरागी।
'हरीचंद' निज जन सुखदायक रहे केलि निसि जागी ॥
—भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ. ८१, पद ७

२. उद्धवशतक २—रत्नाकर

३. उद्धवशतक ११—रत्नाकर

४. उद्धवशतक १०९—रत्नाकर

यक सुता उनकी अति ही दिव्य थी। रमणि-वृन्द-शिरोमणि राधिका।
सुयश-सौरभ से जिनके सदा। व्रज धरा सौरभवान थी ॥३॥[1]

राधा सुन्दरी थीं और प्रारम्भ से ही बड़ी सहृदया थीं—

रूपोद्यान प्रफुल्ल - प्राय - कलिका राकेन्दु - बिम्बानना।
तन्वंगी कल - हासिनी सुरसिका क्रीड़ा - कलापुत्तली।
शोभा-वारिधि की अमूल्य-मणि सी लावण्य-लीला-मयी।
श्री राधा - मृदुभाषिणी मृगदृगी - माधुर्य्य की मूर्ति थी ॥४॥

× × ×

सदवस्त्रा - सदलंकृता गुणयुता - सर्वत्र सम्मानिता।
रोगी वृद्ध जनोपकार निरता सच्छास्त्र चिन्तापरा।
सद्भावातिरता अनन्य - हृदया सत्प्रेम - संपोषिका।
राधा थी सुमना प्रसन्न वदना स्त्री जाति - रत्नोपमा ॥८॥[2]

हरिऔध ने राधा के चरित्र का बहुमुखी चित्रण किया है। लीलालोल कटाक्ष पात निपुणा, भ्रूभङ्गिमा पण्डिता एव क्रीड़ाकला पुत्तली राधा चतुर्थ सर्ग से अन्तिम सर्ग तक दिव्यरूपिणी हो जाती है। राधा और कृष्ण के प्रणय का सूत्रपात बचपन से ही हो जाता है—

युगल का वय साथ सनेह भी। निपट नीरवता सह था बढ़ा।
फिर यही वर बाल सनेह ही। प्रणय में परिवर्तित था हुआ ॥१६॥[3]

राधा के हृदय में श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम की वेलि इतनी बलवती हो गई कि सोते, भोजन करते तथा प्रत्येक समय ही वह कृष्ण की छवि में मस्त बनी रहती है। उनके वचनों की माधुरी, मुख का सौन्दर्य, सरलता तथा सुशीलता उसके चित्त से कभी नहीं उतरती।[4] सौन्दर्य रसिका राधा के हृदय में सौन्दर्य-शाली कृष्ण के प्रति आकर्षण और फिर प्रणय का संचार होने लगा। राधा की कामना है कि कृष्ण सविधि उन्हें वरें।[5] परन्तु उसके पुण्य विफल हो गये। उसको

१. प्रियप्रवास, पृ० ३६—हरिऔध
२. प्रियप्रवास, पृ० ३६-३७—हरिऔध
३. प्रियप्रवास, पृ० ३७-३८—हरिऔध
४. प्रियप्रवास, पृ० ३८-३९
५. हृदय चरण में तो मैं चढ़ा ही चुकी हूँ।
सविधि-वरण की थी कामना और मेरी।—प्रियप्रवास, पृ० ४१-३५

× × ×

सविधि भगवती को आज भी पूजती हूँ।
बहु-व्रत रखती हूँ देवता हूँ मनाती।
मम-पति हरि होवें चाहती मैं यही हूँ।
पर विफल हमारे पुण्य भी हो चले हैं।—प्रियप्रवास, पृ० ४२-३६

मिल जावे। किसी नवीन वृक्ष के पल्लव को जो पीला हो रहा हो उनके नेत्रों के सामने धीरे-धीरे सँभल कर रखना जिससे उन्हें प्रतीत हो जावे कि मैं किस प्रकार पीली हो रही हूँ। वह पवन से कहती है कि यदि कमल सदृश चरणों को स्पर्श कर ही तू आ जाये तो तुझी को हृदय से लगाकर जी जाऊँगी।[1] उसकी नित्य-प्रति यही दशा रहती है—

आता होके परम दुख औ भूरि उद्विग्नता से।
ले के प्रातः मृदु पवन को या सखी आदिकों को॥
यों ही राधा प्रगट करती नित्य ही वेदनायें।
चिन्तायें थीं चलित करती वर्द्धिता थी व्यथायें॥[2]

श्रीकृष्ण राजनीति के पचड़ों के कारण ब्रजभूमि में नहीं जा सके। वहाँ की स्मृति हो आने पर वह उद्धव को ब्रज में समझाने के लिये भेजते हैं और राधा के सम्बन्ध में बताते हैं—

जो राधा वृष-भानु-भूप-तनया स्वर्गीय दिव्यांगना।
शोभा है ब्रज पोत की अवनि की स्त्री-जाति की वंश की॥
होगी हा! वह भग्नभूत अति ही मेरे वियोगाब्धि में।
जो हो सम्भव तात पोत बन कें तो त्राण देना उसे॥[3]

उद्धव के ब्रज में पहुँचने पर ब्रजवासी उनसे पूछते हैं कि शान्ता, धीरा, मधुर हृदया, प्रेम रूपा, रसज्ञा, प्रणय-प्रतिमा, मोह-मग्ना राधिका को कैसे कृष्ण भूल गये।[4] राधा का विश्वास है कि उसे शान्ति तभी मिलेगी जब उसका शरीर श्याम रंग में मग्न हो जावेगा—

मैं पाऊँगी हृदय-तल में उत्तमा शान्ति कैसे।
जो डूबेगा न मम तन भी श्याम के रंग ही में॥[5]

राधा यह जानती है कि श्रीकृष्ण मथुरा में लोक-हित के कार्यों में फँसकर ही रुक गये हैं तब भी भ्रमर को उपालम्भ देती है।[6]

---

१. प्रियप्रवास, पृ० ७०-७१-७२
२. ,, पृ० ७२-८३
३. ,, पृ० ८९-११
४. ,, पृ० २२१
५. ,, पृ० २२२-४६
६. ,, पृ० २२६-६६

प्रियतम से मिलने की लालसा से उसका चित्त आतुर हो रहा है—

दृग अति अनुरागी श्यामली-मूर्ति के हैं।
युग श्रुति सुनना हैं चाहते चारु-तानें॥
प्रियतम मिलने की चौगुनी लालसा से।
प्रति पल अधिकाती चित्त की आतुरी है॥[१]

प्रिय प्रवास के षोडश सर्ग में राधा अन्य कृष्णकाव्यों की विरहिणी नायिकाओं से कहीं अधिक करुणा, उदारता, सेवा, लोकहित, विश्वप्रेम, आदि उदात्त भावों से ओतप्रोत दिखाई देती है और वह अपने इन दिव्य गुणों के कारण महान एवं श्रेष्ठ है। उद्धव के सन्देश को पाकर वह प्रसन्न होती है और दुर्बल हृदया तथा मोहमग्ना राधा अपने दौर्बल्य की अभिव्यक्ति इस प्रकार करती है—

मेरे प्यारे, पुरुष, पृथ्वी-रत्न औ शान्त धी हैं।
सन्देशों में तदपि उनकी, वेदना व्यंजिता है॥
मैं नारी हूँ, तरल उर हूँ, प्यार से वंचिता हूँ।
जो होती हूँ, विकल, विमना, व्यस्त, वैचित्र्य क्या है॥[२]

यद्यपि उसे सन्ध्या में प्रिय की कान्ति दिखाई देती है, रात्रि में श्याम का रंग छाया हुआ दिखाई देता है, कालिन्दी में उन्हीं की झलक दिखाई देती है परन्तु फिर भी उसकी कामना है कि कृष्ण जग का कल्याण करें चाहे फिर गेह न आवें। उसके हृदय में भावात्मक द्वन्द्व हो रहा है—

प्यारे आवें सु-वयन कहें प्यार से गोद लेवें।
ठंडे होवें नयन-युग हों दूर मैं मोद-पाऊँ॥
ए भी हैं भाव मम उर के और ए भाव भी हैं।
प्यारे जीवें जग-हित करें गेह चाहे न आवें॥[३]

विश्व प्रियतम में और राधा का प्राणप्यारा विश्व में व्याप्त है। राधा के श्याम जगत पति हैं। उसका कथन है—

मैं मानूँगी अधिक मुझ में मोह-मात्रा अभी है।
होती हूँ मैं प्रणय-रंग से रंजिता नित्य तो भी।
ऐसी हूँगी निरत अब मैं पूत-कार्य्यावली में।
मेरे जी में प्रणय जिससे पूर्णतः व्याप्त होवे॥[४]

वह अपने दुख से इतनी दुखी नहीं जितनी ब्रजवासियों के दुख से दुखी है।[1] फिर भी राधा नारी है उसके नारी हृदय की यही कामना है कि प्राणप्यारे अपने पुष्पानुपम मुखड़े को गोपी, गोपों, विकल ब्रज के बालक बालिकाओं को दिखावें और जनक जननी की दशा देख जावे।[2] उसके प्रेम में विश्व प्रेम का आभास मिलता है—

आज्ञा भूलूं न प्रियतम की विश्व के काम आऊं।
मेरा कौमार - व्रत भव में पूर्णता प्राप्त होवे।[3]

वह वृद्ध और रोगी जनों की सेवा करती हैं। क्लेशपूर्ण और दलित गृह में शान्ति की धारा बहाती है। दुष्टों को उपदेश देती और सन्मार्ग पर लगाती है। राधा उपकार कर व्यथा के वेग को देखिये किस प्रकार घटाती है—

सुनकर उसमें की आह रोमांचकारी।
वह प्रति-गृह में थी शीघ्र से शीघ्र जाती।
फिर मृदु वचनों से मोहनी उक्तियों से।
वह प्रबल-व्यथा का वेग भी थी घटाती।

गिन गिन नभ-तारे ऊब आँसू बहाके।
यदि निज-निशि होती किञ्चिदार्त्ता बिताती।
वह ढिग उसके भी रात्रि में ही सिवाती।
निज अनुपम राधा - नाम की सार्थता से।[4]

राधा प्रति दिवस नन्दांगना के पास जाती और नाना बातें कह कर उन्हें समझाती हैं। शोक मग्ना हरि-जननि को घंटो गोद में लेकर बैठती और उनके चरणों को सहलाती हैं। दुखी यशोदा जब कभी पूछती है कि क्या मेरे जीवनाधार ब्रज में कभी नहीं आवेंगे तो राधा मधुर शब्द कहती है कि श्याम आवेंगे ब्रज को किस प्रकार छोड़ देंगे। ऐसा कहते हुए यदि राधा के नेत्रों से कपोलों पर अश्रु बिन्दु टपक पड़ते हैं तो यशोदा के समझाने पर कि बेटी दुखी न हो राधा कहती है—

१. मैं ऐसी हूँ न निज-दुख से कष्टिता शोक-मग्ना।
हा! जैसी हूँ व्यथित ब्रज के वासियों के दुखों से।
—प्रियप्रवास, पृ० १३२-२५६

२. प्रियप्रवास, पृ० २५६-१३३

३. प्रिय प्रवास पृष्ठ २५६ - १३५।

४. " " २६६ - ३४-३५।

होके राधा विनत कहती मैं नहीं रो रही हूँ।
आता मेरे दृग युगल में नीर आनन्द का है।
जो होता है पुलक करके आपकी चारु सेवा।
हो जाता है प्रकटित वही वारि द्वारा दृगों में।[१]

राधिका समाज सेविका है तथा विवेकशील और क्रियाशील न होकर सकल शास्त्र निष्णात विदुषी है। हरिऔध जी ने राधिका की सेवा भावना के सुन्दर चित्र उपस्थित किये हैं—

वे थीं प्रायः व्रज-नृपति के पास उत्कण्ठ जातीं।
सेवा में थीं पुलक करतीं क्लान्तियाँ थीं मिटातीं।
बातों में ही जग-विभव की तुच्छता थीं दिखातीं।
जो वे होते विकल पढ़के शास्त्र नाना सुनातीं।[२]

× × ×

संलग्ना हो विविध कितने सान्त्वना-कार्य में भी।
वे सेवा थीं सतत करतीं वृद्ध रोगी जनों की।
दीनों, हीनों निबल विधवा आदि को मानती थीं।
पूजी जाती व्रज-अवनि में देवियों सी अतः थीं।[३]

प्रिय प्रवास की राधा सज्जनों के शिर की छाया, दुर्जनों की शासिका है, कंगालों की परमनिधि, पीड़ितों की औषधि-स्वरूपा, दीनों की बहिन, अनाथाश्रितों की जननी है, विश्व की प्रेमिका तथा समस्त व्रज-भूमि की आराध्या देवी बनी हुई है—

वे छाया थीं सुजन शिर की शासिका थीं खलों की।
कंगालों की परम निधि थीं औषधी पीड़ितों की।
दीनों की थीं बहिन, जननी अनाथाश्रितों की।
आराध्या थीं व्रज-अवनि की प्रेमिका विश्व की थीं।[४]

वह अब जानने लगी है कि विश्व की पूजा, विश्व की आराधना विश्व के

सच्चे स्नेही अवनि जन के देश के श्याम जैसे।
राधा जैसी सदय-हृदया विश्व प्रेमानुरक्ता।
हे विश्वात्मा ! भरत भुव के अंक में और आवें।
ऐसा व्यापी विरह - घटना किन्तु कोई न होवे।[1]

प्रिय प्रवास की राधिका मानवी देवी और त्यागमयी है। वह आदर्श नारी और समाज सेविका है। हरिऔध जी की राधा जितनी गंभीर प्रेमिका है उतनी ही जीवन और जगत के प्रति अद्भुत त्याग एवं उदात्त भावनाओं से अभिमण्डित भी है। उसका प्रेम वासनायुक्त न होकर शुद्ध है। राधा के रूप में हमें हरिऔध जी का मानवतापूर्ण हृदय और ईश्वर-प्राप्ति विषयक साधना का स्वरूप देखने को मिलता है। श्री गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश का कथन है, 'अन्त में राधा का लोकोपकारी रूप देख कर हम मुग्ध हो जाते हैं; उनके मुख पर चिन्ता का नहीं, शान्ति का भाव हैं; उनके हृदय से गरम आहें नहीं निकलतीं, अब वह स्थिर है, उनकी आँखों में वेदना-जनित आँसू नहीं हैं, बल्कि सेवा के आनन्द से उत्पन्न होने वाला जलविन्दु है, अब वे साधारण स्त्री नहीं हैं, देवी हैं।'[2] हम कह सकते हैं कि प्रिय प्रवास की राधा न जयदेव की विलासिनी राधा है, न विद्यापति की यौवनोन्मत्त मुग्धा नायिका राधा है, न चण्डीदास की परकीया नायिका राधा है, न सूर की मर्यादा सन्तुलित राधा है, न नन्ददास की तार्किक राधा है, न रीतिकालीन कवियों की विलासिनी राधा है अपितु आधुनिक युग की नवीनतम भावनाओं की प्रतीक विशुद्ध लोक तथा देश सेविका राधा है।

मैथिली शरण गुप्त

मैथिली शरण गुप्त ने द्वापर में यशोदा, राधा, नारद, कंस, कुब्जा इत्यादि कुछ विशिष्ट व्यक्तियों की मनोवृत्तियों का सुन्दर चित्रण किया है। नारद और कंस की मनोवृत्तियों के स्वरूप तो बहुत ही विशद और समन्वित रूप में हमारे सन्मुख आये हैं। द्वापर में राधा का चरित्र चित्रण एक पृथक् पात्र के रूप में हुआ है। द्वापर की राधा सब धर्मों को छोड़ कर केवल कृष्ण की ही शरण में आई है।[3] कृष्ण के मुरली वादन को श्रवण कर उसका अन्तःकरण नृत्य कर उठता है।[4]

---

१. प्रिय प्रवास पृष्ठ २६६ - ५४।
२. महाकवि हरिऔध, पृष्ठ २१०-२११—गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'।
३. शरण एक तेरे में आई, धरे रहें सब धर्म हरे।
द्वापर, पृष्ठ १३—मैथिलीशरण गुप्त।
४. " " "

वह अपने समस्त कर्मों को इस प्रकार कृष्ण को समर्पित कर देती है—

"तुमको एक तुझी को अर्पित" राधा के सब कर्म हरे ।[1]

वह वृन्दावन में यमुना के पुलिन पर कृष्ण के अंक में बैठने की अभिलाषिणी है—

बस, यह तेरा अंक और यह,
मेरा रंक शरीर हरे ।[2]

मुग्धावस्था को प्राप्त राधा कुछ भी नहीं कहेगी । वह प्रेम में तृप्त है और प्रिय की क्षुधा बुझाने में असमर्थ है—

मेरे तृप्त प्रेम से तेरी
बुझ न सकेगी क्षुधा हरे ।
निज पथ धरे चले जाना तू,
अलं मुझे सुधि - सुधा हरे ।

वह बिना बोध हुए सब कुछ सह लेने के लिए उद्यत और कृष्ण के क्रोध से भयभीत है परन्तु वह उन्हीं के द्वारा खोजे जाने की कामना करती है—

भूले तेरा ध्यान राधिका, तो लेना तू शोध हरे ![3]

वह कृष्ण से अपने वाम कपोल एवं अवतंस के चुम्बन की कामना करती है।[4] उनका उन्नत स्कंध ही उनका आश्रय है। उसका हृदय प्रेम सागर में निमग्न है—

मन अथाह प्रेम-सागर में, मेरा मानस-हंस हरे ।[5]

'ग्वाल-बाल' शीर्षक में गिरधारी और ग्वालों के साथ खेलने के समय राधा उनकी निर्णायक के रूप हमारे सम्मुख आती है ।[6] इन्द्र के कोप करने पर गोवर्द्धन धारण करने के उपरान्त बलवीर के—

"राधा जो न भरे नयनों में प्रलय किया था नीर ने"

---

१. द्वापर, पृष्ठ १ —मैथिलीशरण गुप्त ।
२. ,, १४ ,,
३. ,, १५ ,,
४. झुक, वह वाम कपोल चूम ले, यह दक्षिण अवतंस हरे ।
द्वापर, पृष्ठ १५—मैथिलीशरण गुप्त ।
५. ,, ,, ,,
६. खेलें उसके संग सदा हम, इष्ट हमें बस है यही ।
हार जीत का निर्णय राधा, करती रहे सही ।
द्वापर, पृष्ठ ६६—मैथिलीशरण गुप्त

कहने पर राधा का शरीर पुलकित हो उठता है और वह भृकुटियों को कुटिल-कराल बना लेती है।[1] नन्द शीर्षक में देवकी के यह कहने पर कि बिना बेटी लौटाये बेटा कैसे लें, नन्द यही कहते हैं कि उनकी बेटी राधा ब्रज में बैठी है।[2] कृष्ण को मथुरा छोड़ने पर बेटी को वहाँ विदा कर आये, राधा बेटे के रूप में ही उनके यहाँ रह गई—

किन्तु वस्तुतः मैं बेटी की आज विदा कर आया,
पुत्र रूप में ही राधा को यहाँ नन्द ने पाया।[3]

राधिका यशोदा के अंचल में मुख छिपाये विरहणी के रूप में भी हमारे सम्मुख आती है।[4] कवि 'कुब्जा' में राधा के विरह का वर्णन इस प्रकार करता है—

वे दो ओंठ न थे, राधे, था एक फटा उर तेरा।[5]

उद्धव के अनुसार सब एक ही और राधामय हैं।[6] गोपिकायें राधा के वियोग की अवस्था का वर्णन इस प्रकार करती हैं—

न तो आज कुछ कहती है वह और न कुछ सुनती है;
अन्तर्यामी ही यह जाने, क्या गुनती बुनती है।[7]

गोपिकाओं का कथन है कि यदि कृष्ण राधा बन जाते तो उद्धव तुम मधुवन से लौट कर मधुपुर ही जाते, परन्तु राधा ही हरि बन गई—

राधा हरि बन गई, हाय ! यदि हरि राधा बन पाते,
तो उद्धव, मधुवन से उलटे तुम मधुपुर ही जाते।[8]

---

१. किन्तु पुलक ही दी राधा के, कोमल कुसुम-शरीर ने;
फिर भी तिरछी होकर उसने, भृकुटी कुटिल कराल की।
द्वापर, पृष्ठ ७२—मैथिलीशरण गुप्त

२. शुभे, शान्त हो, ब्रज में बैठी, मेरी बेटी राधा।
द्वापर, पृष्ठ १२६—मैथिलीशरण गुप्त

३. द्वापर, पृष्ठ १३७—मैथिलीशरण गुप्त

४. छिपा यशोदा के अंचल में राधा का मुख होगा।
द्वापर, पृष्ठ १३८—मैथिलीशरण गुप्त

५. द्वापर, पृष्ठ १४३—मैथिलीशरण गुप्त

६. एक एक तुम सब राधा हो, कहाँ तुम्हारी राधा ?
द्वापर, पृष्ठ १७४—मैथिलीशरण गुप्त

७. ,, ,, १७५, ,,

८. ,, ,, १७६, ,,

इस प्रकार गुप्त जी ने विरहिणी राधा का ही चित्रण नहीं किया अपितु उसे जग-कल्याण के लिये स्वार्थ उत्सर्ग करने वाली, जग की पीड़ा से व्यथित कृष्ण की अनन्य प्रेमिका के रूप में भी चित्रित किया है जो कृष्ण को वशीभूतकर भी मान नहीं करती।

द्वारकाप्रसाद मिश्र

द्वारकाप्रसाद मिश्र ने मानस को आदर्श मानकर 'कृष्णायन' की रचना की है। यह दोहा चौपाई के क्रम में सात काण्डों में विभाजित अवधि भाषा का महाकाव्य है। सामग्री के चयन, सन्निवेश, विभिन्न काण्डों के भीतर के कथा भाग आदि से पाठक को मानस का स्मरण हो आना स्वाभाविक है। उनके चरितनायक भगवान् कृष्ण हैं। उन्होंने गोपी चीरहरण में समाज सुधारक कृष्ण का चित्र अङ्कित किया है। राधा और कृष्ण के बाललीला सम्बन्धी अंशों में सूरदास की तत्सम्बन्धी ललित भावनाओं और शब्दावली का गुम्फन किया है। डा० धीरेन्द्र वर्मा और डा० बाबूराम सक्सेना उनकी स्वकीया राधा के सम्बन्ध में लिखते हैं, "राधा को अवश्य ही लेखक ने कृष्ण की कान्ता कामिनी माना है और भक्ति की अवतार। राधा को प्रथमबार देखने पर कवि ने यह कहकर—

जनु कछु क्षीर-सिन्धु सुधि आयी।
औचक मोहित भये कन्हाई॥

श्री कृष्ण के मन में क्षीर सागर की यह पूर्व स्मृति जाग्रत कर राधा को परकीया होने से बचाया है। उनका विवाह कहीं नहीं हुआ। (राधा का किसी से भी परिणय नहीं हुआ) तब भी दोनों की रासलीला और प्रेमलीला प्रति रात्रि वृन्दावन और गोकुल में होती है, ऐसा भान कवि की प्रतिभा को हुआ है।"[1]

राधा के चरित्र चित्रण में मिश्र जी पूर्णतः सूर से प्रभावित हैं, अन्तर केवल इतना ही है कि पदों में रचना न कर उन्होंने दोहे चौपाइयों में उन्हीं भावों को उसी रूप में संजोया है। राधा कृष्ण का प्रथम मिलन सूर की भाँति ही उन्होंने इस प्रकार कराया है—

एक दिवस खेलत ब्रज खोरी, देखी श्याम राधिका भोरी।
जनु कछु क्षीर-सिन्धु सुधि आयी, औचक मोहित भये कन्हाई॥
पूछत श्याम—"कहा तुव नामा, को तुव पिता? कवन तुव ग्रामा?
पहिले कबहुँ न परी लखायी, आजु कहाँ ब्रज खेलन आयी?"[2]

---

१. कृष्णायन की भूमिका, पृ० ८

२. कृष्णायन, पृ० ५४—द्वारकाप्रसाद मिश्र

राधा कृष्ण को इस प्रकार उत्तर देती है—

"पितु वृषभानु विदित ब्रज-नामा, बरसाना कछु दूरि न ग्रामा।
राधा मैं, तुम कहँ भल जाना, चोर ! चोर ! कहि जग पहिचाना !"
मुदित श्याम कह मधु मुसकायी—"लीन्हेउ काह तुम्हार चोराई ?"[1]

कृष्ण फिर संकेतों में ही बता देते हैं कि—

"आयेउ साँझ खरिक संग खेलन।"[2]

राधिका प्रकट आने की स्वीकृति दे देती है। प्रथम मिलन के बाद ही राधिका वियोग से विह्वल होने लगती है।[3]

मिश्र जी ने नवली राधा का नवल रूप वर्णन इस प्रकार किया है—

नवल गोपाल, नवेली राधा, उमहेउ नवल सनेह अगाधा।
नवल पीट पट, नवलहि सारी, नवल कुंज क्रीड़त बनवारी।
नवल जमुन जल, नव लत माला, नवल पुलिन, नव-नव वन माला।
नवल अरण्य, नवल तरु शाखा, उपजी हृदय नवल अभिलाखा॥
राधा - माधव संग सोहाये, नवल चन्द्र पै नव घन आये॥
दोहा—बरसत नव रस मेघ नव, भीजे तन मन प्राण।
मिले कामना काम दोउ, मिले भक्त भगवान॥६०॥[4]

नंदराय इधर ढूँढ़ते हुए आये और 'राधा-माधव' कहकर पुकारने लगे। कृष्ण ने कहा कि बादल घिर आये। उन्होंने मुझे कुञ्जों में छिपा लिया। स्वमेव

---

१. कृष्णायन, पृ० ५४-५५—द्वारकाप्रसाद मिश्र

यही भाव सूर में देखिये—

बूझत-स्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहति, काकी है बेटी, देखी नहीं कहूँ ब्रज-खोरी॥
काहे कों हम ब्रज-तन आवति, खेलति रहति आपनी पौरी।
सुनत रहति स्रवननि नंद-ढोटा, करत फिरत माखन-दधि-चोरी॥
तुम्हरौ कहा चोरि हम लैहैं, खेलन चलौ संग मिलि जोरी।
सूरदास प्रभु रसिक-सिरोमनि, बातन भुरई राधिका भोरी॥

—सूरदास प्रथम खंड, पद ६७३

कृष्णायन, पृ० ५५—द्वारकाप्रसाद

"अइहौं-कहेउ प्रकट हँसि बाला,
गवनी भवन वियोग बिहाला। कृष्णायन, पृ० ५५—द्वारकाप्रसाद मिश्र

कृष्णायन, पृ० ५६—द्वारकाप्रसाद मिश्र

भीजकर मुझे बचा लिया। यह सुनकर राधा प्रसन्न होने लगी और वह कृष्ण के साथ महरि के घर चली आईं। महरि उनका शृङ्गार करती है और वह उसके पास तिल, मेवा, चावल, बतासे इत्यादि रख पुनः हरि के साथ खेलने की अनुमति दे देती है। राधा कृष्ण के साथ खेलती है। यहाँ पर मिश्र जी ने सूर के सूरसागर की पद ६८१ से पद ७०८ तक की समस्त कथा को बहुत ही संक्षेप में प्रस्तुत किया है। यहाँ पर राधा के स्वकीया रूप के हमें दर्शन होते हैं।[1]

राधा ने कभी हाथ से काम नहीं किया यह उसके क्रोधित हो खीजकर उत्तर देने से प्रगट होता है—

दासी दास बहुत मम धामा, कबहुँ न करहुँ हाथ निज कामा।
आवहु खेलन संग कन्हाई, महरि मथानी देति गहाई ॥[2]

कुछ काल उपरान्त अमावस्या का दिन आने पर नन्द ने रत्न-मणि राशि का दान दिया। एक दूसरे से पूछने पर कि ये मणियाँ कहाँ से आईं और चकित होने पर यशोदा ने नेत्र कृष्ण की ओर फेरे। कृष्ण राधा के शरीर की ओर देखकर विहँसने लगे, तब माता यशोदा कहती हैं—

कहति अम्ब–"अब कान्ह ! नहीं, उपजावहु सन्देह।
जानत ब्रज हरि-राधिका, एक प्राण, दुइ देह ॥[3]

मिश्र जी ने अवतरण खंड में कृष्ण के अवतरण का हेतु ही नहीं राधा के अवतरित होने का भी कारण बतलाया है। वे ब्रज में भक्ति-रूप धारण कर दृग-वारि से प्रेम-विटप को सींचने के लिए आई हैं। कृष्ण का कथन है—

मृदुल भाव में ब्रज दरसावा, प्रेम-विटप करि यत्न लगावा।
भक्ति-रूप धरि तुम ब्रज आयीं, नीरधि नेह नयन भरि लायीं ॥
संसृति - उपवन रहेउ सुखायी, सींचि नेह - जल देहु बढायी।
जब लगि मैं कुश-कांस उखारहुँ, खोजि-खोजि असुरन संहारहु ॥
तुम ब्रज बसहु, करहु रखवारी, सींचहु प्रेम-विटप दृग-वारी।
उत मैं करहुँ शूल निर्मूला, फूलहि प्रेम-वृक्ष इत फूला ॥
धर्मादिक फल लागहिं चारी, लहहि प्रिया जग कृपा तुम्हारी ॥[4]

---

१. कृष्णायन, पृ० ५६—द्वारकाप्रसाद मिश्र
२. कृष्णायन, पृ० ७१—द्वारकाप्रसाद मिश्र
३. कृष्णायन, पृ० ५२३—द्वारकाप्रसाद मिश्र
४. कृष्णायन, पृ० १००—द्वारकाप्रसाद मिश्र

मथुरा काण्ड में जब व्रज से लौटकर उद्धव कृष्ण के पास पहुँचते हैं तब भी भगवान कहते हैं—

"एकहि मैं अरु राधिका, द्वैत - भाव भव - भ्रान्ति;
व्रज जन समुझि रहस्य यह, लहि हैं पुनि सुख-शांति।"

गीताकाण्ड में पाण्डवों के शिविर को छोड़कर व्रजजनों के साथ जन-वत्सल कृष्ण बसते हैं। वहाँ राधा ही नहीं सब सुखी हैं।[1] उधर यह वृत्त आ गया कि लीला स्थल में राधा ने चरण-धारण कर कहा कि यदि आजीवन मन, वचन और कर्म से मैंने हरि की ही आराधना की है और केवल मेरे प्राण हरिमय हैं तो इष्टदेव भगवान् प्रगट हों। मंच पर जन समुदाय ने देखा कि इधर यदुराय सुशोभित हैं और उधर यशोदा के अङ्क में शिशु-स्वरूप में कृष्ण शोभायमान हैं। राधिका के समान कृष्ण भी कृतकार्य नहीं हैं। कृष्ण भयंकर युद्धक्षेत्र में पापियों को जड़ से नष्ट नहीं कर सके परन्तु राधा ने कृष्ण के प्रेम-वृक्ष को सींचकर बड़ा कर दिया।[2]

दाऊदयाल गुप्त

दाऊदयाल गुप्त ने नाटक, उपन्यास, काव्य, कहानी-संग्रह, निबन्ध, चिकित्सा आदि विभिन्न विषयों पर एक सौ से अधिक छोटी मोटी पुस्तकें लिखी हैं जिनमें लगभग सत्तर प्रकाशित हैं। गुप्त जी ने "राधा" महाकाव्य की भी रचना की है। 'राधा' काव्य-ग्रन्थ में राधा का चरित्र चित्रण करने में आपने गर्ग संहिता एवं ब्रह्मवैवर्त पुराण का आश्रय लिया है। गर्ग संहिता के आधार पर उन्होंने राधा के चरित्र का चित्रण किया है। विरह के उपरान्त मिलन कराना राधा महाकाव्य की अपनी अपूर्व विचित्रता है। कृष्ण-भक्ति-साहित्य पर मर्यादा उल्लंघन के एक

---

१. कृष्णायन, पृ० ५२३—द्वारकाप्रसाद मिश्र

२. लीला थल राधा पगु धारा निम्न मुखी सत-वचन उचारा—
'आजीवन मानस, वच, कर्मन, कीन्हेउ जो मैं हरि आराधन,
केवल हरि-मय जो मम प्राणा, प्रकटहि इष्टदेव भगवाना।"
दोहा—चकित लखेउ जन मंच पै, इत शोभित यदुराज,
प्रकटे यशुमति-अङ्क उत, शिशुस्वरूप व्रजराज।
× × ×
लखत हरिहु, सोचत मन माहीं, मैं कृतकार्य प्रिया सम नाहीं।
दोहा—सकेउ न मैं उन्मूलि खल, सन्मुख समर कराल।
पै राधा मम प्रेम-तरु, सींचि कीन्ह सुविशाल ॥६६॥
कृष्णायन, पृ० ५२६—द्वारकाप्रसाद मिश्र

लगाये जाने वाले दोष का परिहार उनके काव्य में दीख पड़ता है। उनके कृष्ण और राधा, तुलसी के राम की भाँति लोकाचार को कदापि तिलांजलि न दे सके। उनके राधा और कृष्ण यद्यपि एक हैं परन्तु फिर भी उन्हें लोकाचार मान्य है—

आप दोनों हैं यद्यपि एक, मानना है पर लोकाचार।
सदा से चलते आये आप, लोक की पद्धति के अनुसार ॥[1]

श्री द्वारकाप्रसाद गुप्त की राधा कृष्ण से पृथक् नहीं, आदि माया, साक्षात् लक्ष्मी और वृषभानु कन्या है—

गोलोक स्वामी यदि आप हैं तो, यह आदि माया राधा, न अन्या।
यदि आप नारायण पूर्ण ईश्वर, साक्षात लक्ष्मी, वृषभानु कन्या ॥
जब आप रघुकुल के राम थे तब, हे नाथ ! यह थीं गुणखान सीता।
हैं आप जग के उत्पत्ति कर्त्ता, यह मुक्ति दाता सरिता पुनीता ॥[2]

राधा और कृष्ण की दो देह होते हुए भी प्राण एक हैं।[3] वह अजर, अज, व्यापक, अनन्त, सगुण तथा निर्गुण हैं—

अजर अज व्यापक और अनंत, सगुण, निर्गुण दोनों गुण धाम।
कृष्ण-राधा जब होते एक, पूर्ण बन जाते राधेश्याम ॥[4]

राधा साक्षात प्रकृति का रूप हैं और परम पुरुष के साथ रहती हैं—

मुदा साक्षात प्रकृति का रूप।
रहीं जो परम पुरुष के साथ ॥[5]

वह आदि शक्ति हैं और अवतार के रूप में उनका जन्म ब्रजवन में रावल ग्राम में हुआ है,[6] जो मथुरा के उस पार गोकुल के पास बसा हुआ है।[7] राधा

१. राधा महाकाव्य, पृ० २४—द्वारकाप्रसाद गुप्त, सस्ता साहित्य प्रेस, मथुरा।
२. राधा महाकाव्य, पृ० ८४—द्वारकाप्रसाद गुप्त
३. देह दो किन्तु एक ही प्राण। राधा महाकाव्य, पृ० ८६

× × ×

सोचते नन्द—'राधिका-कृष्ण, देह दो किन्तु एक ही प्राण।'
—राधा महाकाव्य, पृ० ७६

४. राधा महाकाव्य, पृ० ७६
५. राधा महाकाव्य, पृ० ७६—द्वारकाप्रसाद गुप्त
६. कालिन्दी के कूल बसा, ब्रज बन में सुन्दर रावल ग्राम।
जहाँ हुई अवतरित हरि-प्रिया, आदि शक्ति राधा सुख-धाम ॥ राधा म०, पृ० ५३
७. राधा महाकाव्य, पृ० ६८

रत्न मंडित थे कंकण चारु, साथ में थे सुन्दर मणि-बंध।
भुजा पर शोभित स्वर्ण अनंत पीत मणि जटित बंधी कटि-बध ।।
सुकोमल हेमवर्ण पद-पद्म, रंग से जिनका था तल लाल।
मत्त गज-सी चलती थी मन्द, चाल से लज्जित हुए मराल ।।[1]

राधिका जग द्वारा वंदनीय, देवियों में भी श्रेष्ठ महान और सुयश की साक्षात् प्रतिमा है जिसका शेष भी यशगान करते हैं।[2] राधा की स्वकीया और परकीया सम्बन्धी धारणा के सम्बन्ध में गुप्त जी ने प्राक्कथन में स्वयं लिखा है, "राधा को कुछ लोग परकीया भी मानते हैं, परन्तु ब्रज के सभी मुख्य सम्प्रदाय भगवान् श्रीकृष्ण की स्वकीया के रूप में ही उनकी आराधना करते हैं। 'गर्ग संहिता' में भी भांडीरबन में ब्रह्मा के द्वारा राधा-कृष्ण विवाह का उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में, मैं भी उन्हें प्रभु की स्वकीया मानकर चला हूँ।"[3] भारतीय लौकिक पद्धति की भाँति ही राधा पुर-कन्याओं के साथ उपवन में गणगौरि पूजने जाती हैं।[4] चतुर्थ सर्ग में वृषभानु के गर्गाचार्य से राधिका के सम्बन्ध में पूँछने पर गर्गाचार्य कहते हैं—

कृष्ण ही इसके जीवन प्राण।
वरेंगे इसे वही ब्रजनाथ ।।[5]

कवि भारतीय मर्यादा का उल्लंघन न कर लोकाचार को आवश्यकीय मान भाण्डीर वन में उनका विवाह कराता है।[6] गुप्त जी के कृष्ण लोक लाज और मर्यादा के खंडन करने वाले नहीं अपितु लोक की चली आती हुई पद्धति पर

---

१. राधा, पृ० ७७-७८
२. जगत के वंदन करने योग्य, देवियों में भी श्रेष्ठ महान्।
सुयश की प्रतिमा है साक्षात्, शेष करते जिसका यशगान ।। राधा, पृ० ७१
३. राधा-प्राक्कथन, पृ० ८
४. उपवन में गणगौरि पूजने राधा जातीं।
पुर-कन्यायें साथ-साथ चलती थीं जाती ।। राधा, पृ० ४७
५. राधा, पृ० ७०
६. न आवश्यक विवाह की रीति, किन्तु यह होगा लोकाचार।
× × ×
'नृपति ! यह गोपनीय है बात', कहा ऋषि ने तजकर उत्साह।
"जहाँ है सुन्दर बन भाण्डीर, करेंगे ब्रह्मा वहाँ विवाह ।।"
—राधा, पृ० ७१

आचरण करने वाले हैं।[1] ब्रह्मा के कथन पर वह विवाह को उद्यत हो जाते हैं। एक वितान रचा हुआ है जिसमें मणि मंडित खंभ लगे हैं। समस्त सामग्री वहाँ एकत्र है। मंडप के मध्य सिंहासन पर राधा-नाथ बैठकर अपने करों से प्रिया का पाणि-ग्रहण करते हैं।[2] मंत्रों के साथ सात प्रदक्षिणा होती हैं। राधा जयमाला डालती हैं और कृष्ण हार डालते हैं। ब्रह्मा कन्या दान करते हैं—

कराई फिर प्रदक्षिणा सात, सात ही मंत्र किये निर्माण।
परस्पर युगल हो गये एक, देह दो किन्तु एक ही प्राण॥
डाल दी राधा ने जयमाल, कृष्ण ने भी डाला था हार।
कहा– यह हार तुम्हारी जीत, हार देकर भी मेरी हार।।'
हुआ सब धर्म-रीति-अनुसार, पूर्ण वैवाहिक कार्य-विधान।
पिता के तुल्य समंवस युक्त, किया ब्रह्मा ने कन्या दान॥[3]

राधा भारत की उस पतिव्रता नारी के समान है जो अपने पति की बुराई भी नहीं श्रवण करना चाहती। एक सखि के कहने पर कि कृष्ण चुरा-चुरा कर दधि माखन खाना और ब्रज बन में धूर्त लुटेरा कहलाना है राधा उससे कहती है—

हे सखि ! नहीं है उचित अधिक कुछ कहना।
होगा मेरा दुर्भाग्य बुराई सहना॥[4]

कवि ने चतुर्थ सर्ग में यमुना कूल पर कृष्ण और राधा के विनोद सम्बन्धी प्रसंगों का भी वर्णन किया है। श्री दाऊदयाल जी की राधा की यह विशिष्टता है कि कृष्ण स्वयमेव राधा को विरहिणी नहीं देख सकते। वे अपने आने का संदेश ही नहीं भेजते स्वयमेव आकर राधा को कृतार्थ भी करते हैं। राधा और कृष्ण का अन्तिम अपूर्व मिलन राधा को चिर सान्त्वनादायक है। वह राधिका कृष्ण के बिछुड़ने पर दुखी क्यों न होती? उसके विरह के घाव हो गए हैं और दिन-रात रोने-रोने ही कटते हैं[5]—

---

१. आप दोनों हैं यद्यपि एक, मानना है पर लोकाचार।
सदा से चलते आये आप, लोक की पद्धति के अनुसार॥ राधा, पृ० ८४

२. सजा मंडप मध्य, उसी पर बैठे राधानाथ।
हुआ था नभ में तब जय घोष, प्रिया का पाणि गहा निज हाथ॥
—राधा, पृ० ८६

३. राधा, पृ० ८७

४. राधा, पृ० ११४

५. राधा, पृ० ६७

मैं खोज गई पर मनमें वही समाया। इन नयनों में उन्माद प्रेम का छाया।
अन्तर में मैंने हाय! वेदना पाली। मेरे उपवन का हरिण कहाँ है आली ॥[1]

विशाखा और ललिता के आने पर राधा विशाखा से कहती है कि विना जीवन-धन के किस प्रकार संतोष हो, उर तंत्री की वीणा टूट रही है। हे सखि! तू चित्रकला में प्रवीण है मुझे नटवर का एक चित्र ही बना दे जिससे हृदय का भार हलका हो जाए।[2] राधा के मन की दशा देखिये—

अब धैर्य नहीं रख पाता मन अज्ञानी।
मैं तड़प रही ज्यों मीन, हाय! बिन पानी॥
मैं भटक रही ज्यों कोयल डाली-डाली।
मेरे उपवन का हरिण कहाँ है आली?[3]

विशाखा राधा को समझाती है कि व्याकुल होने से कुछ काम नहीं चलता क्योंकि विधि का विधान कभी नहीं टलता, परन्तु राधा प्रेम-विह्वल है—

पर प्रेम विह्वला राधा घोर विकल-सी।
बस 'श्याम-श्याम' ही रटती रहीं अटल-सी॥[4]

वह कृष्ण मिलन की कामना से तुलसी रोपन करती है। उसके नेत्रों से अनवरत अश्रु प्रवाहित होते हैं, शैया पर वह बेचैन पड़ी रहती है और रात्रि सुख से नहीं कटती। कृष्ण राधा के उत्कृष्ट प्रेम-बंधन के कारण आ गये—

उत्कृष्ट प्रेम तुम में ही मैंने पाया।
मैं इसी प्रेम-बंधन में बँधकर आया॥
हो सका न मुझसे इसका उल्लंघन है।
प्रियतमे! अहा! यह कितना दृढ़ बंधन है॥[5]

---

१. राधा, पृ० १०१
२. यों बोली राधा - नहीं मानता है मन।
अब कैसे हो संतोष बिना जीवन-धन?
उर-तंत्री की अब टूट रही है वीणा।
सखि! चित्र-कला में तू है अधिक प्रवीणा॥
अब चित्र बनाकर मुझे दिखा नटवर का।
तो हो जाये कुछ न्यून भार अंतर का॥ राधा, पृ० १०२
३. राधा, पृ० १०३
४. राधा, पृ० १०३
५. राधा, पृ० ११५

कृष्ण के अक्रूर के साथ चले जाने की बात सुनकर राधा की क्या दशा होती है—

प्राण नहीं रह पावेंगे, उड़, जायेंगे घनश्याम जहां।
जीवन-धन के विना, हाय ! मन, पायेगा विश्राम कहां ?

राधा के स्वप्नों का स्वर्ग विना कृष्ण के नर्क बन जायेगा। विरह व्यथा के जलने से उसके लिए प्राणों का उत्सर्ग करना श्रेष्ठ है।[1] कृष्ण के रथ पर चले जाने पर वह अचेत हो जाती है। कृष्ण के मुख मोड़ने और उनके अन्तर को पीड़ा देने पर वह कहती है—

विना श्याम सुन्दर के लगता, सूना यह सारा संसार।
पार लगाये कौन इसे, यह–जीवन-नैय्या है मँझधार ॥[2]

नन्द बाबा वापिस लौट आये परन्तु मनमोहन नहीं आये। राधिका इसे अपना ही दुर्भाग्य समझ सोचती है कि यदि वे स्वयं नहीं आ सकते थे तो मुझे ही बुला लेते और यदि यह भी उचित नहीं था तो दो शब्द ही कहला भेजते। ऐसा प्रतीत होता है कि उनका मुझ पर सत्य प्रेम न होकर प्रपंच ही था।[3] वह अपना अस्तित्व खोकर वेदना में ही विलीन हो गई—

दाह में ही रम गया प्रेमी जहां। चाहना आराध्य की भी फिर कहां ?
वह नहीं मिलता, मिटा जिसके लिये। दाह ही आराध्य फिर उसके लिये ॥[4]

अन्त में यही कहती है कि हे मनमोहन नंदनंदन ! यदि तुम शीघ्र नहीं आओगे तो राधा को भी जीवित नहीं पाओगे।[5] तुम्हें राधा पर यदि कुछ भी प्रेम है तो आ जाना।[6] विना घनश्याम के राधा का कोई आधार नहीं।[7] एकादश सर्ग में राधा चिन्ताओं में अपने आपको भूली हुई है।[8] एक ब्रजबाला

---

१. विना तुम्हारे नर्क बनेगा, राधा के स्वप्नों का स्वर्ग।
विरह-व्यथा में जलने से तो, अच्छा जीवन का उत्सर्ग ॥ राधा पृ० १८७

२. राधा, पृ० १९३

३. राधा, पृ० १९९

४. राधा, पृ० २०६

५. हे मनमोहन ! नंदनंदन ! जो, शीघ्र यहां नहिं आओगे।
तो अभागिनी राधा को भी, जीवित नाथ ! न पाओगे ॥ राधा, पृ० २३४

६. राधा पर कुछ प्रेम बचा है, तो जीवनधन आ जाना। राधा, पृ० २३४

७. राधा, पृ० २३७

८. राधा, पृ० २३९

राधा के पास उद्धव को लेकर आती है। उद्धव कहते हैं कि कृष्ण ने कहा है कि राधा दुखी न हो मैं शीघ्र आ रहा हूँ।[1] कवि ने कुछ काल उपरान्त राधा और कृष्ण का मिलन कराया है। राधा सामने से कृष्ण को आता हुआ देख प्रसन्न हो उनके चरणों में गिर पड़ती है। नटवर उसे अपने करों में उठाकर बोले—

"बोले—हे प्रिये ! तुम्हारी, आकुलता सुनकर आया।
यह कैसी दशा बनाई, कुम्हलाया जीवन यौवन !
लगता है मुझे-बना अब, यह उपवन, पूर्ण तपोवन ॥[2]

उनके मिलन की सुन्दर छवि को देख सब प्रसन्न होते हैं जिसका कवि ने इस प्रकार वर्णन किया है—

"क्या उपमा दें नहिं जान पड़े, उपमाओं से उपमेय बड़े;
यह सोच रहे सब खड़े-खड़े, थे व्यर्थ कोप सब बड़े-बड़े।[3]

सब राधा माधव की जय बोलते हैं और माधव भी 'राधा', 'राधा', बोल उठते हैं जिससे प्रतीत होता है कि कवि ने अपने काव्य में कृष्ण से अधिक राधा को महत्ता प्रदान की है—

'राधा-माधव' शब्द यही अनमोल उठे।
माधव भी तब 'राधा' - 'राधा' बोल उठे ॥[4]

राधा के चरित्र चित्रण में जहाँ श्री दाऊदयाल जी ने गर्गसंहिता, श्रीमद्-भागवत, गीतगोविन्द आदि अन्य ग्रन्थों का आश्रय लिया है वहाँ राधा कृष्ण का मधुर मिलन कराकर अपूर्व नवीनता एवं विलक्षणता का भी सम्मिश्रण कर दिया है।

---

१. कहा उन्होंने—कहना जाकर, राधा से-दुख-मस्त न हों।
   शीघ्र आ रहा हूँ ब्रज-वन में, चिन्ता में वे ग्रस्त न हों ॥ राधा, पृ० २६
२. राधा, पृ० २७१
३. राधा, पृ० २७७
४. राधा, पृ० २७७

परिशिष्ट

३०. परमानन्द और उनका साहित्य–डा. गोवर्द्धननाथ शुक्ल
३१. प्रेमवाटिका–रसखान
३२. पोथी सार बचन–हुजूर स्वामी जी महाराज–राधास्वामी सत्संग सभा, दयाल बाग, आगरा
३३. वल्लभ दिग्विजय भाषा–सीताराम वर्मा
३४. वल्लभ दिग्विजय–यदुनाथ
३५. वाणी–श्री गदाधरभट्ट जी
३६ वाणी–श्री वल्लभ रसिक जी
३७. वाणी–श्री माधुरी जी
३८. वाणी–श्री सूरदास मदनमोहन जी
३९. बिहारी रत्नाकर–जगन्नाथदास रत्नाकर
४०. ब्यालीस लीला–ध्रुवदास
४१. ब्रज का इतिहास–कृष्णदत्त वाजपेयी
४२. ब्रज प्रेमानन्द सागर–श्री हित वृन्दावनदास
४३. ब्रज माधुरीसार–वियोगी हरि
४४. भक्त कवि व्यास जी–वासुदेव गोस्वामी
४५. भक्तमाल–नाभादास
४६. भक्त नामावली ध्रुवदास कृत–पं० राधाकृष्णदास
४७. भक्त शिरोमणि सूरदास–नलिनी मोहन सान्याल
४८. भागवत सम्प्रदाय–बलदेव उपाध्याय
४९. भारतीय दर्शन–सीताराम वर्मा
५०. भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा–पं० बलदेव उपाध्याय
५१. भारतीय साधना और सूरसाहित्य–डा. मुंशीराम शर्मा
५२. भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग २–नागरी प्रचारिणी सभा काशी
५३. भावना और समीक्षा डा. ओ३म प्रकाश
५४. मध्यकालीन धर्म साधना–डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी
५५. मध्यकालीन धर्म साधना–परशुराम चतुर्वेदी
५६. मध्यकालीन प्रेम साधना–परशुराम चतुर्वेदी
५७. मतिराम ग्रन्थावली
५८. मतिराम कवि और आचार्य–डा. महेन्द्रकुमार
५९. महाकवि व्यास जी–प्रभुदयाल मीतल
६०. महाकवि सूरदास–नन्ददुलारे वाजपेयी

६१. महाकवि हरिऔध—गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश
६२. मिश्रबन्धु विनोद—मिश्र बन्धु
६३. मीरा माधुरी—ब्रजरत्नदास
६४. मैथिल कोकिल विद्यापति—शंभुप्रसाद बहुगुना
६५. युगल शतक—श्रीभट्ट देवाचार्य
६६. रसिक अनन्यमाल—भगवत मुदित
६७. रसिक प्रिया—केशवदास
६८. राधा—डाक्टयाल गुप्त
६९. राधा का क्रम विकास—शशिभूषणदास
७०. राधा गुणगान—गीताप्रेस, गोरखपुर
७१. राधा प्रमाण कुसुमाञ्जलि—रमानाथ शर्मा
७२. राधा माधव चिन्तन-गीताप्रेस, गोरखपुर
७३. राधा वल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य—डा० विजयेन्द्र स्नातक
७४. रासछद्म विनोद—राधावल्लभी सम्प्रदाय
७५. रीतिकालीन साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि—डा० शिवलाल जोशी
७६. रीतिकाव्य की भूमिका—डा० नगेन्द्र
७७. लाडसागर—श्री हित वृन्दावनदास
७८. विद्यापति—खगेन्द्रनाथ मित्र
७९. विद्यापति—जयनाथ नलिन
८०. विद्यापति—सूर्यबलीसिंह
८१. विद्यापति की पदावली—रामवृक्ष, बेनीपुरी
८२. विद्यापति ठाकुर—डा० उमेशचन्द्र मिश्र
८३. विश्वधर्म दर्शन—सांवलिया विहारी शर्मा
८४. श्रीमद् वल्लभाचार्य और उनके सिद्धान्त—श्रीव्रजनाथ भट्ट
८५. श्रीमद्भागवत और सूरदास—डा० हरवंशलाल शर्मा
८६. श्री महंप्रणव सिद्धान्त रत्नसंग्रह—श्यामलाल हकीम
८७. श्री माधुरी वाणी—श्री माधुरी
८८. श्री राधा रहस्य प्रकाशिका—महात्मा हंसदास
८९. सामान्य भाषा विज्ञान—डा० बाबूराम सक्सेना
९०. सिद्धान्त रत्न—बलदेव विद्याभूषण
९१. सुजान रसखान—रसखान
९२. सूर और उनका साहित्य—डा० हरवंशलाल शर्मा

९३. सूर की काव्य कला–डा० मनमोहन गौतम
९४. सूरदास–डा० रामरत्न भटनागर
९५. सूर निर्णय–प्रभुदयाल मीतल
९६. सूरसागर भाग १, भाग २–नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
९७. सूर संदर्भ–नंददुलारे बाजपेयी
९८. सूर साहित्य–डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
९९. सूर साहित्य की भूमिका–डा० रामरत्न भटनागर तथा विद्यापति वाचस्पति
१००. सेवक वाणी–श्री दामोदरदास जी सेवक
१०१. संस्कृत साहित्य की रूप रेखा–चंद्रशेखर पांडेय
१०२. स्फुट वाणी
१०३. स्वामी हरिदास जी का सम्प्रदाय और उसका वाणी साहित्य
–डा० गोपालदत्त शर्मा
१०४. हरिव्यास यशामृत–रूपरसिकदेव
१०५. हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों का चौदहवां वार्षिक विवरण
–डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल
१०६–हित चौरासी–हित हरिवंश–पं० द्वारकादास
१०७. हितसुधासागर
१०८. हित हरिवंश गोस्वामी सम्प्रदाय और साहित्य–ललिताचरण गोस्वामी
१०९. हितामृत सिन्धु–द्वारकादास
११०. हिन्दी कवि चर्चा–चंद्रावली पांडे
१११. हिन्दी कवियों की आलोचना–कृष्णकुमार सिन्हा
११२. हिन्दी काव्य की अंतश्चेतना–राजाराम रस्तोगी
११३. हिन्दीकाव्य विमर्श–डा० गुलाबराय
११४. हिन्दी कृष्ण काव्य में माधुर्योपासना–डा० श्यामनारायण पांडेय
११५. हिन्दी नवरत्न–मिश्र बन्धु विनोद
११६. हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास
–अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध
११७. हिन्दी भाषा और साहित्य–डा० श्यामसुन्दर दास
११८. हिन्दी साहित्य–डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
११९. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास–डा० रामकुमार वर्मा
१२०. हिन्दी साहित्य का इतिहास–रामचंद्र शुक्ल
१२१. हिन्दी साहित्य की कहानी–डा० रामरत्न भटनागर

१२२. हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि—डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय
१२ . हिन्दी साहित्य की भूमिका—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
१२४. हिन्दी साहित्य में कृष्ण—डा० सरोजनी कुलश्रेष्ठ
१२५. हिन्दी साहित्य में भ्रमर गीत परम्परा—सरला शुक्ल
१२६. हिन्दुत्व—रामदास गौड़
१२७. हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता—डा० बेणीप्रसाद

हस्तलिखित ग्रन्थ-सूची

परशुराम सागर—श्री ब्रजवल्लभशरण जी से प्राप्त
पीताम्बर देव की बाणी—श्री विशेश्वर शरण जी से प्राप्त
बिहारिनदेव की वाणी ,, ,,
भगवत रसिकदेव की वाणी ,, ,,
नागरीदास की वाणी ,, ,,
सरसदास की वाणी ,, ,,
रसिकदास की वाणी ,, ,,
लीलाविंशति—रूपरसिकदास जी ,, ,,
विट्ठलविपुलदेव की वाणी ,, ,,
सखी सम्प्रदाय के भक्तों की वाणी ,, ,,

पत्र-पत्रिकायें

ईश्वर प्राप्ति
उत्तरा
काव्यालोचनांक अवन्तिका
खोज रिपोर्ट सन् १९३५-३७
जर्नल अव दि रायल एशियाटिक सोसाइटी
बंगीय साहित्य परिषद् पत्रिका सं० १३०७
ब्रज भारती—ब्रज-साहित्य-मंडल मथुरा वर्ष १३ अङ्क १
भक्त चरितांक—कल्याण
मानवधर्म योगेश्वर—श्री कृष्णांक कल्याण
राधा विशेषांक
वृन्दावनाङ्क—सर्वेश्वर
शक्ति अङ्क—कल्याण
शिव वचनसार वर्ष २ तरङ्ग ७

श्री मद्भागवतांक कल्याण
साधनांक–कल्याण
सुदर्शन पत्र–नन्दकुमार शरण
हिन्दुस्तानी पत्रिका

संस्कृत ग्रन्थ

ऋग्वेद
यजुर्वेद
अथर्ववेद
वाजसनेयी-संहिता
ब्रह्म संहिता
शतपथ ब्राह्मण
एतरेय ब्राह्मण
तैत्तिरीय आरण्यक
वृहदारण्यक
छान्दोग्य उपनिषद्
श्वेताश्वतरोपनिषद्
कठोपनिषद्
तैत्तिरीय उपनिषद्
मैत्रयण्यु उपनिषद्
राधातापिनी उपनिषद्
श्रीमद्भगवतगीता
श्रीमद्भागवत पुराण
स्कंद पुराण
मत्स्य पुराण
ब्रह्माण्ड पुराण
ब्रह्म पुराण
विष्णु पुराण
वायु पुराण
पद्म पुराण
नारद पुराण
ब्रह्मवैवर्त पुराण
देवीभागवत पुराण
भविष्यत पुराण
आदि पुराण
हरिवंश पुराण
महाभारत
लघुभागवतामृत
गौतमीय तन्त्र
कृष्णयामल तन्त्र
शांडिल्य-भक्ति-सूत्र
नारद-भक्ति सूत्र
अणुभाष्य
भक्ति-रसामृत सिन्धु–रूपगोस्वामी
पुष्टि प्रवाह मर्यादा
सन्यास निर्णय
सुबोधिनी–वल्लभाचार्य
प्रीतिसन्दर्भ–जीवगोस्वामी
परिवृढाष्टक–आचार्य
तत्त्वदीप निबंध
सिद्धांत मुक्तावली
निम्बादित्य दशश्लोकी–हरिव्यासदेव
द्वैताद्वैत सिद्धांत
वेदांत कौस्तुभ
वेदांत कामधेनु–निम्बार्काचार्य
दशश्लोकी ,,
भाव प्रकाश–हरिराय
पंचतंत्र

गर्गसंहिता
नारद पंचरात्र
दशरूपक धनंजय
ध्वन्यालोक–आनन्दवर्द्धन
दशावतार–क्षेमेन्द्र
वेणीसंहार-भट्टनारायण
कंठाभरण–भोज
विवेक चूड़ामणि
गीतगोविन्द-जयदेव
राधा सुधानिधि–हितहरिवंश
राधा उपसुधानिधि–हितहरिवंश
उज्ज्वल नीलमणि–रूपगोस्वामी
हंसदूत–रूपगोस्वामी
उद्धव संदेश ,,
राधाकृष्ण गणोद्दीपिका–रूपगोस्वामी
ग्रन्थ रत्न पञ्चकम्–सं. वा. कृष्णदास
प्रेम सम्पुट–विश्वनाथ चक्रवर्ती
अमर कोष
गाथा सप्तशती

अंग्रेजी ग्रन्थ

Aspects of Aryan Civilization as depected in the Ramayan
–C. N. Zutishi M. R. A. S.
Bishnu in Veds –R. N. Dandekar
Brahmnism & Hinduism –Maniar Williams
Collected works of Sri R. G. Bhandarkar V. IV.
Cultural Heritage of India Series 2.
Early History of Vaishnav faith and movement in Bengal
–by S. K. De M. A. D. Litt.
Essays on Gita –Arbindu
Essays on the Religion of the Hindus Vol, I –by H. H. Wilson
Evolution of Vaishnavism –R. B. K. N. Mitra
History of Bengali Language & Literature –D. Dinesh Chand Sen.
Hymns of the Alvara –J. S. M. Hooper.
Indian Philosophy –Dr. Radhakrishnan.
Influence of Islam on Hindi culture –Dr. Tarachand.
Modern Vernacular Literature of Hindustan –Dr. Grierson.
Mediavel India –Dr. Lahri prasad.
Sikha Religion –M. A. Macaliff.
The Bhakti Doctrine in the Shandilya Sutra
–B. M. Barua M. A. D. Litt.
The Pushti Marg –Lallu Bhai P. Parekh.
The songs of Vidyapati –Subhadra Jha.
Gupta Lecturer in the Patna University.

गर्गसंहिता
नारद पंचरात्र
दशरूपक धनंजय
ध्वन्यालोक–आनन्दवर्द्धन
दशावतार–क्षेमेन्द्र
वेणीसंहार–भट्टनारायण
कंठाभरण–भोज
विवेक चूड़ामणि
गीतगोविन्द–जयदेव
राधा सुधानिधि–हितहरिवंश
राधा उपसुधानिधि–हितहरिवंश
उज्ज्वल नीलमणि–रूपगोस्वामी
हंसदूत–रूपगोस्वामी
उद्धव संदेश ,,
राधाकृष्ण गणोद्दीपिका–रूपगोस्वामी
ग्रन्थ रत्न पञ्चकम्–सं. बा. कृष्णदास
प्रेम सम्पुट–विश्वनाथ चक्रवर्ती
अमर कोष
गाथा सप्तशती

अंग्रेजी ग्रन्थ

Aspects of Aryan Civilization as depected in the Ramayan –C. N. Zutishi M. R. A. S.
Bishnu in Veds –R. N. Dandekar
Brahmnism & Hinduism –Maniar Williams
Collected works of Sri R. G. Bhandarkar V. IV.
Cultural Heritage of India Series 2.
Early History of Vaishnav faith and movement in Bengal –by S. K. De M. A. D. Litt.
Essays on Gita –Arbindu
Essays on the Religion of the Hindus Vol, I –by H. H. Wilson
Evolution of Vaishnavism –R. B. K. N. Mitra
History of Bengali Language & Literature –D. Dinesh Chand Sen.
Hymns of the Alvara –J. S. M. Hooper.
Indian Philosophy –Dr. Radhakrishnan.
Influence of Islam on Hindi culture –Dr. Tarachand.
Modern Vernacular Literature of Hindustan –Dr. Grierson.
Mediavel India –Dr. Lahri prasad.
Sikha Religion –M. A. Macaliff.
The Bhakti Doctrine in the Shandilya Sutra –B. M. Barua M. A. D. Litt.
The Pushti Marg –Lallu Bhai P. Parekh.
The songs of Vidyapati –Subhadra Jha.
Gupta Lecturer in the Patna University.

गर्गसंहिता
नारद पंचरात्र
दशरूपक धनंजय
ध्वन्यालोक–आनन्दवर्द्धन
दशावतार–क्षेमेन्द्र
वेणीसंहार–भट्टनारायण
कंठाभरण–भोज
विवेक चूड़ामणि
गीतगोविन्द–जयदेव
राधा सुधानिधि–हितहरिवंश
राधा उपसुधानिधि–हितहरिवंश
उज्ज्वल नीलमणि–रूपगोस्वामी
हंसदूत–रूपगोस्वामी
उद्धव संदेश ,,
राधाकृष्ण गणोद्दीपिका–रूपगोस्वामी
ग्रन्थ रत्न पञ्चकम्–सं. बा. कृष्णदास
प्रेम सम्पुट–विश्वनाथ चक्रवर्ती
अमर कोष
गाथा सप्तशती

अंग्रेजी ग्रन्थ

Aspects of Aryan Civilization as depected in the Ramayan –C. N. Zutishi M. R. A. S.
Bishnu in Veds –R. N. Dandekar
Brahmnism & Hinduism –Maniar Williams
Collected works of Sri R. G. Bhandarkar V. IV.
Cultural Heritage of India Series 2.
Early History of Vaishnav faith and movement in Bengal –by S. K. De M. A. D. Litt.
Essays on Gita –Arbindu
Essays on the Religion of the Hindus Vol, I –by H. H. Wilson
Evolution of Vaishnavism –R. B. K. N. Mitra
History of Bengali Language & Literature –D. Dinesh Chand Sen.
Hymns of the Alvara –J. S. M. Hooper.
Indian Philosophy –Dr. Radhakrishnan.
Influence of Islam on Hindi culture –Dr. Tarachand.
Modern Vernacular Literature of Hindustan –Dr. Grierson.
Mediavel India –Dr. Lahri prasad.
Sikha Religion –M. A. Macaliff.
The Bhakti Doctrine in the Shandilya Sutra –B. M. Barua M. A. D. Litt.
The Pushti Marg –Lallu Bhai P. Parekh.
The songs of Vidyapati –Subhadra Jha.
Gupta Lecturer in the Patna University.